MASA-05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

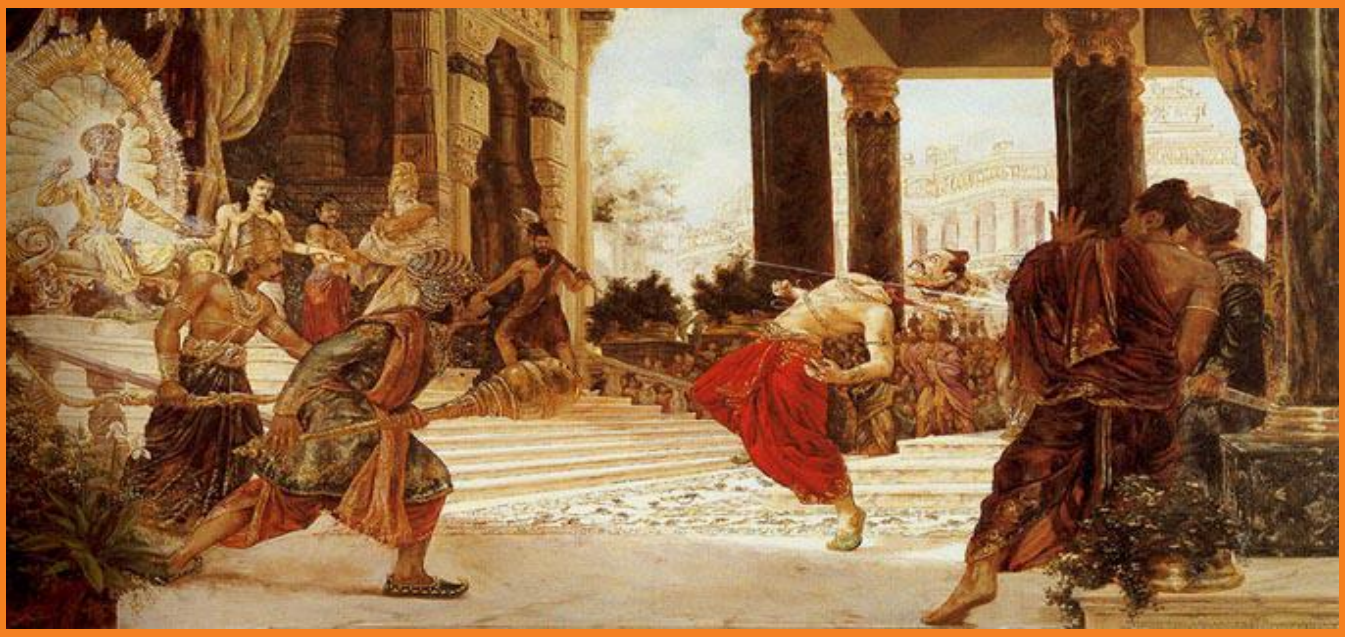

गद्य एवं काव्य

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

अध्यक्ष

प्रोफेसर (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

समन्वयक/सदस्य

प्रो. (डॉ.) गणेशीलाल सुथार (संयोजक)
पूर्व परामर्शदाता (संस्कृत)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)
पूर्व निदेशक, पण्डित मधुसूदन ओझा शोध प्रकोष्ठ
पूर्व आचार्य, संस्कृत विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ. क्षमता चौधरी
सहायक-आचार्य (अंग्रेजी-विभाग)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

सदस्य

1. **प्रो. (डॉ.) राजेन्द्र आई. नाणावटी (राष्ट्रपति-सम्मानित)**
   इमेरिटॅस फेलो (यू.जी.सी.)
   पूर्व निदेशक, ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट
   महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदा (गुजरात)
2. **देवर्षि कलानाथ शास्त्री (राष्ट्रपति-सम्मानित)**
   अध्यक्ष, आधुनिक संस्कृतसाहित्य-पीठ
   जगद्गु रु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर
   पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर (राजस्थान)
3. **डॉ. सुषमा सिंघवी**
   पूर्व सहआचार्य, संस्कृत विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
   पूर्व निदेशक एवं परामर्शदाता संस्कृत
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केन्द्र, जयपुर
4. **प्रो. (डॉ.) वसन्त कुमार भट्ट**
   आचार्य तथा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
   निदेशक, भाषा-संकाय
   गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद (गुजरात
5. **प्रो. (डॉ.) नरेन्द्र अवस्थी**
   आचार्य तथा पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सम्पादन एवं पाठ लेखन (प्रथम संस्करण मार्च 2010)

सम्पादक
डॉ. सत्यप्रकाश दुबे
सह-आचार्य, संस्कृत विभाग तथा निदेशक
पण्डित मधुसूदन ओझा शोध प्रकोष्ठ
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

लेखक

1. **डॉ० कपिल गौतम (इकाई 1)** (पाठयक्रम संशोधनोपरांत)
   सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
2. **डॉ. हरिसिंह राजपुरोहित इकाई (2,3,4,5,6)**
   व्याख्याता
   राजकीय महाविद्यालय, जालोर (राज.)
3. **डॉ. भल्लूराम खीचड़ इकाई (7,8,9 ,10)**
   उप प्राचार्य
   जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान(DIET) विद्याशाला, जोधपुर (राज.)
4. **डॉ. (श्रीमती) सुदेश आहूजा (इकाई 11,12,13,14)**
   व्याख्याता, संस्कृत विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.)
5. **डॉ. (श्रीमती) सरिता भार्गव (इकाई 15,16)**
   अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
6. **डॉ. श्रुति राय, (इकाई 17,18)** (पाठयक्रम संशोधनोपरांत)
   सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पाठयक्रम संशोधन समिति

अध्यक्ष :
प्रो. एल.आर. गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक :
डॉ० कपिल गौतम
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य :

1. **प्रो० राम नाथ झा,**
   आचार्य, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र,
   जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
2. **प्रो० ओम नाथ बिमली,**
   आचार्य, संस्कृत विभाग
   दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
3. **प्रो० रामसिंह चौहान,**
   विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **प्रो० राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य**
   विभागाध्यक्ष, वेद विभाग
   जगद्गु रुरामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय,जयपुर
5. **डॉ० महेश शर्मा,**
   सहायक आचार्य, दर्शन विभाग
   जगद्गु रुरामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय,जयपुर

संशोधन एवं सम्पादन (संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, जुलाई 2018)

डॉ० कपिल गौतम
सहायक - आचार्य, संस्कृत विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) अशोक शर्मा	**प्रो. एल.आर. गुर्जर**	**डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी**
कुलपति	निदेशक (शैक्षणिक)	निदेशक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी
निदेशक,
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

उत्पादन: जुलाई 2018 ISBN NO. 13/978-81-8496-321-2

सर्वाधिकार सुरक्षित: इस सामग्री के किसी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी' (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
व०म०खु०वि० कोटा के लिए कुलसचिव वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

o/keku egkohj [kyk fo'ofo|ky;] d¨Vk

vuØef.kdk

bdkbZ l-	bdkbZ dk uke	i"B l[;k
bdkb&1	lL—r x| dk mnHko ,o fodkl	1&20
bdkb&2	egkdfo ck.kHkê Ñr dknEcjh dh x| 'kyh dk lkekU; ifjp;	21&36
bdkb&3	egkjkt 'knd dk of'k"V; o.ku ¼vklhn'k"k-------- dkrdekd.;rke½	37&64
bdkb&4	foU/;kVoh o.ku ¼vfLr iokij-----vdjkn'kue½	65&77
bdkb&5	iHkkr o.ku ,o 'kcjlU; }kjk foU/;kVoh d Hk;dj fo/ol dk o.ku ¼,dnk r------ ej.ke|o miikn;r v'k dh lilx 0;k[;k½	78&98
bdkb&6	tkckfy vkJe o.ku ¼bR;o fpUr;R;o------ ;fn drgye v'k dh lilx 0;k[;k½	99&124
bdkb&7	egkdfo ek?k Ñr ^f'k'kikyo/ke egkdk0; dh fo'k"krkvk dk eY;kdu	125&141
bdkb&8	lHkkHkou e JhÑ".k] cyjke ,oe m)o dh eU=.kk l lEcfU/kr o.ku ¼f'k'kikyo/ke f}rh; lx] 'ykd 1 l 40½	142&164
bdkb&9	lHkkHkou e JhÑ".k] cyjke ,oe m)o dh eU=.kk l lEcfU/kr o.ku ¼f'k'kikyo/ke f}rh; lx] 'ykd 41 l 80½	165&186
bdkb&10	lHkkHkou e JhÑ".k] cyjke ,oe m)o dh eU=.kk l lEcfU/kr o.ku ¼f'k'kikyo/ke f}rh; lx] 'ykd 81 l 118½	187&210
bdkb&11	egkdfo fcYg.k fojfpr foØek³dnopfjre ,frgkfld egkdk0; dh fo'k"krkvk dk eY;k³du	211&220
bdkb&12	noLrfr ,o iHkkro.ku ¼foØekdnopfjre] çFke lx] 'ykd 1 l 35½	221&239
bdkb&13	pkyD;o'kh; jktkvk dk irki o.ku ¼foØekdnopfjre] çFke lx] 'ykd 36 l 70½	240&260
bdkb&14	pkyD;o'kh; jktkvk dk irki o.ku ¼foØekdnopfjre] çFke lx] 'ykd 71 l 106½	261&280
bdkb&15	vkpk; i"inÙk i.khr f'koefgEu¼ Lrk= e f'ko dk efgeke; o.ku ¼'ykd 1 l 20½ lL—r&0;k[;k	281&295
bdkb&16	Lrk= ikB dk egÙo ¼'ykd 21 l 43½ lL—r&0;k[;k	296&308
bdkb&17	dekjlEHko ¼i¥pe lx½ ¼'ykd l[;k 1 l 60 dh 0;k[;k ½	309&346
bdkb&18	dekjlEHko ¼i¥pe lx½ ¼'ykd l[;k 61 l 86 dh 0;k[;k ½	347&363

इकाई - 1

संस्कृत गद्य का एवं उद्भव विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 संस्कृत गद्य की विशेषताएँ
1.3 संस्कृत गद्य का उद्भव
1.4 कथा एवं आख्यायिका
1.5 संस्कृत गद्य का विकास
  1.5.1 सुबन्धु
  1.5.2 बाणभट्ट
  1.5.3 दण्डी
1.6 अन्य गद्य लेखक
1.7 पारिभाषिक शब्दावली
1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.9 सारांश
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

हम एम० ए० उत्तरार्द्ध संस्कृत के प्रश्नपत्र गद्य एवं काव्य (MASA-05) के अन्तर्गत संस्कृत गद्य का उद्भव एवं विकास नामक इकाई का अध्ययन करने जा रहे है। हम यहाँ संस्कृत गद्य के उद्भव एवं विकास को रेखांकित करते हुए निम्नलिखित तथ्यों का अवबोध कर सकेगें –

- संस्कृत वाङ्मय में गद्य विधा का क्या स्थान है?
- वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र, दार्शनिक, शिलालेख, शास्त्रीय इत्यादि से किस प्रकार गद्य उद्भूत हुआ है?
- संस्कृत गद्य की विधाद्वय कथा एवं आख्यायिका में क्या भेद है ?संस्कृत गद्य के तीन सम्राट् सुबन्धु बाण तथा दण्डी ने किस प्रकार गद्य को विकसित किया है?
- उक्त गद्य त्रयी के अतिरिक्त अन्य लेखकों का संस्कृत गय के विकास में क्या योगदान रहा है?

1.1 प्रस्तावना

गद्यकाव्य में 'काव्य' के सभी रस, अलंकार, गुण आदि विषय रहते हैं, किन्तु पद्यकाव्य के सदृश इसमें छन्द का बंधन नहीं रहता है। यह सच है कि किसी भी साहित्य का प्रारम्भ पद्य से होता है। चूँकि पद्य में संगीत का तव सहज रूप से लिपटा रहता है, अत: मनुष्य नैसर्गिक रूप से उसकी ओर आकृष्ट होता है। गेयतत्व की ओर सहज आकर्षण होने के कारण मानवीय चेतना के परिवेश में आवेष्टित रहती है।

'गद्य' में विचार के तत्व प्रबल होते हैं, जबकि 'पद्य' में भावना का प्राधान्य होता है। संस्कृत साहित्य 'वैदिक' गीतों' के रूप में ही प्रस्फुटित हुआ। यह पद्य - बहुल साहित्य है। संस्कृत में शास्त्रीय ग्रंथो की भी रचना पद्य में ही हुई है। इतना होने पर भी संस्कृत में गद्य का प्रचुर साहित्य विद्यमान है तथा इसका जितना भी अंश गद्य में लिखा गया है, उसकी अपनी विशिष्टता है।

संस्कृत गद्य - लेखन की परम्परा वैदिक संहिताओं की तरह ही प्राचीन है। कृष्ण यजुर्वेद में गद्य का प्राचीनतम रूप उपलब्ध है। गद्य के कारण ही वैदिक संहिता में 'कृष्ण यजुर्वेद' का स्वतंत्र स्थान है। इसकी तैतरीय संहिता गद्य का प्राचीनतम रूप उपस्थित करती है। अर्थर्ववेद का छठा भाग गद्य - रूप में है। परवर्ती साहित्य में ब्राम्हणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में गद्य का व्यावहारिक रूप उपलब्ध होने लगता है, जो वैदिक गद्य की परम्परा का प्रौढ एवं संवर्धनशील रूप प्रस्तुत करता है।

कालान्तर में तत्वज्ञान, व्याकरण, विज्ञान-विषयक ग्रन्थ, ज्योतिष तथा टिका-ग्रंथो में गद्य का व्यव्हारोपयोगी प्रौढ रूप सामने आया। इन ग्रंथो का गद्य वैदिक साहित्य के गफ्द्य का विकसित रूप प्रस्तुत करता है तथा इस स्थिति में गद्य जीवन के निकट फलने- फूलने लगता है। कथा-काव्य, आख्यायिका, चम्पू काव्य एवं काव्यशास्त्रीय ग्रंथो में गद्य के साहित्यिक, सहज एवं अलंकृत रूप से दर्शन होते हैं और इनका संस्कृत गद्य अपने परिनिष्ठित रूप में पूर्णत: समृद्ध होता है।

संस्कृत में गद्य-काव्यों की विशाल परम्परा रही है, किन्तु सम्प्रति अनेक ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। पंतजली के महाभाष्य में वासवदत्ता, भैमरथी एवं सुमनोत्तारा प्रभूति गद्य-काव्यों के उल्लेख होते हैं –

अधिकृत्य कृते ग्रन्थ 'बहुलं लुग्वक्त्वय:'

वासवद्ता सुमनोत्तारा ,। न च भवति। भैमरथी।" (4.3.87)

पतंजली के पूर्व प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन भ आख्यायिकाओं से परिचित दिखायी पड़ते हैं – 'लुबाख्यायी काम्यो बहुलम, आख्याना आख्यायिकेतिहास-पुराणेभ्याश्च।

1.2 संस्कृत गद्य की विशेषताएँ

शास्त्रीय ग्रंथो के माध्यम से संस्कृत आचार्यों ने सूत्रात्मक शैली के गद्य का निर्माण किया है। लाघव या लघुता संस्कृत गद्य की सर्वाधिक विशेषता है, जिसमें पुरे वाक्य में व्यक्त किये गए विचार को एक ही पद में रखा जाता है। संस्कृत भाषा में समास- बहुल गद्य का रूप प्राप्त होता है। वस्तुत: 'समास' संस्कृत भाषा का प्राण है, जिसके कारण गद्य में भावग्राहिता, गाढ़बंधता एवं प्रभान्विति आती है।

'ओज' गुण संस्कृत गद्य की अन्य विशिष्टता है। पदों का साभिप्राय होना ओज गुण के अन्तर्गत आता है। आचार्य दण्डी के अनुसार समास का बाहुल्य ही ओज और ओज गद्य का जीवन है –

'ओज: समासभूयस्वत्वमेतद् गद्यस्य जीवितम।'

संस्कृत गद्य के दो रूप होते हैं – (1) बोलचाल का सरल या सादा गद्य तथा (2) प्रौढ एवं अलंकृत गद्य। वैदिक साहित्य में बोलचाल का सरल गद्य प्राप्त होता है, पर लौकिक साहित्य में प्रौढ, अलंकृत गद्य होते हैं। श्रीमद्भागवत तथा विष्णु पुराण में ऐसे ही गद्य हैं।

1.3 संस्कृत-गद्य का उद्भव

वैदिक संहिता में संस्कृत गद्य का प्रारम्भिक रूप प्राप्त होता है। इस युग का गद्य सरल, सीधा एवं बोलचाल की भाषा का है, जिसमें छोटे-छोटे वाक्य तथा असमस्त पद प्रयुक्त होते हैं। उपमा एवं रूपक प्रभृति अलंकारों के समावेश से इसमें विशेष चारुता आ जाती है। जैसे-

"आ ब्रम्हान ब्राम्हणो ब्रम्हवर्चसी जायताम्। आराष्ट्रे राजन्य: शुर: इषव्यो - ऽतिव्याधि महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुवोढाऽनाड्वानाशु: सप्ति: पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णु रथेष्ठा सभेयो युवास्य यजमानस्य

वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो नः औषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्।" **(यजुर्वेद 2.22)**

कालक्रम में कुछ उतरकर अथर्ववेद का गद्य है। अथर्ववेद का छठा भाग गद्यात्मक ही है। समग्र ब्राह्मणों की रचना गद्यरूप में ही है। यज्ञों के वर्णनात्मक होने से इसका प्रयोग उचित ही है। आरण्यकों में भी गद्य की प्रचुरता है। उपनिषदों में प्राचीन उपनिषद् गद्यात्मक ही है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में गद्य का प्रयोग बहुत ही व्यापक, उदार तथा उदार रूप से हुआ है। लौकिक संस्कृत के ग्रन्थों में तदपेक्षया गद्य का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है।

शिलालेखों में संस्कृत गद्य का रूप अत्यंत पौध, अलंकृत तथा समास- बहुल है । रूद्रदामन का जूनागढ़ का शिलालेख तथा समुद्रगुप्त का प्रयाग का शिलालेख प्रौढ गद्य का रूप उपस्थित करता है। जैसे –

"प्रामणमानोन्मान स्वरगतिवर्णसारसत्वातिभिः परमलक्षणव्यंजननैरुपेतैनकान्त मुर्तिना स्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेंद्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्त दाम्नो महा-क्षत्रपेण रूद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।"(गिरनार का शिलालेख)

शास्त्रीय गद्य का भी अपना स्थान है । समस्त भारतीय दर्शन ग्रंथो का लेखन गद्य में ही हुआ है । यद्यपि कतिपय अपवाद भी हैं । इन ग्रंथो में लेखन का ध्यान भावाव्यक्ति एवं अर्थाभिव्यक्ति पर अधिक रहता है । शब्द शुष्क भले ही हों, पर उनमें अभिप्रेत अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्त होनी चाहिए । कुछ ऐसे दर्शनकार हैं, जिन्होंने अलंकृत एवं साहित्यक शैली के गद्य का व्यवहृत किये हैं।

पतंजली, शबर स्वामी, शंकराचार्य एवं जयंतभट्ट के ग्रंथो में शास्त्रीय गद्य चरम सीमा पर पहुँच गया है । इन्होने व्याकरण तथा दर्शन जैसे जटिल, गम्भीर एवं दुरह विषय का सरल, बोधगम्य और प्रांजल शैली में विवेचन किया है । पतंजली ने कथोपकथन की शैली में बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर महाभाष्य की रचना की । इनके वाक्य अत्यन्त छोटे तथा पद असमस्त हैं । ऐसा लगता है कि आचार्य सम्मुख बैठे छात्र वर्ग को व्याकरण पढ़ा रहा हैं –

"के पुनः कार्यभावानिवृत्तो तावत् तेशां वत्नः क्रियते । तद् यथा घटेन कार्यम् करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह-कुरु घटं कार्यमनेन करिष्यामति । न तद्वच्छब्दान् प्रयुयुक्षमाणु वैयाकरणकुलंगत्वाह-कुरु शब्दान प्रयोक्ष्य इति ।(पस्पशान्हिक) शवरस्वामी ने 'मीमांसा सूत्र' पर सरल भाषा में भाष्य लिखा और शंकराचार्य का 'वेदान्त भाष्य' का गद्य सारगर्भित, प्रौढ एवं प्रांजल है । चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकं वचनं माहुः । उच्यते आचार्यःचोदितः करोमीति हि दृश्यते ।

(शाबरभाष्य १/१/१)

-अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय सर्वे वेदान्ता आरम्भ्ते ।(ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य-उपोद्धात)

जयंतभट्ट ने 'न्याय मंजरी' नामक न्यायदर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा । इन्होंनें न्याय जैसे जटिल विषय को सरस, व्यंग्य-युक्त तथा चटुल उक्तियों के द्वारा हृदयंगम बनाया है – नाममात्रवस्तुसंकीर्तनमद्देश्य । उद्दिष्टस्य लक्षणमुपपद्यते न वेति परी क्षा ।(न्यायमञ्जरी)

संस्कृत गद्यकाव्य लोककथाओं की वर्णात्मक सामग्री को लेकर आता है तथा उसकी ही मानवी व अति मानवी कथा रुढियों को अपनाता हैं, पर इसका ढाँचा अपना होता है, जो काव्य की देन है ।

1.4 कथा एवं आख्यायिका

आख्यायिका का स्वरूप -

भामह ने निम्नलिखित तीन कारिकाओं में गद्यकाव्य के भेद आख्यायिकाके स्वरूप का वर्णन किया है। आख्यायिका 'संस्कृत' भाषा में निबद्ध होती है। आख्यायिका का गद्य क्लिष्ट न हो, शब्द सुश्रव्य हो, अर्थ भी स्पष्ट हो, समास भी क्लिष्ट न हो। आख्यायिका का विषय उदात्त होना चाहिए। इसका विभाजन उच्छ्वासों में विभक्त होना चाहिए। इसका नायक अपने जीवन के वृत्तान्त को स्वयं ही कहता है। इसमें भावी अर्थ को कहने के लिए कवि वक्त्र और अपर वक्त्र छन्दों का प्रयोग करता है। आख्यायिका में कवि अपने कथनों से विशिष्ट अभिप्राय को व्यक्त करता है। इसमें कन्याहरण, युद्ध, विप्रलम्भ आदि का वर्णन होता है। साथी नायक के अभ्युदय का वर्णन भी होता है। बाणभट्ट का 'हर्षचरितम् आख्यायिका का उदाहरण है।

संस्कृतानाकुलश्रव्यशब्दार्थपदवृत्तिना।

गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छवासाख्यायिका मता।। काव्यालंकार25

अर्थ - संस्कृत (में निबद्ध) अक्लिष्ट, श्रव्य शब्द, अर्थ और पदवृत्ति अर्थात् समास वाले गद्य से युक्त, उदात्त अर्थ वाली, उच्छ्वासो में विभक्त, (रचना) आख्यायिका मानी गई है।

वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्।

वक्त्रञ्चापरवक्त्रञ्च काले भाव्यर्थ शंसि च।। काव्यालंकार26

अर्थ - उसमें (आख्यायिका में) नायक के द्वारा अपने द्वारा घटित वृत्त का आख्यान किया जाता है। (वह) यथावसर भावी घटनाओं के सूचक वस्त्र और अपरवस्त्र (छन्दों से युक्त) होती है।

कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदङ्किता।

कन्याहरणसङ्ग्राम विप्रलम्भोदयान्विता।। काव्यालंकार27

अर्थ - कवि के (विशिष्ट) अभिप्राय से प्रयुक्त कुछ कथनों से युक्त (तथा) कन्याहरण, सङ्ग्राम, विप्रलम्भ (और) अभ्युदय से युक्त होती हैं।

कथा का स्वरूप –

निम्नलिखित दो कारिकाओं में भामह ने कथा के स्वरूप का वर्णन किया है। आख्यायिका के स्वरूप से भेद दिखाते हुए कथा के स्वरूप का प्रकाशन किया गया है। कथा की भाषा संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश हो सकती है जबकि आख्यायिका की भाषा संस्कृत होती है। कथा उच्छ्वासों में विभक्त नहीं होती। आख्यायिका में नायक अपने चरित का वर्णन करता है किन्तु कथा में वह अपने चरित का वर्णन नहीं करता अपितु अन्यवक्ता उसके चरित का वर्णन करते हैं। इसमें भामह ने हेतु दिया है कि कथा का नायक कुलीन होता है वह स्वयं अपने चरित का वर्णन नहीं कर सकता। कथा का उदाहरण 'कादम्बरी है।

न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छवासवत्यपि।

संस्कृतासंस्कृताचेष्टा कथापभ्रंशभाक्तथा।। काव्यालंकार28

अर्थ - वक्त्र और अपरवक्त्र से रहित, उच्छ्वासों से रहित, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से युक्त (रचना) कथा (के रूप में) इष्ट है।

अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते।

स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः।। काव्यालंकार29

अर्थ - उसमें (कथा में) नायक अपने चरित का कथन नहीं करता अपितु अन्य करते हैं। अभिजात जन अपने गुणों का प्रकाशन कैसे करें ?

भामह ने गद्य काव्य के आख्यायिका और कथा ये दो भेद स्वीकार किए हैं किन्तु परवर्ती आचार्य दण्डी ने इसका खण्डन कर दिया है तथा विश्वनाथ जी ने भी इसका समर्थन किया है।

दण्डी का अभिमत है कि आख्यायिका और कथा एक ही काव्य है केवल नाम दो हैं

तत् कथाऽख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।

दण्डी का कथन है कि छन्द, उच्छ्वास, कन्याहरण आदि कथावस्तु वक्ता के आधार पर काव्य का भेद स्वीकार नहीं किया जा सकता।

1.5 संस्कृत गद्य का विकास

संस्कृत साहित्य के गद्य का प्राचीनतम रूप हमें वैदिक साहित्य में देखने को मिलता है। वैदिक साहित्य के गद्य के दो प्रकार के रूप में मिलते हैं - **1.** वैदिक काल का सीधा-सादा बोलचाल का गद्य तथा **2.** लौकिक संस्कृत का प्रौढ़, समासबहुल, गाढबन्ध वाला गद। दोनों प्रकार के गद्यों में अपना विशिष्ट सौन्दर्य तथा मोहकता है। वैदिक गद्य में सीधे-सादे, छोटे-छोटे शब्दों का हम प्रयोग पाते हैं। 'ह' 'वै' 'उ' आदि अव्यय वाक्यालंकार के रूप में प्रयुक्त हैं। इनके प्रयोग से वाक्य में रोचकता तथा सुन्दरता का समावेश हो जाता है। समास की विशेष कमी है किन्तु उदाहरणों का प्रयोग अधिक हुआ है। उपमा तथा रूपक का कमनीय सन्निवेश वैदिक गद्य को विदग्धों की दृष्टि से हृदयावर्जक बनाये हुए हैं। इस कथन की पुष्टि में कालक्रम से गद्य का निरीक्षण आवश्यक होगा।

"व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्। स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत्। तदेकमभवत्, तल्ललाममभवत्, तन्महदभवत्; तज्जेष्ठमभवत्, तद् ब्रह्माभवत् तत् ततोऽभवत् तत् सत्यमभवत्, तेन प्रजायत।" (अथर्व. **15** काण्ड, **1** सूक्त)

ब्राह्मणग्रन्थों के गद्य का एक नमूना देखिए - अग्निर्वे देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः। आग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति दीक्षणीयमेकादशकपालं सर्वाभ्य एवैनं तद्देवताभ्योऽनन्तरायं निर्वपन्ति। (एतेरेय ब्राह्मण **1)**

"यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद् विजानाति तद् भूमा। अथ यत्रान्यत् पश्यति अन्यच्छृणोति अन्यद् विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्। (छान्दोग्य **7/24)**

वैदिक गद्य तथा लौकिक संस्कृत के गद्य को मध्य में मिलाने का काम पौराणिक गद्य करता है। यह गद्य नितान्त आलंकारिक तथा प्रासादिक है। श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण का गद्य इसका स्पष्ट उदाहरण है। इसमें साहित्यिक गद्य का समग्र सौन्दर्य विद्यमान है। उसमें विशेष गाढबन्धता की कमी अवश्य है, परन्तु भागवत का गद्य तो नितान्त प्रौढ़, अलंकृत तथा भावाभिव्यंजक हैरयथैव व्योमिन वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्ष्यामीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्य एकान्ते न्यस्तम्।

शिलालेखों में उपलब्ध गद्य भी नितान्त प्रौढ़, आलंकारिक तथा हृदयावर्जक है (रुद्रदामन का गिरनान लेख, **150** ई.) - 'प्रमाणमानोन्मान-स्वरगतिवर्ण-सारसवादिभिः परमलक्षणव्यञ्जनै - रुपेतैकांतमूर्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।"

बहुत समय पहले से ही शिला-लेखों में गद्य का साहित्यिक प्रयोग प्रथम रूप में किया जान पड़ता है। रुद्रदाम्न के शिलालेख में और हरिषेण के प्रयाग-प्रशस्ति में विजय स्तम्भ वर्णन में स्वस्थ गद्य शैली का निदर्शन पूर्णरूपेण होता है। जैसे प्रयाग प्रशस्ति में आया है

'सर्वपृथिवीजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवन गमना-वाप्तललित सुख विचरणामाचक्षाण इव भुवोर्बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।**''**

हरिषेण के शिलालेख प्रयाग प्रशस्ति में अग्रणी रूप में कवियों ने जो गद्य प्रयोग किया उसी को परिमार्जित करते हुए साहित्यिक गद्य का गौरव बढ़ाने का प्रयास किया। साहित्यिक गद्य का प्रथम ग्रन्थ सुबन्धु की **'**वासवदत्ता**'** के रूप में ही प्राप्त होता है।

विकास की दृष्टि से संस्कृत भाषा गद्य के विकास को निम्न रूप में समाझ सकते हैं-

वैदिक गद्य

⇩

दार्शनिक गद्य

⇩

सूत्रात्मक गद्य

⇩

पौराणिक गद्य

⇩

शास्त्रीय गद्य

⇩

लौकिक गद्य

संस्कृत गद्यकाव्य में तीन कवि मुख्य हैं - सुबन्धु, बाणभट्ट और दण्डी। इनके काव्य गद्य का चरम उत्कष मिलता है। इनकी रचनाओं में ही सर्वप्रथम वास्तविक गद्य का दर्शन होता है।

1.5.1 सुबन्धु

गद्य-काव्य के लेखकों में सुबन्धु का नाम अग्रणी है, जिनका ग्रन्थ अलंकृत शैली में निबद्ध गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनके समय तथा स्थान का यथार्थ परिचय अभी तक हमें नहीं चलता। बाणभट्ट के द्वारा प्रशंसित किये जाने के कारण ये बाण से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इन्होंने एक श्लेष के द्वारा न्यायवार्तिक के रचयिता प्रसिद्ध नैयायिक उद्योतकर का स्पष्टतः संकेत किया है - न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्। उद्योतकर का समय षष्ठ शताब्दी का अन्त तथा सप्तम का आदि माना जाता है। इस निर्देश में सुबन्धु का समय उद्योतकर के अनन्तर होना चाहिये। ऐतिहासिक गवेषणा उपयुक्त सामग्री के अभाव में समय का यथार्थ निरूपण नहीं कर सकती। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार हर्षवर्धन (**606-48** ई.) के सभापण्डित होने से बाणभट्ट का समय **630-640** ई. तक मानना उचित प्रतीत होता है। बाण से पूर्ववर्ती होने के कारण सुबन्धु का समय **600** ई. के आसपास तथा पश्चाद्वर्ती होने के कारण दण्डी का समय **650** ई. के बाद मानना उचित जान पड़ता है। फलतः गद्यकाव्यों के इन महनीय लेखक त्रयी सुबन्धु, बाणभट्ट तथा दण्डी का समयक्रम इस प्रकार है सुबन्धु ने अपने ग्रन्थ में जिस विक्रमादित्य के कीर्तिशेष होने का उल्लेख बड़ी सौन्दर्यमयी भाषा में किया गया है (वासवदत्ता **10** पद्य)

सा रसवविहता नवका विलसन्तिच चरति नो कङ्कः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।।

विद्वानों का मत है कि यहाँ विक्रमादित्य का संकेत राजा यशोधर्मा से है, जिसने बालादित्य की सहायता से हूणों के पराक्रमी नरेश मिहिरकुल को परास्त कर भारत से निकाल बाहर किया था। इनका भी समय षष्ठ शतक का मध्य भाग है। अतः सुबन्धु का काल इसी युग से कुछ हटकर होना चाहिए। इन सब निर्देशों से षष्ठ शतक का अन्तिम भाग सुबन्धु के आविर्भाव के लिये उपयुक्त काल प्रतीत होता है।

सुबन्धु कालिदास तथा कामशास्त्र के प्रणेता वात्स्यायन से अवान्तरकालीन हैं, क्योंकि इन्होंने 'वासवदत्ता' में इन दोनों कवियों का उल्लेख किया है। शकुन्तला के द्वारा दुर्वासा के शाप के अनुभव का उल्लेख सुबन्धु को 'अभिज्ञान-शाकुन्तल', परिचत सिद्ध कर रहा है - विफलमेव दुष्यन्तस्य कृते दुर्वाससः शापमनुबभूव शकुन्तला। यह उल्लेख निश्चित रूप से शाकुन्तल का ही है, महाभारतीय कथा का नहीं, क्योंकि मूल-कथा में दुर्वासा का शाप अनिर्दिष्ट घटना है। 'कामसूत्र-विन्यास इव मल्लनाग-घटितकान्तारसामोदः' स्पष्टतः ही कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन का निर्देश करता है। फलतः सुबन्धु का समय निश्चितरूप से कालिदास (प्रथम शती या चतुर्थ शती) तथा वात्स्यायन (पञ्चम शती) के पश्चाद्वर्ती हैं। इसलिए षष्ठ शती का अन्त उनका समय नहीं जाना जा सकता।

वासवदत्ता नामक ग्रन्थ इनकी प्रसिद्ध रचना है। सुबन्धु की इस वासवदत्ता का सम्बन्ध प्राचीन भारत की प्रसिद्ध आख्यायिका वासवदत्ता तथा उदयन की प्रणय कहानी से कुछ भी नहीं है। यह पूरा कथानक कवि के मस्तिष्क की उपज है। केवल नायिका का नाम प्राचीन है।

सुबन्धु की शैली

सुबन्धु विभिन्न विद्याओं तथा मीमांसा, न्याय, बौद्ध आदि नाना दर्शनों में नितान्त प्रवीण थे। इन्होंने श्लेष और उपमा के प्रसंग में रामायण, महाभारत तथा हरिवंश की अनेक प्रसिद्ध तथा अल्प-प्रसिद्ध घटनाओं और पात्रां का प्रचुर निर्देश कर अपनी विद्वता का पूर्ण परिचय दिया है। उनकी दृष्टि में सत्काव्य वहीं हो सकता है जिसमें अलंकारों का चमत्कार, श्लेष का प्राचुर्य तथा वक्रोक्ति का सन्निवेश विशेष रूप से रहता हैर

''**सुश्लेषवक्रघटनापटु सत्काव्यविरचनमिव।**''

इसी भावना से प्रेरित होकर सुबन्धु की लेखनी श्लेष की रचना में ही विशेष पटु है। उन्होंने स्वयं अपने प्रबन्ध को 'प्रत्यक्षर-श्लेषमयप्रपञ्चविन्यासवैदग्धनिधि' बनाने की प्रतिज्ञा की थी और इस प्रतिज्ञा का पूर्ण निर्वाह उन्होंने इस गद्यकाव्य में किया है। सुबन्धु वस्तुतः श्लेषकवि हैं। इन्होंने सभंग और अभंग अभय उभय प्रकार के श्लेषों का विन्यास कर अपने काव्य को विचित्रमार्ग का एक उत्कृष्ट उदाहरण बनाया है। परन्तु उनके श्लेष कहीं-कहीं इतने अप्रसिद्ध, अप्रयुक्त तथा कठिन हो गये हैं कि उन्हें समझने के लिये विद्वानों के लिए भी कठिन है। कहीं-कहीं तो बिना कोश की सहायता के पाठक एक पग भी आगे नहीं बढ़ता और उसके ऊपर 'कोशं पश्यन् पदे-पदे' की उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है।

प्रसन्नश्लेष का यह उदाहरण रोचक तथा कमनीय है

''नन्दगोप इव यशोदयान्वितः, जरासन्ध इव घटित-सन्धि-विग्रहः, भार्गव इव सदा न भोगः, दशरथ इव सुमित्रोपेतः, सुमन्त्राधिष्ठितश्च, दिलीप इव सुदक्षिणयान्वितो रक्षितगुश्च।''

आशय है कि यशोदा से अन्वित नन्दगोप के समान वह राजा यश और दया से अन्वित था, जरा के द्वारा संगठित अंगवाले राजा जरासन्ध के समान वह सन्धि और विग्रह (युद्ध) का सम्पादक था। सदा आकाश में गमन करने वाले (सदानभोगः) शुक्र के सदृश वह सदा दान तथा भोग से सम्पन्न था।

सुबन्धु ने विरोध, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि विभिन्न अलंकारों से अपने काव्य को सजाया है, परन्तु इन सब में भी श्लेष के कारण ही चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। अनेक उपमायें केवल शब्दसाम्य के ऊपर ही आधारित हैं। 'रक्त-पाद' होने के कारण कवि ने वासवदत्ता की उपमा व्याकरण शास्त्र से दी है। अष्टाध्यायी का एक पाद 'तेन रक्तं रागात्' सूत्र से सम्बन्धित है। उधर नायिका के भी 'पैर रक्तं रागात्' सूत्र से सम्बन्धित है। इस शब्द-साम्य के कारण ही यहाँ उपमा का चमत्कार है। नायिका का स्वरूप अत्यन्त प्रकाशमान है और इसी कारण वह उस न्यायविद्या के समान बतलाई गई है जिसके स्वरूप का निष्पादन तथा ख्याति उद्योतकर नामक आचार्य के द्वारा सम्पन्न है - न्याय-विद्यामिव उद्योतकरस्वरूपाम्। इस प्रकार के कौतूहलजनक उपमाओं के द्वारा मस्तिष्क अवश्य पुष्ट होता है तथा कवि की विलक्षण चातुरी का भी पूर्ण परिचय मिलता है, परन्तु यह केवल शाब्दी क्रीडा है, हृदय को तनिक भी स्पर्श नहीं करती। इस शाब्दीक्रीडा में कौतुक का ही विशेष स्थान है। शब्दों का यह तमाशा तमाशबीनों के लिये ही आनन्दवर्धक हो सकता है, रसिकों के लिए नहीं।

परन्तु जहाँ सुबन्धु ने अपने श्लेष-प्रेम को छोड़कर काव्य का प्रणयन किया है, वहाँ की शैली रोचक है तथा सहृदयों का पर्याप्त मनोरंजन करती है। साधारणतया गद्यकवि पद्यों के लिखने में कृतकार्य नहीं होता, परन्तु सुबन्धु का दृष्टान्त इससे विपरीत है। वे कोमल पद्यों की रचना में सर्वथा समर्थ हैं। सत्कविता की यह स्तुति बहुत ही कोमल शब्दों में की गई है -

अविदितगुणापि सत्कवि-भणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालती-माला।।

जिनके गुणों का ज्ञान नहीं होता वह भी सत्कवियों की वाणी श्रोताओं के कानों में मधु की धारा उड़ेलती है। गंध से परिचय न मिलने पर भी, मालती पुष्पों की माला नेत्रों को बरबस खींचती है।

वासवदत्ता की कल्पनाओं का प्रभाव पिछले कवियों पर भी पड़ा था। विरह दुःखों की अवर्णनीयता की यह अभिव्यंजना महिम्नःस्तोत्र के एक सुप्रसिद्ध पद्य की जननी है। सुबन्धु के शब्दों में - त्वत्कृते याऽनया यातनाऽनुभूता सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिर्वा कथकायते तदा किमपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा।

सुबन्धु की यह प्रसन्न श्लेषमयी वाणी आलोचकों के लिए नितान्त आह्लादजनक है -

विषधरतोऽप्यविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी स कुलद्वेषी पुनः पिशुनः।।6।।

विद्वानों का यह कथन झूठा नहीं है कि खल विषधर सर्प से भी अत्यन्त विषम होता है। विषधर तो केवल 'नकुलद्वेषी' ही होता है, अर्थात् वह नकुल से ही द्वेष करता है, परन्तु 'नःकुलद्वेषी' वह अपने कुल से कभी द्वेष नहीं करता, लेकिन खलों की विचित्र दशा होती है। वह तो अपने कुल से भी द्वेष तथा विरोध करता है। इस पद्य का प्राण है 'नकुलद्वेषी' पद, जो सुभग सभङ्ग के कारण नितान्त सरस तथा सरल है।

कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है, जो श्लेष के प्रपंच से रहित होने के कारण काफी मनोरंजक है। प्रभात का वर्णन इसका स्पष्ट उदाहरण है, परन्तु यहाँ भी उपमा तथा उत्प्रेक्षा का साहित्य नहीं है। सत्य तो यह है कि सुबन्धु के काव्य में कलापक्ष का ही साम्राज्य है। उनकी यह 'वासवदत्ता' उस विशाल सुसज्जित प्रासाद के समान है जिसका प्रत्येक कक्ष चित्रों से भूषित है तथा अलंकारों के प्राचुर्य से जो दर्शकों की आँखों को हमेशा चकाचौंध किया करता है। कुन्तक के द्वारा

वर्णित 'विचित्र-मार्ग' का सबसे सुन्दर उदाहरण है सुबन्धु की यही कृति। बाणभट्ट की य ह आलोचना वस्तुतः श्लाघ्य तथा तथ्यपूर्ण है, जिसमें वासवदत्ता के द्वारा कवियों के दर्प को चूर्ण कर देने की बात कही गई है -

कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पांडुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्।।

सुबन्धु तथा बाणभट्ट की शैली में महान् अन्तर है। सुबन्धु का गद्य यदि 'अक्षराडम्बर' का साक्षात् रूप है, तो बाण का गद्य स्निग्ध, कोमल 'पाञ्चाली' का भव्य प्रतीक है। सुबन्धु ने श्लेष का ही व्यूह खड़ा किया, परन्तु बाणभट्ट की दृष्टि वर्ण्य विषय तथा अवसर के ऊपर गड़ी हुई है। वह जो लिखते हैं वह अवसर तथा सन्दर्भ से संघर्ष नहीं करता। स्निग्ध, कोमल तथा हृदयावर्जक गद्य का जीवित प्रतीक बाण सहृदयों के हृदय को स्पन्दित करता है, जबकि सुबन्धु का गद्य केवल मस्तिष्क से ही टक्कर खाता हुआ कथमपि प्रवेश पाता है।

दण्डी से भी सुबन्धु का पार्थक्य स्पष्ट है। दण्डी की तीव्र निरीक्षणशक्ति तथा यथार्थवादी शब्दविन्यास का अभाव 'वासवदत्ता के लोकप्रिय न होने का पर्याप्त हेतु है। सुबन्धु, बाणभट्ट तथा कविराज के साथ 'वक्रोक्ति-मार्ग' के निपुण कवि माने गये हैं -

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्ग-निपुणाः चतुर्था विद्यते न वा।।

परन्तु बाण का 'कादम्बरी' के सामने 'वासवदत्ता का काव्य पण्डितों की गोष्ठी का ही केवल विषय है, विदग्धों की गोष्ठी से उसका सीधा सम्पर्क नहीं है।

1.5.2 बाणभट्ट

हर्षचरित के आरम्भिक उच्छ्वासों में बाण का आत्मवृत्त वर्णित है। उसके आधार पर उनके असामान्य व्यक्तित्व का एक रमणीय चित्र हमारे सामने प्रस्तुत है। बाणभट्ट के पूर्वज सोननद पर प्रीतिकूट नामक नगर में निवास करते थे। वह स्थान सम्भवतः बिहार प्रान्त के पश्चिमी भाग में था। बाण का कुल प्राचीनकाल से ही धर्म तथा विद्या के लिये प्रख्यात था। हर्ष का जन्म **590** ई. में हुआ था तथा उनका राज्याभिषेक **606** ई. में एवं उसकी मृत्यु **648** ई. में हुई थी। उनके शासनकाल का वर्णन **629** ई. में चीन से आये ह्वेनसांग ने विस्तार से किया है। बाणभट्ट वात्स्यायन गोत्र से सम्बन्धित थे। बाण के एक प्राचीन पूर्वज का नाम 'कुबेर' था। इनके घर पर वेदाध्ययन के लिए विद्यार्थियों का जमघट लगा रहता था। बाण ने तो कादम्बरी में यहाँ तक लिखा है कि उनके घर पर ब्रह्मचारी लोग शंकित होकर यजुर्वेद पढ़ते तथा सामवेद गाया करते थे, क्योंकि सब वेदों का अभ्यास करने वाले, मैनाओं के साथ-साथ पिंजड़ों में बैठे हुए, तोते उनको पद-पद पर टोका करते थे -

जगुर्गृहेऽभ्यस्तवाङमयैः ससारिकैः पंजरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा वटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शंकिताः।।

कुबेर के चार पुत्रों में पशुपति सबसे छोटे थे। उनके पुत्र अर्थपति हुए। अर्थपति से चित्रभानु उत्पन्न हुए। यह भी सकल शास्त्र में पण्डित थे। उन्होंने यज्ञ-धूम से उत्पन्न हुई कीर्ति को सकल दिगन्तों में फैलाया। इन्हीं चित्रभानु से बाणभट्ट का जन्म हुआ। थोड़ी ही उम्र में बाण के माता तथा पिता उन्हें अनाथ बनाकर इस संसार से चल बसे। बाणभट्ट के पास पैतृक सम्पत्ति पर्याप्त थी। किसी सुयोग्य अभिभावक के अभाव में बाणभट्ट बुरे-बुरे साथियों के साथ आखेट आदि दुर्व्यसनों में लिप्त रहा। उसे देशाटन का बड़ा शौक था। कुछ साथियों के साथ देशाटन को निकला। बुद्धि-विकास, सांसारिक

अनुभव तथा उदार विचार कमा कर वह घर लौटा। लोग उसका उपहास करने लगे। अचानक एक दिन हर्ष के चचेरे भाई कृष्ण के एक दूत ने आकर बाण को एक पत्र दिया। पत्र में लिखा था कि श्रीहर्ष से कितने लोगों ने तुम्हारी चुगली खाई, राजा तुमसे नाराज हो गये हैं। अत एव शीघ्र यहाँ चले आओ! बाण श्रीहर्ष के पास गये। राजा ने पहले तो बाण की अवहेलना की, परन्तु बाद में उनकी विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर बाण को आश्रय दान दिया। बाण ने बहुत दिनों तक हर्ष की सभा को सुशोभित किया। अनन्तर अपने घर लौट आये और लोगों के हर्ष का चरित पूछने पर बाण ने 'हर्षचरित' की रचना की।

इससे स्पष्ट है कि बाण युवावस्था में बुरी संगत के कारण कुछ अव्यवस्थित से थे, परन्तु विद्वता के प्रभाव से श्रीहर्ष के अत्यन्त प्रियपात्र बन गये। बाण का जीवन दरिद्रता में नहीं बीता, बल्कि उनके पास पैतृक सम्पत्ति बहुत थी तथा हर्ष के आश्रय पाने से उनकी सम्पत्ति और भी बढ़ी। उन्होंने अपना जीवन एक समृद्ध व्यक्ति की भांति बिताया। बाण का यह जीवन साधारणतया निर्धनतया में समय बिताने वाले संस्कृत कवियों के जीवन से अनेक अंशों में भिन्नता रखता है। उनके पुत्र के अस्तित्व के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता। कादम्बरी पूर्ण होने से पहले ही उनका देहान्त हो गया। बाद में उनके पुत्र ने इसकी पूर्ति की। यही कादम्बरी का उत्तरार्ध है। ऐसा निःस्पृह तथा पितृभक्त पुत्र साहित्य - संसार में शायद ही कोई दूसरा मिल सके। उत्तरार्ध के आरम्भ में बाण के पुत्र ने लिखा है-

याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्धं एष च मया न कवित्वदर्पात्।।

पिताजी के स्वर्गवासी होने पर यह कथा-प्रबन्ध भी उनके वचन के साथ ही संसार में विच्छिन्न हो गया। इसके समान्त न होने से सज्जनों के दुःख को देखकर ही मैंने इसे आरम्भ किया है, कवित्व के घमण्ड से नहीं। यह तो पिताजी का ही प्रभाव है कि उनके गद्य की भाँति मैं लिख चुका हूं, नहीं तो कादम्बरी (शराब) का स्वाद लेकर मैं बिल्कुल मतवाला सा हो गया हूँ, मुझे कुछ आगे-पीछे नहीं सूझता। मुझे भय है कि कहीं रस से वर्जित अपने वचनों से उसकी पूर्ति कर विदग्धों की अवहेलना का पात्र न बनूँ -

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मन किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसंदधानः।।

ऐसे निःस्पृह पुत्र से साहित्य-संसार अनभिज्ञ है। डॉक्टर व्यूलर ने इनका नाम भूषण भट्ट बतलाया था, परन्तु अन्य विद्वानों से इनका नाम 'पुलिन' या 'पुलिन्दभट्ट' सिद्ध होता है। कादम्बरी की शारदा लिपि में लिखित किसी प्रति की पुष्पिका में भी यही नाम मिलता है। इसकी प्रामाणिकता मुंज के समय (**10**वीं सदी के अन्त) में लिखित धनपाल की तिलकमञ्जरी से सिद्ध होती है-

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्ध्रकृतसन्निधिः।।

इस पद्य में श्लेषालंकार के द्वारा बाण के पुत्र का नाम 'पुलिन्ध्र' बतलाया गया है। ज्ञात नहीं कि बाणभट्ट के कितने बेटे थे। उत्तरार्द्ध कादम्बरी के रचयिता पुलिनभट्ट के विषय में हमारा ज्ञान बिल्कुल सच्चा है, परन्तु अन्य किसी पुत्र के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। एक प्रसिद्ध किंवदन्ती के आधार पर बाणभट्ट के कई पुत्रों का होना सिद्ध होता है।

हर्षवर्धन के सभापण्डित होने के कारण बाणभट्ट का समय ईसा की सातवीं सदी में सिद्ध होता है। बाण का समय संस्कृत-कवियों की ऐतिहासिक क्रम-व्यवस्था के लिए बड़ा उपयोगी है। यदि बाण के

हर्ष के समकालिक सिद्ध होने की बात न भी ज्ञात होती, तथापि उनका सातवीं सदी में आविर्भाव होना परवर्ती कवियों के उद्धरणों से अवश्यमेव सिद्ध हो जाता। सबसे पहले वामन (**779-813** ई.) ने **'**काव्यालंकारसूत्र**'** में कादम्बरी के एक लम्बे समासवाले गद्य को उद्धृत किया है, जिससे स्पष्ट ही वामन में बाणभट्ट की प्राचीनता सिद्ध होती है। अत एव बाण का काल निश्चित रूप से सातवीं सदी है। गोवर्धनाचार्य बाणभट्ट को वाणी का साक्षात् अवतार मानते हैं। उनका कथन है कि जिस प्रकार अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए शिखण्डिनी शिखण्डी बन गई थी, उसी भाँति पुरुष रूप से अतिशय चमत्कार पाने की इच्छा से वाणी (सरस्वती) ने बाण का रूप धारण किया

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।

प्रागल्भ्यमधिकमासु वाणी बाणो बभूवेति।।

बाणभट्ट के काव्य में चरित्र-चित्रण की अद्भुत कला है। उनके पात्र इतनी सजीवता के साथ चित्रित किये गये हैं कि उनकी मंजुल मूर्ति हमारे नेत्रपटल के सामने आकर उपस्थित हो जाती है। प्रजा-पालक तथा पराक्रमी महाराज शूद्रक की वीर मूर्ति सबके हृदय में उत्साह का संचार करती है। सौम्य तापस हारीत, ज्ञानवृद्ध जाबालि, वदान्य नरपति तारापीड, शास्त्र तथा लोककुशल अमात्य शुकनास, शुभ्रवसना तपस्विनी महाश्वेता, कमनीयकलेवरा कादम्बरी्रकवि की तूलिका से चित्रित ये पात्र चित्ता पर अपना अमिट प्रभाव डालते हैं। सच्चा कवि वही होता है जो संसार का विविध अनुभव प्राप्त कर उसके मार्मिक पक्ष के ग्रहण में समर्थ होता है। इसी कसौटी पर कसने से बाणभट्ट की कविता खरे सोने के समान खरी उतरती है। कवि का लोकवृत्तान्त का ज्ञान नानात्मक तो था ही, पर उसकी यथार्थता और भी चमत्कारिणी है। बाणभट्ट कभी तो सुख-समृद्धि तथा भोग-विलास के जीवन चित्रित करने में अनुरक्त दिख पड़ते हैं, तो कभी वे तपस्वी जीवन की मार्मिक अभिव्यंजना में निरत दिखाई पड़ते हैं। तथ्य यह है कि बाणभट्ट का अनुभव ही विशाल, विविध तथा यथार्थ था। बाण के पात्र वैयक्तिकता से मण्डित विशिष्ट प्राणी हैं।हम इस दृश्य को कभी नहीं भूल सकते जिसमें बाणभट्ट ने आश्रम के वृद्ध, अंध तापसों को परिचित वानरों के द्वारा छड़ी पकड़कर भीतर आने और बाहर ले जाने का वर्णन किया है - परिचितशाखामृग-कराकृष्टयष्टि -निष्काश्यमान-प्रवेश्यमान-जरदन्धतापसम्। ऋतुओं का चित्रण भी बड़ी मार्मिकता के साथ किया गया है। प्रभात तथा सन्ध्या, अन्धकार तथा चन्द्रोदय आदि प्रकृति के विभिन्न दृश्यों के वर्णन बड़ी ही सहृदयता तथा यथार्थता के साथ अङ्कित किये गये हैं। अच्छोद सरोवर का वर्णन भी कवि की निरीक्षण शक्ति के प्राचुर्य का सुतरां बोधक है। बाण जानते हैं कि वायु के द्वारा उद्भूत जल-तरंग के कणों में सूर्य की किरण पड़ने पर हजारों इन्द्रधनुष उत्पन होते हैं। कहीं तट के ऊपर उगने वाले कदम्ब के पेड़ों से बन्दरों के कूदने का वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक है - तट - कदम्बशाखाधिरूढ - हरिकृतजलप्रपातक्रीडम्। सरोवर की स्वच्छता के प्रदर्शन के लिए बाण ने उपमाओं की लड़ी खड़ी कर दी है।

अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य दृष्टव्यदर्शन - फलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः दृष्टः आल्हादनीयानामवधिः, वीक्षिता मनोहराणां सीमान्त - लेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजननानां परिसमाप्तिः विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमिः। सुभगपदों का विन्यास इससे अधिक सुन्दर नहीं हो सकता। -

बाण की कादम्बरी में प्रकृति के सौम्य तथा उग्र रूप का वर्णन जितना रोचक है, उतना ही रोचक है उसके नाना वस्तुओं का वर्णन। वर्णनों को संश्लिष्ट तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए, भावों में तीव्रता प्रदान करने के हेतु बाण ने उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, विरोधाभास आदि अलंकारों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है, परन्तु **'**परिसंख्या**'** अलंकार के तो वे सम्राट् प्रतीत होते हैं। बाण के समान

किसी अन्य कवि ने 'श्लिष्ट परिसंख्या' का इतना चमत्कारी प्रयोग शायद ही किया हो। इन अलंकारों के प्रयोग ने बाण के गद्य में अपूर्व जीवनी-शक्ति डाल दी है। आदर्श गद्य के जिन गुणों का उल्लेख बाण ने हर्षचरित में किया है वे उनके गद्य में विशदतया वर्तमान हैं -

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषः स्पष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्।।

अर्थ की नवीनता, स्वाभावोक्ति की नागरिकता, श्लेष की स्पष्टता, रस की स्फुटता, अक्षर की विकटबन्धता का एकत्र दुर्लभ सन्निवेश कादम्बरी को मंजुल रसकोमल बनाये हुए हैं। उनके श्लेष - प्रयोग जूही की माला में पिरोये गये चम्पक पुष्पां के समान मनमोहक होते हैं –

निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव।

रसनोपमा का यह उदाहरण कितना मनोरम है -

क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुभासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकरेण इव मदेन नवयौवनेन पदम्।

'परिसंख्या' का यह रोचक प्रयोग विदग्धों का नितान्त हृदयावर्जक है, जहाँ बाणभट्ट जाबालि के आश्रम का सुन्दर चित्र खींच रहे हैं

यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयःपरिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमभवम्, एणकानां गीतव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।

कादम्बरी में हृदयपक्ष का प्राधान्य है। कवि अपने पात्रों के हृदय में प्रवेश करता है, उनकी अवस्था-विशेष में होने वाली मानस वृत्तियों का विश्लेषण करता है तथा उचित पदन्यास के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति करता है। पुण्डरीक के वियोग में महाश्वेता के हार्दिक भावों की रम्य अभिव्यक्ति बाण की ललित लेखनी का चमत्कार है। चन्द्रापीड के जन्म के अवसर पर राजा तथा रानी के हृदयगत कोमल भावनाओं का चित्रण बड़ा ही रमणीय तथा तथ्यपूर्ण हुआ है। चन्द्रापीड के प्रथम दर्शन के अनन्तर स्वदेश लौट आने पर कादम्बरी के भावों का चित्रण कवि के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सुन्दर निदर्शन है। बाण की दृष्टि में प्रेम भौतिक सम्बन्ध का नामान्तर नहीं है, प्रत्युत वह जन्मान्तर में समुद्भूत आध्यात्मिक संबंध का परिचायक है। कादम्बरी 'जन्मान्तर-सौहृद' का सजीव चित्रण है। विस्मृत अतीत तथा जीवित वर्तमान को स्मृति के द्वारा एक सूत्र में बाँधनेवाली यह प्रणयकथा है। बाणभट्ट ने दिखलाया है कि सच्चा प्रेम कुल और समाज की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है। वह संयत तथा निष्काम होता है। काल की कराल छाया न उसे आक्रान्त कर सकती है, न काल का प्रवाह उसकी स्मृति को मलिन और धुंधला बना सकता है। महाश्वेता तथा पुण्डरीक का, कादम्बरी तथा चन्द्रापीड का अनेक जन्मों में अपनी चरितार्थता तथा सिद्धि प्राप्त करने वाला प्रेम इस आदर्श प्रणय का सच्चा निदर्शन है।

शरीर का परिवर्तन भले हो जाय, कमवश प्राणी नाना योनियों में भले ही भ्रमण करता रहे, परन्तु उसका दृढ़ प्रेम सदा ही उसका अनुगमन किया करता है। कादम्बरी की कथा हमें महान् तथ्य की सत्यता भली-भाँति प्रमाणित करती है।

शुकनास ने राजकुमार चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दोषों के वर्णन-प्रसंग में नीति तथा काव्य दोनों का बड़ा ही रम्य चमत्कार प्रस्तुत किया है। रूपों का विन्यास तथा उपमा का निवेश इतना सुन्दर है कि

लक्ष्मी की मूर्ति अपने पूर्ण वैभव के साथ हमारे नेत्रों के सामने सजीव हो उठती हैं। 'लक्ष्मी तृष्णारूपी विषलता के लिए संवर्धन की जलधारा है, इन्द्रिय-रूपी मृगों को लुभाने के लिए
व्याध की गीत है, सच्चरितरूपी चित्रों को पोंछ डालने के लिए धूम की रेखा है, यह सब अविनयों की पुरःसर पताका है, क्रोधावेग-रूपी ग्राहों की उत्पत्ति के लिए नदी है; विषयमधुओं की यह विस्तृत भूमि है। "यह वर्णन रूपक की छटा से कमनीय है। अन्यत्र विरोधाभास का अपूर्व विलास है।

बाण की गद्यशैली : पाञ्चाली -

सखे पुण्डरीक! नैतदनुरूपं भवतः, क्षुद्र-जनक्षुण्ण एव मार्गः। धैर्यधना हि साधवः। किं यः कश्चित् प्राकृत इव विकलीभवन्तमात्मानं न रुणत्सि। क्व ते तद् धैर्यम्? क्वासौ इन्द्रिय-जयः?

उपदेश देने के समय विषय को हृदयंगम तथा प्रभावशाली बनाने के विचार से इसी शैली का प्रयोग है। मन्त्री शुकनास युवराज चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दोषों को दिखलाते समय लघु वाक्यों का प्रयोग कर रहा है-

लब्धापि दुःखेन पाल्यते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमभीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्धं गणयति।

परन्तु राजवैभव, नारी की रूपछटा और प्रकृति की रमणीयता के चित्रण के अवसर पर कवि ऐसे दीर्घ समास तथा अलंकारों से सुशोभित वाक्यों का प्रयोग करता है, जिससे हृदय पर वर्णन अपने संश्लिष्ट तथा संघटित रूप में अंग-प्रत्यङ्ग से परिपूर्ण भाव में प्रभाव दिखता है तथा उनके नेत्रों के सामने वस्तु का पूर्ण चित्र स्पष्ट हो जाता है। शूद्रक, जाबालि का आश्रम, विन्ध्याटवी, महाश्वेता तथा कादम्बरी का वर्णन इसी शैली में प्रयुक्त होने से ये इतने सुन्दर तथा प्रभावशाली हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बाण के गद्य में शैली तथा वर्ण्य विषय में अद्भुत सामञ्जस्य है।

त्रिलोचन कवि की दृष्टि में बाण की रसभाववती कविता के सामने अन्य कवियों की रचना केवल चपलतामात्र है।

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्।।

राजशेखर के मत में बाण की शैली पाञ्चाली रीति का भव्य निदर्शन है -

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शिला-भट्टारिका-वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।

बाण संस्कृत भाषा के सम्राट् हैं। वाक्यों के नवीकरण की विलक्षण योग्यता बाणभट्ट में है। 'कथितपदता' तो ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती। सर्वत्र नवीन पदविन्यास, नूतन अर्थाभिव्यक्ति, अभिनव भावभंगी आलोचकों के लिए विस्मयावह आनन्द का साधन बनती है। संस्कृत गद्य में कितनी ओजस्विता आ सकती है, कितना मंजुल प्रवाह हो सकता है, कितनी भावाभिव्यञ्जना हो सकती हैरइसकी पूर्ण परिचायक बाणभट्ट की कादम्बरी है। इसीलिए प्राचीन आलोचक धर्मदास मुग्ध होकर बाण की स्तुति में यथार्थ रूप से कह रहे हैं।

रुचिर - स्वर - वर्णपदा रसभावती जगन्मनी हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।।

1.5.3 दण्डी

'अवन्ति-सुन्दरी' के आधार पर दण्डी का चरित्र सूक्ष्म मात्रा में प्राप्त होता है। कविवर भारवि के तीन लड़के हुए, जिनमें 'मनोरथ' मध्यम पुत्र था। मनोरथ के भी चारों वेदों की भाँति चार पुत्र उत्पन्न हुए,

जिनमें 'वीरदत्त' सबसे छोटा होने पर भी एक सुयोग्य दार्शनिक था। 'वीरदत्त' की स्त्री का नाम 'गौरी' था। इन्हीं से कविवर दण्डी का जन्म हुआ था। बचपन में ही इनके माता-पिता का निधन हो गया था। ये काञ्ची में निराश्रय ही रहते थे। एक बार जब काञ्ची में विद्रोह हुआ, तब ये काञ्ची छोड़कर जंगलों में रहने लगे। कुछ समय बाद शहर में शान्ति होने पर ये फिर पल्लव-नरेश की सभा में आ गए और वहीं रहने लगे। भारवि और दण्डी के सम्भावित सम्बन्ध के विषय में अब संदेह होने लगा है। जिस श्लोक के आधार पर भारवि के साथ दण्डी के प्रपितामह दामोदर की एकता मानी जाती थी उस श्लोक में नये पाठ-भेद मिलने से इस मत को बदलना पड़ा है। नवीन पाठ इस प्रकार है -

स मेधावी कविर्विद्वान् भारविं प्रभवं गिराम्।
अनुरुध्याकरोन्मैत्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धने।।23।।

पहला पाठ प्रथमान्त 'भारविः' था, अब उसके स्थान पर द्वितीयान्त 'भारवि' मिला है, जिससे यह अर्थ निकलता है कि भारवि की सहायता से दामोदर की मित्रता विष्णुवर्धन के साथ हो सकी। अतः दामोदर दण्डी के प्रपितामह थे, भारवि नहीं। इस नये पाठ-भेद से दोनों के समय-निरूपण के विषय में किसी तरह का परिवर्तन आवश्यक नहीं है। इस वर्णन से दण्डी के अन्धकारमय जीवन पर प्रकाश की एक गाढ़ी किरण पड़ती है। भारवि का सम्बन्ध उत्तरी भारत में न होकर दक्षिण भारत में था। हिन्दुओं की पवित्र नगरी काञ्ची (आधुनिक कांजीवरम्) दण्डी की जन्मभूमि थी। इनका जन्म एक अत्यन्त शिक्षित ब्राह्मण कुल में हुआ था। भारवि की चौथी पीढ़ी में इनका जन्म होना ऊपर के वर्णन से बिल्कुल निश्चित है। काञ्ची के पल्लव-नरेशों की छत्रछाया में इन्होंने अपने दिन बहुत ही सुखपूर्वक बिताए थे।

इस वर्णन से दक्षिण भारत की एक किंवदन्ती की भी यथेष्ट पुष्टि होती है। एम. रंगाचार्य ने एक किवदन्ती का उल्लेख किया है कि पल्लव राजा के पुत्र को शिक्षा देने के लिये ही दण्डी ने 'काव्यादर्श' की रचना की थी। काव्यादर्श के प्राचीन टीकाकार तरुणवाचस्पति की सम्मति में दण्डी ने निम्नलिखित प्रहेलिका में काञ्ची तथा वहाँ के शासक पल्लव-नरेशों की ओर इङ्गित किया है-

नासिक्यमध्या परितश्चतुर्वर्णविभूषिता।
अस्ति काचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाह्वया नृपाः।।

अत एव दण्डी की काञ्ची के पल्लव-नरेश के आश्रय में मानना इतिहास तथा किंवदन्ती दोनों से सिद्ध होता है।-

नवम शताब्दी के ग्रन्थों में दण्डी का नामोल्लेख पाये जाने से निश्चित हो जाता है कि उनका समय उक्त शताब्दी से पीछे कदापि नहीं हो सकता। सिंधली भाषा के अलंकारग्रन्थ 'सिय-बस-लकर' (स्वभाषालंकार) की रचना काव्यादर्श के आधार पर की गई है। इसका रचयिता, राजा सेन प्रथम महावंश के अनुसार **843-66** ई. तक राज्य करता था। इससे भी पहले के कन्नड़ भाषा के अलंकारग्रन्थ 'कविराजमार्ग' में काव्यादर्श की यथेष्ट छाया देखी गई है। इसके उदाहरण या तो काव्यादर्श से पूर्णतः लिये गये हैं या कहीं-कहीं कुछ परिवर्तित रूप में रखे गये हैं। हेतु, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के लक्षण तो दण्डी से अक्षरशः मिलते हैं। इस के लेखक 'अमोघवर्ष' का समय **815** ई. के आसपास माना जाता है। अत एव काव्यादर्श की रचना नवीं शताब्दी के अनन्तर कदापि स्वीकृत नहीं की जा सकती। यह तो दण्डी के काल की अंतिम सीमा है। अब पूर्व की सीमा की ओर ध्यान देना चाहिए। यह निर्विवाद है कि काव्यादर्श के समय पद्य दण्डी की ही मौलिक रचना नहीं हैं, उनमें प्राचीनों के भी पद्य सन्निविष्ट हैं। 'लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः' में दण्डी के 'इति'

शब्द के स्पष्ट प्रयोग से यहाँ जाना जाता है कि कालिदास के प्रसिद्ध पद्यांश **'**मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति**'** से ही उद्धरण दिया गया है। अतः इनके कालिदास के अनन्तर होने में तो संदेह का स्थान ही नहीं है**,** परन्तु अन्य भाव-साम्य से ये बाणभट्ट के भी अनन्तर प्रतीत होते हैं।

अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवन्प्रभवं तमः॥

काव्यादर्श के इस पद्य में कादम्बरी में चन्द्रपीड को शुकनास द्वारा दिए गए उपदेश की स्पष्ट छाया दिख पड़ती है। दण्डी को बाणभट्ट (**7**वीं सदी पूर्वार्द्ध) के अनन्तर मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं जान पड़ती है। प्रो. पाठक की सम्मति में काव्यादर्श में निर्वर्त्य**,** विकार्य तथा प्राप्य हेतु का विभाग वाक्यपदीय के कर्ता भर्तृहरि (**650** ई.) के अनुसार किया गया है। काव्यादर्श में उल्लिखित राजवर्मा (रातवर्मा) को यदि हम नरसिंहवर्मा द्वितीय (जिसका विरुद अथवा उपनाम राजवर्मा था) मान लें**,** तो किसी प्रकार की अनुपपत्ति उपस्थित नहीं होती। प्रो. आर. नरसिंहाचार्य तथा डॉ. बेलबल्कर ने भी इन दोनों की एकता मानकर दण्डी का समय सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध बतलाया है। शैव-धर्म के उपयोजक पल्लवराज नरसिंह वर्मा का समय **690-715** ई. माना जाता है। अतः इनके सभा-कवि दण्डी का भी समय बाण के पश्चात् सप्तम शती के अन्त तथा अष्टम के आरम्भ में मानना उचित प्रतीत होता है।

ने इस प्रख्यात पद्य में दण्डी के तीन ग्रन्थों के अस्तित्व का स्पष्ट निर्देश किया है -

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥

दण्डी की इस विश्रुत प्रबन्धत्रयी में काव्यादर्श निःसन्देह अन्यतम रचना है । इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते। आज कोई भी विज्ञ आलोचक **'**छन्दोविचित**'** तथा **'**कला-परिच्छेद**'** को**,** जो काव्यादर्श के आरम्भ तथा अन्त में निर्दिष्ट किये गये हैं**,** स्वतन्त्र ग्रन्थ मानने के पक्ष में नहीं है। **'**छन्दोविचिति**'** तो छन्दःशास्त्र का ही अभिधान है और दण्डी ने भी स्वयं इसे काव्य में प्रवेश पाने के लिए विद्या के रूप में निर्दिष्ट किया है। दण्डी की ही दृष्टि में यह विद्या है**,** रचना नहीं। इसी प्रकार **'**कलापरिच्छेद**'** भी काव्यादर्श का ही कोई अनुपलब्ध अंश है**,** जिसे दण्डी ने अवश्य लिखा था**,** परन्तु आज यह उपलब्ध नहीं है।

दण्डी का द्वितीय ग्रन्थ कौन है**?** दण्डी के नाम से **'**दशकुमार-चरित**'** नामक रोमाञ्चक आख्यानों तथा कौतूहल से परिपूर्ण ग्रन्थ पर्याप्तरूपेण प्रख्यात है। दशकुमार-चरित के विभिन्न पाठ-संस्करणों की परीक्षा करने से स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ के तीन खण्ड हैं। भूमिका**,** मूल ग्रन्थ तथा पूरक भाग**,** जिनमें क्रमशः **5, 8** तथा **1** उच्छ्वास हैं। ये तीनों भाग आपस में मेल नहीं खाते। भूमिका भाग (**5** उच्छ्वास) पूर्वपीठिका के नाम से प्रख्यात है तथा पूरक भाग उत्तरपीठिका के नाम से और मध्यवर्ती मूल ग्रन्थ दशकुमारचरित के अन्वर्थक नाम से प्रख्यात है। मूलग्रन्थ और पूर्वपीठिका के कथानकों में अवान्तर घटना-वैषम्य है। मूलग्रन्थ के आठ उच्छ्वासों में केवल आठ ही कुमारों के विचित्र चरित्र का उपन्यास है**,** परन्तु नाम की सार्थकता सिद्ध करने के विचार से पूर्वपीठिका में अन्य दो कुमारों का चरित जोड़ दिया गया है और अधूरे ग्रन्थ को पूर्णता की कोटि पर पहुँचाने के लिए अन्त में उत्तरपीठिका भी जोड़ दी गई है। इस प्रकार आरम्भ में पूर्वपीठिका से और अन्त में उत्तररपीठिका से संपुटित समग्र ग्रन्थ ही आज **'**दशकुमार-चरित**'** के नाम से प्रख्यात है।

इधर दण्डी के नाम से प्रकाशित 'अवन्तिसुन्दरी-कथा' तथा दशकुमारचरित के तुलनात्मक अनुशीलन से प्रतीत होता है कि अवन्तिसुन्दरी कथा दण्डी की मौलिक रचना है। हस्तलेखों की पुष्पिका का प्रामाण्य तो है ही, अप्पयदीक्षित (प्रसिद्ध वेदान्ती से भिन्न व्यक्ति) ने अपने 'नामसंग्रहमाला' नामक ग्रन्थ में 'इत्यवन्तिसुन्दरीये दण्डिप्रयोगात्' लिखकर दण्डी को इस ग्रन्थ का प्रामाणिक रचयिता सिद्ध किया है। इस कथा में 'दशकुमारचरित' की पूर्वपीठिका में वर्णित वृत्तान्त है। अतः अनुमान लगाना सहज है कि 'अवन्तिसुन्दरी' ही दण्डी की विश्रुत कथा है, जिसका सारांश किसी व्यक्ति ने दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के रूप में उपनिबद्ध किया। यह तथ्य ध्यातव्य है कि दशकुमारचरित का नाम न तो अलंकार के किसी ग्रन्थ में और न किसी व्याख्या-ग्रन्थ में ही निर्दिष्ट किया गया है। इसकी सर्वाधिक प्राचीन टीका 'पदचन्द्रिका' कवीन्द्राचार्य सरस्वती की रचना है (पुष्पिका से प्रमाणित)। फलतः दशकुमारचरित की रचना का काल **17**वीं शती से कुछ प्राचीन होना चाहिये।

अवन्तिसुन्दरी बड़ी उदारशैली में विरचित कथा है। वर्ण्यविषय के अनुसार शैली में भी अन्तर पाते हैं। सामञ्जस्य के लिए जहाँ समास की बहुलता है, वहाँ उपदेश की स्थलों पर असमस्त पदों का प्राचुर्य है। इस गद्यकथा को लक्षित कर 'दण्डिनः पदलालित्यम्' वाला आभाणक विदग्ध-गोष्ठी में प्रचलित हुआ था। उदाहरणस्वरूप लक्ष्मी का वर्णन ललितपदों का विन्यास प्रस्तुत करता है - रज्जुरियम् उद्बन्धनाय सत्यवादितायाः, विषमियं जीवितहरणाय माहात्म्यस्य, शस्त्रमियं विशसनाय सत्पुरुषवृत्तानाम्, अग्निरियं निर्दहनाय धर्मस्य, सलिलमियं निमज्जनाय सौजन्यस्य, धूलिरियं धूसरीकरणाय चारित्रस्य। इसके आरम्भ में प्राचीन कविविषयक स्तुति-पद्यों के अनन्तर दण्डी तथा उनके पूर्व-पुरुषों का ऐतिहासिक वृत्तान्त वर्णित है जो आरम्भ में दिया गया है और जिससे दण्डी के आविर्भाव का काल सप्तम शती का अन्तिम अथवा अष्टम शती का प्रथम चरण सिद्ध होता है। अवन्तिसुन्दरी कथा ही निश्चयेन दण्डी का प्रख्यात गद्यकाव्य है। यह अधूरा ही उपलब्ध है। यदि यह पूर्णरूपेण उपलब्ध हो जाय, तो दशकुमारचरित के साथ इसके सम्बन्ध की पूर्ण समीक्षा हो सके।

दण्डी के तृतीय प्रबन्ध की सूचना हमें भोजराज के शृंगारप्रकाश से प्राप्त होती है। भोज ने इसे दो बार अपने पूर्वोक्त ग्रन्थ में निर्दिष्ट किया है - 'दण्डिनो धनञ्जयस्य वा द्विसन्धाने' (सप्तम प्रकाश) तथा 'रामायण-महाभारतयोर्दण्डिद्विसन्धानमिव' (अष्टम प्रकाश)। दण्डी का यह द्विसन्धान काव्य श्लेष के द्वारा रामायण एवं महाभारत के दोनों कथानकों को समान पद्यों में वर्णन करता है, यह महाकाव्य आज उपलब्ध नहीं है परन्तु भोज के द्वारा निर्दिष्ट होने से इसकी सत्ता एकादश शती में अनुमानसिद्ध है। इस प्रकार दण्डी की प्रबन्धत्रयी है - काव्यादर्श, अवन्तिसुन्दरी तथा द्विसन्धानकाव्य। अत्यन्त प्रख्यात होने से दशकुमारचरित का परिचय यहाँ दिया जाता है।

सौबन्धव गद्य के समान न तो यह प्रत्यक्षर-श्लेषमय है और न बाणीय गद्य के सदृश यह समासों से लदी हुई तथा गाढबन्धता से मण्डित है। तथ्य यह है कि गद्य के इतिहास में दण्डी का अपना निजी मार्ग है। वे सुबन्धु तथा बाण इन दोनों की शैली का अनुगमन न कर एक नवीन प्रकार की शैली के उद्भावक हैं, जिनके विशेष गुण हैं - अर्थ की स्पष्टता, रस की सुन्दर अभिव्यक्ति, पद का लालित्य तथा दैनन्दिन प्रयोग की क्षमता। 'दण्डिनः पदलालित्यम्' के ऊपर पण्डितसमाज अपने को निछावर किए हुए हैं।

काम का यह वर्णन इस विषय में उदाहरण माना जा सकता है - कामस्तु विषयासक्तचेतसोः स्त्रीपुंसयोर्निरतिशयसुखस्पर्शविशेषः। परिवारस्त्वस्य यावदिह रम्यमुज्ज्वलं च। फलं पुनः परमाह्लादनं परस्परविमर्दजन्म स्मर्यमाणामधुरम् उदीरिताभिमान मनुत्तामं सुखमपरोक्षं स्वसंवेद्यमेव।

व्यावहारिक शैली के अनुरूप ही शब्दों का व्यावहारिक चयन है। व्यवहारों में आने वाली वस्तुओं के परिचायक शब्दों का अर्थ-संकेत संस्कृतकोषों में कई स्थानों पर किया गया है, परन्तु उन्हें प्रयोग में लाने की प्रेरणा दण्डी ने प्रदान की। दण्डी ने उन्हें व्यवहार-योग्य बनाया। इन शब्दों का आज राष्ट्रभाषा में व्यवहार उसे सक्षम तथा सामर्थ्यशाली बनायेगा। पान के पनडब्बा के लिए **'**उपहस्तिका**'**, लँगोटी के लिए **'**मलमल**'**, एक जोड़ी धोती के लिए **'**उद्गमनीय**'**, पानी निकालने के लिए पात्र या डोल के निमित्ता **'**उदञ्चन**'**, भूसी के लिए **'**किशारु**'** तथा तक्र के लिए **'**कालशेय**'**, युद्धपोत के लिए **'**मद्गु**'**, जनपदीय सभा के लिए **'**पंचवीस्गोष्ठ**'** - इन शब्दों का अर्थतः संकेत प्राचीन होने पर भी प्रयोजन प्रथम व्यवहार दण्डी का वैशिष्ट्य है। **'**अभवदीयं हि नैव किंचिद् मत्सम्बद्धम्**'** - मेरा सब कुछ आप ही का है तथा **'**जीवितं ही नाम जन्मवतां चतुःपंचाप्यहानि**'** - जीवन है दो चार दिनों का आदि वाक्य छोटे होने पर भी नितान्त अभिव्यंजक तथा सरस हैं। इन्हीं गुणों के कारण प्राचीन आलोचक लोग दण्डी को वाल्मीकि तथा व्यास के अनन्तर होने वाला तत्समकक्ष तृतीय कवि मानते हैं -

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।

1.6 अन्य गद्य लेखक

सुबन्धु, बाण एवं दण्डी के रूप में संस्कृत गद्यकाव्य ने चरमोत्कर्ष प्राप्त किया। परवर्ती समय में भी गद्य रचना होती रही किन्तु गद्य का वैसा उत्कृष्ट स्वरूप परवर्ती काव्यों में प्राप्त नहीं होता। कुछ प्रमुख गद्यकार निम्नलिखित है।

धनपाल - दशमशती के उत्तरार्ध एवं एकादश शती के पूर्वार्ध के धनपाल ने तिलकमञ्जरी की रचना की। ये राजा मुंज की सभा में सम्मानित कवि थे राजा मुज ने इनकी काव्य प्रतिभा से अभिभूत होकर उन्हें **'**सरस्वती**'** विरूद्ध से सम्मानित किया था। तिलकमञ्जरी पर कादम्बरी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है तथा तत्कालीन भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों प्रतिबिम्बित होती है साथ ही तत्कालीन शिल्पकला एवं मूर्तिकला का सुन्दर चित्रण भी तिलक मञ्जरी में प्राप्त होता है।

वामनभट्ट बाण - वामनभट्ट राजा वेमभूपाल के सभा कवि थे। इनका समय पन्द्रहवी शती माना गया है। वामनभट्ट बाण ने हर्षचरित को आदर्श मानते हुए उसके अनुरूप ही **'**वेमभूपालचरित**'** की रचना की। यह ग्रन्थ भी सुन्दर पदविन्यास एवं ललित गद्य का उदाहरण है।

विश्वेश्वर पाण्डेय - इनका समय अठारहवीं शती का पूर्वार्ध माना गया है**?** ये अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि थे तथा व्याकरण, दर्शन साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने विविध विषयों से सम्बन्धित लगभग **20** ग्रन्थों का प्रणयन किया। **'**मन्दारमञ्जरी**'** इनकी उत्कृष्ट गद्य रचना है जिस पर कादम्बरी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भाषा सरस एवं ललित है। कादम्बरी का कथा के समान मुख्य कथा में अनेक उपकथाओं का नियोजन किया गया है। ग्रन्थ में कवि का दर्शन व्याकरण एवं साहित्यपरक पाण्डित्य स्पष्ट दिखाई देता है।

अम्बिकादत्त व्यास - सुबन्धु, बाण एवं दण्डी के पश्चात् गद्य काव्य की परम्परा में सर्वाधिक ख्यातनाम है पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का। **'**शिवराज विजय**'** इनका ऐतिहासिक गद्यकाव्य है इसे संस्कृत का प्रथम उपन्यास कहा जा सकता है। इनका समय उन्नीसवीं शती का उत्तरार्ध माना गया है। यह सांस्कृतिक पुनर्जागरण का काल था। उस समय निरन्तर उद्वेलित हो रहे भारतीय जनमानस का स्पष्ट प्रभाव शिवराज विजय में परिलक्षित होता है।

अम्बिकादत्त व्यास ने **'**गद्य काव्य मीमांसा**'** नामक शास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की तथा गद्य के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया तथा गद्य भेदों का भी विशद विवेचन किया। जिसमें उपन्यास को भी गद्य काव्य का विशिष्ट भेद स्थापित करके उसके स्वरूप का विस्तृत निरूपण किया।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1. **गद्य** – अपादः गद्य सन्तानो **–** बिना चरण अथवा पाद का रचना गद्य कहलाती है।
2. **आख्यायिका -** आख्यायिका 'संस्कृत' भाषा में निबद्ध होती है। आख्यायिका का गद्य क्लिष्ट न हो, शब्द सुश्रव्य हो, अर्थ भी स्पष्ट हो, समास भी क्लिष्ट न हो। आख्यायिका का विषय उदात्त होना चाहिए। इसका विभाजन उच्छ्वासों में विभक्त होना चाहिए।
3. **कथा -** कथा की भाषा संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश हो सकती है जबकि आख्यायिका की भाषा संस्कृत होती है। कथा उच्छ्वासों में विभक्त नहीं होती।
4. **पाञ्चाली रीति -** शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते शब्द एवं अर्थ का समान गुम्फन पांचाली रिति कहलाता है।
5. **काम -** कामस्तु विषयासक्तचेतसोः स्त्रीपुंसयोर्निरतिशयसुखस्पर्शविशेषः। काम से आशय विषयासक्त चित्त वाले स्त्री एवं पुरुष के स्पर्श जनित निरतिशय सुख है।
6. **गद्य त्रयी** – गद्य के तीन सम्राट सुबन्धु बाण एवं दण्डी को सयुँक्त रूप से गद्य त्रयी कहा जाता है।
7. **पदलालित्य** – पद का ललित होना अर्थात् पदों की सुन्दर रचना को पदलालित्य कहा जाता है।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गद्य किसे कहते है **?**
2. कथा एवं आख्यायिका में क्या अन्तर है **?**
3. वाणी बाणो बभूव ह **?** इस पंक्ति की व्याख्या किजिए
4. संस्कृत गद्य के विकास पर एक लेख लिखिए **?**
5. संस्कृत गद्य का उद्भव किस प्रकार हुआ **?** स्पष्ट किजिए **?**

1.9 सारांश

इस प्रकार सारांश रूप हम कह सकते है कि सस्कृत की रचनाएँ समस्त गद्य विधा का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनकी निम्नांकित विशेषताएँ हैं–

(1) वस्तुत: गद्य कवी का लक्ष्य सुसंस्कृत श्रोताओं का मनोरंजन होता है। यही कारण है कि काव्यों की तरह ही यहाँ उदात्त अलंकृत आहार्य दिखायी पड़ता है और उसी की तरह कथावस्तु का गौण बनाकर वर्णनों को प्रधानता दे दी जाती है।

(2) काव्योपयुक्त लम्बे-लम्बे समास, श्लेष-वैचित्य, अनुप्रास और अर्थालंकार प्राचुर्य कि ओर गद्य कवि विशेष ध्यान देता देखा जाता है।

(3) वह ब्राम्ह्य प्रकृति तथा अन्त: प्रकृति के वर्णन करने की ओर अधिक ध्यान देता है।

(4) कव्योपयुक्त वातावारण की सृष्टि के ही लिए इन कवियों ने प्राय: प्रणय- गाथा को चुना है। पर ध्यान देने की बात यह है कि प्रणय-कथा के कथांश पर गद्य कवि इतना ध्यान देता दिखायी नहीं देता, जितना वर्णन शैली पर।

(5) इन तीनों गद्यकाव्योंकारों के पास अपार शब्द-भण्डार अलंकारों तथा कल्पनाओं की अपूर्व सूझ, वर्णन की तीव्र पर्यवेक्षण-शक्ति, संगीतात्मक भाषा, भाव-पक्ष की तरलता, शाब्दि क्रीडा और यथार्थ जीवन को ज्यों का त्यों चित्रित करने की शक्ति है।

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, उमाशंकर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली 2004.
2. शर्मा, रामविलास, संस्कृत साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली 1998.
3. मिश्र, रामचन्द्र, संस्कृत साहित्येतिहास:, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2010.
4. Keith A.B., History of Sanskrit Litrature (6th Edition), Motilal Banarsidass Pvt. Ltd., New Delhi, 2014.

इकाई 2

महाकवि बाणभट्ट कृत कादम्बरी की गद्य शैली का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 महाकवि बाणभट्ट
2.3 बाणभट्ट की कृतियाँ
2.4 कादम्बरी कथामुख का सारांश
2.5 कादम्बरी के प्रमुख पात्र
2.6 बाणभट्ट की शैली
2.7 बाणभट्ट का प्रकृति–चित्रण
2.8 कादम्बरी में अलंकार योजना
2.9 कादम्बरी में रस–परिपाक
2.10 बाणभट्ट की दृष्टि में प्रेम
2.11 बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्
2.12 बाणभट्ट का सौन्दर्य–बोध
2.13 कादम्बरी का भाव–पक्ष
2.14 कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते
2.15 विविध समालोचकों द्वारा बाण की समालोचना
2.16 पारिभाषिक शब्दावली
2.17 अभ्यासार्थ प्रश्न
2.18 सारांश
2.19 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य छात्रों को संस्कृत गद्य परम्परा के विकास क्रम की प्राथमिक जानकारी उपलब्ध करवाना है।

- साथ ही छात्रों को गद्य साहित्य के धुरन्धर महाकवि बाणभट्ट का विशिष्ट परिचय प्रदत्त करना भी उद्देश्य है।
- बाणभट्ट की भाषा एवं शैलीगत विशेषताओं से छात्रों को अवगत कराना।
- बाणभट्ट के मनोरम प्रकृति चित्रण वैशिष्ट्य से छात्रों को अवगत कराना।
- बाणभट्ट की साहित्यिक एवं काव्यगत विशेषताओं के बारे में छात्रों को जानकारी प्रदान करना।
- बाणभट्ट को सर्वातिशायी गद्य रचनाकार के रूप में सुस्थापित करना।

2.1 प्रस्तावना

विश्व की प्रायः समस्त भाषाओं में गद्य की अपेक्षा पद्य की प्रथमता और प्रचुरता पाई जाती है और संस्कृत साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। इसका कारण पद्य रचना की सरलता, संक्षिप्तता, छन्दोमयता, लयात्मकता, रमणीयता आदि गुण हैं। गद्य में छन्दोबंधन नहीं है पर क्रमिक विकास में उसका जो परिष्कृत और अलंकृत स्वरूप उभरा है वह वस्तुतः विद्वान् कवियों की कसौटी है– **''गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।''**

प्राचीन काल से ही संस्कृत वाङ्मय में गद्य रचना के दर्शन होते हैं। विश्व के प्राचीनतम साहित्य के रूप में स्वीकृत संहिताओं में भी गद्य प्रयुक्त है। कृष्ण यजुर्वेद में गद्य की

बहुलता है, अथर्ववेद में भी गद्य है। ब्राह्मण ग्रन्थ तो गद्यमय ही हैं। आरण्यक तथा उपनिषद् गद्य से भरे पड़े हैं। सूत्रग्रन्थ पूर्णतया गद्य में ही हैं। लौकिक साहित्य में भी गद्य का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से प्राप्त होता है। महाभाष्यकार पतंजलि का महाभाष्य सुन्दर गद्य का उदाहरण है। गद्य में अलंकृत शैली का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन समय से ही मिलता है। पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिककार कात्यायन ने आख्यायिका शब्द का प्रयोग किया है। पतंजलि ने भी अपने भाष्य में **वासवदत्ता, सुमनोत्तरा** और **भैमरथी** नामक तीन आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है।

अलंकृत शैली का प्राचीनतम उदाहरण रूद्रदामन का गिरनार शिलालेख है। इसके बाद प्रयाग से प्राप्त हरिषेण की समुद्रगुप्त प्रशस्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ईसा की दूसरी एवं तीसरी शताब्दी तक अलंकृत गद्य शैली का विकास हो चुका था।

2.1.1 गद्य रचना के भेद – कथा एवं आख्यायिका–

संस्कृत गद्य के सामान्यतया दो भेद माने गये हैं कथा एवं आख्यायिका। परन्तु इनके स्वरूप को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। अमरकोषकार के अनुसार कथा कवि की कल्पना से प्रसूत होती है और आख्यायिका ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित होती है। आचार्य भामह के अनुसार आख्यायिका की कथावस्तु वास्तविक होती है जबकि कथा की कल्पित किन्तु आचार्य दण्डी इस बात से सहमत नहीं हैं। दण्डी के अनुसार आख्यायिका में नायक स्वयं अपनी कथा कहता है जबकि कथा में वह स्वयं भी कह सकता है अथवा कहलवा भी सकता है। आख्यायिका उच्छ्वासों में विभक्त होती है जबकि कथा में ऐसी व्यवस्था नहीं है। आख्यायिका में वक्त्र एवं अपरवक्त्र नामक छन्दों का प्रयोग होता है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने कथा की भाषा संस्कृत अथवा प्राकृत दोनों होना माना है।

अलंकृत गद्यशैली की काव्य परम्परा सुदीर्घ है किन्तु इस शैली के तीन कवि प्रधान माने गये हैं। 1.दण्डी, 2. सुबन्धु 3. बाणभट्ट। इनके पौर्वापर्य को लेकर मतभेद ह। दण्डी की सरल गद्यशैली को देखकर उन्हें प्रथम माना जाता है जबकि सुबन्धु की अत्यन्त समासयुक्त शैली के कारण उन्हें द्वितीय गद्यकार के रूप में मान्यता प्राप्त है। बाणभट्ट के काव्य में सरल एवं समास प्रधान उभयविध शैली के कारण इतिहास क्रम में तीसरा स्थान प्राप्त है। बाणभट्ट का काव्य संस्कृत गद्य रचनाकारों के लिए सर्वथा अनुकरणीय है। बाणभट्ट ने कथा और आख्यायिका दोनों के प्रतिमान स्वरूप कादम्बरी और हर्षचरितम् नामक रचनाएं प्रस्तुत की हैं जिनमें प्रौढ़ कवित्व एवं उत्कृष्ट गद्य का स्वरूप परिलक्षित होता है। वस्तुतः लक्षणकारों ने बाणभट्ट की इन रचनाओं को देखकर ही कथा एवं आख्यायिका का लक्षण प्रस्तुत किया है।

2.2 महाकवि बाणभट्ट

बाणभट्ट संस्कृत साहित्यरूपी नभोमंडल के देदीप्यमान नक्षत्र हैं जिनकी समता करने वाला गद्य रचनाकार न तो हुआ है, न ही संभाव्य है। साक्षात् भगवती सरस्वती के अवतार महाकवि बाणभट्ट के जीवनवृत्त के बारे में स्वयं उन्होंने ही बहुत कुछ लिखा है। वे तत्कालीन भारत के सम्राट् हर्षवर्धन के प्रधान सभा पंडित थे। कान्यकुब्ज के सम्राट् हर्षवर्धन का समय चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार 606 ई. से 648 ई. तक है। अतः बाणभट्ट का समय भी यही माना जाता है। बाणभट्ट के पश्चात्वर्ती ग्रन्थकारों में, यथा काव्यालंकार सूत्र में, वामन ने (800 ई.) आनन्दवर्धन ने (850 ई.) व धनंजय (1000 ई.) ने दशरूपक आदि में बाणभट्ट का उल्लेख किया है। अतः महाकवि बाणभट्ट का इनसे पूर्वभावी होना स्वतःसिद्ध है। बाणभट्ट ने हर्षचरित में अपने वंश का वर्णन किया है। तदनुसार वत्सवंशी चित्रभानु इनके पिता एवं राजदेवी इनकी माता थी। इनकी माता की मृत्यु बाल्यकाल में ही हो जाने के कारण इनका पालन–पोषण पिता द्वारा किया गया। ये बचपन से ही नियंत्रणमुक्त एवं स्वेच्छाचारी थे तथा इन्होंने यायावर के रूप में सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर अनुभव प्राप्त किया था। कादम्बरी के प्रारम्भ में इन्होनें अपने भर्वु नामक गुरु का स्मरण किया है। इनके पुत्र का नाम पुलिंद अथवा भूषणभट्ट था। जिन्होंने अपने पिता की अपूर्ण कादम्बरी को पूर्ण किया। बाणभट्ट ने शोण नदी के किनारे प्रीतिकूट नामक ग्राम को अपनी जन्मस्थली बताया

है। कान्यकुब्ज के सम्राट् हर्षवर्धन इनके आश्रयदाता थे, जिनके सम्मान में इन्होंने हर्षचरितम् नामक आख्यायिका ग्रन्थ लिखा।

2.3 बाणभट्ट की कृतियां

विलक्षण प्रतिभा के धनी वेद वेदांग पुराण आदि विविध शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित लोक व्यवहार में निपुण मानवीय मनोभावों के सूक्ष्म द्रष्टा बाणभट्ट की कीर्तिपताका मुख्यतः उनकी दो कृतियों कादम्बरी एवं हर्षचरितम् पर आधारित है। यद्यपि इनके अतिरिक्त अन्य कृतियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु विद्वानों में उनको लेकर मतभेद है।

1. **पार्वतीपरिणय** को बाणभट्ट की रचना माना जाता है। यह कुमारसंभवम् को आधार बनाकर लिखा गया सरल संस्कृत में नाटक है। डा. कीथ एवं भोलाशंकर व्यास इसे बाण की रचना स्वीकार नहीं करते हैं।
2. **मुकुटताडितक** नामक नाटक का उल्लेख नलचम्पू के प्रसिद्ध व्याख्याकार चण्डपाल तथा गुणि विनयमणि ने बाणभट्ट के नाम से किया है किन्तु यह रचना अनुपलब्ध है।
3. **पद्य कादम्बरी** – क्षेमेन्द्र ने अपनी औचित्यविचारचर्चा में बाणभट्ट के नाम से पद्य उद्धृत किया है तथा भोज ने भो ''यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धेऽपि तादृशः'' कहकर पद्य कादम्बरी का समर्थन किया है।
4. **चण्डीशतकम्** – चण्डीशतक सौ स्रग्धरा छन्दों में उपनिबद्ध एक स्तुति काव्य है।
5. **हर्षचरितम्**–यह एक आख्यायिका है इसमें आठ उच्छ्वास हैं। इसमें कान्यकुब्ज सम्राट् हर्षवर्धन से सम्बद्ध वृत्तान्त का वर्णन किया गया है। इसका अधिकांश वर्णन ऐतिहासिक होने पर भी कवि कल्पनाओं की अधिकता के कारण इसे ऐतिहासिक काव्य माना जाना संभव नहीं है।
6. **कादम्बरी** – कादम्बरी नामक कृति की रचना महाकवि बाण ने अपनी प्रौढावस्था में की थी। इसमें बाण की विद्वत्ता, पाण्डित्य एवं कवित्व पूर्णतः निखरा हुआ परिलक्षित होता है। हम यह कह सकते हैं कि गद्य साहित्य में यह अत्यन्त ही प्रौढ रचना है जिसका साम्य अन्यत्र दुर्लभ है। इस कथा में कवि ने अपनी उदात्त कल्पना से चन्द्रापीड तथा कादम्बरी और वैशम्पायन तथा महाश्वेता के प्रेमाख्यान का भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। वस्तुतः इसमें दो प्रेमाख्यानों की जन्म–जन्मांतर की कथा कवि की कल्पनाओं से अत्यन्त रमणीय एवं चित्ताकर्षक बन गई है। कथा मूलतः तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग कथामुख है तथा आगे पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध है।

कादम्बरी कथा का मूल उत्स गुणाढ्य–विरचित वृहत्कथा है। इसमें राजा सुमनस की कथा कादम्बरी कथा का मूल प्रतीत होती है। वृहत्कथा अभी अपने मौलिक स्वरूप में उपलब्ध नहीं हैं तथापि कुछ रूपान्तर सोमदेव कृत कथासरित्सागर में प्राप्त होते हैं। कादम्बरी की कथा कथासरित्सागर के लम्बक 10 तरंग 13 के श्लोक 22 से 179 तक वर्णित हैं। बाणभट्ट ने अपनी प्रतिभा से पात्रों एवं घटनाओं के वर्णन में परिवर्तन किया है।

2.4 कादम्बरी कथामुख का सारांश

कादम्बरी का प्रारम्भ एक अतिशय प्रतापी राजा शूद्रक के वर्णन से होता है। शूद्रक विदिशा का राजा था। वह विविध ऐश्वर्य–सम्पन्न होकर अनेक सुखोपभोग कर रहा था। एक दिन प्रातःकाल राज्यसभा में सिंहासन पर बैठे हुए उस राजा शूद्रक की सभा में एक चाण्डाल कन्या सोने के पिंजरे में एक विलक्षण शुक को लेकर उपस्थित होती है। उस कन्या ने शूद्रक का प्रणाम कर वैशम्पायन नामक उस विलक्षण शुक को स्वीकार करने की प्रार्थना की। शुक ने भी अपना दायां पंजा उठाकर मनुष्य की वाणी में एक आर्या पढ़कर सुनाई। राजा तथा सभी उपस्थित सभासद आश्चर्य चकित हो गये। शुक को भोजन आदि के पश्चात् अन्तःपुर में भेजने के बाद अपने दैनिक कार्य सम्पन्न करके राजा ने उस शुक को

अपने सामने उपस्थित करने का आदेश दिया। शुक के आने पर राजा ने उससे उसका जीवन वृत्तान्त बतलाने का निवेदन किया । वह शुक कहने लगा–विंध्याटवी में अगस्त्य के आश्रम के पास पम्पा नाम का एक सरोवर था। जिसके किनारे पर एक जीर्ण शाल्मली वृक्ष में अनेक शुक परिवारों के साथ रहते हुए वृद्ध शुक से मेरा जन्म हुआ। माता की मृत्यु हो जाने पर पिता ने मेरा पालन पोषण किया। एक दिन एक शबर सेनापति उधर से गुजरा। उसी में से एक शबर उस वृक्ष से अनेक शुकों को मारकर अपने साथ लेकर चल दिया। मैं किसी तरह बच गया। प्राण बचाने के लिये मैं प्यासा ही आगे चल पड़ा। इसी बीच महर्षि जाबालि का पुत्र हारीत स्नान करने के लिए उधर से निकला । मुझे मरणासन्न जानकर उठाया और पानी पिलाकर अपने साथ आश्रम ले गया। आश्रम की सुंदरता और महर्षि जाबालि का व्यक्तिव दखकर मै अत्यन्त प्रभावित हुआ। महर्षि ने मुझे देखकर कुछ देर ध्यानमग्न होकर कहा हे! शुक तू अपने कर्मों का फल भोग रहा है। महर्षि की बात सुनकर सभी ऋषियों ने उत्सुकतावश मेरे वृत्तान्त को जानने की प्रार्थना की। महर्षि ने निश्चिन्त होकर कथा सुनाना स्वीकार किया और यह भी कहा कि कथा सुनते ही इस शुक को अपने पूर्व जन्म का वृत्तांत स्मरण हो जाएगा। संध्यावंदन व भोजन आदि करने के बाद महर्षि जाबालि ने ''कथा सुनने की उत्सुकता है तो सुनिये'' ऐसा कहकर कथा कहना प्रारम्भ कर दिया।

2.5 कादम्बरी के प्रमुख पात्र

बाण ने अपनी कथा में लोकतत्त्व एवं मानव मनोविज्ञान के तथ्यों का सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया है। घटनाओं के विकास में लोकतत्त्व को आधार बनाया गया है वहीं चरित्र चित्रण में मनोविज्ञान का आश्रय लिया गया हैं। कादम्बरी में यद्यपि अनेक पात्रों का चित्रण हुआ है किन्तु यहां मुख्य पात्रों का चरित्र–चित्रण प्रस्तुत किया जा रहा है।

2.5.1 चन्द्रापीड – कादम्बरी कथा में चन्द्रापीड मुख्य नायक है और चन्द्रापीड के तीन जन्मों का वर्णन हमारे सामने उपस्थित होता है–1. शूद्रक 2. चन्द्रापीड 3. चन्द्रमा। प्रस्तुत कथा में चन्द्रापीड के रूप में ही इस चरित्र की प्रमख चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन मिलता है। चन्द्रापीड राजकुमार है तथा कथा के नायक के रूप में अपेक्षित सभी विशेषताएं उपलब्ध हैं। वह ह्रष्ट पुष्ट, बलवान, सुन्दर एवं मेधावी है। उसकी विनम्रता एवं शिष्टता प्रशंसनीय है। विद्याध्यन के पश्चात् भी वह विनय से परिपूर्ण है। अपने वृद्धजनों एवं गुरुजनों का पितृतुल्य सम्मान करता है। मित्रों के प्रति स्नेह, सम्मान और विश्वास उसकी विशेषता है। उसमें वीरता एवं असीमित साहस दृष्टव्य है। दिग्विजय अभियान के दौरान कुछ ही दिनों में सभी को पराजित कर देता है। मानवीय उदारभाव एवं दुःख में सहानुभूति प्रदर्शन करना उसका स्वभाव है। चन्द्रापीड प्रमुखतः प्रेमी के रूप में चित्रित होने पर भी आज्ञाकारी एवं कर्तव्यनिष्ठ पुत्र, सच्चा मित्र तथा सहृदय व्यक्ति के रूप में परिलक्षित होता है। चन्द्रापीड का व्यक्तित्व प्रेम के प्रसंग में अनुपम है। वह केवल शारीरिक सुंदरता पर आकृष्ट नहीं होता है। वह धीर एवं गंभीर है। उसका मन विकारों से दूर है तथा सदाचरण उसका प्रमुख गुण है। वह कादम्बरी के प्रेम में आसक्त है किन्तु अपने कर्तव्य बोध के प्रति पूर्णतः सावधान है। संक्षिप्त में चन्द्रापीड बल, पौरुष, प्रतिभा, विनय, शिष्टता, मित्रता और आदर्श प्रेम की प्रतिमूर्ति है।

2.5.2 पुण्डरीक – कादम्बरी की दूसरी कथा का नायक पुण्डरीक है। इसके भी तीन जन्मों का वर्णन हमें प्राप्त होता है।

1. पुण्डरीक 2. वैशम्पायन 3. शुक । यह लक्ष्मी का मानसपुत्र है तथा अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है। यही कारण है कि गन्धर्व कन्या महाश्वेता इसके प्रथम दर्शन पर ही मोहित हो जाती है। परम चंचला महालक्ष्मी का पुत्र होने के कारण यह भी दुर्बल–हृदय है। महाश्वेता के प्रथम दर्शन पर तपस्वी होने पर भी वह सब कुछ भूलकर आसक्त हो जाता है। मित्र के समझाने पर भी धैर्य धारण नहीं कर पाता है

और चन्द्रोदय के साथ ही प्राण छोड़ देता है। द्वितीय जन्म में महामंत्री शुकनास का पुत्र वैशम्पायन बनकर चन्द्रापीड का अभिन्न मित्र बनता है। बुद्धि एवं आचार की दृष्टि से यह प्रशस्त है। किन्तु पूर्वजन्म की दुर्बलता इस जन्म में भी विद्यमान है। अकेले में कामातुर होकर महाश्वेता से बार–बार प्रणय निवेदन करता है किन्तु शाप के कारण शुक बन जाता है। तृतीय जन्म में भी चंचलता एवं अधीरता उसका साथ नहीं छोड़ती है। पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादाओं के बन्धन में आबद्ध राजकुमार चंद्रापीड के विपरीत ऋषिकुमार पुण्डरीक के प्रेम का चित्रण सर्वथा मनोवैज्ञानिक भित्ति पर आधारित है।

2.5.3 कादम्बरी – यह प्रस्तुत कथा की प्रमुख एवं मुग्धा नायिका है। बाणभट्ट ने अपनी इसी नायिका के नाम पर अपनी कृति का नाम रखा है। कादम्बरी अपनी सखी महाश्वेता के सुख दुःख में सदैव साथ रहती है और महाश्वेता के दुःख से वह इतनी दुःखी हो जाती है कि स्वयं भी विवाह न करने का निर्णय कर लेती है। कादम्बरी के सौन्दर्य वर्णन में बाण ने अपनी अनुपम कल्पना शक्ति का पूर्ण उपयोग कर पाठकवृन्द को मुग्ध कर दिया है। महाश्वेता की मैत्री के वशीभूत होकर वह अपने माता–पिता की आज्ञा को भी स्वीकार नहीं करती है। एक आदर्श सखी के रूप में कादम्बरी आदरणीय बन जाती है। चन्द्रापीड को देखने पर अनुरक्त हो जाने पर भी वह धैर्य धारण करती है। सखी के प्रति प्रेम एवं कान्त के प्रति अनुराग के मानसिक द्वन्द्व के अनिश्चय में विचरण करती हुई भी अन्ततः कान्त प्रेम को प्राप्त करती है। कादम्बरी अनुपम सुन्दरी है, उसके हृदय में मानवीय दुर्बलता है। जिसके वशीभूत वह चन्द्रापीड पर आसक्त हो जाती है एवं उसके विरह से व्यथित हो निरन्तर कृशता को प्राप्त होती है। कादम्बरी दया, दाक्षिण्य और लावण्य का त्रिवेणी संगम है। वह नारी सुलभ लज्जा एवं शालीनता का जीवन्त उदाहरण है। कामावेष में भी लज्जा का परित्याग नहीं करती है और चन्द्रापीड द्वारा प्रणय निवेदन पर भी मौन धारण कर अपने शील की रक्षा करती है। कादम्बरी एक सच्ची प्रेमिका अनिन्द्य सुन्दरी, विनम्रता एवं शिष्टता की प्रतिमूर्ति एवं विरह व्यथिता नायिका के रूप में चित्रित हुई है। सखी एवं प्रेमिका की भूमिका में चित्रित कादम्बरी का चरित्र भारतीय प्रेम के आदर्श स्वरूप का निदर्शन है। वस्तुतः कादम्बरी के चित्रण में कवि ने अतुल कल्पना वैभव एवं वर्णन चातुर्य के साथ ही मानव मनोवृत्तियों के मार्मिक चित्रण का परिचय दिया है।

2.5.4 महाश्वेता – महाश्वेता कादम्बरी कथा की उपनायिका है। कवि ने महाश्वेता को अत्यन्त गौरवर्णा एवं मोती के सदृश चित्रित किया हैं। महाश्वेता के नाम एवं स्वरूप का सुंदर सामंजस्य प्रदर्शित हुआ है। शारीरिक गौरता के साथ ही वह हृदय से भी अत्यन्त स्वच्छ है। वह दृढ निश्चय वाली, संयमिनी, तपस्विनी, प्रणयिनी एवं सहृदय सखी के रूप में कवि द्वारा वर्णित हुई है। तारुण्यावस्था में प्रिय के प्रथम दर्शन के एक क्षण को संचित कर तपस्विनी महाश्वेता तीन जन्म तक अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती है। यद्यपि रूपासक्ति के प्रथम दर्शन में ही कामासक्ति के ज्वार में मर्यादा, शील, सदाचार आदि बह जाते हैं, किन्तु महाकवि बाण ने नायिका को तपस्विनी बनाकर तथा नायक को तीन जन्म ग्रहण करवाकर प्रेम के इस ज्वार को भी स्थायित्व प्रदान किया है और वियोग की ज्वाला में वासना के अंश को दग्ध कर कवि ने प्रेम का कमनीय परिष्कार किया है। महाश्वेता एकनिष्ठ प्रेमिका है। अपने प्रियतम की मृत्यु पर वह स्वयं मरण को तत्पर होती है किन्तु दिव्य वाणी द्वारा रोक दी जाती है। वह कादम्बरी के प्रति दयालु और अनुरागवती है। अतः वह चन्द्रापीड को कादम्बरी से मिलाती है। इससे उसके सखी भाव, दयालुता एवं परोपकार की भावना का ज्ञान होता है। महाश्वेता कादम्बरी के समान ही अत्यन्त लावण्यवती, कोमलांगी एवं स्निग्धा है। सम्पूर्ण ग्रंथ में महाश्वेता ही एक ऐसा पात्र है जिसकी दशा सर्वाधिक दयनीय है। क्षणिक विलम्ब के कारण वह प्रियतम की प्राणघातिनी बन जाती है और अपर जन्म में भी प्रियतम को शाप देकर उसकी मृत्यु का कारण

बनती है। हृदय से पूर्ण पवित्र एवं निश्छल होती हुई भी अनभिज्ञतावश किये हुए अपराधों के लिए आत्मग्लानि करती है।

2.6 बाणभट्ट की शैली

बाणभट्ट ने हर्षचरित में अपनी शैली का संकेत देते हुए लिखा है–

'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्।।'

अर्थ की नवीनता (पुनरावृत्ति न होना), स्वभावोक्ति की अग्राम्यता, श्लेष की स्पष्टता, रस की स्फुटता, अक्षरों की विकटबन्धता–इन सबका एक स्थान पर होना दुर्लभ है, परन्तु बाण ने अपनी कादम्बरी में अपना कथन चरितार्थ कर दिया है। हर्षचरित में इन्होनें अपनी गद्य शैली का एक संकेत यह भी दिया है–

''श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षराडम्बरम्।।''

इन चार दिशाओं की चारों विशेषताओं को बाण ने समन्वित रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि 'ओजःसमासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' यह आदर्श बाण के समक्ष रहा परन्तु उन्होंने अपने उपर्युक्त वचनों द्वारा अपनी स्वतन्त्र शैली का स्पष्ट उल्लेख किया है। उनकी शैली के विषय में निम्नवचन प्रसिद्ध है–

''शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।''

इसका आशय यह है कि शब्द और अर्थ का सन्तुलित प्रयोग पांचाली शैली का जीवन है। बाण इसमें सर्वथा सफल हैं। बाण ने प्रसाद गुण का बड़ा ही मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। तत्कालीन परिस्थिति में बाण के लेखन को कथमपि अति कठिन नहीं जा सकता। सुबन्धु के बाद बाण ने अपने काव्य में विकटाक्षर बन्ध के साथ सुललित प्रवहमाण गद्य का सुन्दर दर्शन प्रस्तुत किया है। कादम्बरी में उत्कृष्ट गद्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए बाण ने कहा है– ''उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणि – प्रतिपाद्य – मानाभिनवार्थसंचयम्।'' प्रतिपाद्य विषय के स्वरूप के अनुकूल समास तथा व्यास शैली का प्रयोग करने में बाण सिद्धहस्त हैं। वर्ण्यविषय के सुदीर्घ हो जाने पर भी शैली में कहीं पर भी अरुचिकरता उत्पन्न नहीं होती है। कहीं कहीं लम्बे समासों के प्रयोग के बाद लघु–लघु वाक्यों से विषय का अवसान बड़ा ही मनोरम लगता है। यद्यपि आकार की दृष्टि से वाक्य छोटे दिखाई देते हैं किन्तु अर्थ गम्भीरता एवं व्यापकता की दृष्टि से बाण ने गागर में सागर भर दिया है।

साहित्य जगत् में जो प्रतिष्ठा महाकवि कालिदास को प्राप्त है वही प्रसिद्धि गद्य रचना में महाकवि बाण को मिली हुई है। कादम्बरी में गद्य बन्ध की पराकाष्ठा, आह्लादकता, श्लेष का प्रयोग, अलंकारों का सुन्दर समन्वय और रस परिपाक अपने चरम पर है। कादम्बरी में कवि की कल्पनाशीलता, वर्णनवैविध्य, पात्रों की अद्भुतता एवं मनोवैज्ञानिक भावों की प्रवणता अपने आप में अद्वितीय है।

2.6.1 कथावस्तुगत सौन्दर्य –

महाकवि बाण ने अपनी मौलिक कल्पना से कादम्बरी का विकास किया है। यद्यपि मूल कथा वृहत्कथा से प्रेरित है किन्तु अपनी विलक्षण प्रतिभा के बलबूते कथा में नवीनता एवं उत्सुकता का संचार करने में कवि सफल रहा है। कादम्बरी की कथावस्तु का पल्लवन एक कथा में अवान्तर कथाओं को समाहित करते हुए किया गया है। पात्र एक दूसरे की कथा को प्रस्तुत करते हैं तथा पात्र भी मर्त्यलोक, स्वर्गलोक एवं गन्धर्वलोक से सम्बद्ध हैं। शापरूपी अलौकिकत्व का प्रयोग कर कवि ने कथा में चमत्कारिता का आधान किया हैं। भारतीय संस्कृति के विविध मूल्यों एवं आयामों का चित्रण भी यथाअवसर किया गया है। कहीं कहीं कथा में तीव्रता परिलक्षित होती है तो कहीं कहीं कथा वर्णन के आधिक्य से मंद मंद संचार करती

है। वस्तुतः बाण की कादम्बरी कथावस्तु की विविधता और घटनाओं का जाल है। चन्द्रापीड और कादम्बरी की प्रेमकथा श्रृंगार रस का अजस्र स्रोत है। सम्पूर्ण कथा प्रेमरस से आप्लावित है। बाण की कादम्बरी का निर्माण एक अलौकिक काव्यशिल्पी के शिल्प के समान है जो सभी को समान रूप से आनन्द देने वाला होता है। बाण की कादम्बरी की प्रशंसा विद्वानों ने मुक्त कंठ से की है। इस विषय में कवि धर्मदास कहते हैं –

रुचिर–स्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी, बाणस्य मधुरशीलस्य।।

अर्थात सुन्दर स्वर और वर्ण वाली तथा रस और भाव वाली जो जगत् के मन को हरती है क्या वह कोई लावण्यवती सुन्दरी तरुणी है? नहीं नहीं, वह तो मधुर स्वभाव वाले बाण की वाणी है। अर्थात् कादम्बरी स्वर, वर्णविन्यास, रस भाव आदि समस्त आलंकारिक तत्त्वो से युक्त है व उस तरुणी के समान है जो समस्त जग के मन को मोहने वाली है।

2.6.2 भाषागत सौन्दय –

महाकवि बाणभट्ट का शब्द भंडार अथाह एवं अगाध है यही कारण है कि कहीं बाण का गद्य दौड़ता हुआ सा प्रतीत होता है तो कहीं भारी भरकम शब्दावली से पदाक्रान्त होकर बोझिल होता प्रतीत होता है। यद्यपि समास का आधिक्य गद्य का प्राण है तथापि प्राणतत्त्व को आहत किए बिना बाण ने सुललित उत्कलिकाप्राय समासबन्ध का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। श्रृंगार के वर्णनों में कवि ने कोमलकान्त पदावली की शय्या की सुललित रचना की है तो विन्ध्याटवीवर्णन में अतिदुरूह समासबहुल ओजप्रधान भाषा का प्रयोग कर पाठकों को चकित कर दिया है। पारस्परिक संवादों में उनकी भाषा अति सरल एवं सहज बोधगम्य है। पदे–पदे उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अलंकारों का गुम्फन उनकी भाषा को नूपुर की तरह झंकृत करता रहता है। गद्य के समासभूयस्त्व स्वरूप का निर्वाह करने के प्रयास में बाणभट्ट की भाषा अत्यन्त कठिन भी हो गई है जिसे समझने में विद्वानों को भी प्रयास करना पड़ता है। वाक्य अत्यन्त लम्बे होने के कारण साधारण पाठकों के लिए अर्थबोध भी दुष्कर प्रतीत होता है। यही कारण है कि कुछ पाश्चात्य आलोचकों ने बाण की गद्य शैली को घनघोर शब्दों की विंध्याटवी कहा है जिसमें मार्ग मिलना भी दुष्कर है। बाणभट्ट की शैली की एक विशेषता यह है कि भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। वह भावों का अनुसरण करती है। इसीलिए बाण को वश्यवाणीकविचक्रवर्ती कहा जाता है। वर्णन के वैविध्य में जो सूक्ष्मता, जीवन्तता और चित्रता दृष्टिगत होती है उसका मुख्य कारण भावानुगामिनी भाषा है। विन्ध्याटवी, पम्पा सरोवर, अच्छोदसरोवर आदि का वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही है। इसी प्रकार रूप चित्रण, प्रकृति वर्णन एवं रस परिपाक पाठकों को आनन्दित करता रहता है। पात्रों का चरित्र चित्रण, कल्पना विलास, मनोवैज्ञानिक भावों का निरूपण सभी में बाण सिद्धहस्त हैं। बाण का मानवेतर जगत् भी उतना ही विविधता एवं सौन्दर्यपूर्ण है जितना मानव जगत्। बाण ने सभी स्तर के पात्रों की सृष्टि की है। बाण महावैयाकरण थे। उनका प्रत्येक वाक्य, पद, पदांश, व्याकरण–पुष्ट है। सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त, कारक, समास, तद्धित आदि समस्त प्रकरणों के प्रयोग दृष्टिगत होते हैं।

पाश्चात्त्य आलोचक डा. वेबर और कीथ ने बाण की भाषा–शैली की कटु आलोचना की ह। लम्बे–लम्बे समास, अलंकारों की भरमार, अप्रचलित शब्दों का प्रयोग, अनियन्त्रित वर्णन, कथानक की जटिलता और इन सबके कारण उत्पन्न होने वाले कथावरोध के कारण वे आलोचना के पात्र बने हैं। उनके आरोपों का खण्डन कावेल, पीटरसन और डा. वरदाचारी ने बडी कुशलता स किया है। वस्तुतः इनकी आलोचना के मूल में संस्कृत भाषा से अनभिज्ञता भारतीय संस्कृति से अपरिचय और

अलंकृत युग की परम्पराओं का अल्प ज्ञान है। जो इनसे परिचित हैं वे बाण की शैली से आनन्दित होते हैं और मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं।

2.6.3 वर्णनगत विविधता –

कादम्बरी महाकवि बाण की वर्णनप्रधान काव्यकृति है जिसमें प्रत्येक विषय का पूर्ण विस्तार से वर्णन दृष्टिगोचर होता है। कवि वस्तु अथवा घटना के सूक्ष्मतम पहलू को भी उजागर करने में संलग्न प्रतीत होता है। वर्णन के अत्यधिक विस्तार से कवि विचलित नहीं होता है । सूक्ष्मतम जानकारी भी प्रासंगिक स्थलों पर देना कवि अपना कर्तव्य समझता है। कवि ने अपने यायावर जीवन से जो अनुभव प्राप्त किये उन्हें अपने काव्य में निबद्ध करने का प्रयास किया है। बाणभट्ट ने कादम्बरी में शूद्रक, शुक, जाबालि, तारापीड, चन्द्रापीड, महाश्वेता आदि अनेक पात्रों का सविस्तार चित्रण किया है।

2.7 बाणभट्ट का प्रकृति चित्रण

काव्य की सुन्दरता का कारण प्रकृति का मनोरम चित्रण होता है। जिस कवि की कृति में प्रकृति का सुन्दर प्रतिपादन होता है उसका काव्य जगत् में समादर होता है। अतः प्रकृति चित्रण एक ऐसा काव्य त्त्व हैं जिसको आत्मसात् करने से कवि की कृति कमनीयता से परिपूर्ण हो जाती है।

अपने यौवन के प्रारम्भिक दिनों मे भ्रमण करते हुए बाण ने प्रकृति का नजदीक से अवलोकन किया। यही कारण है कि वनों, वृक्षों, लताओं, पुष्पों, पर्वतों, नदियों, झरनों, तालाबों, सूर्योदय, चंद्रोदय आदि प्राकृतिक घटनाओं के सजीव और प्रभावशाली चित्रण में बाण असंदिग्ध रूप से सफल परिलक्षित होते हैं। उन्हें प्रकृति का सौम्य रूप अत्यन्त चित्ताकर्षक प्रतीत हुआ है। वे कालिदास की तरह प्रकृति के परम उपासक प्रतीत होते हैं। उनके वर्णन विस्तार में प्राकृतिक चित्रण स्वाभाविक रूप से संलग्न हो जाता है। उदाहरणतया जाबालि के आश्रम वर्णन में प्रकृति का शान्त एवं उदात्त वर्णन पाठकों के मन में पवित्र भावना का संचार कर देता है। बाण प्रकृति चित्रण में पूर्ण सफल कवि हैं। उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती कवियों की तरह ही प्रकृति के आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों स्वरूपा का मार्मिक प्रतिपादन किया है। पुण्डरीक के वियोग में महाश्वेता चंद्रमा की रश्मियों में दाहकता अनुभव करती है। यथा –

"एकत्र चायं पापकारी चन्द्रहतको न शक्यते सोढुम् इदमपि दुर्विषहं मे हृदयम्। अस्य चोद्गमनमिदं सदाहज्वरग्रस्तस्याङ्गारवर्षः शीतार्तस्य तुषारपातविषविस्फोटमूर्च्छितस्य कृष्णसर्पदंशः।"

इस गद्य में बाण ने चंद्रमा की उद्दीपकता का वर्णन किया है। प्रकृति मनुष्य की चिरसहचरी है। उसका चित्रण हमें प्रिय लगता है । कवि भी अपने चारों ओर उपस्थित वस्तुओं में से ही काव्य सामग्री का ग्रहण करता है। यही कारण है कि प्राचीन अरण्य पधान सभ्यता में पले हुए संस्कृत कवियों ने प्रकृति चित्रण में विशेष रुचि प्रदर्शित की थी। बाण को भी प्रकृति से असीम अनुराग था। उनकी कादम्बरी के पूर्व भाग में प्राकृतिक दृश्यों की भरमार है। बाण ने अपने काव्य में प्रकृति के कोमल एवं भयावह दोनों स्वरूपों का सुंदर चित्रण किया है। जहां सूर्योदय, चंद्रोदय, संध्या आदि के वर्णनों में प्रकृति का कोमल रूप अंकित हुआ है वहीं विंध्याटवी वर्णन में प्रकृति का भीषण रूप भी चरितार्थ हुआ है। यथा–

क्वचित् प्रलयवेलेव महावराहदंष्ट्रा–समुत्खातधरणिमण्डला, क्वचिद् दशमुखनगरीव चटुलवानरवृन्दमज्यमान – तुङ्गशालाकुला, क्वचिदचिरनिर्वृत्तविवाहभूमिरिव हरित्कुश–समित् कुसुमशमीपलाशशोभिता, क्वचिदुन्मत्तमृगपति– नादभीतेव कण्टकिता।

कादम्बरी में प्रकृति चित्रण के द्वारा कहीं कहीं भावी घटनाओं की भी सूचना दी गई है। उदाहरणतया महाश्वेता के अभिसार की पृष्ठभूमि में किया गया चंद्रोदय वर्णन निस्संदेह

अभिसार के प्रभाव को बढ़ाने के लिए किया गया है किन्तु उसमें भी कवि ने चंद्रमंडल को शेषनाग के फन के समान कहकर महाश्वेता को मूर्च्छित प्रदर्शित किया है जिससे पुण्डरीक के देह त्याग रूपी भावी अनिष्ट का पूर्वाभास हो जाता है। बाण ने अपने प्रकृति चित्रों को अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा एवं सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के बल पर अत्यन्त मनोहारी रूप प्रदान किया है। अलंकार विधान के द्वारा उसमें और अधिक चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास भी किया गया है। बाण ने पात्र की मनोदशा के अनुसार प्रकृति का चित्रण किया है यथा– वियोगावस्थापन्न महाश्वेता को चंद्रोदय दुःखदायक प्रतीत होता है वहीं जाबालि आश्रम में वह शुचिता प्रदान करता हुआ लगता है। इस प्रकार बाण का प्रकृति चित्रण अद्वितीय है। बाण प्रकृति के साथ तादात्म्य को प्रधान मानते हैं उनके पात्र प्रकृति नटी की गोद मे स्वतंत्र रूप से क्रीड़ा करते हुए लक्षित होते हैं। स्वाभाविकता पदे–पदे झलकती है। उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की पुष्पमाला से सुसज्जित बाण का प्रकृति चित्रण निश्चय ही पशंसनीय है।

जाबालि आश्रम के शांत, मनोरम तथा पावन वायुमण्डल का परिचय परिसंख्या अलंकार के माध्यम से निपुणतया प्रस्तुत किया गया है–

''यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु.....।''

कवि बाण मानव प्रकृति की सूक्ष्म भावनाओं के निरीक्षण और चित्रण में सिद्धहस्त हैं, शुकनास के उपदेश, महाश्वेता और कादम्बरी के मानसिक भावों का चित्रण उनकी इस कला को सुस्पष्ट करते हैं। जब वे कहानी की घटनाओं के अनुरूप बाह्य प्रकृति से इनका तादात्म्य स्थापित कर देते हैं तो और भी उत्कृष्टता आ जाती है।

2.8 कादम्बरी में अलंकार योजना

बाणभट्ट जिस काल के प्रतिनिधि रचनाकार है उस काल में प्रशस्त गद्य लेखन का आदर्श स्वरूप संस्थापित हो चुका था। और बाण उस स्वरूप के निर्वहन में सफल हुए हैं। बाण ने अपनी कादम्बरी में अलंकृत गद्य शैली का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन प्रस्तुत किया है। यद्यपि इनके द्वारा प्रयुक्त समस्तस्थलों का विश्लेषण अत्यन्त दुरूह एवं विस्तृत कार्य है किन्तु उदाहरणतः कुछ निदर्शन प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा–

2.8.1 शब्दालंकार –

बाणभट्ट ने शब्दालंकारों में अनुप्रास और श्लेष का बहुलतया प्रयोग किया है और यमक का प्रयोग न्यूनतया मिलता है।

1. अनुप्रास के विभिन्न भेदों का प्रयोग बाणभट्ट ने किया है यथा–

   'प्रतापानुरागावनत–समस्त–सामन्तचक्रः, चक्रवर्तिलक्षणोपेतः, चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाण–शङ्खचक्रलांछनः।'

   ''धाम धैर्यस्य, स्थानं स्थितेः, सेतुः सत्यस्य, गुरुर्गुणानाम्, आचार्य आचाराणाम्, धाता धर्मस्य।''

2. यमक अलंकार का अधिक प्रयोग नहीं दिखाई देता है। किन्तु कहीं कहीं अत्यन्त सुंदर प्रयोग द्रष्टव्य है। यथा–

   ''आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः।''

   '' यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदनलक्ष्मीविभ्रमविरामो रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन् सह सीतया।''

3. कादम्बरी में श्लेष अंलकार का प्रयोग पदे–पदे प्राप्त होता है। यथा–

   ''शरदमिव विकसितपुण्डरीकलोचनाम्, प्रावृशमिव घनकेशजालाम्–––।''

   ''समरोद्यत–पताकिनीव बाणासनारोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा च''.....।

''असुरारिमिव प्रकटितनरहरिवराहरूपम्, सांख्यमिव कपिलाधिष्ठितम्''.....।

2.8.2 अर्थालंकार – अर्थालंकारों मे उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, विरोधाभास, परिसंख्या तथा रूपक आदि के प्रयोग में बाणभट्ट को दक्षता प्राप्त है।

1. **उपमा** – बाण के श्लेष के उदाहरण उपमा के उदाहरण भी हो सकते हैं। अतः कुछ विद्वान् इन्हे श्लेषोपमा भी मानते हैं। कादम्बरी का प्रारम्भ उपमा अलंकार से ही होता है–

''चक्रवर्तिलक्षणोपेतः चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्रलांछनः, हर इव जितमन्मथः।

कथामुख में उपमा के अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है–

''पराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्, घटोत्कचमिव भीमरूपधारिणम्।''

बाण आर्थी उपमा के प्रयोग में भी सिद्धहस्त हैं। यथा राजा शूद्रक की प्रशंसा में कवि कहता है–

''यश्च मनसि धर्मेण, कोपे कामेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता''.....

रसनोपमा अलंकार का भी सुंदर प्रयोग कादम्बरी में दिखाई देता है–

''क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।''

2. **रूपक** – महर्षि जाबालि के वर्णन में परम्परित रूपक की छटा दर्शनीय है–

''एषः प्रवाहः करुणरसस्य, सन्तरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृष्णालतागहनस्य, सागरः सन्तोषामृतरसस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य.....।''

3. **उत्प्रेक्षा** – उत्प्रेक्षालंकार बाण को सर्वाधिक प्रिय अंलकार प्रतीत होता है। कल्पनाशीलता की ऊंचाइयां छूने में उत्प्रेक्षाओं ने बाण की प्रतिभा को प्रकट होने का पूर्ण अवसर प्रदान किया है। बाण ने कादम्बरी का प्रारम्भ ही उत्प्रेक्षा अंलकार से किया है। उत्प्रेक्षा के प्रायः सभी भेदोपभेद उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं।

''उपरिविन्यस्तकुङ्कुमस्थासकमन्तरान्तरानिपतितबालातपच्छेदमिव कैलाशसिखरिणम्.....''।

''अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेलावलग्ना मध्यदेशालङ्कारभूता मेखलेव भुवः.....''।

4. **विरोधाभास** – कादम्बरी में प्रयुक्त विरोधाभास अति सुन्दर हैं एवं महाकवि बाण की बहुज्ञता के परिचायक हैं–

''अभिनवयौवनमपि क्षपितबहुवयसम् कृतसारमेयसङ्ग्रहमपि फलमूलाशनम्, कृष्णमप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दचारमपि दुर्गैकशरणम्, क्षितिभृत्पादानुवर्तिनमपि राजसेवानभिज्ञम्।''.....

5. **परिसंख्या** – कादम्बरी में महाकवि बाण द्वारा परिसंख्या अलंकार को प्रभावोत्पादक रीति से बहुत बार प्रयुक्त किया गया है।

''यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं–चित्रकर्मसु वर्णसङ्कराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः.....।''

''यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयः परिणामे द्विजपतनम्.....।

6. **अर्थान्तरन्यास** – अर्थान्तरन्यास अंलकार के विन्यास में महाकवि बाण की कादम्बरी में उदाहरण पदे–पदे द्रष्टव्य है–

'' किमिव हिं दुष्करमकरुणानाम् ।''

''सर्वथा न कन्जनं न खलीकरोति जीवितृष्णा.....''।

वस्तुतः कादम्बरी के प्रत्येक अंश में कोई न कोई अंलकार अवश्य है। सभी का विवेचन किया जाना संभव नहीं है। अतः स्थालीपुलाकन्याय से कुछ अलंकारों का निदर्शन प्रस्तुत किया गया है।

2.9 कादम्बरी में रस परिपाक

भारतीय मनीषियों के अनुसार काव्य में रस का स्थान सर्वोच्च है। रस की अभिव्यक्ति में सफल कवि ही सभ्य समाज में आदर प्राप्त करता है। कादम्बरी में रस के विषय में कादम्बरी के उत्तरार्द्ध का यह कथन स्मरणीय है। **कादम्बरी रसभरेण समस्त एव, मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम् ।** मानव मनोभावों के सफल चितेरे बाण ने अपनी कादम्बरी में प्रसंगों के अनुकूल विविध रसों का प्रभावकारी वर्णन किया है। यही कारण है कि कादम्बरी को रस सिन्धु की संज्ञा दी गई है। सम्पूर्ण कादम्बरी का समालोचन करने पर विदित होता है कि कादम्बरी का अंगीरस श्रृंगार तथा अंगरस करुण हास्य, भयानक, शान्त, अद्भुत आदि हैं। श्रृंगार के निरूपण में बाण की प्रतिभा अदम्य है। कवि का पूर्ण प्रयास रहता है कि काव्य में पाठकों को रस की प्राप्ति हो। यहां **एस. के. ड** का कथन उद्धृत करना प्रासंगिक है– **''बाण के रोमांस का मूल्य कथा वर्णन, चरित्र चित्रण एवं आलंकारिक योजना के उपस्थापन में नहीं है, अपितु कवित्व और रस की अभिव्यंजना में है।''**

कादम्बरी श्रृंगार रस प्रदान करती है। प्रेम का उद्दाम एवं मर्यादित चित्रण किया गया है। कहीं भी उच्छृंखलता का दर्शन नहीं होता है। बाण का श्रृंगार अति उत्कृष्ट कोटि का है। कवि ने बाह्य शरीर की कमनीयता से उत्पन्न कामुकता को कोई महत्व नहीं दिया है। बाण जन्म जन्मांतर के प्रेम को प्रशस्त मानते हैं। तीन तीन जन्मों तक प्रेम की एकनिष्ठता और किसी भी परिस्थिति में अपरिवर्तनशोलता बाण जैसा महाकवि ही प्रस्तुत कर सकता है। वस्तुतः महाश्वेता के प्रेम से पागल पुण्डरीक की भर्त्सना कर कवि ने यह शिक्षा देने का प्रयास किया है कि असंयत प्रेम मानसिक और शारीरिक पीडा का कारण होता है। कादम्बरी में श्रृंगार के विप्रलम्भ पक्ष का विशद विवेचन हुआ है। पुण्डरीक तथा चंद्रापीड की मृत्यु हो जाने पर भी पुनःमिलन की संभावना बनी रहती है। अतः यहां करुण रस न मानकर विप्रलम्भ श्रृंगार रस माना जाना ही उचित है। कवि ने विप्रलम्भ श्रृंगार को मुख्यता प्रदान कर यह सिद्ध किया है कि वियोग की ज्वाला में परितप्त श्रृंगार ही परमानन्द देने वाला है। बाण का रस परिपाक विषयक प्रयत्न की सफलता का मुख्य कारण उनका अगाध शब्द भंडार एवं लोक जीवन को नजदीक से जानने का अनुभव है। अतः गोवर्धनाचार्य जैसे विद्वानों ने बाण को साक्षात् वाणी का अवतार माना है।

जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह।।

इस प्रकार रस सिद्ध कवीश्वर बाण ने अपनी रचनाओं में सुन्दर रसोन्मेष प्रस्तुत किया है। फिर भी श्रृंगार रस के चित्रण में उनकी दक्षता अतुलनीय है। वैशिष्ट्य यह है कि श्रृंगार वर्णन में उन्होंने मर्यादा का सदा ध्यान रखा ह। उनका प्रणय चित्रण आदर्श रूप है और सात्विक भावों से ओत प्रोत है। उसमें अश्लीलता की गंध नहीं है।

2.10 बाणभट्ट की दृष्टि में प्रेम

कादम्बरी दो प्रेमी युगलों की तीन जन्मों की प्रणय कथा है। बाण ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप प्रेम का एक अत्यन्त उच्च आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। बाण की दृष्टि में प्रेम में अनन्यता आवश्यक है। यही कारण है कि उन्होंने अपने प्रेमपात्रों की अग्निपरीक्षा ली है।

इनका प्रेम केवल बाहरी शारीरिक सौन्दर्य पर आधारित नहीं है अपितु अन्तः प्रेरणा और पूर्वजन्म के संस्कार प्रेम में कारण भूत हैं। बाण अपन पात्रों के परस्पर अनुराग–वृद्धि में समयसीमा को विशेष महत्व नहीं देते हैं। प्रथम दर्शन ही प्रेम परिणति में पर्याप्त माना गया है। किन्तु प्रेम का परिपाक होने में जन्म जन्मांतर का समय अपेक्षित है। यही कारण है कि कादम्बरी के दोनो प्रेमाख्यानों की परिणति तीन जन्मों में जाकर पूर्णता को प्राप्त होती है। प्रेम में एकनिष्ठता या अनन्यता अत्युच्च प्रेम की प्राथमिक आवश्यकता है। सामान्य लोक व्यवहार में ऐसी आदर्श परिस्थिति दुष्प्राप्य है। शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार बाण भी स्त्री में प्रेम को पूर्व में दर्शाते हैं। कादम्बरी और महाश्वेता का चद्रापीड और पुण्डरीक के प्रति पहले आकृष्ट होना इसी सिद्धान्त की पुष्टि करता है। प्रेम चित्रण के प्रसंग में विभिन्न भावों का मार्मिक और यथार्थ निरूपण बाण की बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक है।

वासना जन्य बाह्य प्रेम में आकर्षण जल्दी ही मन्द पड़ जाता है। बाण की दृष्टि में तो प्रेम अमर है और वह काल के प्रभाव से अछूता है। यहां तक की मृत्यु भी उसमें बाधक नहीं बन सकती है। उनका जो पात्र जिसके प्रति प्रेम रखता है। उसी से प्रेम करता रहता है। अन्य के प्रति आकर्षित नहीं होता है। कादम्बरी में प्रणय भावना का उद्‌गम और विकास अत्यन्त स्वाभाविक रूप में निरूपित हुआ है। प्रेमियों की विरह दशा के चित्र भी कवि ने मनोहर रूप से चित्रित किये हैं। संक्षिप्त में हम यह कह सकते हैं कि बाण ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप मर्यादित एवं जन्म जन्मान्तरों तक स्थायी रहने वाले अमर प्रेम का दिग्दर्शन कादम्बरी में करवाया है। इस दृष्टि से हम महाकवि बाण को महाकवि कालिदास का अनुगामी कह सकते हैं।

2.11 बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम

संस्कृत गद्य साहित्य परम ललित और सुसमृद्ध है। इसमें गद्य सम्राट् बाण का स्थान अपनी अनुपम विशेषताओं के कारण सर्वोच्च है। कथा परियोजना, वर्णन कौशल, रसाभिव्यक्ति, कल्पनाशक्ति, सूक्ष्म निरीक्षण, शैली की प्रवाहमयता आदि सभी दृष्टियों से महाकवि बाण अपने पूर्वभावी एवं परवर्ती रचनाकारों से कहीं आगे हैं। बाण के कुशल लेखन से मुक्त होकर आलोचकों ने उन्हें वश्यवाणी कवि चक्रवर्ती, पंचानन, पंचबाण आदि उपाधियों से विभूषित किया है। उनकी बहुश्रुतता और सर्वविध वैशिष्ट्य से प्रभावित होकर किसी आलोचक ने तो यहां तक कह दिया है कि **''बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्''**। अर्थात काव्य जगत् में सर्वत्र बाण का उच्छिष्ट किम्वा उनका प्रभाव ही व्याप्त है। बाण की रचनाओं पर दृष्टिपात करने से उनके सर्वविध प्रातिभा दर्शन होते हैं। हर्षचरित और कादम्बरी ने उनकी कीर्तिपताका को अमर कर दिया है। कोमलकान्त पदावली, भावप्रवणता, अलंकार सुषमा, प्रतिभा वैभव, काव्यकौशल आदि से युक्त गद्य उनकी रचना चातुर्य का परिचायक है। बाण ने **'ओजःसमासभूयस्त्वमेतद् गद्यलक्षणम्'** में वर्णित पारम्परिक गद्य के स्वरूप का निर्वहन करते हुए यथावसर उत्कलिकाप्राय, चूर्णक, वृत्तगन्धि और मुक्तक चारों प्रकार के गद्य का वर्णन किया है और पांचाली रीति को अपनाया है। उन्होंने स्वयं ही अपनी गद्य शैली का आदर्श स्वरूप निर्धारित करते हुए लिखा है कि–

''नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुलर्भम्।।''

बाण ने स्वयं इस आदश का पालन किया है। उन सब गुणों और उनके यथार्थ प्रयोग के कारण बाण एक आदर्श गद्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनका प्रभाव परवर्ती गद्यकारों पर स्पष्ट रूप से पड़ा है। धनपाल, वादीभसिंह, सोड्ढल आदि कवि ही नहीं अपितु समस्त संस्कृत जगत् बाण का ऋणी है। अतः ''बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्'' यह युक्ति अक्षरशः सत्य है। यद्यपि बाण की शैली लम्बे समास, लम्बे वाक्य और लम्बायमान वर्णनों से आक्रान्त है परन्तु उन पर निष्पक्षता से दृष्टिपात करने पर दृश्यों की मनोरमता, शब्दों की संगीतात्मकता, ओजस्वी एवं सजीव वर्णन सर्वत्र परिलक्षित होता है। शब्दार्थगत माधुर्य अधोलिखित आर्या में द्रष्टव्य है।–

''स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्।''

बाण बहुज्ञ थे, उनका शास्त्रीय ज्ञान व्यापक था। कादम्बरी के मंगल श्लोक में त्रिगुणात्मक और त्रयी से युक्त भगवान् की स्तुति की गई है। उनके काव्य में षड्दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति, धर्मशास्त्र, संगीतशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र आदि के उदाहरण अनेकत्र सुलभ हैं। प्रकृति देवी के अनन्य उपासक बाण ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से प्रकृति के सौम्य एवं भीषण दोनों रूपों का तथा आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही प्रकारों का चित्रण मनोरमता से किया है। बाण अंलकारों की योजना में कुशल एवं सिद्धहस्त है। उपमा रूपक उत्प्रेक्षा आदि प्रसिद्ध अलंकारों का सुन्दर विन्यास हुआ है। बाण की कादम्बरी में रसाभिव्यक्ति सुरुचिकर है। वस्तुविन्यास में बाण अत्यन्त सम्पन्न है। कथाओं और उपकथाओं से युक्त तीन जन्मों तक चलने वाला अत्यन्त जटिल कथानक होते हुए भी बाण ने कादम्बरी का रमणीय संयोजन किया है। पात्रों के चरित्र चित्रण में बाण की कुशल लेखनी उन्हें मानों सजीव बना रही है। बाण की रचना चातुरी वर्णनाशक्ति चरित्र चित्रण की चारुता आदि को देखकर कवि चन्द्र ने बाण को सिंह के रूप में वर्णित किया है–

''श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽ–
लङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आ सर्वत्र गम्भीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।।''

इस प्रकार बाण की विशेषताओं के कारण समस्त संसार उनकी बहुमुखी प्रतिभा के आगे उच्छिष्ट प्रतीत होता है। इसका तात्पर्य है कि बाण ने अपने साहित्य में किसी भी साहित्यिक तत्व को नहीं छोडा है। वर्णनों की विचित्रता कल्पनाशीलता एवं विशालता के आगे परवर्ती कवियों के लिए कुछ शेष ही नहीं रहा है। अतः यह उक्ति उनके सम्मान में साधुसंगत है। कादम्बरी में प्रातःकाल, संध्या, शूद्रक, शुक, तारापीड, चाण्डाल कन्या, विन्ध्याटवी, जाबालि आश्रम, जाबालि ऋषि, शबर सेनापति, पम्पा सरोवर, इन्द्रायुध अश्व, महाश्वेता की विरह व्यथा, कादम्बरो का प्रेम एवं विरहावस्था, वैशम्पायन की मैत्री, शुकनास का उपदेश, हारीत का चरित्र आदि विषयों का स्वाभाविक एवं सविस्तार वर्णन हुआ है। बाण कृत कादम्बरी में तत्कालीन समाज, वर्ण, नारी की स्थिति, शिक्षा, रूढिवादी मान्यता, आभूषण, वस्त्र, कला, धर्म, राजनीति, काम, युद्धनीति, तप, यज्ञ, दान, पाखण्ड, इन्द्रजाल, चतुर्दश विद्या, स्वर्ग, गन्धर्व, पशु पक्षी, राजा, राज्य, नगर, पुर, सेवक, सेविका, सरोवर, व्यापार आदि का विस्तृत ज्ञान मिलता है। कादम्बरी में शैव, शाक्त, वैष्णव, क्षपणक आदि की पूजा पद्धति का भी विवरण प्राप्त होता है। बाण की बहुमुखी प्रतिभा में भारतीय संस्कृति का जो विस्तृत परिवेश और आयाम उपस्थित किया है। गद्य विधा उसकी ऋणी है। अतः आलोचकों की यह उक्ति चरितार्थ होती है–**बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।**

2.12 बाणभट्ट का सौन्दर्य बोध

बाणभट्ट का जन्म कुलीन परिवार में हुआ था और बाद म भी इन्हें राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ था। अतः बाण का सौन्दर्य सम्बन्धी ज्ञान एवं विश्लेषण उच्च कोटि का है। वे वस्तुतः सौन्दर्य के परम पुजारी प्रतीत होते हैं। पदार्थ मात्र में सौन्दर्य की अनुभूति और विस्तृत रूप चित्रण में बाण सिद्धहस्त हैं। विभिन्न प्राकृतिक दृश्यां, स्थानों के साथ ही मानव रूप चित्रों का भी उन्होनें प्रभावशाली रूप से अंकन किया है। बाण के मानव सौन्दर्य चित्रण में स्फितता एवं विविधता दृष्टिगोचर होती है। स्त्री पात्रों में चाण्डाल कन्या, कादम्बरी और महाश्वेता के सौन्दर्य वर्णन में बाण ने उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं की माला ही गूथ दी है। पुरुष पात्रों में राजा शूद्रक, शबर सेनापति, हारीत, महर्षि जाबालि, पुण्डरीक आदि के चित्रण मनोहारी हैं। श्याम वर्ण वाली चाण्डाल कन्या एवं उज्ज्वल गौरवर्णा महाश्वेता के वर्णन से प्रतीत होता है कि उन्हें श्याम और गौर दोनों वर्णों क प्रति समान अनुराग था। बाण सजीव एवं निर्जीव दोनों ही प्रकार के रूप चित्रणों में मादकता अनुभव करते हैं। बाण ने सौन्दर्य वर्णन में भी मर्यादा एवं औचित्य का पूर्ण ध्यान रखा है। महाश्वेता एवं कादम्बरी का सौन्दर्य वर्णन इसका स्पष्ट प्रमाण है। चाण्डाल कन्या के वर्णन में भी उसके चाण्डालत्व को उपेक्षित करते हुए उसके यौवन और सौन्दर्य को ही कवि ने प्राथमिकता दी है। कवि ने उसे भवानी, रति, कालिन्दी, कात्यायनी और लक्ष्मी आदि के रूप में परिकल्पित कर उसके साक्षात् लक्ष्मी

होने का संकेत दिया है। महाश्वेता जो कि अपने नाम के अनुरूप हो अत्यन्त गौरवर्णा तरुणी है। उसके उज्ज्वल वर्ण का चित्रण कवि ने विस्तार पूर्वक किया है। उपमाओं का मानों पर्वत ही खड़ा कर दिया है। कादम्बरी के नखशिख वर्णन में कमनीय कल्पना को स्थान प्रदान किया गया है। प्राकृतिक दृश्यों एवं रूप चित्रणों के सौन्दर्य बोध के विषय में बाण ने अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रतिपादन किया है।

2.13 कादम्बरी का भाव पक्ष

भाव पक्ष का विचार करते समय सर्वप्रथम काव्य में रस और ध्वनि का विचार किया जाता है। कादम्बरी में रस और ध्वनि की प्रधानता प्रायः समस्त वर्णनों मे मिलती है। यहां भावों की मुख्यता, गाम्भीर्य एवं मर्मस्पर्शी सौन्दर्य है। रस की निर्झरिणी पदे पदे नूतन एवं चमत्कृतिपूर्ण है। बाण एक सरस एवं सहृदय साहित्यकार हैं। पात्रों के अन्तर्मन में प्रविष्ट होकर उनके साथ तादात्म्य स्थापित कर प्रसंगानुसार भावों की सफल अभिव्यक्ति बाण की प्रमुख विशेषता है। विभिन्न अवस्थाओं में स्त्री और पुरुष की स्वाभाविक मनोदशा का चित्रण कादम्बरी में दृष्टिगोचर होता है। चाण्डाल कन्या के अनुपम रूप माधुर्य को देखकर राजा शूद्रक विधाता को धिक्कारने लगता है। शुक के वृत्तान्त वर्णन में जिन मनोभावों का उपस्थापन किया गया हैं वे सहृदय के हृदय को द्रवित कर देने वाले हैं। तारापीड की महारानी द्वारा निःसंतानता का चित्रण अत्यन्त ही मार्मिक है। प्रेमपक्षों के चित्रण में भावपक्ष वर्णन की पराकाष्ठा को छूता प्रतीत होता है। वर्णनानुकूल रसाभिव्यक्ति के लिए बाण लघु वाक्यावली का प्रयोग करते हैं जिससे भाव के साथ भाषा का प्रवाह भी त्वरित हो जाता है। कादम्बरी के दोनों प्रेमी युगलों का विरह वर्णन बाण की भावात्मक सौन्दर्यबोध की अनुभूति को सिद्ध करता है।

2.14 ''कादम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते''

कादम्बरी बाण की काव्य कला का चूडांत निदर्शन है। यह काव्य गन्धर्वराज की पुत्री एवं प्रधान नायिका कादम्बरी को उद्देश्य करके लिखा गया है। **कादम्बरीमधिकृत्य कृता कथा कादम्बरी।** कादम्बरी का एक अर्थ मदिरा भी होता है। कादम्बरी के समान आह्लाददायक मादक और आकर्षक होने के कारण सम्भवतः कादम्बरी पद का श्लिष्ट अर्थ संगत होता है। कादम्बरी के इसो श्लिष्ट अर्थ को ध्यान में रखते हुए स्वयं भूषणभट्ट ने लिखा है–

''कादम्बरी रसभरेण समस्त एव मत्तो न किचिंदपि चेतयते जनोऽयम्।''

अर्थात कादम्बरी (कथा और मद्य) के रस से यह समस्त सहृदय वर्ग इतना मत्त हो गया है कि थोड़ी बहुत भी चेतना नहीं बची है।

कादम्बरी के सार्वभौम सौष्ठव से अभिभूत आलोचक सहसा कहता है। ''कादम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते''। अर्थात् कादम्बरी कथा के आनन्द को पाने वाला सहृदय पाठक उसे पूर्ण किये बिना उठना नहीं चाहता है भले ही भोजन के लिए आह्वान होता रहे। कादम्बरी के आस्वाद के सामने भोजन का रस रसहीन जान पड़ता है। वास्ताविकता तो यह है कि यह रचना विविध साहित्यिक विशेषताओं से अनुस्यूत है। प्रत्येक बिन्दु सहृदय और समर्थ पाठक को आकर्षित किये बिना नहीं रहता है। परमानन्द की प्राप्ति में दत्तचित्त हो जाता है, आत्मविभोर हो जाता है। फिर उसे आहार आदि भौतिक सुखों का ध्यान नहीं रहता है। प्रस्तुत सूक्ति में इसी भावना को व्यक्त किया गया है।

2.15 विविध समालोचकों द्वारा बाण की समालोचना

कादम्बरी पूर्णतया गद्य प्रेमकथा है। यह संस्कृत की उन अमरकृतियों में से है जो काल के प्रभाव से भी अप्रभावित हैं। इसमें महाकाव्य तथा नाटक दोनों के गुण विद्यमान हैं। यह कृति प्रेम की सार्वभौम भावना के विविध पक्षों की विवेचना करती है तथा इसमें यथार्थ जीवन की कठोरता का स्पर्श नहीं है। भारतीय समालोचक दस से अधिक शताब्दियों से कादम्बरी को अपनी तरह की सर्वश्रेष्ठ रचना होने का गौरव प्रदान करते रहे हैं। यह मानवीय अवसाद और उसके दैवीय समाधान मृत्यु के बाद भी मिलन की कामना की कथा है जो इस कथा में पूर्णता को पाप्त होती है। इस कृति के पहले अंग्रेज सम्पादक पीटर पेटरसन ने लिखा है–''कादम्बरी का विश्व साहित्य में स्थान किसी प्रतिभाशाली की एक

और आकांक्षा के समान है जिसे आदि काल से नश्वर कान सुनने की लालसा पाले हुए है लेकिन नश्वर होठों से कभी बोली नहीं गई है।''

प्रॉफेसर वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने समीक्षात्मक अध्ययन में कादम्बरी की बाहरी तौर पर प्रेमपूर्ण लगने वाली कथा में निहित प्रतीकात्मक व शाश्वत मूल्यों की दार्शनिक तथा रहस्यात्मक व्याख्या की है। शूद्रक अज्ञानी पुरुष का प्रतीक है जो अपनी आध्यात्मिक परम्परा और सत्य को भूल गया है। पुण्डरीक सहस्त्र चक्र चेतना का प्रतीक है जो अपनी वासना के कारण वैशम्पायन की तरह पतित होता है। इसके विपरीत महाश्वेता चेतना की प्रतीक है और कादम्बरी वासना को दर्शाती है जो असंयमित व्यक्ति को पागल तक कर सकती है अतः इसका लाभ संतुलित होकर ही प्राप्त किया जा सकता है। अप्सराओं के रूप में बाण ने सृष्टि का मातृ–सिद्धान्त स्थापित किया है और गंधर्वों में सृजन की प्रक्रिया का। अपने इस आध्यात्मिक सिद्वान्त की पुष्टि के लिए उन्होंने अनेक वैदिक तथा बौद्ध ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

महामहोपाध्याय पी. वी. काणे ने बाण के साहित्यिक योगदान का संतुलित विश्लेषण निम्नानुसार किया है– ''चरित्र–चित्रण में बाण ने अत्यन्त कौशल कौशल तथा विवेक का परिचय दिया है। कादम्बरी के सभी चरित्र सजीव व संगत हैं। कोमल व युवकोचित भावनाओं से भरपूर हारीत, उदार व प्रेमिल राजा चन्द्रापीड, विश्वसनीय मंत्री शुकनास जो हमेशा राजा के प्रति चिंतित रहता है, सहृदय रानी विलासवती, समर्पित पत्रलेखा, जो राजकुमार चन्द्रापीड के साथ छाया की तरह लगी रहती है, बहुत प्रेम करने वाले परन्तु अनुशासनप्रिय कपिंजल, मन तथा शरीर से पवित्र महाश्वेता, जो नायिका के लिए प्रेरणा का काम करती ह, ये ऐसे चरित्र हैं जो पाठक के हृदय पर गहरी छाप छोड़ते हैं। यह एकदम अलग बात है कि बाण ने अपना सारा कौशल इस रोमांस के नायक तथा नायिका के चित्रण में लगा दिया है। हमारे विचार से शेक्सपीयर की तरह बाण भी नायक की अपेक्षा नायिका के चित्रण में अधिक सफल रहा ह।''

प्रोफेसर सी. कुन्हन राजा ने कादम्बरी की समालोचना करते हुए लिखा है– ऐसे वर्णन रोमांस को अलंकृत भर करने के लिए लिखे जाते हैं। उनका समावेश उचित अवसर पर उचित मात्रा में किया जाता है। वह पाठक की दृष्टि में रोमांस की कथा को ओझल नहीं करते। ऐसे प्रसंग कथा को सुन्दरता प्रदान करते हैं और पाठक के मन में समा जाते हैं। इसके अतिरिक्त कथा की संभावित एकरसता को भंग करने में भी ये सहायक होते हैं कथा के वर्णन से तेजी आती है और ऐसे वर्णन उस तेजी को शिथिल करने में सहायक होते हैं ताकि पाठक को कथा म घटित घटनाओं को जानने का अवसर मिल सकें। इससे न तो अवांछित क्षिप्रता आती है, और न ही ठहराव। इससे मंद, लयात्मक गति मिल जाती है।

पाश्चात्य आलोचक वेबर ने कादम्बरी की समीक्षा करते हुए लिखा है– दुर्भाग्यवश कादम्बरी पुनरुक्ति तथा सूक्ष्मदर्शिता की दृष्टि से दशकमारचरित से तुलनीय है हालांकि दोनों कृतियां एक शब्द से पहले प्रयुक्त विशेषणों में प्रतिकूल रवैया अपनाती हैं, कथा का विकास निरर्थक प्रभाव में होता है और पाठक की सहिष्णुता जवाब देने लगती है, दशकुमारचरित की रीति का यहां अति की सीमा में प्रयोग हुआ है, क्रिया दूसरे, तीसरे, चौथे बल्कि छठें पृष्ठ पर आती है और इस बीच विशेषण तथा विशेषण के विशेषण से स्थान भर दिया जाता है। यही नहीं, ये विशेषण एक से अधिक पंक्तियों तक फैले समास के रूप में प्रयुक्त होते हैं। संक्षेप में, बाण का गद्य एक ऐसे भारतीय जंगल के समान है जिसमें झाड़–झंखाड़ के कारण आगे बढना संभव नहीं है। इसमें आगे तभी बढ़ा जा सकता है, जब इस झाड़–झंखाड़ को यात्री स्वयं काटे। इसके बावजूद उसे जंगली जानवरों की दुनिया में रहना होगा, जो अज्ञात शब्दों के रूप में उसे हमेशा डराते रहेंगे।

विंटरनिट्ज ने वेबर की आलोचना का जवाब अपनी कृति ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर में निम्न प्रकार से दिया है– यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि शब्दों तथा कठिन प्रसंगों के रूप में आने वाली विरूपता निरंतर सरल व सहज शैली में आने वाले छोटे छोटे प्रसंगों से छंटती रहती है। यद्यपि कृति का पढना हमारे लिए कठिन अनुभव हो सकता है, परन्तु यह

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय पाठक के लिए, यह मानकर कि वह संस्कृत का ज्ञाता है, इस कृति का पढना सुखद हो सकता है।

2.16 पारिभाषिक शब्दावली

आख्यायिका – अमरकोषकार के अनुसार कथा कवि की कल्पना से प्रसूत होती है और आख्यायिका ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित होती है।

चन्द्रापीड – कादम्बरी कथा में चन्द्रापीड मुख्य नायक है और चन्द्रापीड के तीन जन्मों का वर्णन हमारे सामने उपस्थित होता है–1. शूद्रक 2. चन्द्रापीड 3. चन्द्रमा।

पांचाली शैली – ''षब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते।
षीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।''
इसका आशय यह है कि शब्द और अर्थ का सन्तुलित प्रयोग पांचाली शैली का जीवन है।

वश्यवाणीकविचक्रवर्ती – बाणभट्ट की शैली की एक विशेषता यह है कि भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। वह भावों का अनुसरण करती है। इसीलिए बाण को वश्यवाणीकविचक्रवर्ती कहा जाता ळें

2.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध–प्रश्न

1. महाकवि बाण के माता–पिता कौन थे?
2. बाण द्वारा रचित प्रमुख कृतियों के नाम लिखो।
3. कथा और आख्यायिका में मुख्य भेद क्या है?
4. महाभाष्यकार पतंजलि ने किन आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है?
5. बाण की गद्यशैली की विवेचना किजिये।
6. बाण के प्रकृतिचित्रण का सविस्तार विश्लेषण किजिये।

बोध–प्रश्नों के उत्तर

उ. 1 राजदेवी और चित्रभानु।
उ. 2 कादम्बरी, हर्षचरितम, चण्डीशतक, मुकुटताडितक।
उ. 3 देखे 1.2.1।
उ. 4 वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी।
उ. 5 देखें 1.7।
उ. 6 देखें 1.8।

2.18 सारांश

इस प्रकार इस इकाई से हमने बाणभट्ट के काल निर्णय प्रमुख रचनाओं का सामान्य ज्ञान प्राप्त किया । कादम्बरी में बाण कि गद्य कला, प्रकृति प्रेम, सौन्दर्य बोध इत्यादि का अवबोध किया । इसी के साथ यह भी जाना की कादम्बरी के विषय विभिन्न समालोचनों द्वारा क्या समीक्षा की है ।

2.19 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पेटरसन पी. – कादम्बरी इंटोडक्शन एण्ड नोट्स, बम्बई 1953.
2. अग्रवाल, वासुदेवशरण – कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, चौखंबा, विद्या भवन, वाराणसी, 1958.
3. डे, एस.के.–हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, कलकत्ता, 1947.
4. काणे पी. वी. – कादम्बरी (भूमिका), बम्बई 1920.
5. कुन्हन राजा सी. – कादम्बरी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई 1963.
6. श्रीमती नीता शर्मा – बाणभट्ट, ए लिटरेरी स्टडी, मशी राममनोहरलाल, दिल्ली, 1968.
7. के कृष्णमूर्ति – बाणभट्ट, साहित्य अकादमी, 2003.

इकाई– 3

महाराज शूद्रक का वैशिष्ट्य वर्णन (आसीदशेष..... कौतुकमाकर्ण्यताम्)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 कथामुख की सप्रसंग व्याख्या (आसीदशेष..... कौतुकमाकर्ण्यताम्)
3.3 पारिभाषिक शब्दावली
3.4 अभ्यासार्थ प्रश्न
3.5 सारांश
3.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य महाकवि बाणभट्ट की गद्यशैली से छात्रों को परिचित करवाना है।

- गद्य रचना की समस्तपदावलीबहुल समास शैली से छात्रों को अवगत करवाना।
- कादम्बरी कथामुख की विषय–वस्तु से अवगत करवाना।
- प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य कथा के नायक शूद्रक के व्यक्तित्व से छात्रों को परिचित करवानो है।
- महाकवि बाणभट्ट की गद्यशैली की विशेषताओं से परिचित करवाना।
- छात्रों में गद्य को पढ़कर उसको समझने एवं अनूदित करने के कौशल का विकास करना।

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में कादम्बरी कथामुख के प्रारम्भ से शूद्रक वर्णन पर्यन्त भाग का सप्रसंग सरलार्थ प्रस्तुत किया गया है। कथामुख के प्रारम्भ में शूद्रक नामक प्रतापी राजा का वर्णन है जिसकी राजधानी विदिशा है, एक बार एक अत्यन्त सुन्दर चाण्डाल कन्या पिंजरे में आबद्ध वैशम्पायन नामक शुक को लेकर शूद्रक की राजसभा में उपस्थित होती है। वैशम्पायन राजा की प्रशंसा में एक सुन्दर श्लोक पढ़कर सुनाता है। राजा शुक की विदग्धता से प्रसन्न होकर उससे अपनी कथा सुनाने का आग्रह करता है।

3.2 कथामुख की सप्रसंग व्याख्या

प्रसंग – महाकवि बाणभट्ट की कादम्बरी से अवतरित इस गद्यांश म कवि ने शूद्रक नाम के राजा की विशेषताओं का वर्णन किया है। वस्तुतः चक्रवर्ती सम्राट् के जो भो लक्षण सामुद्रिक शास्त्र में कहे गये हैं तथा जो भो गुण एक सम्राट् को महान् बनाते हैं उन सभो का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत गद्यांश में किया गया है। राजा शूद्रक अपने गुणों के कारण स्वयं दूसरे इन्द्र के समान हैं।

आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः, चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्त्ता, प्रतापानुरागावनत–समस्त–सामन्तचक्रः, चक्रवर्तिलक्षणोपेतः, चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाण – शङ्ख – चक्र –लांछनः, हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः, जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूतिः, गङ्गाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तः, रविरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदयः, मेरुरिव सकलोपजीव्यमानपादच्छायः, दिग्गज इवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः, कर्त्ता महाश्चर्य्याणाम्, आहर्त्ता क्रतूनाम्, आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्, उत्पत्तिः कलानाम्,

कुलभवनं गुणानाम्, आगमः काव्यामृतरसानाम्, उदयशैलो मित्रमण्डलस्य, उत्पातकेतुरहितजनस्य, प्रवर्त्तयिता गोष्ठीबन्धानाम्, आश्रयो रसिकानाम्, प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, धौरेयः साहसिकानाम्, अग्रणीर्विदग्धानाम्, वैनतेय इव विनतानन्दजननः, वैन्य इव चापकोटिसमुत्सारितसकलाऽरातिकुलाचलो राजा शूद्रको नाम।

अनुवाद – 'शूद्रक' नामवाला एक राजा था, वह मानों दूसरा 'इन्द्र' था जिसकी आज्ञा सभो राजा लोग सिर झुका कर मानते थे। वह चारों समुद्रों की मालारूपी करधनी वाली पृथ्वी का पति था। प्रताप और अनुराग से समस्त सामन्त जिसके अधीन थे। जो शरीर में चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त था। चक्रधारी विष्णु भगवान् के हाथों में जिस प्रकार शंख और चक्र है, उसी प्रकार उसके करकमलों में शङ्ख तथा चक्र के चिह्न बने हुए थे। जिस प्रकार शिव ने मन्मथ = कामदेव को जीत लिया था, उसी प्रकार वह मन्मथ = काम–विकारों को जीतने वाला अर्थात् जितेन्द्रिय था। जिस प्रकार स्वामिकार्तिकेय अप्रतिहत = अमोघ शक्ति = आयुधविशेष वाले हैं, उसी प्रकार वह भो अप्रतिहत = अवारणीय शक्ति = बल वाला था। ब्रह्मा ने जिस प्रकार राजहंसमण्डल (राजहंसों के समूह) को अपना विमान बना दिया था, उसी प्रकार उसने भो राजहंसों = श्रेष्ठ राजाओं के समूह को विमान = मानरहित कर दिया था। जिस प्रकार समुद्र लक्ष्मी का प्रसूति स्थल है, उसी प्रकार वह राज्यलक्ष्मी अर्थात् सम्पत्ति का उद्गम स्थल था। गंगा का प्रवाह जिस प्रकार भगीरथ के रथ के मार्ग पर चला था, उसी प्रकार वह भगीरथ के मार्ग = शासनपद्धति का अनुसरण करने वाला था, उन्हीं के समान न्यायपूर्ण रीति से शासन करने वाला था। जिस प्रकार प्रतिदिन सूर्य का उदय पूर्व दिशा में होता है, उसी प्रकार प्रतिदिन उसका उदय = अभ्युदय (कल्याण) होता था। जिस प्रकार सभो देवता लोग सुमेरु के पादों = समीपवर्ती पहाड़ियों की छाया का आश्रयण लेते हैं, उसी प्रकार सभो लोग उसके पादों की छाया का आश्रयण लेते थे। जिस प्रकार दिग्गज निरन्तर बहने वाले दान = मदजल से आर्द्र सूंड वाले रहते हैं, उसी प्रकार वह सदैव प्रवृत्त = किये गये दान = परित्याग में प्रयुक्त जल से गीले हाथ वाला रहता था। जो महान् आश्चर्यजनक कार्यों को करने वाला था। जो यज्ञों का अनुष्ठाता था। जो सभो शास्त्रों का दर्पण था। जो कलाओं की उत्पत्ति का स्थान था। जो गुणों का कुलभवन (वंशपरम्परागत आश्रयस्थल) था। जो काव्यामृत रसों का उद्गम था। जो मित्रमण्डल (सुहृद्वर्ग, सूर्यमण्डल) का उदयशैली (उन्नतिस्थान, उदयाचल) था। शत्रु लोगों का विनाशसूचक धूमकेतु था। मधुर कथादिविषयक सभाओं का प्रवर्तक था। काव्यादि के रसिकों का आश्रय था। धनुर्धारियों का निराकरणकर्ता था। साहसी लोगों में अग्रसर था। विद्वानों में प्रमुख था। जिस प्रकार वैनतेय (विनता के पुत्र गरुड) विनतानन्दजनक (अपनी माता विनता को आनन्द देने वाला) था उसी प्रकार जो विनतों = विनम्र लोगों के आनन्द को पैदा करने वाला था। जिस प्रकार राजा पृथु ने धनुष के अग्रभाग से अरातिकुलाचल (शत्रुसमूहरूपी पर्वतों) को नष्ट कर दिया था उसी प्रकार जो पर्वतसदृश समस्त शत्रुओं को नष्ट कर देने वाला था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – समभ्यर्चितः सम् + अभि + अर्च + क्तः; विमानीकृतः – 'विमानीकृत' में 'अभूततद्भाव' अर्थ में च्वि प्रत्यय हुआ है; अविमानं विमानं कृतं इति विमानीकृतं; उपजीव्यमान – उप + जीव् + ण्यत् + शानच्; आगमः – आ + गम् + घञ्; आहर्त्ता – आ + हृ + तृच्; प्रवर्तयिता – प्र + वृत् + णिच् + तृचः; प्रत्यादेशः – प्रति + आ + दिश् + घञ; धौरेयः – धुर् + ठक्; वैनतेयः – विनता + ढक्। कमलयोनिः – कमलं योनिः उत्पत्ति–स्थानं यस्य सः = ब्रह्मा।

विशेष – (1) चक्रवर्तिलक्षणोपेतः – सामुद्रिक शास्त्र से चक्रवर्ती राजा के हाथ पैर आदि में शंख चक्र आदि विशेष प्रकार के चिह्न बताये गये हैं, शूद्रक उन लक्षणों से युक्त था। (2) चक्रधर.....लांछनः – विष्णु शङ्ख और चक्र धारण करते हैं, राजा के हाथ में सामुद्रिक शास्त्रोक्त शंख, चक्र आदि रेखाएँ होने के कारण राजा की विष्णु से तुलना की गई है। (3) गङ्गा....प्रवृत्तः – यहाँ कपिल द्वारा भस्म किये गये अपने पुरखों की राख बहा ले जाने के लिये भगीरथ द्वारा अपने रथ के पीछे–पीछे गङ्गा के लाये जाने की पौराणिक कथा की ओर संकेत है। (4) वैन्य.....कुलाचल – इस अंश में उस पौराणिक कथा का उल्लेख है

जिसके अनुसार राजा पृथु ने अपनी धनुष्कोटि से पर्वतों को उखाड़कर पृथ्वी को समतल बना दिया था। (5) प्रस्तत गद्यांश में समासोक्ति, पूर्णोपमा, संसृष्टि आदि अलंकार हैं।

प्रसंग – कादम्बरी कथामुख से उद्धृत किये गये प्रस्तुत गद्यांश में गद्यचक्रवर्ती महाकवि बाणभट्ट ने राजा शूद्रक के यहाँ पर लक्ष्मी के सतत निवास करने का वर्णन किया है। राजा को अपने गुणों के कारण विष्णु को भो अतिक्रान्त करते दर्शाया गया है।

नाम्नैव यो निर्भिन्नारातिहृदयो विरचितनारसिंह–रूपाडम्बरम्,
एकविक्रमाक्रान्तसकलभुवनतलो विक्रमत्रयायासितभुवनत्रयं जहासेव वासुदेवम्।

अतिचिरकाललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसम्पर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती यस्य विमले कृपाणधाराजले चिरमुवास राजलक्ष्मीः।

अनुवाद – जो अपने नाम के श्रवण मात्र से शत्रुओं के हृदयों को विदीर्ण कर देने वाला और एक मात्र विक्रम = पराक्रम से तीनों लोकों को आक्रान्त अधीन कर देने वाला राजा शूद्रक (हिरण्यकशिपु शत्रु के हृदय का विदारण करने के लिये) नरसिंह के स्वरूप का आडम्बर रचने वाले और तीन विक्रमों पादन्यास से तीन लोकों को व्याप्त करने वाले विष्णु भगवान् का मानों उपहास करता था।

बहुत दिनों से लगे हुये, हजारों पुराने बुरे राजाओं के सम्पर्क से उत्पन्न कलंक को धोती हुई–सी राजलक्ष्मी ने जिस राजा शूद्रक की तलवार के धाररूपी स्वच्छ जल में बहुत समय तक निवास किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निर्भिन्नः – निर् + भिद् + क्त; नारसिंहम् – नृसिंहस्य इदम् (नृसिंह + अण्); जहास – हस् + लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन; अतिक्रान्त – अति + क्रम् + क्तः; क्षालयन्ती – क्षाल् + णिच् + शतृ + ङीप्।

विशेष – (1) नाम्नैव.....वासुदेवम् – इसका तात्पर्य यह है कि शूद्रक का तो नाम सुनने मात्र से ही शत्रुओं के हृदय विदीर्ण हो जाते थे जबकि शत्रु हिण्यकशिपु का वक्षःस्थल विदीर्ण करने के लिये विष्णु को नृसिंह का आडम्बर करना पड़ा था। (2) अतिचिर..... राजलक्ष्मीः – यहाँ अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार शरीर पर मिट्टी आदि का कलङ्क लग जाने पर कोई व्यक्ति स्वच्छ जल से उसे धोता है उसी प्रकार दुष्ट राजाओं के आश्रय में रहने से लगे हुये कलङ्क का मानो प्रक्षालन करती हुई राजलक्ष्मी शूद्रक की खड्गधारा रूपी स्वच्छ जल में दीर्घकाल तक निवास करती रही। (3) प्रस्तुत गद्य में 'कृपाणधाराजले' में रूपक तथा 'क्षालयन्ती इव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

प्रसंग – बाणभट्ट विरचित संस्कृत साहित्य के प्रकृष्ट गद्य ग्रन्थ कादम्बरी के कथामुख से संगृहीत इस गद्यांश में राजा शूद्रक में सभो देवताओं का वास था, यह प्रतिपादन किया गया है।

यश्च मनसि धर्म्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता, प्रज्ञायां सुरगुरुणा, रूपे मनसिजेन, तेजसि सवित्रा च वसतः सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य।

अनुवाद – और जो राजा शूद्रक अपने मन में रहने वाले धर्म के कारण, क्रोध में रहने वाले यम के कारण, प्रसन्नता में रहने वाले कुबेर के कारण, प्रताप में रहने वाले अग्नि के कारण, हाथ में रहने वाली पृथ्वी के कारण, नेत्र में रहने वाली लक्ष्मी के कारण, वाणी में रहने वाली सरस्वती के कारण, मुख में रहने वाले चन्द्रमा के कारण, बल में रहने वाले पवन के कारण, प्रज्ञा में रहने वाले बृहस्पति के कारण, रूप में रहने वाले कामदेव के कारण और तेज में रहने वाले सूर्य के कारण सर्वदेवमय और विश्वरूप का आकार प्रकटित करने वाले भगवान् विष्णु का अनुकरण था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – धनदेन – धनं ददाति इति धनदः; मनसिजः – मनसि जातः मनसिजः, मनसि + जन् + ड – यहाँ सप्तमी का लोप नहीं होता है (सप्तम्यां जनेर्डः); अनुकरोति नारायणस्य – यहाँ पर सादृश्य अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुई है।

विशेष – (1) इस गद्यांश में शूद्रक को विष्णु भगवान् के समान बताया गया है। राजा शूद्रक में धर्मचिन्तन, रुष्ट होकर प्राणदण्ड दे देना, प्रसन्न होकर बहुत धनादि दान दे देना आदि विशेषतायें कल्पित की गई हैं जो क्रमशः धर्म, यमराज, कुबेर आदि देवताओं में पृथक्–पृथक् मिलती हैं। शूद्रक में इस प्रकार की अनेक विशेषतायें एक साथ थीं। अतः उसे 'सर्वदेवमय' तथा 'विश्वरूपाकृति' विष्णु से उपमित करना सर्वथा समीचीन है। (2) यहाँ पर आर्थी उपमा अलंकार है।

प्रसंग – कादम्बरी कथामुख से संगृहीत इस गद्यांश में राजा शूद्रक के प्रताप का वर्णन करते हुए उसके पास राजलक्ष्मी के सतत निवास का प्रतिपादन किया गया है।

यस्य च मदकल–करि–कुम्भ–पीठपाटनमाचरता लग्न–स्थूलमुक्ताफलेन, दृढ–मुष्टिनिष्पीडन– निष्ठ्यूत – धाराजलबिन्दु–दन्तुरेणेव कृपाणेनाकृष्यमाणा सुभटोरः कपाट–विघटित– कवच – सहस्रान्धकार – मध्यवर्त्तिनी करि–करट–गलित–मदजलासार–दुर्दिनास्वभिसारिकेव समरनिशासु समीपमसकृदाजगाम राजलक्ष्मीः।

अनुवाद – मदजल के प्रवाह से सुन्दर हाथियों के मस्तकपिण्डों का विदारण करने वाली, बड़ी–बड़ी मुक्ताओं से जड़ी हुई, मजबूत मुट्ठी से पकड़ने के कारण निकली हुई हाथ के पसीने की धारारूपी जल की बूंदों से ऊँची–नीची तलवार द्वारा खींची जाती हुई–सी; बहुत बहादुर योद्धाओं के वक्षस्थलरूपी किवाड़ों से टूट कर अलग होने वाले हजारों कवचरूपी अन्धेरों के बीच में स्थित, राजलक्ष्मी उस राजा के पास, हाथियों के कपोलस्थलों से निकले हुए मदजल की वर्षा से दुर्दिनवाली मेघाच्छन्न युद्धरूपी रातों में अभिसारिका (दत्तसंकेतवाली नायिका) के समान बार–बार आती थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पाटनम् – पट् + णिच् + ल्युट्; निष्पीडन – निस् + पीड् + ल्युट्; निष्ठ्यूतः – नि + ष्टिव् + क्त (ऊठ्); दन्तुरःदन्त + उरच्।

विशेष – (1) राजलक्ष्मीः – यहाँ शूद्रक में नायक का, राजलक्ष्मी में अभिसार करने वाली नायिका का तथा युद्ध मे बादलों से घिरी हुई रात्रि का आरोप किया गया है। अभिसारिका जिस प्रकार संकेत देकर स्वयं नायक के पास जाती है, राजलक्ष्मी भो उसी प्रकार शूद्रक के पास आ गई। अभिसारिका का लक्षण साहित्य दर्पण में निम्नानुसार है

अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।
स्वयं वाभिरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका।।

(2) यहाँ पर उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा अलंकारों के अङ्गांगिभावेन वर्णन होने से संकर अलङ्कार है।

प्रसंग – महाकवि बाणभट्ट प्रस्तुत अंश में राजा शूद्रक के प्रताप का वर्णन करते हुए राजा के प्रजाप्रिय तथा शूरवीर होने का प्रतिपादन करते हैं। साथ ही शूद्रक के सुशासन का वर्णन प्रस्तुत अंश में किया गया है।

यस्य च हृदयस्थितानपि पतीन् दिधक्षुरिव प्रतापानलो वियोगिनीनामपि रिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाहो दिवानिशं जज्वाल।

यस्मिंश्च राजनि जितजगति परिपालयति महीं चित्रकर्म्मसु वर्णसङ्कराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ताः, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः, ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागविलसितानि, करिषु मदविकाराः, चापेषु गुणच्छेदाः, गवाक्षेषु जालमार्गाः, शशिकृपाणकवचेषु कलङ्काः, रतिकलहेषु दूतसम्प्रेषणानि सार्य्यक्षेषु शून्यगृहाः न प्रजानामासन्।

अनुवाद – और जिसकी प्रतापरूपी आग हृदय में स्थित पतियों को भी जलाने की इच्छुक होती हुई–सी, वियोगिनी भो शत्रुओं की प्रेयसी स्त्रियों के मन में सन्ताप पैदा करके दिन–रात उनके पतियों को जलाने के लिए जला करती थी।

संसार को जीत लेने वाले उस शूद्रक राजा के पृथ्वी का पालन करने पर अर्थात् जब वह शासन कर रहा था उस समय केवल चित्र बनाने में वर्णों = काले नीले आदि रंगों का संकर = मिश्रण होता था। केवल कामक्रीडा में केशग्रहण = बाल खींचना होता था। केवल काव्यों में दृढबन्ध = पदसमासादि की प्रकृष्ट रचनायें या पद्मबन्ध आदि होते थे। केवल शास्त्रों = शास्त्रीय विषयों में चिन्ता = चिन्तन होता था। केवल स्वप्न में विप्रलम्भ = वियोग होता था। केवल छातों में सोने के दंड होते थे। केवल पताकाओं में प्रकम्पन होता था। केवल गानों में भरव, वसन्त मल्हार आदि रागों का विलास होता था। केवल हाथियों में मदविकार होता था। केवल धनुषों में गुण प्रत्यञ्चा का छेदन = टूटना था। केवल गवाक्षों = झरोखों में जालमार्ग = हवा आने के लिए छोटे छिद्र होते थे। केवल चन्द्रमा, तलवार और कवच में कलङ्क था। केवल रतिकलहों में समझौता कराने के लिए दूत भजे जाते थे। केवल गोटी और पासों के खेल में खाली घर थे परन्तु प्रजा में ये नहीं थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – दिधक्षुः – दह् + सन् + उः दग्धुम् इच्छुः – जलाने का इच्छुक। दाघः– दद् + घञ्, जलन। जज्वाल – ज्वल् + लिट् प्रथम पुरुष एकवचन, प्रज्वलित होता रहता था। शून्यगृहाः – गृह शब्द नपुंसकलिङ्ग है किन्तु बहुवचन के अर्थ में पुल्लिङ्ग प्रयुक्त होता है (गृहाः पुंसिम्नि च);

विशेष – (1) शास्त्रेषु चिन्ता – राजा शूद्रक की प्रजा अत्यधिक सम्पन्न थी अतः केवल शास्त्रीय सिद्धान्तों पर ही विचार और चिन्तन होता था अन्य किसी वस्तु की चिन्ता नहीं थी। (2) स्वप्नेषु विप्रलम्भाः – स्वप्न में भले ही कोई किसी से बिछुड़ जाये वास्तविक जीवन में सभो के पूर्ण आयु के भोगने के कारण और धमानुसार जीवन बिताने के फलस्वरूप देश निकाला आदि दण्ड न पाने के कारण कोई अपने प्रियजनों से नहीं बिछुड़ता था। (3) प्रस्तुत गद्यांश में परिसंख्या अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। परिसंख्या का लक्षण काव्यप्रकाश के अनुसार निम्नलिखित है

किंचित् पृष्टमपृष्टं वा कथितं यत्प्रकल्पते।
तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता।।

प्रसंग – महाकवि बाणभट्ट ने राजा शूद्रक के विविध गुणों का वर्णन करते हुए सकल समृद्धि सम्पन्न विदिशा नाम की राजधानी का वर्णन इस गद्यांश में किया है।

यस्य च परलोकाद्भयम्, अन्तःपुरिकाकुन्तलेषु भङ्गः, नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु करग्रहणम्, अनवरतमखाग्निधूमेनाश्रुपातः, तुरङ्गेषु कशाभिघातः, मकरध्वजे चापध्वनिरभूत्।

तस्य च राज्ञः कलिकाल–भयपुञ्जीभूत–कृतयुगानुकारिणी त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा, मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालन –जर्जरितोर्म्मिमालया जलावगाहनागत –जयकुञ्जर – कुम्भ–सिन्दूर–सन्ध्यायमान–सलिलया उन्मद–कलहंस–कुल–कोलाहल–मुखरित– कूलयावेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्।

अनुवाद – और जिस राजा शूद्रक को केवल दूसरे जन्म से भय था, या स्वर्गादि का भय था। केवल अन्तःपुर की रानियों के केशों में वक्रता थी। केवल घुंघरुओं में मुखरता = अनवरत ध्वनि थी। केवल विवाह में करपीडन = पाणिग्रहण होता था। निरन्तर होने वाले यज्ञों के धुओं के कारण ही आँखों से अश्रुपात होता था। केवल घोड़ों पर कोड़े लगाये = मारे जाते थे। और केवल कामदेव में चापध्वनि = धनुष की टंकार होती थी।

उस राजा शूद्रक की 'विदिशा' नामक राजधानी थी, जो मानो कलियुग के समय भो भय से पुञ्जीभूत = इकट्ठे सत्ययुग का अनुकरण करने वाली = उसके समान पुण्यमयी थी, जो तीनों लोकों की उत्पत्तिस्थल = जन्मभूमि के समान फैली हुई थी। जो विदिशा नगरी स्नान

करती हुई मालवदेव की सुन्दरियों के स्तनाग्रभागों की टकराहट से छिन्न–भिन्न लहरों वाली, जल में नहलाने के लिए लाये गये विजयी हाथियों के मस्तकपिण्डों पर लगे हुए सिन्दूर से सायंकाल के समान प्रतीत होने वाले जलवाली और उन्मत्त कलहंसों के समूह के कलरव से शब्दयुक्त किनारे वाली 'वेत्रवती' नदी से चारों ओर से घिरी हुई थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – परलोकाद्भयम् – यहाँ पाणिनि–सूत्र 'भोत्रार्थानां भयहेतुः' के अनुसार भय के अर्थ में 'परलोक' में पञ्चमी विभक्ति हुई है; अवगाहन – अव + गाह् + ल्युट्।

विशेष – (1) मकरध्वजे चापध्वनिः भाव यह है कि पुष्पधन्वा कामदेव युवा–जनों को लक्ष्य करके बाण चलाता था तो धनुष का शब्द होता था अन्यथा सर्वत्र शान्ति होने के कारण वास्तविक धनुष की टंकार नहीं सुनाई पड़ती थी। (2) इस गद्यांश में भो परिसंख्या अलंकार का मनोहर प्रयोग किया गया है।

प्रसंग – महाकवि बाणभट्ट द्वारा विरचित कादम्बरी कथामुख से अवतरित प्रस्तुत गद्यांश में शूद्रक के समययापन प्रकार तथा दैनिकचर्या का वर्णन किया गया है।

स तस्यामवजिताशेष–भुवनमण्डलतया विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः, द्वीपान्तरागतानेक–भूमिपाल– मौलिमाला –लालित–चरणयुगलो, वलयमिव लीलया भुजेन भुवनभारमुद्वहन्, अमरगुरुमपि प्रज्ञयोपहसद्भिरनेककुलक्रमागतैरसकृदालोचित–नीतिशास्त्रनिर्म्मलमनोभिरलुब्धैः स्निग्धैः प्रबुद्धैश्चामात्यैः परिवृतः, समानवयोविद्यालङ्कारैरनेकमूर्द्धाभिषिक्त – पार्थिवकुलोद्गतैरखिल – कलाकलापालोचन – कठोरमतिभिरतिप्रगल्भैः कालविद्भिः प्रभावाऽनुरक्तहृदयैरग्राम्योपहास – कुशलैरिङ्गिताकारवेदिभिः काव्य –नाटकाख्यानकाख्यायिकाले – ख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणै– रतिकठिन – पीवर – स्कन्धोरु – बाहुभिरसकृदवदलित – समदरिपुगज – घटा –पीठबन्धैः केसरिकिशोरकैरिव, विक्रमैकरसैरपि विनयव्यवहारिभिरात्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः प्रथमे वयसि सुखमतिचिरमुवास।

अनुवाद – वह राजा शूद्रक उस विदिशा नामक राजधानी में अपनी यौवनावस्था में बहुत समय तक सुखपूर्वक रहा, क्योंकि सम्पूर्ण संसार को उसी समय तक जीत लेने के कारण राज्य के पालन या दूसरे के आक्रमण की चिन्ता के भार से मुक्त = निश्चिन्त था। दूसरे द्वीपों, देशों से आये हुए अनेक राजाओं द्वारा अपने मुकुटों के समूह से उसके दोनों चरण चूमे जाते थे। अपनी भजाओं से संसार के पालन का भार उसी प्रकार वहन करता था जैसे कि कंगन धारण किये हुए हो। वह ऐसे अनेक मंत्रियों से घिरा रहता था जो अपनी उत्कृष्ट प्रति से देवगुरु बृहस्पति का उपहास करने वाले थे अर्थात् उन से उत्कृष्ट थे, जो अनेक और वंशपरम्परा से आये हुए थे; जिन्होंने बार–बार राजनीति शास्त्र का अच्छी तरह अनुशीलन करने से अपने मन को निर्मल बना लिया था; जो लोभो नहीं थे; जो स्नेह करने वाले थे; जो प्रबुद्ध थे। वह राजा शूद्रक ऐसे राजकुमारों के साथ रमण करता था, जो राजकुमार आयु, विद्या = अध्ययन तथा अलङ्कारधारण में उसी के समान थे; जो अनेक मूर्धाभिषिक्त श्रेष्ठ राजाओं के कुलों में उत्पन्न होने वाले थे, जो समस्त कलाओं के समूह का आलोचन परिशीलन करने के कारण अत्यन्त कठोर परिपक्व बुद्धिवाले थे, जो अतिप्रगल्भ प्रखर प्रतिभाशाली थे, जो प्रत्येक कार्य के समुचित अवसर का ज्ञान रखने वाले थे, जो उस शूद्रक के प्रति प्रेम से अनुरक्त हृदय वाले थे, जो अग्राम्य = अशिष्टतारहित परिहास करने में कुशल थे, जो इंगित चेष्टा या संकेत को अच्छी प्रकार समझने वाले थे; जो काव्य, नाटक, आख्यानक, आख्यायिका, आलेख्य चित्रकला तथा व्याख्यान आदि कार्यों में अत्यन्त निपुण थे; जो अत्यन्त कठोर और पुष्ट कन्धों वाले थे, जिन्होंने अनेक बार शत्रुओं के मदमस्त हाथियों के समूह रूपी पीठबन्धों (= बैठने के आसनों) का अवदलन उसी प्रकार किया था जिस प्रकार सिंह के बच्चे करते हैं, अर्थात् उनके सदृश थे; केवल पराक्रम के प्रदर्शन में आनन्दानभव करने वाले होने पर भो विनयपूर्वक व्यवहार करने वाले थे; जो मानो उस शूद्रक के अपने प्रतिबिम्ब के सदृश थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उद्वहन् – उत् + वह् + शतृ; उपहसद्भिः – उप + हस् + शतृ तृतीया बहुवचन; स्निग्धैः – स्निह् + क्त, तृतीया बहु.; आलेख्यम् – आ + लिख् + ण्यत – चित्र रचना; अग्राम्यःग्राम + य (ग्रामाद्यखञौ); रममाणः – रम् + शानच्; अवदलितअव + दल् + क्त; उवास – वस् + लिट्, प्रथम पुरुष एकवचन; राजपुत्रैः सह – यहाँ 'सह' शब्द के योग में प्रधान (कर्त्ता 'सः') का साथ देने वाले अप्रधान 'राजपुत्र' शब्द में तृतीया विभक्ति हुई है (सहयुक्तेऽप्रधाने')

विशेष – (1) अमर...उपहसद्भिः – यहाँ पर शूद्रक के मन्त्री बुद्धिमत्ता में देवताओं के गुरु बृहस्पति से भो बढ़कर थे, यह प्रतिपादन किया गया है। विक्रम....व्यवहारिभिः – शक्तिहीन व्यक्ति तो सामर्थ्य के अभाव में विनम्रता का व्यवहार करता है किन्तु शक्तिशाली होते हुए भो विनय का व्यवहार करना व्यक्ति के चरित्र की उदारता को सूचित करता है। (2) आत्मनः प्रतिबिम्बैरिव – तात्पर्य यह है कि शूद्रक के साथ रहने वाले राजकुमार मानो शूद्रक की ही प्रतिकृति थे।

प्रसंग – महाकवि बाणभट्ट ने प्रस्तुत गद्यांश में महाराजा शूद्रक के सर्वविध सामर्थ्यसम्पन्न होने पर भो सम्भोग सुख से निवृत्ति का प्रतिपादन किया है।

तस्य चातिविजिगीषुतया महासत्त्वतया च तृणमिव लघुवृत्ति स्त्रैणमाकलयतः प्रथमे वयसि वर्त्तमानस्यापि रूपवतोऽपि सन्तानार्थिभिरमात्यैरपेक्षितस्यापि सुरतसुखस्योपरि द्वेष इवासीत्।

सत्यपि रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे लावण्यवति विनयवत्यन्वयवति हृदयहारिणि चावरोधजने, स कदाचिदनवरतदोलायमानरत्नवलयो घर्घरिकास्फालन–प्रकम्प–झण–झणायमान–मणिकर्णपूरः स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः सङ्गीतकप्रसङ्गेन, कदाचिदविरल–विमुक्तशरासार–शून्यीकृतकाननो मृगयाव्यापारेण, कदाचिदाबद्धविदग्धमण्डलः काव्यप्रबन्धरचनेन, कदाचिच्छास्त्रालापेन, कदाचिदाख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकर्णनेन, कदाचिदालेख्यविनोदेन, कदाचिद्वीणया, कदाचिद्दर्शनागत–मुनिजन–चरणशुश्रूषया, कदाचिदक्षरच्युतकमात्राच्युतक – बिन्दुमती– गूढचतुर्थपाद –प्रहेलिका–प्रदानादिभिः, वनितासम्भोगसुख–पराङ्मुखः सुहृत्परिवृतो दिवसमनैषीत्। यथैव च दिवसमेवमारब्ध–विविध–क्रीडा–परिहास–चतुरैः सुहृद्भिरुपेतो निशामनैषीत्।

अनुवाद – वह विजय की अत्यधिक इच्छा रखने वाला और बहुत अधिक शक्तिशाली था । इस कारण स्त्री–समुदाय को तृण के समान तुच्छ समझता था, यौवनावस्था में विद्यमान भो और सौन्दर्य–सम्पन्न होने पर भो उस राजा शूद्रक की, सन्तानेच्छुक मन्त्रियों द्वारा चाहे गये भो, सुरतसुख स्त्रीसंभोग से मानो शत्रुता थी।

यद्यपि उसके रनिवास को रानियाँ सुन्दरता और हावभावादि में रति के विलासों का उपहास करने वाली, सुन्दर, विनयशील, कुलीन व चित्ताकर्षक थीं, फिर भो वह शूद्रक कभो निरन्तर हिलते हुए रत्नजटित कंकणयुक्त, घर्घरिका नामक वाद्यविशेष को बजाने से होने वाले कम्पन से झनझन करने वाले मणिमय कर्णपूरों से युक्त होता हुआ अपने आप मृदङ्ग बजाना प्रारम्भ करता हुआ संगीत के प्रसंग सम्बन्ध से; कभो लगातार छोड़े गये बाणों की वर्षा से वन को सभो जानवरों से सूना करता हुआ शिकार खेलने से; कभो विद्वानों के समुदाय को एकत्रित करता हुआ काव्य और कथा आदि की रचना से; कभो शास्त्रों की परिचर्या से; कभो आख्यानक (प्रसिद्ध कथानक) आख्यायिका (गद्यकाव्यविशेष) इतिहास (=महाभारतादि) और पुराणों को सुनने से; कभो चित्रनिर्माण क विनोद से; कभो वीणा बजाने से; कभो दर्शन करने के लिए आये हुए मुनिजनों के चरणों की सेवा से; कभो अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक बिन्दुमती गूढचतुर्थपाद और पहेली देना आदि से स्त्रीसम्भोग सुख से विमुख होता हुआ, मित्रों से घिरा हुआ दिन बिताता था। दिन के समान रात भो, आरम्भ की गयी विविध क्रीडाओं में परिहास करने में दक्ष मित्रों से घिरा हुआ होकर, बिताया करता था और जिस प्रकार दिन बिताता था उसी प्रकार विभिन्न प्रकार के खेलों और उपहासों को आरम्भ करने में चतुर मित्रों के साथ रात भो बिताता था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विजिगीषुः – वि + जि + सन् + उ (सनाशंसभिक्ष उः); स्त्रैणम् – स्त्री + नञ् (स्त्रीपुंसाभ्याम् नञ्स्नञौ...); आकलयतःआ + कल् (गतौ संख्याने च) णिच् + शतृ षष्ठी एकवचन – गिनते हुए; अवरोधः – अव + रुध् + घञ् – रनिवास – 'स्त्र्यागारं भभजामन्तःपुरं स्यादवरोधनम्' इत्यमरः; दोलायमान – दुल् + णिच् + शानच्; आलापः – आ + लप् + घञ्; अनैषीत् – नी + लुङ् प्रथम पुरुष एकवचन।

विशेष – (1) रूप...विभमे – तात्पर्य यह है कि राजा शूद्रक की अन्तःपुर वधुएँ रति का उपहास करने वाली थीं, अर्थात् वे रति से भो अधिक सुन्दर थीं। अनिन्द्य सुन्दरियों के उपलब्ध होने पर भो राजा रति–सुख के प्रति सर्वथा उदासीन था, इससे राजा के नितान्त संयमी तथा कर्त्तव्यपरायण होने की व्यञ्जना कराई गई है। (2) सङ्गीतकम् – गीत, नृत्य और वाद्य इन तीनों को सम्मिलित रूप से सङ्गीतक कहा जाता है – 'गीतं नृत्तं च वाद्यं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते' इति सङ्गोतरत्नाकरः। (3) प्रस्तुत गद्यांश में विभावना, विशेषोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कार हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण भमिका रचना के उपरान्त कथानक को प्रस्तुत करने का उपक्रम करते हैं साथ ही प्रतिहारी किसी चाण्डाल कन्या के आने की सूचना देती है।

एकदा तु नातिद्रोदिते नव–नलिन–दलसम्पुट–भिदि किञ्चिन्मुक्त–पाटलिम्नि भगवति सहस्रमरीचिमालिनि, राजानमास्थानमण्डपगतमङ्गनाजनविरुद्धेन वामपार्श्वावलम्बिना कौक्षेयकेण सन्निहितविषधरेव चन्दनलता भीषणरमणीयाकृतिः, अविरलचन्दनानुलेपनधवलित–स्तनतटा उन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी चूडामणिसंक्रान्तप्रतिबिम्बच्छलेन राजाज्ञेव मूर्तिमती राजभिः शिरोभिरुह्यमाना, शरदिव कलहंसधवलाम्बरा, जामदग्न्यपरशुधारेव वशीकृतसकलराजमण्डला, विन्ध्यवनभूमिरिव वेत्रलतावती, राज्याधिदेवतेव विग्रहिणी, प्रतीहारी समुपसृत्य क्षितितल–निहित –जानु–करकमला सविनयमब्रवीत्

''देव! द्वारस्थिता सुरलोकमारोहतस्त्रिशङ्कोरिव कुपितशतमखहुङ्कार–निपातिता राजलक्ष्मीर्दक्षिणा–पथादागता चाण्डाल–कन्यका पञ्जरस्थं शुकमादाय देवं विज्ञापयति ''सकलभुवनतलसर्वरत्नानाम् उदधिरिवैकभाजनं देवः, विहङ्गमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमेनमादाया–गताऽहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुम् इति, एतदाकर्ण्य 'देवः प्रमाणमि'त्युक्त्वा विरराम।

उपजातकुतूहलस्तु राजा समीपवर्त्तिनां राज्ञामवलोक्य मुखानि 'को दोषः, प्रवेश्यताम्' इत्यादिदेश।

अनुवाद – एक बार जब नवीन कमलदलों के संपुट को विकसित करने वाले, कुछ कुछ लालिमा को फैलाने वाले भगवान् सहस्रमाली–सूर्य आकाश में कुछ ही दूर तक उदित हुए थे, तभो सभागृह में विद्यमान राजा शूद्रक के पास पहुँच कर प्रतिहारी – जो स्त्रियों के आचरण के विरुद्ध बायीं ओर लटकने वाली तलवार के कारण सर्पयुक्त चन्दनलता के समान भोषण और मनोहर आकारवाली थी, घने चन्दन के लेप के कारण सफेद स्तनतट वाली थी, अतः पानी में डूबे हुए ऐरावत हाथी के ऊपर निकले कुम्भमण्डलों से युक्त आकाशगंगा के समान थी, राजाओं के मुकुटों की मणियों में पड़ी हुई परछाई के बहाने से मानों राजाओं द्वारा सिरों से स्वीकार की जाती हुई शरीरधारिणी राजाज्ञा थी, उड़ते हुए हंसों से युक्त आकाश वाली अथवा कलहंसरूपी श्वेत वस्त्रों वाली शरद् ऋतु के समान हंसों के तुल्य उज्ज्वल वस्त्रों वाली थी, जमदग्निपुत्र परशुराम के फरसे की धार के समान सभो राजसमूह को वश में करने वाली थी, विन्ध्याचल की भमि के समान बेंत की छड़ी से युक्त थी, शरीरधारिणी राज्य की अधिदेवी के समान थी उस प्रतिहारी ने पास जाकर अपने घुटनों और कमलरूपी दोनों हाथों को पृथ्वीतल पर रखकर विनयपूर्वक राजा शूद्रक से कहा –

''महाराज! स्वर्गलोक में आरोहण करने वाले त्रिशङ्कु की, इन्द्र के हुंकार से गिराई गई राजलक्ष्मी के समान, दक्षिणदिशा से आयी हुई, पिंजरे में स्थित तोते को लेकर दरवाजे पर खड़ी हुई चाण्डालकन्या श्रीमान् से निवेदन कर रही है – ''समस्त लोकों के सभो रत्नों के समुद्र के समान एकमात्र आश्रय आप हैं अर्थात् जैसे समुद्र में सभो रत्न हैं वैसे आपके पास भो सभो रत्न हैं और यह शुक पक्षी अत्याश्चर्यजनक तथा समस्तलोक की श्रेष्ठ वस्तु है, यह सोच कर इस पक्षी को लेकर श्रीमान् के चरणों में उपस्थित मैं महाराज के दर्शनसुख का अनुभव करना चाहती हूँ।'' यह सुनकर 'महाराज की जो आज्ञा' ऐसा कह कर चुप हो गयी। उत्पन्न उत्सुकता वाले राजा ने अपने समीप विराजमान राजाओं के मुखों को देख कर'' चाण्डाल होने पर भो उसके प्रवेश में क्या दोष है? अर्थात् कोई नहीं, अतः उसे प्रविष्ट कराया जाय।'' यह आज्ञा दी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पाटलिमा – पाटल + इमनिच्; कौक्षेयकः – कुक्षि + ढकञ् = एय् – तलवार; उन्मज्जत् – उत् + मज्ज + शतृ – स्नान करता हुआ। उह्यमाना – वह + यत् + शानच्, टाप् – धारण की जाती हुई; जामदग्न्यः – जमदग्नि + यञ् = जमदग्नेः अपत्यं पुमान्, जमदग्नि का पुत्र, परशुराम; विहङ्गमः – पक्षी, विहायसा गच्छतीति – विहायस् गम् + खच् + मुम्। विरराम – वि + रम् + लिट् प्रथम पुरुष, एकवचन – रुक गया – रम धातु आत्मनेपदी है किन्तु वि, आ, परि और उप उपसर्ग पूर्व होने पर परस्मैपदी हो जाती है; आदिदेश – आ + दिश् + लिट्, प्रथमपुरुष एकवचन।

विशेष – (1) अङ्गना..... आकृतिः – स्त्री स्वभाव के विपरीत प्रतिहारी बगल में तलवार लटकाये थी, अतः वह उसी प्रकार एक साथ सुन्दर और भयंकर प्रतीत होती थी जैसे – सुन्दर एवं शीतल चन्दनलता सर्प लिपटे रहने के कारण सुन्दर भो प्रतीत होती है और भोषण भो। (2) शरदिव....अम्बरा – शरत् सुन्दर हंस पक्षियों और वर्षा बीत जाने के कारण निर्मल आकाश वाली सुन्दर हंसपक्षियों रूपी शुभवर्ण के वस्त्रों वाली होती है, प्रतिहारी सुन्दर हंसों जैसे उजले वस्त्रों वाली थी। (3) त्रिशङ्कु – एक सूर्यवंशी राजा जिसने वशिष्ठ से सदेह स्वर्ग भजने की प्रार्थना की थी। वशिष्ठ के मना करने पर विश्वामित्र ने उसे मन्त्र–बल से सदेह स्वर्ग भजना प्रारम्भ किया किन्तु इन्द्र ने उसे बीच में ही रोक दिया। इस प्रकार वह पृथ्वी और स्वर्ग के बोच में ही लटका रहा। (4) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा अलङ्कार का प्रयोग किया गया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में प्रतिहारी के राजसभा में प्रविष्ट होने का वर्णन है, साथ ही राजा शूद्रक का विशेषण पूर्वक वर्णन किया गया है।

अथ प्रतिहारी नरपतिकथनानन्तरमुत्थाय तां मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत्। प्रविश्य च सा नरपतिसहस्र– मध्यवर्त्तिनमशनिभय–पुञ्जितकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरण –किरण–जालकान्तरितावयवमिन्द्रायुध–सहस्र–सञ्छादिताष्टदिग्विभागमिव जलधरदिवसम्, अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य कनकशृङ्खला–नियमितमणिदण्डिका–चतुष्टयस्य गगन–सिन्धु – फेन–पटल–पाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तमणिपर्य्यङ्किकानिषण्णम्, उद्धूयमानसुवर्णदण्डचामरकलापम्, उन्मयूखमुखकान्तिविजयपराभवप्रणते शशिनीव स्फटिकपादपीठे विन्यस्तवामपादम्, इन्द्रनीलमणिकुट्टिमप्रभासम्पर्कश्यामायमानैः प्रणत–रिपु–निःश्वासमलिनीकृतैरिव चरण–नखमयूखजालैरुपशोभमानम्, आसनोल्लसितपद्मराग–किरण–पाटलीकृतेनाचिरमृदितमधु –कैटभ–रुधिरारुणेन हरिमिवोरुयुगलेन विराजमानम्, अमृतफेन–धवले गोरोचना–लिखित –हंस–मिथुन–सनाथ–पर्य्यन्ते चारुचामरवायुप्रनर्त्तितान्तदेशे, दुकूले वसानम्, अतिसुरभि–चन्दनानुलेपन–धवलितोरःस्थलम्, उपरिविन्यस्त–कुङ्कुमस्थासकम्, अन्तरान्तरानिपतितबालातपच्छेदमिव कैलासशिखरिणम्, अपर–शशि–शङ्कया नक्षत्रमालयेव हारलतया कृतमुखपरिवेषम्,

अतिचपल–राज–लक्ष्मीबधनिगडकटक–शङ्कामुपजनयतेन्द्रमणिकेयूरयुग्मेन मलयज–रस–गन्धलुब्धेन भुजङ्गद्वयेनेव वेष्टितबाहुयुगलम्, ईषदालम्बि–कर्णोत्पलम्, उन्नत–घोणम्, उत्फुल्लपुण्डरीक–नेत्रम्, अमलकलधौतपट्टायतम्, अष्टमीचन्द्र–शकलाकारम्, अशेष–भुवन– राज्याभिषेकसलिलपूतम्, ऊर्णासनाथं ललाटदेशमुद्वहन्तम्, आमोदि–मालतीकुसुमशेखरम्, उषसि शिखर–पर्य्यस्ततारकापुञ्जमिव पश्चिमाचलम्, आभरण–प्रभापिशङ्गिताङ्गतया लग्न–हर–हुताशमिव मकरध्वजम्, आसन्नवर्त्तिनीभिः सर्वतः सेवार्थमागताभिरिव दिग्वधूभिर्वारविलासिनीभिः परिवृतम्, अमलमणिकुट्टिमसंक्रान्त–सकल–देह–प्रतिबिम्बतया पतिप्रेम्णा वसुन्धरया हृदयेनेवोह्यमानम्, अशेषजनभोग्यतामुपनीतयाप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या समालिङ्गितम्, अपरिमितपरिवारजनमप्यद्वितीयम्, अनन्त–गज–तुरग–साधनमपि खड्गमात्रसहायम्, एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादिताशेषद्विष–दिन्धनमपि ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अविरत–प्रवृत्त–दानमप्यमदम्, अत्यन्तशुद्ध–स्वभावमपि कष्णचरितम्, अकरमपि हस्तस्थित–सकल–भुवनतलं राजानमद्राक्षीत्।

अनुवाद – तब राजा के कहने के बाद प्रतिहारी ने उस चाण्डाल कन्या का प्रवेश कराया और प्रवेश करके उसने राजा शूद्रक को देखा जो हजारों राजाओं के बीच में उसी प्रकार स्थित था जिस प्रकार इन्द्र के वज्र प्रहार के भय से एकत्रित महेन्द्रादि कुलपर्वतों के बीच में सुमेरु पर्वत हों, जो अनेक रत्नजड़ित आभ्षणों की किरणों के समुदाय से आवृत अवयवों वाला वैसा ही था जैसा हजारों इन्द्रधनुषों से आच्छादित आठों दिशाओं वाला वर्षा या मेघों का दिन हो, वह रेशमी चन्दोवा के नीचे चन्द्रकान्तमणियों की चौकी पलंग पर बैठा था, जिस चन्दोवा में बड़े–बड़े मोतियों का समूह लटकाया गया था, जिसे चन्दोवा के मणिजटित चार डंडे सोने की जंजीरों से बांधे गये थे, जो आकाश गंगा के फेन के समूह के समान श्वेत था, जो चन्दोवा बहुत बड़ा नहीं था, जिस राजा पर सोने के डण्डे वाले चंवर–समूह डुलाये जा रहे थे, जो ऊर्ध्वगामी किरणों वाले मुख की कान्ति की विजय के कारण होने वाली पराजय से नीचे झुके हुए चन्द्रमा के समान शुभ स्फटिकमणि के पादपीठ पर बायां पैर रखे हुए था, जो (राजा) इन्द्रनीलमणियों की फश की प्रभा चमक के सम्पर्क से श्यामवर्ण से होन वाले, सामने झुके हुए शत्रुओं के निःश्वास से मलिन किये गये चरणों के नाखूनों के किरण समूह से सुशोभित हो रहा था, जो बैठने के आसन में चमकती हुई पद्मराग मणियों की किरणों से लाल–लाल किये गये अत एव तत्काल मर्दित (काटे गये) मधु और कैटभ नामक असुरों के रक्त से लाल किये गये जंघाद्वय से युक्त विष्णु के समान था, जो अमृत के फेन के समान सफेद, गोरोचना से बनाये गये हंसों के जोड़ों से युक्त किनारे वाले, सुन्दर चंवर की हवा से हिलते हुए छोर वाले दो रेशमी वस्त्र धारण किये हुए था, जिसका वक्षःस्थल अति सुगन्धित चन्दन के लेपन से धवलवर्ण का हो गया था, जो वक्षःस्थल के ऊपर लगाये गये कुंकुम के हाथ के निशान वाला था जिसके कारण बीच–बीच में पड़ते हुए प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाशखण्ड वाले कैलास पर्वत के समान प्रतीत हो रहा था, जिसके मुख को दूसरे चन्द्रमा के भम से नक्षत्रमाला के समान मोतियों की हार रूपी लता ने घेर लिया था, जो अति चंचल राजलक्ष्मी के बन्धन की जंजीर के वलय की शंका उत्पन्न कराने वाले, इन्द्रनीलमणि के दो केयूरों बाजूबन्दों से घिरी हुई भजाओं वाला था, मानों वे चन्दन रस के लोभो दो साँपों से घिरी हुई हों, जो कुछ लटकते हुए कणकमल कान में लगे हुए कमलपुष्प वाला या कमलतुल्य सुन्दर कानों वाला था, ऊँची नाक वाला था, विकसित कमल के समान नेत्रों वाला था, जो स्वच्छ सोने के पट्ट के समान लम्बे चौड़े आयत, अष्टमी के चन्द्रमा के खण्ड के आकार (अर्द्धचन्द्राकार) वाले, समस्त लोकों के राज्याभिषेक से पवित्र किये गये ऊर्णा (रोमावली) से युक्त मस्तकभाग को धारण किये हुए था, जो सुगन्धित मालती

के फूलों के चूडाभ्षण (सिर के मुकुट वाला) था। अत एव मानों प्रातःकाल शिखर पर गिरे हुए तारों (नक्षत्रों) के पुंज वाला अस्ताचल हो, जो सोने के गहनों की कान्ति से पीले अंगों वाला होने के कारण शिव जी की तीसरी आँख की आग से युक्त कामदेव के समान था, जो पास में रहने वाली वाराङ्गनाओं से, मानों चारों ओर से सेवा के लिए आई हुई दिशारूपी वधुओं से घिरा हुआ था, जो स्वच्छ मणियों की फश में पड़ी हुई सारे शरीर की परछाई के कारण मानों पति के प्रेम स पृथ्वी द्वारा ह्रदय से धारण किया जा रहा था, सभो लोगों द्वारा उपभक्त (भोगी गई) अर्थात् साधारण होती हुई भो असाधारण राजलक्ष्मी द्वारा जिसके शरीर का आलिंगन किया गया था, असंख्य परिवारजनों वाला होता हुआ भो अद्वितीय जिसके साथ कोई दूसरा न हो, था; जो अनन्त हाथी घोड़े रूपी साधन वाला होता हुआ भो केवल तलवार जिसकी सहायक थी, जो राजसभा आदि किसी एक स्थान पर बैठा हुआ भो भवनमण्डल को व्याप्त किये हुए था, यश से व्याप्त किये हुए था (इसमें विरोधपरिहार है।) सिंहासन पर बैठा हुआ भो धनुष पर स्थित था; धनुः = संज्ञा नाम, नाम में स्थित था। अतः नाम सुनते ही इसे आया समझकर शत्रु डर जाते थे (इस अर्थ में विरोधपरिहार।) शत्रुरूपी ईंधन को नष्ट कर देने वाला होने पर भो जिसकी प्रतापाग्नि जलती रहती थी। विशाल नेत्रों वाला होता हुआ भो जो सूक्ष्मदर्शन था, महान् दोषों वाला होता हुआ भो जो सम्पूर्ण गुणों का निवास स्थान था, कुपति भो स्त्रियों का प्रिय था; निरन्तर प्रवृत्त दान = मदजल वाला होता हुआ भो अमद = मदजलरहित था, अत्यन्त शुद्ध स्वभाव वाला होता हुआ भो जो कृष्णचरित कलुषित आचरण वाला था; अकर = हाथरहित होता हुआ भो सम्पूर्ण भवनतल को हाथ में रखे हुए था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रावेशयत् – प्र + विश् + णिजन्त + लङ् + प्रथम पुरुष, एकवचन, प्रवेश कराया; निषण्णः – नि + सद् + क्त – बैठा हुआ; उद्धूयमान – उत् + धू + णिच् + शानच्; वेष्टित – वेष्ट् + क्त; ऊह्यमानम – वह + शानच्; अद्राक्षीत् – दृशिर् (प्रेक्षणे) + लुङ् प्रथम पुरुष, एकवचन, देखा; श्यामायमानैः – श्याम + क्यङ् + शानच् + भिस्;

विशेष – (1) अशनि.....शिखरिणम् – यहाँ इन्द्र द्वारा पर्वतों के पंख काटने की कथा का प्रसंग है। कहा जाता है कि पहले पर्वतों के पंख थे। विशालकाय पर्वत उड़कर जहाँ बैठते थे, वहाँ बड़ी हिंसा होती थी। अतः इन्द्र वज्र से उनके पंख काटने लगे तो वे सभो भय से एकत्रित हो गये। (2) मधुकैटभ – मार्कण्डेय पुराण के अनुसार इन दोनों राक्षसों की उत्पत्ति विष्णु के कान के मैल से मानी जाती है। इन राक्षसों ने जब ब्रह्मा को मार डालना चाहा तब भगवान नारायण ने इनसे पाँच हजार वर्ष तक युद्ध कर इन्हें पराजित किया। (3) आभरण....मकरध्वजम – आभ्षणों की कान्ति से पीले शरीर वाले राजा को यहाँ शिव के तृतीय नेत्र को अग्नि से जलते हुए कामदेव के समान बताया गया। आभ्षण–दीप्ति तथा शिव–नेत्र–वह्नि में और राजा तथा कामदेव से उपमेयोपमान भाव है। (4) ऊर्णा – दोनों भोंहों के मध्य में स्थित रोमों से बना हुआ सूक्ष्म आवर्त जो कि सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार महापुरुषों में ही पाया जाता है – 'ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादावर्त्तस्त्वन्तरः भ्वोः' इत्यमरः। (5) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा, उत्प्रेक्षा, भांतिमान्, रूपक, विरोधाभास आदि अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में चाण्डाल कन्या को सम्पूर्ण राजसभा द्वारा एकचित्त होकर देखने का वर्णन किया गया है।

आलोक्य च सा दूरस्थितैव प्रचलितरत्नवलयेन रक्त–कुवलयदल–कोमलेन पाणिना जर्जरितमुखभागां वेणुलतामादाय नरपतिप्रतिबोधनार्थं सकृत् सभाकुट्टिममाजघान, येन सकलमेव तद् राजकम् एकपदे वनकरियूथमिव तालशब्देन तेन युगपदावलितवदनमवनिपालमुखादाकृष्य चक्षुस्तदभिमुखमासीत्।

अनुवाद – और उस राजा शूद्रक को देखकर उससे दूर ही खड़ी हुई उस चाण्डाल–कन्या ने हिलते हुए रत्नमय कंगनवाले, लालकमल के समान कोमल हाथ स फटे हुए अग्र भाग वाली मुँहवाली बाँस की छड़ी लेकर राजा को प्रबोधित अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये सभा की पक्की जमीन को एक बार पीटा, उस पर बाँस पटका उससे जिस प्रकार ताल

काँसे के बने करताल की आवाज से जङ्गली हाथियों का समूह आकृष्ट होता है, उसी प्रकार तत्क्षण सभो राजा लोग एक साथ मुँह मोड़कर उस राजा की ओर से आँखें हटाकर उस (चाण्डालकन्या) की ओर हो गये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आजघान – आ + हन् + लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन; राजकम् – राज्ञां समूहः – राजन् + वुञ् (अक्); प्रचलितरत्नवलयेन – प्रचलितं रत्नवलयं यस्य (बहुव्रीहि) तेन; कुवलयदलकोमलेन – रक्तं च तत् कुवलयं च रक्तकुवलयम् (कर्मधारयः) तस्य दलानि तदवत्कोमलेन;

विशेष – (1) युगपदावदलितवदनम् – यह पद 'राजकम्' और 'वनकरियूथम्' दोनों पदों के विशेषण के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। राजाओं के समूह ने बाँस पीटने का शब्द सुनकर तुरन्त हो मुँह फेरा जैसे जंगली हाथियों का झुण्ड ताल शब्द को सुनते ही उधर मुँह मोड़कर देखता है। (2) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण द्वारा चाण्डाल कन्या को देखकर राजा शूद्रक के व्यवहार का तथा चाण्डाल कन्या का वर्णन किया गया है।

अवनिपतिस्तु 'दूरादालोकय' इत्यभिधाय प्रतीहार्य्या निर्दिश्यमानां तां वयःपरिणामशुभ्र–शिरसा रक्तराजीवनेत्रापाङ्गेनानवरत–कृत–व्यायामतया यौवनापगमेऽप्यशिथिलशरीरसन्धिना सत्यपि मातङ्गत्वे नातिनृशंसाकृतिना अनुगृहीतार्य्यवेशेन शुभ्र – वाससा पुरुषेणाधिष्ठितपुरोभागाम्आकलाकुल – काकपक्षधारिणा कनक–शलाका–निर्मितमप्यन्तर्गत– शुकप्रभाश्यामायमानं मरकतमयमिव पञ्जरमुद्वहता चाण्डालदारकेणानुगम्यमानाम्

अनुवाद – 'दूर से ही दर्शन करो' ऐसा कह कर प्रतीहारी द्वारा निर्दिष्ट (संकेतित) की जाती हुई उस (चाण्डाल–कन्या) को राजा (शूद्रक) ने अपलक नेत्रों से देखा, जिस कन्या के आगे एक पुरुष चल रहा था, उम्र के प्रभाव (=परिणाम) के कारण जिसके बाल सफेद थे, जिसके नेत्रों के कोने लाल कमल के समान थे, जो यौवन के समाप्त हो जाने पर भो लगातार व्यायाम करने के कारण शरीर के गठीले जोड़ों वाला था, जो चाण्डाल होने पर भो अतिभयानक शरीरवाला नहीं था, जो सभ्य लोगों की वेशभ्षा धारण किये हुए था, जो उज्ज्वल वस्त्र वाला था। जिस कन्या के पीछे एक बालक चल रहा था, जो अस्त–व्यस्त बालों वाला था, जो सोने की शलाकाओं से बने हुए होने पर भो भोतर वर्तमान शुक (तोते) की कान्ति के प्रभाव से श्याम (हरित) वर्ण के समान प्रतीत होने वाले मानों मरकत मणि से बने हुए पिंजरे को उठाये हुए था,

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अभिधाय – अभि + धा + ल्यप्; निर्दिश्यमानाम् – निर् + दिश् + णिच् + शानच्, द्वितीया एकवचन = निर्देश की जाती हुई चाण्डाल कन्या की; अधिष्ठित – अधि + स्था + क्त; श्यामायमानम् – अश्यामं श्यामं सम्पद्यते; श्याम + क्यङ् + शानच्; उद्वहता – उद् + वह + शतृ, तृतीया एकवचन; अनुगम्यमानाम् – अनु + गम् + णिच् + शानच् + स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय 'टाप्' द्वितीया एकवचन;

विशेष – (1) काकपक्ष – एक विशेष प्रकार से संवारे गये बालों की लट अथवा बच्चों की कनपटियों के केश – 'काकपक्षः शिखण्डकः' इत्यमरः। (2) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में भो महाकवि बाण ने चाण्डाल कन्या का विविध विशेषणों से मनोहर वर्णन किया है। बाण चाण्डाल कन्या की तुलना रति, महिषासुरमर्दिनी, कात्यायनी, कालिन्दी आदि से करते हैं।

असुर–गृहीतामृतापहरणकृत–कपट–पटु–विलासिनीवेशस्य श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्, सञ्चारिणीमिवेन्द्रनीलमणिपुत्रिकाम्, आगुल्फावलम्बिना नीलकंचुकेनाच्छन्नशरीराम्, उपरि रक्तांशुक–विरचितावगुण्ठनां नीलोत्पलस्थलीमिव निपतितसन्ध्यातपाम्, एककर्णावसक्त– दन्तपत्त्रप्रभाधवलितकपोल – मण्डलाम्,

उद्यदिन्दुकिरणच्छुरित–मुखीमिव विभावरीम्, आकपिल– गोरोचना – रचिततिलक–तृतीय–लोचनाम् ईशानुचरितकिरातवेशामिव भवानीम्, उरःस्थल–निवास – संक्रान्त–नारायण–देहप्रभा–श्यामलितामिव श्रियम्, कुपितहर–हुताशन– दह्यमान – मदन – धूम–मलिनीकृतामिव रतिम्, उन्मद–हलि–हलाकषण–भयपलायितामिव कालिन्दीम्, अतिबहल– पिण्डालक्तक – रस – राग–पल्लवितपादपङ्कजाम्, अचिरमृदितमहिषासुर–रुधिर – रक्तचरणामिव कात्यायनीम्,

अनुवाद – जो कन्या अपनी श्यामता के कारण, राक्षसों द्वारा गृहीत अमृत को छीनने के लिये कपट मे पटु मोहिनी स्त्री का वेश धारण करने वाले विष्णु का अनुकरण कर रही थी, जो चलती फिरती इन्द्रनीलमणि नीलम की कठपुतली सी थी; जो पैरों की गांठ तक लटकने वाले नीले रंग के कुर्ते से ढँके हुए शरीर वाली, ऊपर लाल वस्त्र से अवगुण्ठन घूँघट बनाए हुई थी, इसलिए नीलकमलों की भ्मि के समान थी जिस पर सायंकालीन धूप सूर्य की लाल किरणें गिरा रही हों, जो एक कान में लगे हुए दन्तपत्र की प्रभा से धवल श्वेत किए गए कपोल मण्डलवाली थी अतः निकलते हुए चंद्रमा की किरणों से युक्त प्रकाशित मुख (प्रारम्भिक काल) वाली रात के समान थी; जो कुछ पीले गोरोचन से बनाए गए तिलक से तीसरे नेत्रवाली, इसलिए भगवान शंकर द्वारा धारण किये किरात भोल के वेश का अनुकरण करके किरातिनी भोलिनी का वेश धारण करने वाली पार्वती के समान थी; जो वक्षःस्थल पर निवास के कारण प्रतिबिम्बित (मिश्रित) भगवान् नारायण के शरीर की कान्ति से श्यामवर्ण की गई लक्ष्मी के समान थी; जो क्रुद्ध भगवान शंकर के तृतीय नेत्र की आग से जलते हुए कामदेव के धुएँ से मलिन की गई रति के समान थी; जो अत्यधिक पिण्ड बनाए गए महावर के रस की लालिमा से पल्लव तुल्य लाल कमल रूपी पैरों वाली, अतः तत्काल मर्दित मारे गए महिषासुर के रक्त से लाल चरणों वाली कात्यायनी के समान थी;

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सञ्चारिणीम् – सम् + चर् + णिनि + ङीप्; अवच्छन्न – अव + छद् + क्त ढका हुआ; अवसक्तम् – अव + सञ्ज् + क्त; दह्यमान – दह् + णिच् + शानच्।

विशेष टिप्पणी – (1) असुर.. वेषस्य – यहाँ राक्षसों द्वारा अमृत ले लिये जान पर भगवान् विष्णु द्वारा मोहिनी रूप धारण करके असुरों से अमृत छीनने की प्रसिद्ध पौराणिक कथा की ओर संकेत किया गया है। (2) एककण...विभावरीम् – इस वाक्यांश की उपमा में रात्रि और चाण्डाल, कन्या तथा चन्द्रमा और दन्तपत्र में सुन्दर साम्य प्रदर्शित किया गया है। (3) ईशानचरितकिरातवेशाम् – अर्जुन द्वारा पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के लिए किये गये तप के बाद वाराह रूपी दानव को मारने के लिए भगवान शंकर ने किरात का वेश धारण किया था तथा भगवती पार्वती ने भो भिल्ली का वेश धारण कर शंकर का अनुगमन किया, यह कथा महाभारत में प्राप्त होतो है। (4) उन्मद....कालिन्दीम् – भागवत पुराण की कथा के अनुसार एक बार बलराम ने यमुना को जलक्रीड़ा के लिये बुलाया। यमुना के न आने पर वह उसे हल से जोतने लगा। मानों हल से जोते जाने के भय से यमुना भाग गई।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में भो चाण्डाल कन्या के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन विविध विशेषणों से किया गया है।

आलोहिताङ्गुलि–प्रभा–पाटलित–नखमयूखाम्,
अतिकठिन–मणिकुट्टिम–स्पर्शमसहमानां क्षितितले पल्लवभङ्गानिव निधाय सञ्चरन्तीम्, आपिञ्जरेणोत्सर्पिणां नूपुरमणीनां प्रभाजालेन रञ्जित–शरीरतया पावकेनेव भगवता रूप एव पक्षपातिना प्रजापतिमप्रमाणीकुर्वता जातिसंशो–धनार्थमालिङ्गितदेहाम्, अनङ्ग–वारण–शिरो–नक्षत्रमालायमानेन रोमराजि–लतालवालकेन मेखलादाम्ना परिगतजघनस्थलाम्, अतिस्थूल–मुक्ताफल–घटितेन शुचिना हारेण गङ्गास्रोतसेव कालिन्दीशङ्कया कृतकण्ठग्रहाम्, शरदमिव विकसित–पुण्डरीक–लोचनाम्, प्रावृषमिव घनकेशजालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्, नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणा–भरण–भूषिताम्, श्रियमिव हस्तस्थित–कमलशोभाम्, मूर्च्छामिव मनोहारिणीम्, अरण्यभूमिमिव

अक्षतरूप–सम्पन्नाम्, दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अरण्यकमलिनीमिव मातङ्गकुलदूषिताम्, अमूर्त्तामिव स्पर्शवर्जिताम्, आलेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्, मधुमास–कुसुम–समृद्धिमिव अजातिम्, अनङ्ग–कुसुम–चापलेखामिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, यक्षाधिपलक्ष्मीमिवालकोद्भासिनीम्, अचिरोपरूढयौवनाम्, अतिशयरूपाकृतिम्, अनिमिष–लोचनो ददर्श।

अनुवाद – जो कुछ लाल रंगवाली अंगुलियों की कान्ति से गुलाबी रंग के नाखूनों की किरणों वाली थी, अतः अति कठिन मणिमय फश के स्पर्श को सहन न करती हुई अतएव मानों पृथ्वी तल पर पल्लवों के टुकड़े रख कर चल रही थी; जो कुछ पीले लाल रंग वाले, ऊपर उठने वाले, नुपूर (पायजेब) की मणियों की कान्तिसमूह से रंगे हुए शरीर वाली होने के कारण ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों केवल रूप का पक्षपात करने वाले तथा जन्म के पक्षपाती ब्रह्मा को अप्रमाण बना देने वाले अग्निदेव ने उसकी शूद्र जाति का संशोधन करने के लिये उसके शरीर का आलिंगन (स्पर्श) कर लिया हो; कामदेव रूपी हाथी के मस्तक की नक्षत्रमाला के समान प्रतीत होने वाली और नाभि के ऊपर उठने वाली रोम पंक्तिरूपी लता के नये बने हुए आलबाल के समान प्रतीत होने वाली करधनी रूपी रस्सी ने जिसके जघनस्थल को घेर रखा था, अति विशाल मुक्ताफल मोतियों से बने हुए उज्ज्वल हार ने उसके श्यामवर्ण के कण्ठ को उसी प्रकार घेर लिया था जैसे मानों श्वेत धारावाली गंगा ने श्यामवर्ण की धारा वाली यमुना समझ कर उसके कण्ठ का आलिंगन कर लिया हो। जो खिले हुए कमलरूपी नेत्रों वाली शरद ऋतु के समान थी; जो घन बादल रूपी केशों वाली वर्षा ऋतु के समान थी; जो चन्दन के पल्लवरूपी आभ्षणों वाली मलयाचल की मेखला के समान थी; जो चित्रा, श्रवण और भरणी नामक नक्षत्रों से युक्त नक्षत्रमाला (नक्षत्रसमूह) के समान थी; जो हाथों में स्थित कमलों से शोभायुक्त लक्ष्मी के समान थी; जो मन (चेतना) का हरण कर लेने वाली मूर्छा (बेहोशी) के समान थी; जो अक्ष–तरु–उपसम्पन्न = अक्ष नामक वृक्षों से भरी हुई जंगल की जमीन के समान थी; जो अकुलीन (पृथ्वी पर न रहने वाली) दिव्ययोषित् (देवाङ्गना) के समान थीं, जो आँखों को पकड़ लेने वाली विवश कर देने वाली निद्रा के समान थी, जो मातंग–कुल द्वारा दूषित (नष्ट–भष्ट) अरण्य–कमलिनी के समान थी, जिस प्रकार अमूर्त वस्तु का देखना वर्जित = असंभव है उसी प्रकार जो कन्या भो स्पर्श से वर्जित = निषिद्ध थी, जिस प्रकार चित्र में बनी हुई आकृति को केवल देखना ही फल होता है, उसका उपभोगादि करना संभव नहीं होता है, उसी प्रकार जो कन्या भो केवल देखने लायक ही थी उपभोग करने योग्य नहीं थी, जिस प्रकार वसन्त ऋतु के महीनों की सम्पन्नता अजाति = चमेली के फूलों से रहित होती है उसी प्रकार जो कन्या अजाति = ब्राह्मणत्वादि उच्च जाति से रहित थी, जिस प्रकार कामदेव के धनुष का मध्य भाग मुट्ठी से पकड़ने योग्य होता है उसी प्रकार पतली होने के कारण जिसका भो मध्यभाग (कटिप्रदेश) मुट्ठी में पकड़ने योग्य था, जिस प्रकार यक्षाधिप (कुबेर) की राजलक्ष्मी 'अलका' नामक नगरी से उद्भासित होती है, उसी प्रकार जो कन्या 'अलकों' (केशों) से शोभित होने वाली थी, जो कुछ समय पूर्व ही यौवन को प्राप्त कर चुकी थी, जो अत्यधिक उत्कृष्ट आकारवाली थी। ऐसी चाण्डाल कन्या को राजा शूद्रक अपलक दृष्टि से देखता रहा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निधाय – नि + धा + ल्यप्; नक्षत्रमालायमानेन – नक्षत्रमालावदाचरमाणः नक्षत्रमालायमानः, तेन – नक्षत्रमाला + क्यङ् + शानच्, तृतीया विभक्ति एकवचन; अकुलीनकुल + ख– (ईन); लोचनग्राहिणी – लोचने ग्रहीतुं शीलमस्याः – लोचनग्रहः + णिनि + ङीप्। उपारूढ उप + आ + रुह् + क्त।

विशेष – (1) आलोहित....संचरन्तीम् – यहाँ गुलाबी रंग की नखकिरणों को लाल–लाल किसलय–खण्ड रूप में सम्भावित किया गया है। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है। (2) प्रजापतिमप्रमाणीकुर्वता – भाव यह है कि ब्रह्मा ने उस लड़की को चाण्डालकुल में जन्म देकर अस्पृश्य बनाया किन्तु अग्नि ने मानो उसका आलिंगन किया हुआ था, अत एव अग्निदेव ने ब्रह्मा के अस्पृश्यत्व रूप विधान को अस्वीकृत कर दिया था। (3) प्रस्तुत वाक्य

खण्ड में 'शरदमिव' से लेकर 'यक्षाधिपलक्ष्मीमिव' तक कवि ने श्लिष्ट पदावली पर आधारित उपमा की सुन्दर योजना की है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में अद्भत सौन्दर्य स्वामिनी चाण्डाल कन्या को देखकर के राजा शूद्रक की प्रतिक्रिया का वर्णन महाकवि बाण द्वारा किया गया है।

दृष्ट्वा च तां समुपजातविस्मयस्याभून्मनसि महीपतेः – 'अहो! विधातुरस्थाने रूप निष्पादन– प्रयत्नः। तथाहि, यदि नामेयमात्मरूपोपहसिताशेषरूपसम्पदुत्पादिता, किमर्थमपगत–स्पर्श–सम्भोग– सुखे कृतं कुले जन्म।

मन्ये च 'मातङ्ग–जाति–स्पर्श–दोष–भयादस्पृशतेयमुत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य। नहि करतल–स्पर्श–क्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्तिः।

अनुवाद – ओर उस चाण्डालकन्या को देखकर उत्पन्न हुए विस्मय वाले राजा के मन में यह विचार हुआ – ''अहो! विधाता का अनुचित स्थान पर सौन्दर्य उत्पन्न करने का प्रयास! क्योंकि – यदि इसे अपने रूप से सम्पूर्ण रूप सम्पत्ति का उपहास करने वाली बनाया तो फिर स्पर्श और संभोगसुख दोनों से वर्जित चाण्डाल कुल में क्यों पैदा किया?

और मैं तो ऐसा मानता हूँ कि चाण्डाल जाति के स्पर्श के दोष के भय के कारण ब्रह्मा ने बिना छुए हुए ही इसको बनाया है, यदि ऐसा नहीं होता तो इसकी सुन्दरता की इतनी कोमलता कैसे होती? क्योंकि बनाते समय करतल हथेली के स्पर्श से दूषित अंगों की कान्ति नहीं हो सकती।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – समुपजात – सम + उप + जन् + क्त; निष्पादन – निस् + पद् + णिच् + ल्युट् = अन्; अस्पृशता – नञ् + स्पृश्, शतृ तृतीया एकवचन; अक्लिष्टता – नञ् + क्लिश् + क्त + टाप्।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक प्रजापति ब्रह्मा की निन्दा करता है।

सर्वथा धिग् धिग्विधातारम् असदृशसंयोगकारिणम्। मनोहराकृतिरपि क्रूरजातितया येनेयमसुरश्रीरिव सतत–निन्दित–सुरता रमणीयाऽप्युद्वेजयति'' इति।

एवमादि चिन्तयन्तमेव राजानमीषदवगलित–कणपल्लवावतंसा प्रगल्भवनितेव कन्यका प्रणनाम।

कृतप्रणामायाञ्च तस्यां मणिकुट्टिमोपविष्टायाम्, स पुरुषस्तं विहङ्गमं शुकमादाय पञ्जरगतमेव किञ्चिदुपसृत्य राज्ञे न्यवेदयदब्रवीच्च

अनुवाद – इस प्रकार के असदृशों (स्पर्शवर्जित और अतिशयसौन्दर्य – इन दोनों विरुद्धों) के संयोग (एकत्र समावेश) करने वाले ब्रह्मा को बार–बार धिक्कार है, जिस (असदृश संयोग) के कारण मनोहर आकृति वाली भो यह कन्या क्रूर चाण्डाल जाति वाली होने से सदैव निन्दित संभोग वाली होती हुई रमणीय होती हुई भो उसी प्रकार खेद (घृणा) पैदा करती है जिस प्रकार राक्षसों की लक्ष्मी सदैव देवसमूह की निन्दा करने वाली मनोहारिणी भो मन में खेद पैदा करती हैं।

इस प्रकार से सोचते हुए ही राजा को कुछ पीछे झुके हुए पवनिर्मित कर्णाभ्षण वाली उस चाण्डालकन्या ने प्रौढा स्त्री के समान (निःशंक होकर) प्रणाम किया।

उसके प्रणाम कर लेने और मणिमय फश पर बैठ जाने पर उस पुरुष ने पिंजरे में स्थित ही उस शुक पक्षी को लेकर कुछ पास जाकर राजा को समर्पित किया और बोला –

व्याकरणात्मक टिप्पणी – धिग्धिग्विधातारम् – 'धिक्' के योग में यहाँ द्वितीया विभक्ति हुई है। चिन्तयन्तम् – चिन्त् + णिच् + शतृ, द्वितीया, एकवचन; प्रणनाम – प्र + नम् + लिट् प्रथम पुरुष, एकवचन; उपविष्टायाम् – उप + विश् + क्त + टाप; सप्तमी, एकवचन; विहङ्गमम् – (विहायसा गच्छीति, विहङ्गमः) विहायस + गम् + खच् + मुम् आदेश तथा 'विहायस' को 'विह' आदेश, द्वितीया एकवचन।

विशेष – (1) असदृशसंयोगकारिणम् – जिस विधाता ने दो असमान वस्तुओं अर्थात् अस्पृश्य चाण्डाल जाति तथा अनिन्द्य सौन्दर्य की एक साथ उस चाण्डाल कन्या में उत्पन्न किया। (2) प्रगल्भवनितेव प्रणनाम – भाव यह है कि उसने कन्या–सुलभ संकोच का प्रदर्शन न करके एक चतुर अनुभवी नायिका के समान निःसंकोच भाव से राजा को प्रणाम किया। यहाँ पर उपमा अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में पिंजरे में शुक को लाने वाला पुरुष राजा शूद्रक को उस शुक की विशेषताओ के बारे में बताता है।

"देव! विदितसकलशास्त्रार्थः, राजनीतिप्रयोगकुशलः, पुराणेतिहासकथालापनिपुणः, वेदिता गीतश्रुतीनाम्, काव्य–नाटकाख्यायिकाख्यानक–प्रभृतीनामपरिमितानां सुभाषितानामध्येता स्वयञ्च कर्त्ता, परिहासालापपेशलः, वीणा–वेणु–मुरजप्रभृतीनां वाद्यविशेषाणामसमः श्रोता, नृत्यप्रयोगदर्शननिपुणः, चित्रकर्म्मणि प्रवीणः, द्यूतव्यापारे प्रगल्भः, प्रणयकलह–कुपित– कामिनी– प्रसादनोपायचतुरः, गज–तुरग–पुरुष–स्त्री–लक्षणाभिज्ञः, सकलभूतल–रत्नभूतोऽयं वैशम्पायनो नाम शुकः। सर्वरत्नानाञ्च उदधिरिव देवो भाजनमिति कृत्वैनमादायास्मत्स्वामिदुहिता देवपादमूलमायाता, तदयमात्मीयः क्रियतामित्युक्त्वा नरपतेः पुरो निधाय पञ्जरमसावपससार।

अनुवाद – "राजन्! समस्त शास्त्रों के प्रतिपाद्य पदार्थों को जानने वाला; राजनीति के प्रयोग शिक्षा में चतुर; पुराणों तथा इतिहास की कथाओं के कहने में निपुण; गीत और श्रुतियों को जानने वाला; काव्य (श्रव्य), नाटक (दृश्य काव्य), आख्यायिका और आख्यानक आदि अगणित सुभाषितों को पढ़ चुकने वाला तथा स्वयं भो उनका निर्माण करने वाला; हँसी–मजाक की बातों में कुशल; वीणा, वेणु, मृदंग आदि विशेष वाद्यों का बेजोड़ सुनने वाला; नृत्य के प्रयोग और दर्शन में निपुण; चित्रकला मे प्रवीण; जुआ खेलने में चतुर; प्रेमकलह में नाराज (कुपित) हुई स्त्रियों को खुश करने के उपायों का मर्मज्ञ; हाथी, घोड़ा, पुरुष तथा स्त्रियों (सामुद्रिकोक्त) लक्षणों का अच्छा जानकार; समस्त पृथ्वीतल का रत्न यह 'वैशम्पायन' नामक तोता है और समुद्र के समान आप महाराज भो सभो रत्नों उत्कृष्ट पदार्थों के पात्र आश्रय हैं – ऐसा समझ कर इस अद्भत तोते को लेकर हमारे स्वामी की कन्या महाराज के चरणों के मूल समीप में आई है इसलिये इस तोते को आप अपना बना लीजिए अर्थात् स्वीकार कर लीजिए।"

ऐसा कह कर पिंजरे को राजा के सामने रख कर वह पुरुष वहाँ से चला गया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – श्रुति – श्रु + क्तिन्; अपससार अप + सृ + लिट् – प्रथम पुरुष एकवचन; चित्रकर्मणि प्रवीणः, द्यूतव्यापारे प्रगल्भः – यहाँ 'चतुर' अर्थवाचक 'प्रवीण' और 'प्रगल्भ' शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति हुई है।

विशेष – (1) श्रुति – संगीत शास्त्र में किसी स्वर के आरम्भ का शब्द विशेष श्रुति कहलाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में वह अद्भत शुक मनुष्य की वाणी में राजा की प्रशंसा में एक आर्या का पाठ करता है, जिसे सुनकर राजा भो विस्मित हो जाता है।

अपसृते च तस्मिन् स विहङ्गराजो राजाभिमुखो भूत्वा समुन्नमय्य दक्षिणं चरणमति–स्पष्ट–वर्ण– स्वर–संस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्य्यामिमां पपाठ –

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्।।2।।

राजा तु तां श्रुत्वा संजात–विस्मयः सहर्षमासन्नवर्त्तिनम्, अतिमहार्घहेमासनोपविष्टम्, अमरगुरुमिवाशेषनीतिशास्त्रपारगम्, अतिवयसमग्रजन्मानमखिलमन्त्रिमण्डले प्रधानममात्यं कुमारपालितनामानमब्रवीत् –

अनुवाद – उस वृद्ध पुरुष के चले जाने पर पक्षिराज उस तोते ने राजा की ओर मुख करके दाहिना पैर उठा कर वर्णों और स्वरों के अतिस्पष्ट संस्कार वाली वाणी से 'जय हो' ऐसा शब्द बोल कर राजा को लक्षित करके यह आर्या पढ़ी –

"हे राजन्! आपके शत्रुओं की स्त्रियों के दोनों स्तन जो भर्तृवियोग में बहने वाले आँसुओं से स्नात = भोगे हुए हैं, हृदय में वर्तमान शोकरूपी आग के अति समीप में स्थित हैं, विमुक्ताहार = मौक्तिक माला को छोड़ने वाले हैं; मानो व्रत कर रहे हैं।

उस आर्या (छन्द) को सुनकर आश्चर्यचकित होते हुए राजा शूद्रक ने अपने पास वर्तमान, बहुत अधिक कीमती स्वर्णमय आसन पर बैठे हुए, बृहस्पति के समान समस्त नीति–शास्त्रों में पारंगत, अत्यधिक अवस्था वाले (वृद्ध) अग्रजन्मा (ब्राह्मण), सारे मन्त्रिसमुदाय में प्रधान 'कमारपालित' नाम वाले मन्त्री से कहा –

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अपसृते – अप् + सृ + क्त + ङि; भूत्वा – भ् + क्त्वा; पपाठ – पठ् + लिट् प्रथम पुरुष, एकवचन;

विशेष – (1) स्तनयुग....रिपुस्त्रीणाम् – यहाँ पर कवि ने श्लिष्ट पदावली के प्रयोग से स्तनयुग तथा
व्रतधारी व्यक्ति में साम्य दर्शाया है। शोक के कारण रोने से शत्रु–नारियों के स्तनयुग अश्रु–स्नात हैं और व्रतधारी भो स्नान करता है। स्तन–युग हृदय शोकाग्नि के समीप स्थित है। व्रती यज्ञाग्नि का सेवन करता है। शोकवश शत्रु–स्त्रियाँ हार नहीं पहनतीं, अतः स्तनयुग 'विमुक्ताहार' है। जबकि व्रती आहार करना छोड़कर 'विमुक्ताहार' रहता है। (2) अग्रजन्माचारों वर्णों में सबसे पहले जन्म होने के कारण ब्राह्मण को अग्रजन्मा कहा जाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक शुक के स्पष्ट उच्चारण से विस्मित होकर उसके भाषा विषयक ज्ञान की प्रशंसा करता है।

"श्रुता भवद्भिरस्य विहङ्गमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे, स्वरे च मधुरता, प्रथमं तावदिदमेव महदाश्चर्य्यम्, यदयमसङ्कीर्णवर्णप्रविभागामभिव्यक्तमात्रानुस्वार–स्वरसंस्कारयोगां विशेषसंयुक्ताम् अतिपरिस्फुटाक्षरां गिरमुदीरयति। तत्र पुनरपरम्, अभिमतविषये तिरश्चोऽपि मनुजस्येव संस्कारवती बुद्धिपूर्वा प्रवृत्तिः। तथाहि–अनेन समुत्क्षिप्तदक्षिणचरणेनोच्चार्य्य जयशब्दमियमार्य्यामामुद्दिश्य परिस्फुटाक्षरं गीता। प्रायेण हि पक्षिणः पशवश्च भयाहारमैथुन–निद्रा–संज्ञामात्र–वेदिनो भवन्ति। इदन्तु महच्चित्रम्।"

अनुवाद – "आपने इस पक्षी (तोते) की वर्णोच्चारण में स्पष्टता और उदात्तादि स्वरों में मधुरता सुनी? पहले तो यहो बड़ा आश्चर्य है कि यह पक्षी वर्णों के अलग–अलग स्वरूप वाली, मात्रा, अनुस्वार, स्वर तथा व्याकरणशुद्धि – इनके संस्कार से युक्त, श्लेषादि विशेष–सहित अत्यन्त स्पष्ट अक्षरों वाली वाणी का उच्चारण करता है। इसके अतिरिक्त फिर यह आश्चर्य है कि अपने अभोष्ट वक्तव्य को कहने में इस पक्षी को भो मनुष्य के समान संस्कारयुक्त बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति है। यह इस प्रकार समझिए – अपना दाहिना पैर उठा कर, 'जय हो' यह शब्द बोलकर मुझे उद्देश्य बनाकर इसने स्पष्ट अक्षरों से 'आर्या' छन्द पढा है और अधिकांश पक्षी तथा पशु भय, भोजन, मैथुन, नींद और संज्ञा अपने बुलाने वाले प्रतीकात्मक नाम को ही जानने वाले होते हैं, परन्तु यह तो बहुत आश्चर्यजनक है।"

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उद्दिश्य – उत् + दिश् + क्त्वा (ल्यप्); गीतागै + क्त + टाप्; समुत्क्षिप्त – सम् + उत् + क्षिप् + क्त।

विशेष – (1) तत्र पुनरपरम्.....प्रवृत्तिः – इस पक्षी के विषय में दूसरा बड़ा आश्चर्य यह है कि जिस प्रकार संस्कारयुक्त मनुष्य किसी कार्य की भलाई–बुराई को बुद्धि के द्वारा भली प्रकार विचार कर प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार यह पक्षी होते हुये भो विवेचन करके ही कार्य में प्रवृत्त हुआ है। इसने दायाँ हाथ उठाकर आशीर्वाद देने वाले ब्राह्मण की भाँति दायाँ पैर उठाकर 'जय' शब्द कहा है और राजा को लक्ष्य करके वह आर्या पढ़ी है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा के आश्चर्यचकित हो जाने पर कुमारपाल कहता है कि इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है।

इत्युक्तवति भूभुजि कुमारपालितः किञ्चित्स्मितवदनो नृपमवादीत् – ''देव! किमत्र चित्रम्। एते हि शुकसारिकाप्रभृतयो विहङ्ग–विशेषा यथाश्रुतां वाचमुच्चारयन्तीत्यधिगतमेव देवेन। तत्राप्यन्यजन्मोपात्त – संस्कारानुबन्धेन वा पुरुषप्रयत्ने वा संस्कारातिशय उपजायत इति नातिचित्रम्। अन्यच्च, एतेषामपि पुरा पुरुषाणामिवातिपरिस्फुटाभिधाना वागासीत्, अग्निशापात्त्वस्फुटालापता शुकानामुपजाता, करिणाञ्च जिह्वापरिवृत्तिः।''

अनुवाद – राजा शूद्रक द्वारा ऐसा पूर्वोक्त कहा जाने पर कुछ मुस्कराते हुए मुख वाले कुमार पालित प्रधानामात्य ने राजा से कहा – ''महाराज! इसमें क्या आश्चर्य, क्योंकि ये तोते, मैना आदि विशेष पक्षी जैसी सुनी गई वैसी ही बात का उच्चारण कर देते हैं, यह तो श्रीमान् आप जानते ही हैं। इनमें भो पूर्वजन्म के संस्कार के बने रहने से या सिखाने वाले पुरुष के प्रयास से अधिक संस्कार उत्पन्न हो जाता है अर्थात् दक्षता बढ़ जाती है, अतः यहाँ कोई अधिक आश्चर्य की बात नहीं है। और भो, प्राचीनकाल में इन पक्षियों की भो मनुष्य के समान ही अत्यधिक स्पष्ट अक्षरों वाली वाणी हुआ करती थी। परन्तु अग्निदेव के शाप के कारण तोतों की वाणी की अस्पष्टता हो गई और हाथियों की जीभ उल्टी हो गई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – भभजि भवं भनक्तीति भभक् तस्मिन्;

विशेष – अग्नि.....परिवृत्तिः – इस सन्दभ में महाभारत में निम्नानुसार कथा प्राप्त होती है – तारकासुर से पीड़ित देवताओं ने ब्रह्मा से निवेदन किया कि देवताओं का सेनापति तथा अग्नि का पुत्र कार्तिकेय ही तारकासुर का वध कर सकता है। इसके लिये देवता अग्नि को खोजने लगे। उन्होंने पास जाते हुये हाथी से पूछा कि अग्नि कहाँ है? हाथी ने उन्हें बताया कि अग्नि पीपल के वृक्ष में अन्तर्निहित है। इससे क्रुद्ध होकर अग्नि ने हाथी को जीभ उलट जाने का शाप दिया। पुनः तोते से पूछने पर तोते ने अग्नि का शमी वृक्ष में होना बताया तब अग्नि ने प्रकट होकर तोते को अस्पष्ट वाणी हो जाने का शाप दिया।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में शूद्रक की राजसभा के विसर्जन का वर्णन किया गया है।

इत्येवमुच्चारयत्येव तस्मिन्नशिशिरकिरणमम्बरतलस्य मध्यमारूढमावेदयन् नाडिकाच्छेद–प्रहत–पटु– पटह–नादानुसारी मध्याह्न–शङ्खध्वनिरुदतिष्ठत्। तमाकर्ण्य च समासन्नस्नानसमयो विसर्जितराजलोकः क्षितिपतिरास्थानमण्डपादुत्तस्थौ।

अनुवाद – कुमारपालित द्वारा ऐसा पूर्वोक्त बातें कहे जाने पर ही 'सूर्य आकाश के बीच में आ चुका है' इस बात को सूचित करती हुई, सभासमाप्ति की घड़ी बीतने पर बजाये गये विशाल नगाड़े की आवाज के बाद बजने वाली, दोपहर की सूचना देने वाले शंख की आवाज होने लगी। इस आवाज को सुन कर स्नान का समय समीप में जानने वाला, राजपरिजनों को विदा कर देने वाला राजा शूद्रक सभामण्डप (राजदरबार) से उठ खड़ा हुआ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उदतिष्ठत् – उत् + स्था + लङ् प्रथमपुरुष, एकवचन; उत्तस्थौ – उत् + स्था + लिट् प्रथमपुरुष, एकवचन।

विशेष – (1) नाडिकाच्छेदः....पटहः – इससे प्रतीत होता है कि महाकवि बाण के समय में राजाओं के यहाँ समय की सूचना देने के लिए प्रत्येक घड़ी की समाप्ति पर नगाड़ा बजाया जाता था और शंख बजाया जाता था।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक के राजसभा के चले जाने के उपरान्त अन्य राजाओं में बहिर्गमन को लेकर अहमहमिका का वर्णन कवि द्वारा किया गया है।

अथ चलति महीपतावन्योन्यमतिरभस–सञ्चलन–चालिताङ्गद–पत्त्रभङ्ग–मकरकोटिपाटितांशुकपटानाम्, आक्षेप–दोलायमान–कण्ठदाम्नाम्, असंस्थलोल्लासित–कुङ्कुम– पटवासधूलिपटलपिञ्जरीकृत–दिशाम्,

आलोल–मालतीकुसुम–शेखरोत्पतदलिकदम्बकानाम्, अर्द्धावलम्बिभिः कर्णोत्पलैश्चुम्ब्यमानगण्डस्थलानाम्, गगन–प्रणाम–लालसानाम् अहमहमिकया, वक्षःस्थल–प्रेङ्खोलित–हारलतानाम्, उत्तिष्ठतामासीदतिमहान् सम्भ्रमो महीपतीनाम्।

अनुवाद – इसके बाद राजा के चलने पर उसके सम्मानार्थ उठने वाला अन्य अधीन राजाओं में परस्पर अत्यधिक संभम से खलबली हो गई, जिन राजाओं के बहुत तेजी से चलने के कारण अपने वास्तविक स्थान से हटे हुए (1) अंगद (केयूर), (2) पत्रभङ्ग (आभ्षणविशेष) और (3) मकर (मगर की आकृति के समान आभ्षण) इनके अग्रभाग (नोक) से अनेक वस्त्र या रेशमीवस्त्र फाड़ दिये गये थे, आपस में टकराहट के कारण जिनके कंठ की मालाएं हिल रही थीं, जिनके कंधों के ऊपर से उठे हुए केसर और पटवास (सुगन्धित चूर्ण आदि) के धूलिसमूह से दिशाएँ पिंजरित (पीली लाल) हो गईं थीं; जिनके कुछ हिलते हुए चमेली के फूलो के मुकुट के ऊपर भोरों के समूह उड़ रहे थे; आधे लटकने वाले कानों में लगे हुए कमलों द्वारा जिनके कपोलस्थल का स्पर्श किया जा रहा था; प्रस्थानकाल में राजा को प्रणाम करने की जिनकी लालसा थी, 'मैं पहले, मैं पहले–' इस भावना से अतिशीघ्रता के कारण जिनके वक्षःस्थल की मुक्तामालाएँ हिल रही थीं। ऐसे राजाओं में परस्पर टकराहट होने लगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उत्तिष्ठताम् – उत् + स्था + शतृ + षष्ठी, बहुवचन;

विशेष – (1) अहमहमिका – अहमहमिका तु सा स्यात् परस्परं यो भवत्यहङ्कारः इत्यमरः।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक के राजसभा से उठते समय और क्या–क्या घटनायें घटित हुईं, उन घटनाओं का वर्णन किया गया है।

इतश्चेतश्च निष्पन्तीनां स्कन्धावसक्त–चामराणां चामरग्राहिणीनां कमलमधुपानमत्त–जरत्कलहंस– नाद– जर्जरितेन पदे पदे रणितमणीनां मणिनूपुराणां निनादेन, वारविलासिनीजनस्य सञ्चरतो जघनस्थलास्फालनरसित–रत्नमालिकानां मेखलानां मनोहारिणा झङ्कारेण नूपुररवाकृष्टानाञ्च धवलितास्थानमण्डप–सोपानफलकानां भवनदीर्घिकाकलहंसकानां कोलाहलेन, रशनारसितोत्सुकानाञ्च तारतर–विराविणामुल्लिख्यमान–कांस्य–क्रेंङ्कारदीर्घेण गृहसारसानां कूजितेन, सरभसप्रचलित–सामन्तशतचरणतलाभिहतस्य चास्थानमण्डपस्य निर्घोषगम्भीरेण कम्पयतेव वसुमतीं ध्वनिना, प्रतिहारिणाञ्च पुरः ससम्भ्रममुत्सारितजनानां दण्डिनां समारब्धहेलमुच्चैरुच्चरतामालोकयतालोकयतेति तारतर–दीर्घेण भवनप्रासाद–कुञ्जेषूच्चरित –प्रतिच्छन्दतया दीर्घतामुपगतेनालोकशब्देन, राज्ञाञ्च ससम्भ्रमावर्जित–मौलिलोल–चूडामणीनां प्रणमताममल– मणिशलाकादन्तुराभिः किरीट–कोटिभिरुल्लिख्यमानस्य मणिकुट्टिमस्य निःस्वनेन, प्रणामपर्य्यस्तानामतिकठिनमणिकुट्टिमनिपतितरणरणायितानाञ्च मणिकणपूराणां निनादेन, मङ्गलपाठकानाञ्च पुरोयायिनां जय जीवेति मधुरवचनानुयातेन पठतां दिगन्तव्यापिना कलकलेन, प्रचलितजनचरणशतसंक्षोभाद्विहाय कुसुमप्रकरमुत्पतताञ्च मधुलिहां हुङ्कृतेन, संक्षोभादतित्वरितपदप्रवृत्तैरवनिपतिभिः केयूरकोटिताडितानां क्वणित–मुखर–रत्नदाम्नाञ्च मणिस्तम्भानां रणितेन सर्वतः क्षुभितमिव तदास्थानभवनमभवत्।

अनुवाद – उस समय वह सभाभवन ध्वनियों से क्षुभित (व्याकुल)–सा हो गया। जो इधर–उधर से आती हुई, कन्धों पर चाँवर लटकाये हुए चाँवरधारिणी स्त्रियों के, कमल–मधुपान से मत्त वृद्ध कलहंसों के नाद से मिश्रित, पद पद पर बजती हुई मणियों वाले मणिमय नूपुरों की उत्कृष्ट ध्वनि से; चलती फिरती वेश्याओं के जघनस्थलों पर टकराने से शब्द करती हुई, रत्नमालाओं वाली मणिजटित मेखलाओं (करधनियों) के मनोहर झंकार से; और नूपुरों की ध्वनि से आकृष्ट होने वाले, सभामण्डप की सीढ़ियों को सफेद कर देने वाले, घर की बावड़ी के कलहंसों के कोलाहल से और करधनी की आवाज से उत्कण्ठित, बहुत ऊँची आवाज में चिल्लाने वाले, घर में पाले गये सारसों की घिसे जाते हुए कांसे की

'केंकें' ध्वनि के समान तेज आवाज से और वेगपूर्वक चलते हुए सैकड़ों सामन्तों के चरणतलों से आहत सभा–भवन की वज्र की आवाज के समान गंभोर अतएव मानो जमीन को कँपाती हुई ध्वनि से और राजा के सामने से लोगों को हटाने वाले, हाथों से डंडा धारण करने वाले, दूसरों को अपमानित करते हुये – ''राजा को देखिये, राजा को देखिये'' या सामने देखिये, सामने देखिये – इस प्रकार की ऊँची आवाज करने वाले प्रतिहारियों के अत्यधिक तेज दीर्घ अत एव भवनो और महलों के कुंजों में उच्चारित शब्द की प्रतिध्वनि होने से और दीर्घता तीखापन प्राप्त किए हुए 'आलोक शब्द' से और घबराहट या शीघ्रता के कारण झुकाए गए सिरों पर हिलती हुई चूडामणि सिर के मुकुट की मणियों वाले, प्रणाम करने वाले राजाओं के स्वच्छ मणिशालाओं से दन्तुर मुकुटों के किनारों से घिसी जाती हुई मणिमय पक्की जमीन की आवाज से और प्रणाम करने से गिरे हुए और अति कठिन मणिमय भूमि पर गिरने के कारण 'रण रण' ऐसी आवाज करने वाले मणिजटित कर्णपूरों की आवाज से और कीर्तिपाठ करने वाले आगे चलने वाले मंगलपाठ करने वाले वन्दीगणों के – 'जय हो, दीर्घजीवी हो' ऐसे मधुर वचन से अनुसृत, दिगन्तव्यापी कलकल से और चलते हुए लोगों के सैकड़ों पैरो के कारण व्यग्रता से पुष्पसमूह को छोड़कर उड़ते हुए भौरों के हुंकार से और व्यग्रता के कारण जल्दी–जल्दी पैरों से चलते हुए राजाओं द्वारा केयूरों की नोकों से टकराए हुए, शब्द करने से वाचाल रत्नजटित जंजीरों वाले मणिमय खम्भों की आवाज से – वह सभाभवन उस समय मानों चारों ओर से क्षुभित सा हो गया

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निपतन्तीनाम् – निस् + पत् + शतृ + ङीप्, षष्ठी, बहुवचन; दन्तुर – दन्त + उरच्; पर्यस्त – परि + अस् + क्त।

विशेष – (1) कांस्यक्रेंकार – काँसे की 'कें कें' जैसी ध्वनि जो कसेरे आदि के द्वारा कांसे को रगड़े जाने के समय उत्पन्न होती है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण ने राजा शूद्रक की सभा के विसर्जित हो जाने के पश्चात् वैशम्पायन को रनिवास में प्रवेश कराये जाने का वर्णन किया है।

अथ विसर्जितराजलोको 'विश्रम्यता' मिति स्वयमेवाभिधाय तां चाण्डाल–कन्यकाम्, 'वैशम्पायनः प्रवेश्यतामभ्यन्तरम्' इति ताम्बूलकरङ्कवाहिनीमादिश्य कतिपयाप्तराजपुत्रपरिवृतो नरपतिरभ्यन्तरं प्राविशत्।

अपनीताभरणश्च दिवसकर इव विगलितकिरणजालः, चन्द्रतारकाशून्य इव गगनाभोग, समुपाहृत–समुचित–व्यायामोपकरणां व्यायामभूमिमयासीत्।

अनुवाद – इसके बाद राजसमूह (नौकरों) को विदा करके उस चाण्डाल कन्या से 'विश्राम करो' ऐसा स्वयं ही कहकर और 'वैशम्पायन को भोतर ले जाओ'' ऐसा पानदान को पकड़ने वाली स्त्री को आदेश देकर कुछ विश्वस्त राजपुत्रों से घिरा हुआ राजा शूद्रक राजमहल के भोतर चला गया।

आभ्षणों को हटा देने वाला वह राजा किरणसमूह से शून्य सूर्य के समान तथा चन्द्रमा और तारागणों से रहित गगनतल के समान ऐसी व्यायामशाला में पहुँचा जहाँ व्यायाम करने के लिये सभो अपेक्षित उपकरण एकत्रित कर दिए गये थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अभिधाय – अभि + धा + क्त्वा ;ल्यप्; परिवृत्तः – परि + वृ + क्त; समुपाहृत – सम् + उप् + आ + हृ + क्त;

विशेष – (1) अपनीत... आभोग – भाव यह है कि व्यायाम के लिये आभ्षण उतारने पर राजा किरणों को समेटने वाले सन्ध्याकालीन सूर्य जैसा तथा चाँद–तारों से रहित आकाश–मण्डल के विस्तार जैसा प्रतीत होता था। यहाँ पर उपमा अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक के अपने समान वयस्क राजकुमारों के साथ स्नानागार में स्नान का वर्णन किया गया है।

स तस्याञ्च समानवयोभिः सह राजपुत्रैः कृतमधुरव्यायामः, श्रमवशादुन्मिषन्तीभिः कपोलयोरीषदवदलित – सिन्धुवार – कुसुम – मञ्जरी – विभ्रमाभिः, उरसि

निर्दयश्रमच्छिन्नहारविगलित – मुक्ताफल – प्रकरानुकारिणीभिः ललाटपट्टकेऽष्टमीचन्द्रशकल.तलोल्लसदमृतबिन्दुबिडम्बिनीभिः स्वेदजल – कणिकासन्ततिभिरलङ्क्रियमाणमूर्त्तिः, इतस्ततः स्नानोपकरणसम्पोदनसत्वरेण पुरःप्रधावता परिजनेन तत्कालं विरलजनेऽपि राजकुले समुत्सारणाधि कारमुचितमाचरद्भिः दण्डिभिरुपदिश्यमानमार्गः वितत – सितवितानाम्, अनेक – चारण – गण – निबध्यमानमण्डलाम्, गन्धोदक–पूर्ण–कनकमयजलद्रोणी – सनाथमध्याम्, उपस्थापितस्फाटिकस्नानपीठाम्, एकान्तनिहितैरतिसुरभि – गन्ध–सलिलपूर्णैः परिमलावकृष्ट– मधुकर – कुलान्धकारितमुखैरातपभयान्नीलकपटावगुण्ठितमुखैरिव स्नानकलशैरुपशोभितां स्नानभूमिमगच्छत्।

और उस राजा ने उस व्यायामशाला में समान अवस्था वाले राजपुत्रों के साथ हल्का व्यायाम किया। इस परिश्रम के कारण गालों पर निकलती हुई उन पसीने की बूँदों से उसका शरीर शोभित हो रहा था जो कुछ–कुछ रगड़े गए सिन्धुवार के फूलों की मंजरी के समान शोभावाली थी, जो वक्षस्थल पर कठोर परिश्रम के कारण टूटे हुए हार से गिरे हुए मोतियों के समुदाय का अनुकरण करने वाली थी, जो मस्तक–स्थल पर अष्टमी के चन्द्रमा के खण्ड (कला) तल में निकलते हुए प्रकट होते हुए अमृत की बूँदों का अनुकरण करने वाली, अर्थात् उनके समान दिखाई देने वाली थी। इधर–उधर से स्नान के उपकरणों के सम्पादन में शीघ्रता करने वाले, आगे–आगे चलने वाले नौकरों द्वारा, उस समय उस राजभवन में थोड़े से लोगों के रह जाने पर भो लोगों को हटाने के अपने उचित अधिकार का परिपालन करने वाले
दण्डधारी सेवकों द्वारा जिसको मार्ग बताया जा रहा था, वह राजा ऐसी स्नानभ्मि में पहुँचा, जहाँ सफेद चन्दोवे फैलाए गये थे, जहाँ अनेक चारणों के समूह ने मण्डल बना लिया था, जिसमें स्फटिक मणि की बनी चौकी रखी हुई थी, एक भाग में रखे हुए, अति उत्कट गन्धवाले पानी से भरे हुए, गन्ध से आकृष्ट भमरसमुदाय द्वारा अन्धकारयुक्त मखवाले, अत एव मानों धूप के भय से नीले कपड़े से ढके हुए स्नान के कलशों से शोभित थी। ऐसी स्नानशाला में राजा शूद्रक पहुँचा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उल्लसन्ती – उत् + लस् + शतृ + ङीप; उपदिश्यमान – उप + दिश् + शानच्; राजपुत्रैः सहः – यहाँ 'सह' के योग में राजपत्र से तृतीया विभक्ति हुई है।

विशेष – (1) कपोलयोः विभमाभिःव्यायाम करने से राजा के कपोलों पर पसीनें की बूंदें झलक आई थी जो ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो सिन्दुवार के श्वेतवर्ण के पुष्पों की अविकसित कलियाँ हों। यहाँ पर वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। (2) परिमलः....शोभिताम् – कमलों में स्नान के लिए सुगन्धित जल भरा होने के कारण बहुत से भवरे कमल के मुँह पर एकत्र हो गये थे – जिनसे ऐसा लगता था मानों धूप निवारण करने के लिए उन कमलों के मुँह पर काले कपड़े बाँध दिये गये हों।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक के स्नानकालीन जलविलास का मनोरम वर्णन किया गया है।

अवतीर्णस्य च जलद्रोणीं वारविलासिनी–कर–मृदित–सुगन्धामलकलिप्तशिरसो राज्ञः परितः समुपतस्थुरंशुक – निबिडनिबद्ध – स्तनपरिकराः, दूरसमुत्सारित – वलय – बाहुलताः, समुत्क्षिप्तकर्णाभरणाः कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः गृहीतजल–कलसाः स्नानार्थमभिषेकदेवता इव वारयोषितः। ताभिश्च समुन्नत – कुचकुम्भ – मण्डलाभिर्वारिमध्यप्रविष्टः करिणीभिरिव वनकरी परिवृतस्तत्क्षणं रराज राजा। द्रोणीसलिलादुत्थाय च स्नानपीठममलस्फटिक–धवलं वरुण इव राजहंसमारुरोह।

अनुवाद – और पानी के कुण्ड में उतरे हुए वेश्याओं के हाथों से पीसे गये सुगन्धित आँवला को सिर पर लगाये हुए राजा के चारों ओर रेशमी वस्त्र से स्तनभाग को दृढ़तापूर्वक बांधे हुईं, भजारूपी लताओं से कंकण को दूर किये हुई, कानों के गहनों को ऊपर रखे हुई,

कानों पर गिरने वाले केशों को हटाती हुई, जल के कलशों को लिय हुए वेश्याएँ – मानों स्नान की अधिष्ठात्री देवियाँ – स्नान कराने के लिये वहाँ उपस्थित हुईं थीं।

उन्नत कुचरूपी कलशसमुदायवाली उन वारांगनाओं से घिरा हुआ जलमध्यस्थित राजा शूद्रक उसी प्रकार शोभित हुआ जिस प्रकार हथिनियों से घिरा हुआ जल–मध्य–प्रविष्ट हाथी शोभित होता है। इसके बाद जल–कुण्डिका से बाहर निकल कर राजा स्वच्छ स्फटिक मणि के समान धवल स्नान की चौकी पर उसी प्रकार आरूढ़ हुआ जिस प्रकार वरुण राजहंस पर आरूढ़ होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवतीर्ण – अव + तृ + क्त; समुत्क्षिप्त – सम् + उत् + क्त; समुपतस्थुः–सम + उप + स्था + लिट्, प्र.प., बहुव.; रराज – राज् + लिट् प्र.पु.एकव.; आरुरोह – आ + रुह + लिट्, प्र.पु.एकव.; राज्ञः परितः – यहाँ पर 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' के अनुसार दिशावाची 'तस्' प्रत्ययान्त शब्द के योग से राज्ञः शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई है।

विशेष – (1) दूर....अलकाः – यहाँ राजा को स्नान कराने के लिये एकत्रित वेश्याओं का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। उन्होंने अपने हाथों के कंगन को ऊपर चढ़ा रखा है, जिससे स्नान कराते समय कहीं राजा का शरीर न छिल जाये। (2) ताभि....राजा – यहाँ पर वारिमध्यप्रविष्टः शब्द स्नान करते हुये राजा एवं जंगली हाथी दोनों का विशेषण है। स्नान करता हुआ राजा उन्नत–कुच–कलशों वाली वारांगनाओं से घिरा हुआ है और नदी आदि में नहाता हुआ हाथी उन्नत कुम्भ स्थल वाली हथिनियों से घिरा रहता है। (3) प्रस्तुत गद्य में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण द्वारा राजा शूद्रक के स्नानपीठ पर आरूढ होने एवं वहाँ पर उसे वारयोषाओं के द्वारा विलासपूर्वक स्नान करवाये जाने का मनोरम चित्रण किया गया है।

ततस्ताः काश्चिन्मरकतमणि–कलस–प्रभाश्यामायमाना नलिन्य इव मूर्तिमत्यः पत्त्रपुटैः, काश्चिद्रजतकलसहस्ता रजन्य इव पूर्णचन्द्रमण्डलविनिर्गतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण, काश्चित् कलसोत्क्षेप–श्रम–स्वेदार्द्रशरीरा जलदेवता इव स्फाटिकैः कलसैस्तीर्थजलेन, काश्चिन्मलयसरित इव चन्दनस्त्ररसमिश्रेण सलिलेन, काश्चिदुत्क्षिप्त–कलस–पार्श्व–विन्यस्त–हसतपल्लवाः प्रकीर्य्यमाणनख–मयूख–जालकाः प्रत्यङ्गुलि–विवर–विनिर्गत–जलधारा सलिलयन्त्रदेवताः इव, काश्चिज्जाड्यमपनेतुमाक्षिप्त–बालातपेनेव दिवसश्रिय इव कनककलशहस्ताः कुङ्कुमजलेन वाराङ्गना यथायथं राजानमभिषिषिचुः।

अनुवाद – तब (स्नान पीठ पर राजा के बैठ जाने के बाद) उन विभिन्न प्रकार की वेश्याओं ने राजा को यथायोग्य रीति से स्नान कराया जिनमें कुछ मरकतमणि के बने हुए कलशों की श्याम कान्ति से श्यामवर्ण की होती हुई मानो शरीरधारिणी कमलिनियाँ पत्रपुटों से स्नान करा रही हों, कुछ चाँदी के कलशों को हाथ में लिए हुए थीं अतः मानों रातें पूर्णचन्द्रमण्डल से निकले चाँदनी के प्रवाह से राजा को स्नान करा रही हों, कुछ कलशों को उठाने के परिश्रम से निकले पसीने से भोगे शरीर वाली थीं अतः मानों जलदेवियाँ स्फटिक मणि के कलशों से तीर्थों के जल से राजा को स्नान करा रही हों, कुछ चन्दन रस से मिले हुए पानी से राजा को स्नान कराती हुईं मानों मलयाचल की नदियाँ थीं, कुछ वे जिन्होंने उठाए हुए कलशों क पार्श्व में दोनों ओर कररूपी पल्लव रख लिए थे, जिनसे नाखूनों की किरणों का समुदाय फैल रहा था और जिनके प्रत्येक अंगुली के विवर मध्य भागस्थ छिद्र से जलधारायें निकल रही थीं, वे मानों सलिलयन्त्र (फुहारें) की देवी थीं, कुछ जिनके हाथ में सोने के कलश थे केसर–मिश्रित जल से स्नान करा रही थीं, मानों दिनलक्ष्मी अधिक स्नान करने से उत्पन्न शीत को दूर करने के लिए प्रातःकालीन सूर्य की धूप से अर्थात् हल्की धूप द्वारा राजा को स्नान करा रही हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – श्यामायमाना – श्याम + क्यङ् + शानच्; उत्क्षेप – उद् + क्षिप् + घञ्; विन्यस्त – वि + नि + अस् + क्त; जाड्य – जड + ष्यञ्; आक्षिप्त आ + क्षिप् + क्त; अभिषिषिचुः – अभि + सिच् + लिट्, प्रथम पुरुष, बहुवचन;

विशेष – (1) काश्चित्... पत्रपुटैः – कुछ वेश्याएं हाथों में लिये गये मरकतमणि के कलशों से राजा को स्नान करा रही थी। मरकतमणि की श्यामकान्ति के सम्पर्क से उनके शरीर भो श्याम प्रतीत हो रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो देहधारिणी कमलिनियाँ अपने पत्रपुटों द्वारा राजा को स्नान करा रही हों। (2) काश्चित्.....सलिलयन्त्रदेवता इव – प्रस्तुत अंश में अपने करकिसलय को कलश के मुख पर रखकर स्नान करवाती हुई वारयोषाएं मानों फव्वारे की देहधारिणी देवियों जैसी लग रही थी। कलश के मुँह पर रखी हुई अंगुलियों के कारण जल की अनेक धाराएँ निकल रही थी जो फव्वारे का–सा दृश्य उत्पन्न कर रही थी। (3) सम्पूर्ण गद्यांश में कवि ने राजा को स्नान करवाती हुई वेश्याओं के विविध विलासों की सुन्दर कल्पना प्रस्तुत की है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक द्वारा स्नान कर देवाराधन का वर्णन महाकवि बाण द्वारा किया गया है।

अनन्तरमुदपादि च स्फोटयन्निव श्रुतिपथमनेक – प्रहत – पटु – पटह – झल्लरी – मृदङ्ग – वेणुवीणागीत – निनादानुगम्यमानो वन्दिवृन्द – कोलाहलाकुलो भुवन – विवरव्यापी स्नानशंखानामापूर्य्यमाणानामतिमुखरो ध्वनिः।

एवञ्च क्रमेण निर्वर्तिताभिषेको विषधरनिर्म्मोक–परिलघुनी धवले परिधाय धौतवाससी शरदम्बरैकदेश इव जलक्षालन–निर्मलतनुः अतिधवल–जलधर–च्छेद–शुचिना दुकूलपटपल्लवेन तुहिनगिरिरिव गगनसरित्स्रोतसा कृतशिरोवेष्टनः सम्पादित–पितृजलक्रियो मन्त्रपूततोयाञ्जलिना दिवसकरमभिप्रणम्य देवगृहमगमत्।

अनुवाद – इस राजा के स्नान के बाद बजाये जाते हुए स्नानशंखों की बहुत तेज आवाज होने लगी, जो श्रुतिपथ (कणकुहरों) को फोड़ती हुई सी थी, भवन–विवर (पृथ्वी और आकाश के मध्यभाग) को व्याप्त करती हुई थी, जिसके पीछे अनेक लोगों द्वारा बजाए गए नगाड़ों, झांसों, मृदंगों, बांसुरियों और वीणाओं की आवाज तथा मंगलपाठकर्ताओं के गीतों की आवाज हो रही थी, जो वन्दी लोगों के समुदाय के कोलाहल से युक्त थी।

इस प्रकार क्रमशः स्नान सम्पन्न करके सांप की केंचुल के समान अत्यन्त हल्के, उज्ज्वल तथा धुले हुए दो वस्त्रों को पहन कर पानी से धुल जाने के कारण स्वच्छ शरद् ऋतु के आकाश के भाग के समान जलस्नान से स्वच्छ शरीरवाला, अत्यन्त धवल बादल के टुकड़े के समान स्वच्छ रेशमी वस्त्र के किनारे से सिर को लपेटे हुए, पगड़ी पहने हुए, वह आकाश गंगा की धारा से संयुक्त हिमालय पर्वत के समान शोभायुक्त होता हुआ, पितरों को जलतर्पण सम्पन्न करके मन्त्रों से पवित्र जलपूर्ण अञ्जलि द्वारा सूर्य को सामने से प्रणाम करके अर्थात् सूर्य को जलार्घ्य देकर देव–मन्दिर की ओर चल दिया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – परिधाय परि + धा + ल्यप्; अगमत्गम् + लङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन;

विशेष – (1) अतिधवल....शिरोवेष्टनः – राजा अत्यन्त धवल पगड़ी बांधे ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों आकाश गंगा की उज्ज्वल धाराओं को अपनी चोटियों पर लपेटे हुए हिमालय पर्वत हो। राजा की उजली रेशमी पगड़ी और आकाश गंगा की धवल धारा में तथा सिर पर पगड़ी धारण करने वाले राजा और चोटियों पर आकाश गंगा की धारायें धारण करने वाले हिमालय पर्वत में सुन्दर समानता है। (दुकूलपट्टपल्लव – इसकी दो प्रकार से व्याख्या की है 1. रेशमी वस्त्र रूपी पल्लव, 2. रेशमी वस्त्र का विस्तार अर्थात् पगड़ी के रूप में प्रयुक्त होने वाला लम्बा रेशमी वस्त्र। दूसरी व्याख्या के समर्थन में त्रिकाण्ड शेष कोश द्रष्टव्य है – 'पल्लवो विस्तरे पिङ्गे किसले विटपे वने।' (3) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा अलंकार का उपयोग हुआ है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक द्वारा देवपूजा के अनन्तर अपने दैनिक शृंगार आदि कार्यों से निवृत्त होकर अन्य राजाओं के साथ भोजन करने का वर्णन किया गया है।

उपरचित – पशुपतिपूजश्च निष्क्रम्य देवगृहान्निर्वर्तिताग्निकार्यो विलेपनभूमौ झङ्कारिभिरलिकदम्बकैरनुबध्यमानपरिमलेन मृगमद – कर्पूर – कुङ्कुमवास – सुरभिणा चन्दनेनानुलिप्तसर्वाङ्गो विरचितामोदि – मालतीकुसुमशेखरः कृतवस्त्रपरिवर्तो रत्नकणपूरमात्राभरणः समुचितभोजनैःसह भूपतिभिराहारमभिमत – रसास्वाद – जातप्रीतिरवनिपो निर्वर्त्तयामास।

अनुवाद – देवालय में शिवजी की पूजा सम्पन्न करने के बाद मन्दिर से बाहर निकल कर, होमादि कार्य समाप्त करके विलेपनभ्मि (प्रसाधनकक्ष) में ऐसे चन्दन से सारे शरीर में लेप करवाया जिसकी सुगन्ध झंकारयुक्त भोरों द्वारा उपसेवित की जा रही थी, जो कस्तूरी, कपूर तथा केसर की सुगन्ध से सुगन्धित था; सुगन्धित चमेली के फूलों का शिरोभ्षण धारण किये हुए वस्त्रों को बदल करके, केवल कान के आभ्षणों को धारण किये हुए राजा शूद्रक ने अपने साथ भोजन करने योग्य राजाओं के साथ अभोष्ट रुचिकर रास के आस्वाद से सन्तुष्ट होते हुए भोजन सम्पन्न किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निष्क्रम्य निस् + क्रम + क्त्वा + ल्यप्;

विशेष – (1) विलेपनभ्मि – प्रसाधन कक्ष, वह स्थान जहाँ शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए तैयार किये गये विभिन्न सुगन्धित पदार्थों के लेप आदि अंगों पर लगाने के लिए तैयार रखे जाते थे। (2) प्रस्तुत गद्यांश से तत्कालीन राजाओं की दिनचर्या पर उल्लेखनीय प्रकाश पड़ता है।

प्रसंग – भोजन करने के पश्चात् राजा शूद्रक सभामण्डप म प्रविष्ट होता है। यहाँ पर सभामण्डप का भव्य वर्णन महाकवि बाणभट्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

परिपीतधूमवर्त्तिरुपस्पृश्य च गृहीतताम्बूलस्तस्मात् प्रमृष्ट – मणि – कुट्टिम – प्रदेशादुत्थाय नातिदूरवर्त्तिन्या ससम्भ्रम–प्रधावितया प्रतीहार्य्या प्रसारितं बाहुम् अवलम्ब्यानवरतवेत्रलताग्रहण – प्रसङ्गादतिजरठ – किसलयानुकारि – करतलं करेण, अभ्यन्तरसञ्चार – समुचितेन परिजनेनानुगम्यमानो धवलांशुक – परिगतपर्य्यन्ततया स्फटिक – मणिमय – भित्ति – बद्धमिवोपलक्ष्यमाणम्, अतिसुरभिणा मृगनाभिपरिमलेनामोदिना चन्दनवारिणा सिक्तशिशिरमणिभूमिम्, अविरलविप्रकीर्णेन विमल – मणिकुट्टिम – गगनतलतारागणेनेव कुसुमोपहारेण निरन्तरनिचितम्, उत्कीर्णशालभञ्जिकानिवहेन सन्निहितगृहदेवतेनेव गन्धसलिलक्षालितेन कलधौतमयेन स्तम्भसञ्चयेन विराजमानम्, अतिबहलागुरु – धूप – परिमलम्, अखिलविगलित–जलनिवह–धवल–जलधर–शकलानुकारिणा कुसुमामोदवासित–प्रच्छदपटेन, पट्टोपधानाध्यासितधिरोधाम्ना, मणिमयप्रतिपादुकाप्रतिष्ठितपादेन पार्श्वस्थ–रत्नपादपीठेन तुहिनगिरिशिलातल–सदृशेन शयनेन सनाथीकृतवेदिकं भुक्त्वास्थानमण्डपमयासीत्।

अनुवाद – भोजन करने के बाद धूमवर्तिका के समान कोई वस्तुविशेष को पीकर आचमन करके, ताम्बूल ग्रहण करके उस स्वच्छ मणि–जटित स्थान से उठ कर, पास में स्थित, घबरा कर तेजी से दौड़ती हुई द्वारपालिका द्वारा फैलाई गई भजाएँ जो सदा बेंत की छड़ी पकड़ने के अभ्यास से अत्यन्त कठोर पल्लव का अनुकरण करने वाले अर्थात् उसके समान करतलों वाली थीं, उनको अपने हाथ से पकड़ कर अर्थात् उनका सहारा लेकर, महल के भोतर चलने के योग्य सेवकों द्वारा अनुगमन किया जाता हुआ अर्थात् जिसके पीछे–पीछे नौकर चल रहे हैं, वह राजा ऐसे सभामण्डप में पहुँचा, जो श्वेत रेशमी वस्त्र से घिरे हुए किनारों वाला होने के कारण मानों स्फटिक मणियों की दीवारों से घिरा हुआ दिखाई दे रहा था; जो अत्यन्त सुगन्धित कस्तूरी से मिश्रित अत एव अतिशय सुगन्धित चन्दन–मिश्रित जल से सीचीं गईं शीतल मणियों से जटित भ्मिवाला था; जो घने बिखरे हुए, निर्मल मणिमय

फश जो आकाशतल के सदृश था वह तारागणों के समान फूलों के समुदाय से खूब भरा हुआ था; जो खुदी हुई ऊपर नक्काशी करके बनाई गई पुत्तलियों के समूहवाले अत एव मानों गृहाधिष्ठात्री देवियों से युक्त, सुगन्धित जल से धोये गए, सोने के बने हुए खम्भों के समुदाय से शोभायुक्त प्रतीत हो रहा था; जो बहुत अधिक अगुरु (अगरबत्तियों) की धूप की सुगन्धवाला था; जो सारे जलसमूह के बरस जाने से अति स्वच्छ बादल के टुकड़े का अनुकरण करने वाले अर्थात् उसके समान फूलों की सुगन्ध से सुगन्धित चादर वाले, रेशमी उपधान ;तकियाद्ध से युक्त सिराहने वाले; मणिमय प्रतिपादुकाओं पर रखे गये पादों वाले, पास ही रखे हुए रत्नजटित पायदान वाले, हिमालय पर्वत के शिलातल के समान पलंग से सज्जित–वेदिका (चबूतरा) से युक्त था। ऐसे सभाभवन में राजा ने प्रस्थान किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उपस्पृश्य – उप + स्पृश् + क्त्वा (ल्यप्); परिगत – परि + गम् + क्त; भक्त्वा – भज् + क्त्वा; विराजमानम् – वि + राज + शानच्; अयासीत् – या (प्रापणे) + लुङ, प्रथमपुरुष, एकवचन।

विशेष – (1) प्रमृष्टप्रदेशात् – इससे ज्ञात होता है कि भोजन फश पर बैठकर किया जाता था अतः झूठन की सफाई के लिए फश को गीले कपड़े से पोंछ कर फर्श साफ किया जाता था। (2) अभ्यन्तरं....समुचितेन – इससे ज्ञात होता है कि बाण के समय में कुछ विशिष्ट सेवकों को ही राजभवन के भोतर स्थित सभामण्डप में जाने का अधिकार होता था। (3) मृगनाभिः – अर्थात् कस्तूरी, हरिण की नाभि में पाया जाने के कारण इसका नामकरण मृगनाभि किया गया प्रतीत होता है। (4) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा अलंकार का प्रयोग द्रष्टव्य है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक द्वारा विश्राम किये जाने एवं वैशम्पायन शुक को पुनः अन्तःपुर से लाने का वर्णन प्राप्त होता है।

तत्र च शयने निषण्णः क्षितितलोपविष्टया शनैः शनैरुत्सङ्ग–निहितासिलतया खड्गवाहिन्या नव–नलिन–दल–कोमलेन करसम्पुटेन संवाह्यमानचरणस्तत्कालोचितदर्शनैरवनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन् मुहूर्त्तमिवासाञ्चक्रे।

ततो नातिदूरवर्त्तिनीम् 'अन्तःपुराद्वैशम्पायनमादायागच्छ' इति समुपजाततद्वृत्तान्तप्रश्न–कुतूहलो राजा प्रतीहारीमादिदेश।

अनुवाद – उस सभा भवन में पलंग पर बैठा हुआ राजा, जिसके पैर, जमीन पर बैठी हुई, गोद में तलवार को रखी हुई तलवार–धारिणी सेविका द्वारा नवीन कमलपत्र के समान कोमल दोनों हाथों से दबाये जा रहे थे; उस समय दर्शन (साक्षात्कार) करने योग्य राजाओं, मन्त्रियों तथा मित्रों के साथ उन उन नाना प्रकार की बातें करता हुआ कुछ देर तक बैठा रहा।

इसके बाद उस वैशम्पायन शुक के वृत्तान्त को पूछने के लिये उत्पन्न हुई उत्कण्ठा वाले राजा ने समीपवर्तिनी द्वारपालिका को 'अन्तःपुर से वैशम्पायन को लेकर आओ' ऐसी आज्ञा दी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निषण्णः – नि + सद् + क्त; आसांचक्रे – आस् (उपवेशने) + लिट् प्रथमपुरुष, एकवचन; आदिदेश – आ + दिश + लिट् प्रथमपुरुष, एकवचन।

विशेष – (1) प्रस्तुत गद्यांश में राजोचित व्यवहार का निदर्शन प्राप्त होता है।

प्रसंग – प्रस्तुत अंश में प्रतिहारी द्वारा राजाज्ञा को शिरोधार्य कर वैशम्पायन को राजा के पास लाये जाने का वृतान्त वर्णित है।

सा क्षितितल–निहित–जानु–करतला 'यथाज्ञापयति देवः' इति शिरसि कृत्वाज्ञां यथादिष्टमकरोत्।

अथ मुहूर्त्तादिव वैशम्पायनः प्रतीहार्य्या गृहीतपञ्जरः कनकवेत्रलतावलम्बिना किञ्चिदवनतपूर्वकायेन सितकञ्चुकावच्छन्नवपुषा जराधवलितमौलिना गद्गदस्वरेण

मन्दमन्दसञ्चारिणा विहङ्गजातिप्रीत्या जरत्कलहंसेनेव कञ्चुकिनानुगम्यमानो राजान्तिकमाजगाम।

अनुवाद – जमीन पर अपने घुटनों और करतलों को रखती हुई उस द्वारपालिका ने 'महाराज की जैसी आज्ञा वैसी करती हूँ'' यह कहकर आज्ञा को सिर पर धारण करके राजा की आज्ञानुसार कार्य कर दिया।

इसके बाद थोड़ी ही देर में वैशम्पायन राजा के पास आ गया। प्रतीहारी ने उसका पिंजरा पकड़ा था, और स्वर्णजटित बेंत की छड़ी का सहारा लिये हुए, कुछ झुके हुए शरीर के पूर्वभाग वाला, सफेद कंचुक से आच्छादित शरीरवाला, बुढ़ापे के कारण सफेद हुए सिर के बाल वाला, गद्गद (अस्पष्ट) कण्ठस्वर वाला, धीरे–धीरे चलने वाला, पक्षित्व जाति से प्रेम के कारण बूढ़े कलहंस (राजहंस) के समान कञ्चुकी उसके (वैशम्पायन) पीछे–पीछे चल रहा था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अनुगम्यमानः–अनु+ गम् + शानच्; राजान्तिकम् आजगाम – आ + गम् + लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन–यहाँ पर गत्यर्थक गम् धातु के योग में अन्तिकम् में द्वितीया विभक्ति हुई है;

विशेष – (1) यहाँ पर **कनकवेत्रावलम्बिना** से **मन्दमन्दसंचारिणा** तक के समस्त विशेषण समान रूप से कञ्चुकिना और जरत्कलहंस दोनों के लिये प्रयुक्त किये गए हैं। बूढा कंचुकी सोने की छड़ी धारण करने वाला है वहीं राजहंस सुनहरी वेत्रलताओं का आश्रय लेने वाला है। दोनों का ऊपरी भाग झुका हुआ है। दोनों का ही स्वर अस्पष्ट एवं वार्धक्य के कारण गति मन्द है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में कञ्चुकी राजा शूद्रक से निवेदन करता है कि वैशम्पायन स्नानादि कार्यों से निवृत्त हो चुका है तथा उसने सम्यक् रूप से भोजन कर लिया है।

क्षितितल–निहितकरतलस्तु कञ्चुकी राजानं व्यज्ञापयत्'देव! देव्यो विज्ञापयन्ति, देवादेशादेष वैशम्पायनः स्नातः कृताहारश्च देवपादमूलं प्रतीहार्य्या नीत' इत्यभिधाय गते च तस्मिन् राजा वैशम्पायनमपृच्छत्'कच्चित् अभिमतमास्वादितमभ्यन्तरे भवता किञ्चिदशनजातम्?' इति।

स प्रत्युवाच'देव किं वा नास्वादितम्?' आमत्त–कोकिल–लोचनच्छविर्नीलपाटलः कषायमधुरः प्रकाममापीतो जम्बूफलरसः, हरि–नखभिन्न–मत्तमातङ्गकुम्भ–मुक्तरक्तार्द्र–मुक्ताफलत्वींषि खण्डितानि दाडिम–बीजानि, नलिनीदल–हरिन्ति द्राक्षाफल–स्वादूनि च दलितानि स्वेच्छया प्राचीनामलकीफलानि। किं वा प्रलपितेन बहुना, सर्वमेव देवीभिः स्वयं करतलोपनीयमानममृतायते' इति।

अनुवाद – वह शुक बोला 'महाराज! मैने क्या नहीं खाया? अर्थात् सभो कुछ खाया। मधुपान से उन्मत्त कोयल के नेत्रों की कान्ति के समान कान्ति वाले, नीले और पाटल, कसैले–मीठे जामुन के फलों के रस को यथेष्ट पिया है; सिंह के नाखूनों से फाड़े गए मत्त हाथी के कुम्भ–स्थल से निकले हुए खून से आर्द्र मोतियों की कान्ति सदृश कान्ति वाले अनार के दानों को चोंच से कुतरा; उनका स्वाद चखा; कमलिनी के पत्तों के समान हरे, द्राक्षाफल के समान स्वाद वाले पुराने आँवलों को अपनी इच्छा से चूर्ण किया; चबा चबाकर खाया। अधिक कहने से क्या लाभ? महारानियों द्वारा स्वयं अपने हाथों से दिय गये सारे भोजन अमृत के समान हो जाते हैं।''

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अमृतायते – अमृत + क्यङ् – यहँ क्यङ् प्रत्यय के प्रयोग के कारण आत्मने पद हो गया है। व्यज्ञापयत् – वि + ज्ञा + णिच् + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन; अभिधाय – अभि + धा + ल्यप्; अभिमतम् – अभि + मा + क्त; उपनीयमानम् – उप + नी + शानच्;

विशेष – (1) किं वा नास्वादितम्? – राजा द्वारा वैशम्पायन से अभोष्ट भोजन के आस्वादन सम्बन्धी प्रश्न का प्रत्युत्तर उसने विदग्धतापूर्वक प्रश्न के माध्यम से ही दिया है। मैंने

किसका आस्वादन नहीं किया अर्थात् सभो भोज्य सामग्री का आस्वाद मैंने प्राप्त किया है। (2) पाटलः – गुलाबी अथवा लाल–सफेद का मिश्रण – 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः'। (3) प्रस्तुत अंश में उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में राजा शूद्रक वैशम्पायन से उसके देश, जन्म, नामकरण, माता–पिता का परिचय, शास्त्राध्ययन आदि विषयों के बारे में विस्तारपूर्वक बतलाने को कहते हैं।

एवंवादिनो वचनमाक्षिप्य नरपतिरब्रवीत्आस्तां तावत् सर्वम्, अपनयतु नः कुतूहलम्, आवेदयतु भवानादितः प्रभृति कात्स्र्येनात्मनो जन्म कस्मिन् देशे? भवान् कथं जातः? केन वा नाम कृतम्? का ते माता? कस्ते पिता? कथं वेदानामागमः? कथं शास्त्राणां परिचयः? कुतः कला आसादिताः? किंहेतुकं जन्मान्तरानुस्मरणम्? उत वरप्रदानम्, अथवा विहगवेष–धारी कश्चिच्छन्नो निवससि? क्व पूर्वमुषितम्? कियद्वा वयः? कथं पञ्जरबन्धनम्? कथं चण्डालहस्तगमनम्? इह वा कथमागमनम्?

वैशम्पायनस्तु स्वयमुपजातकुतूहलेन सबहुमानमवनिपतिना पृष्टो मुहूर्त्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्''देव। महतीयं कथा, यदि कौतुकमाकर्ण्यताम्''

अनुवाद – इस प्रकार से कहने वाले तोते की बात को बीच में रोककर राजा शूद्रक बोले – ''यह सब रहने दीजिये; हम लोगों की उत्कण्ठा शान्त कीजिए; आप आदि से लेकर अपना सारा वृत्तान्त कहिये – किस देश में आपका जन्म हुआ? आप किस प्रकार उत्पन्न हुए? किसने आपका यह नाम रखा? आप की माता कौन है? आपके पिता कौन हैं? वेदों का अध्ययन कैसे हुआ? शास्त्रों का ज्ञान कैसे हुआ? किससे कलाएँ सीखीं? पूर्ववर्त्ती जन्म के स्मरण का क्या कारण है? अथवा पूर्व जन्म का स्मरण रखना वर प्राप्ति है। ? अथवा पक्षी का वेश धारण किये हुए आप गुप्त रूप से कोई रह रहे हैं? इससे पहले कहाँ रहते थे ? आपकी अवस्था कितनी है? पिंजरे में कैसे पकड़कर बन्धन में डाले गये? चाण्डाल के हाथ में कैसे आए? और यहाँ किस प्रकार आये?

स्वयं उत्पन्न कुतूहल वाले राजा शूद्रक द्वारा बहुत अधिक सम्मानपूर्वक पूछे जाने पर उस वैशम्पायन शुक ने कुछ देर सोच कर आदरसहित कहा 'महाराज! यह लम्बी कथा है, यदि कौतूहल है तो सुनिये।''

व्याकरणात्मक टिप्पणी – छन्नः – छद् + क्त; उषितम् – वस् + क्तः; आगमनम् – आ + गम् + ल्युट् (अन्)।

विशेष – (1) प्रस्तुत गद्यांश महाकवि बाणभट्ट की व्यासप्रधान शैली का सुन्दर उदाहरण है। असमस्त एवं छोटे समासों से युक्त लघु–लघु वाक्यों के द्वारा शुक के विषय में प्रश्न पूछे गये हैं और प्रश्नों में भो एक के बाद एक प्रश्न माला के स्वरूप में उपस्थापित किये गये हैं। जिससे राजा के शुक सम्बन्धी कौतूहल की अधिकता अभिव्यक्त होती है।

3.3 पारिभाषिक शब्दावली

चक्रवर्तिलक्षणोपेतः – सामुद्रिक शास्त्र से चक्रवर्ती राजा के हाथ पैर आदि में शंख चक्र आदि विशेष प्रकार के चिह्न बताये गये हैं, शूद्रक उन लक्षणों से युक्त था।

नाम्नैव.....वासुदेवम् – इसका तात्पर्य यह है कि शूद्रक का तो नाम सुनने मात्र से ही शत्रुओं के हृदय विदीर्ण हो जाते थे जबकि शत्रु हिण्यकशिपु का वक्षःस्थल विदीर्ण करने के लिये विष्णु को नृसिंह का आडम्बर करना पड़ा था।

अभिसारिका का लक्षण साहित्य दर्पण में निम्नानुसार है

अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।
स्वयं वाभिरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका।।

मकरध्वजे चापध्वनिः– भाव यह है कि पुष्पधन्वा कामदेव युवा–जनों को लक्ष्य करके बाण चलाता था तो धनुष का शब्द होता था अन्यथा सर्वत्र शान्ति होने के कारण वास्तविक धनुष की टंकार नहीं सुनाई पड़ती थी।

सङ्गीतकम् – गोत, नृत्य और वाद्य इन तीनों को सम्मिलित रूप से सङ्गीतक कहा जाता है – 'गीतं नृत्तं च वाद्यं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते' इति सङ्गीतरत्नाकरः।

त्रिशङ्कु – एक सूर्यवंशी राजा जिसने वशिष्ठ से सदेह स्वर्ग भेजने की प्रार्थना की थी। वशिष्ठ के मना करने पर विश्वामित्र ने उसे मन्त्र–बल से सदेह स्वर्ग भेजना प्रारम्भ किया किन्तु इन्द्र ने उसे बीच में ही रोक दिया। इस प्रकार वह पृथ्वी और स्वर्ग के बीच में ही लटका रहा।

मधुकैटभ – मार्कण्डेय पुराण के अनुसार इन दोनों राक्षसों की उत्पत्ति विष्णु के कान के मैल से मानी जाती है। इन राक्षसों ने जब ब्रह्मा को मार डालना चाहा तब भगवान नारायण ने इनसे पाँच हजार वर्ष तक युद्ध कर इन्हें पराजित किया।

3.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध–प्रश्न

1. यश्च मनसि धर्म्मेण, ...भगवतो नारायणस्य।
   उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
2. सत्यपि रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे.....सुहृद्भिरुपेतो निशामनैषीत्।
   उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
3. ''देव! विदितसकलशास्त्रार्थः, ...पुरो निधाय पञ्जरमसावपससार।
   उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
4. स तस्याञ्च समानवयोभिः .....स्नानकलशैरुपशोभितां स्नानभूमिमगच्छत्।
   उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
5. परिपीतधूमवर्त्तिरुपस्पृश्य च.....सनाथीकृतवेदिकं भुक्त्वा स्थानमण्डपमयासीत्।
   उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।

बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्नों के उत्तर इकाई के 2.2 अंश से विद्यार्थी स्वयं खोजें ।

3.5 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमें महाकवि बाणभट्ट की गद्यशैली का ज्ञान हुआ। बाणभट्ट गद्य रचना की समस्तपदावलीबहुल समास शैली से युक्त है। बाण ने पाञ्चाली रीति का अधिक प्रयोग किया है । कादम्बरी एक विशद कथामुख वाली कहानी है । कादम्बरी नायक शूद्रक एक उत्कृष्ट राजा है । शूद्रक वैशम्पायन से उसके देश,जन्म, नामकरण, माता–पिता का परिचय शास्त्राध्ययन आदि विषयों बारे में विस्तारपूर्वक का भी ज्ञान हुआ है ।

3.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कादम्बरी (कथामुखपर्यन्ता), व्याख्याकार : भानुचन्द्रसिद्धचन्द्र गणि मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2002.
2. कादम्बरी (कथामुखम्), सं. आचार्य रामनाथ शर्मा 'सुमन, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1967.
3. कादम्बरी, सं. डॉ. जयशंकरलाल त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी वाराणसी–1993
4. कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल,चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1957.
5. कादम्बरी : इण्ट्रोडक्शन एण्ड नोट्स, पी. पेटरशन, बम्बई–1953.

इकाई – 4

विन्ध्याटवी वर्णन
(अस्ति पूर्वापर.....अकरोदशनम्)

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 कादम्बरी कथामुख की सप्रसंग व्याख्या (अस्ति पूर्वापर.....अकरोदशनम्)

4.3 पारिभाषिक शब्दावली

4.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.5 सारांश

4.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य छात्रों को उत्कृष्ट गद्य रचना से परिचित करवाना है।

- बाणभट्ट की समास बहुल गद्यशैली के वैशिष्ट्य को इंगित करना।
- कादम्बरी कथामुख भाग की विषय–वस्तु से अगवत करवाना।
- छात्रों में गद्य को पढ़कर उसके अर्थावगमबोध कौशल का विकास करना।

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में महाकवि बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी के कथामुख भाग के विन्ध्याटवी वर्णन से शुक जन्म वर्णन पर्यन्त भाग का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसमें विन्ध्यवन के प्राकृतिक दृश्यों को बड़े ही मनोरम ढंग से चित्रित किया गया है। कवि ने वन्य परिस्थितियों को पाठकों के सामने मानों साकार कर दिया है। साथ ही इसमें वैशम्पायन नामक शुक के जन्म का वर्णन भो किया गया है।

4.1 कादम्बरी कथामुख की सप्रसंग व्याख्या (अस्ति पूर्वापर..... अकरोदशनम्)

प्रसंग – महाकवि बाणभट्ट प्रकृति के कुशल चितेरे हैं। प्रस्तुत इकाई में उनके प्राकृतिक वर्णनों

सम्बन्धी कौशल का दर्शन पद–पद पर होता है। प्रस्तुत गद्यांश में भो विन्ध्याटवी का बहुत ही सुन्दर एवं मनोहारी चित्रण किया गया है, जो कि यथार्थपरक भो है। प्रकृति के सौम्य एवं भोषण दोनों ही रूपों का प्रतिपादन कवि ने एकत्र उपस्थापित किया है। विन्ध्याटवी के मनोहर एवं भोषण दृश्य को कवि ने अपने शब्दों से मानों साकार कर दिया हो।

अस्ति पूर्वापर–जलनिधि–वेलावनलग्ना मध्यदेशालङ्कारभूता मेखलेव भुवः, वनकरिकुल–मदजल–सेक–संवर्द्धितैरतिविकच–धवल–कुसुमनिकरमत्युच्चतया तारागणमिव शिखरदेशलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभिता, मदकल–कुररकुल–दश्यमान–मरिचपल्लवा, करिकलभ–करमृदित–तमालकिसलयामोदिनी, मधुमदोपरक्त–केरली–कपोल–च्छविना सञ्चरद्वनदेवताचरणालक्तक – रस – रञ्जितेनेव पल्लवचयेन संच्छादिता, शुककुल – दलितदाडिमीफल – द्रवार्द्रा – कृततलैरतिचपल–कपि–कम्पित–कक्कोल–च्युतपल्लव– फलशबलैः अनवरतनिपतितकुसुमरेणुपांसुलैः पथिक–जन–रचित–लवङ्गपल्लवसंस्तरैः,

अतिकठोर– नारिकेलकेतकी–करीरबकुल–परिगतप्रान्तैः, ताम्बूलीलतावनद्ध–पूग–खण्डमण्डितैर्वनलक्ष्मी – वास – भवनैरिव विराजिता लतामण्डपैः, उन्मद–मातङ्ग–कपोलस्थल– गलित–सलिल–सिक्तेनेव अनवरतमेलालतावनेन मदगन्धिनान्धकारिता, नव–मुख–लग्नेभकुम्भ– मुक्ताफल–लुब्धैः शबरसेनापतिभिरभिहन्यमानकेसरिशता,

अनुवाद – एक विन्ध्याटवी (विन्ध्याचल का वन) है, जो पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रों के तटों के वनों से लगी है, जो मध्य देश की आभषणस्वरूपा मानों पृथ्वी की मेखला हो, जो जंगली हाथियों के मदजल के सेचन के द्वारा खूब बढ़े हुए, बहुत अधिक ऊँचे होने के कारण, अत्यधिक विकसित फूलों के समूह को मानों शिखर प्रदेश पर सलंग्न तारागणों को धारण किए हुए वृक्षों से शोभायमान है; जिसमें मद आनन्द या मत्तता के कारण सुन्दर कुरर नामक पक्षियों के समुदाय द्वारा मिर्च के पत्ते काटे कुतरे जा रहे हैं; जो हाथियों के बच्चों की सूंडों द्वारा मसले गये तमाल के पत्तों की सुगन्ध से युक्त है; जो केरल की स्त्रियों के मदिरा के मद से रक्तवर्ण के गालों के समान सुन्दरतावाले इसीलिये मानों घूमती हुई वनदेवी के पैरों में लगे हुए महावर के रस से रंगे हुए पत्तों के समुदाय से ढकी हुई है; वह ऐसे लता–मंडपों से सुशोभित है जो तोतों के समूह द्वारा फाड़े गए अनारफलों के रस से गीले किए गए तल वाले हैं जो अत्यधिक चंचल बन्दरों द्वारा हिलाए गए कक्कोलनामक पेड़ों स गिरे हुए पत्तों और फलों से चितकबरे हैं, लगातार गिरने वाले पुष्पपराग से धूलियुक्त हैं, पथिकजनों द्वारा बनाए गए लौंग के पत्तों के बिछौनों से युक्त हैं, अत्यन्त कठोर नारियल, केतकी, करीर और बकुल से घिरे हुए प्रान्त भाग से युक्त हैं, ताम्बूललता पान की बेल से घिरे हुए सपारी के वृक्षों के समूह से अलंकृत, वनलक्ष्मी के भवनों के समान लतामण्डपों से सुशोभित हैं; जो मानों अतिमत्त हाथियों के कपोलस्थलों से गिरने वाले मदजल से लगातार सींचे गये इसीलिए मद की गन्धवाले, घने इलायची की लताओं के वन से अन्धकारयुक्त है, जहाँ सिंहों के नाखूनों के अगले हिस्से में लगे हुए हाथियों के कुम्भस्थल से निकले हुए मुक्ताफलों (मोतियों) के लोभी भील सेनापतियों द्वारा सैकड़ों सिंह मारे जाते हैं;

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पृष्टः – प्रच्छ् + क्त; उद्वहद्भिः – उत् + वह + शतृ, तृतीया, बहुवचन; मृदितः – मृद् + क्त, पांसुलः – पांस + लच्; संस्तरसम् + स्तृ + अप्; अवनद्धः – अव + नह् + क्त।

विशेष – (1) मध्यदेश – हिमालय और विन्ध्याचल के बीच का हिस्सा मध्यदेश कहलाता है। (2) प्रस्तुत वाक्य खण्ड में विन्ध्याटवी के लता–मण्डपों, इलायची के वनों तथा वहाँ के भील सेनापतियों द्वारा सिंहों का आखेट किये जाने का चित्रण हुआ है। वस्तुतः प्रस्तुत गद्यांश बाण के प्राकृतिक सौन्दर्यचित्रण की दक्षता को प्रतिपादित करता हैं। (3) प्रस्तुत गद्यांश में अनुप्रास, उत्प्रेक्षा एवं उपमा अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

प्रसंग – महाकवि बाण प्रकृति के समस्त रूपों को चित्रित करने में सिद्धहस्त है। प्रस्तुत गद्यांश में कवि ने प्रकृति के भीषण स्वरूप का दर्शन कराया है। कवि के वर्णन से मानों भीषणता पाठकों के सम्मुख साक्षात् उपस्थित हो गई हो।

प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्यु–भीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव बाणासनारोपितशिलीमुखा विमुक्त–सिंहनादा च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता च, कर्णीसुतकथेव सन्निहित–विपुलाचला शशोपगता च, कल्पान्तप्रदोषसन्ध्येव प्रनृत्यन्नीलकण्ठा पल्लवारुणा च, अमृतमथनवेलेव श्रीद्रुमोपशोभिता वारुणी–परिगता च, प्रावृडिव घनश्यामला अनेकशतह्रदालङ्कृता च,

अनुवाद – जो सदैव निकटवर्ती मृत्यु के कारण भयानक और यमराज के वाहन भसे से युक्त प्रेताधिपति यमराज की नगरी संयमिनी के समान है; विन्ध्याटवी पक्ष में – जो मृत्युकारक सिंह आदि के सदा समीप में रहने से भयानक है और जंगली भसों से युक्त हैं। जो वाणासन (धनुषों) पर चढ़ाए गये शिलीमुखों (भमरों) से युक्त और (योद्धाओ द्वारा) किए गए, सिंहसदृश गर्जनवाली युद्ध के लिए तत्पर सेना के समान है; जो चलते हुए खड्गों से भीषण और रक्त तथा चन्दन से सुशोभित कात्यायियनी दुर्गा के समान है; जो 'विपुल' और

'अचल' से युक्त और 'शश' (नामक मन्त्री) से युक्त कर्णीसुत (एक क्षत्रियविशेष) की कथा के समान है; जो नाचते हुए नीलकण्ठ से युक्त और पल्लवों के समान रक्तवर्णवाली युगान्तकालीन
सन्ध्या के समान है; जो श्री (लक्ष्मी) और द्रुम (कल्पद्रुम) से सुशोभित तथा वरुणी से युक्त अमृतमन्थन की वेला (समय) के समान है; जो घनों = बादलों से श्यामवर्णवाली और अनेक शतह्रदों = बिजलियो से अलंकृत वर्षा ऋतु के समान है;

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अधिष्ठिता – अधि + स्था + क्त + टाप्; अलंकृता – अलम् + कृ + क्त + टाप्।

विशेष – (1) कर्णीसुत....उपगता च – कर्णीसुत चौर्यशास्त्र का प्रवर्तक आचार्य बताया जाता है। बृहत्कथा के अनुसार विपुल और अचल नाम के उसके दो मित्र थे तथा शश नाम का मन्त्री था।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में बाणभट्ट ने विन्ध्याटवी के विविध दृश्यों का चित्रण प्रस्तुत किया है।

चन्द्रमूर्त्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, राज्यस्थितिरिव चमरमृग – बालव्यजनोपशोभिता समदगजघटा–परिपालिता च, गिरितनयेव स्थाणुसङ्गता मृगपतिसेविता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च, कामिनीव चन्दनमृगमदपरिमलबाहिनी रुचिरागुरु–तिलकभूषिता च, सोत्कण्ठेव विविधपल्लवानिलवीजिता समदना च, बालग्रीवेव व्याघ्रनखपङ्क्तिमण्डिता गण्डकाभरणा च, पानभूमिरिव प्रकटितम–धुकोशशता प्रकीर्णविवि–धकुसुमा च,

अनुवाद – जो सदा तारागणों से अनुगत (युक्त) और हरिण के चिह्न से युक्त चन्द्रमा की मूर्ति के समान है; जो चमर मृगों के बालों के व्यजन से शोभायुक्त और मदमत्त हाथियों के समूह से परिपालित राज्यस्थिति (राज्य की मर्यादा) के समान है; जो स्थाणु शंकरजी से युक्त और मृगपति सिंह द्वारा उपसेवित पार्वती के समान है; जो कुश और लव को उत्पन्न करने वाली और रावण से पकड़ी गयी सीता के समान है; जो चन्दन तथा मृगमद की सुगन्ध धारण करने वाली तथा सुन्दर अगुरु के तिलक से सजी हुई कामिनी के समान है; जो अनेक प्रकार के पल्लवों की हवा से सेवित और कामवासनायुक्त सोत्कण्ठित नायिका के समान है; जो बाघ के नाखूनों के समूह से युक्त और गण्डा से सजी हुई बालक की ग्रीवा के समान है; जो सैकड़ों मधुकोशों को प्रकाशित करने वाली और अनेक प्रकार के बिखरे हुए फूलों वाली मद्यपानभ्मि के समान है;

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अनुगता – अनु + गम् + क्त + टाप्; अध्यासिता – अधि + आस्+ क्त + टाप्; मण्डिता – मण्ड् + क्त + टाप्। परिगृहीता – परि + ग्रह् + क्त + टाप्।

विशेष – (1) बाल....आभरणा च – भ्त प्रेतादि की बाधा से बच्चों को बचाने के लिए बच्चों के गले में व्याग्र नख, गण्डा, ताबीज आदि बांधे जाने को परम्परा आज भो विद्यमान है। इस उपमा के माध्यम से बाणभट्ट के समय भो इस प्रथा के अस्तित्व की जानकारी प्राप्त होती है। (2) प्रस्तुत गद्यांश में सर्वत्र उपमा अलंकार का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में विन्ध्य वन के विविध दृश्यों का चित्रण कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्राकृतिक दृश्यों को मनोरम स्वरूप में उपस्थित किया गया है।

क्वचित् प्रलयवेलेव महावराह–दंष्ट्रा–समुत्खात–धरणिमण्डला, क्वचिद्दशमुखनगरीव चाटुलवानरवृन्द–भज्यमान–तुङ्गशालाकुला, क्वचिदचिरनिर्वृत्त–विवाह–भूमिरिव हरित–कुश– समित्–कुसुम–शमी–पलाशशोभिता, क्वचिदुन्मत्त–मृगपति–नाद–भीतेव कण्टकिता, क्वचिन्मत्तेव कोकिलकुल–कलप्रलापिनी, क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेगकृत–तालशब्दा, क्वचिद्विधवेव उन्मुक्ततालपत्रा, क्वचित् समरभूमिरिव शर – शतनिचिता, क्वचिदमरपतितनुरिव नेत्रसहस्र–सङ्कुला, क्वचिन्नारायणमूर्त्तिरिव

तमालनीला, क्वचित् पार्थरथपताकेव वानराक्रान्ता, क्वचिदवनिपति –द्वारभूमिरिव वेत्रलताशतदुष्प्रवेशा, क्वचिद्विराटनगरीव कीचकशताकुला, क्वचिदम्बरश्रीरिव व्याधानुगम्यमान–तरल–तारक–मृगा, क्वचिद्गृहीतव्रतेव दर्भ–चीर–जटा–वल्कल–धारिणी, अपरिमित बहलपत्रसञ्चयाऽपि सप्तपर्णभूषिता, क्रूरसत्त्वाऽपि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम।

अनुवाद – जो कहीं पर महावराह की दाढ़ द्वारा उखाड़ी गई पृथ्वी के मण्डल से युक्त प्रलयकाल के समान है; जो कहीं पर चंचल बन्दरों द्वारा तोड़ी जाती हुई ऊँची और विशाल शालाओं से युक्त रावण की नगरी लंका के समान है; जो कहीं पर हरे कुश, समिधा फूल, शमी और पलाश से शोभायमान तत्काल सम्पन्न विवाह–स्थल के समान है; जो कहीं पर दुर्वृत्त क्रूर मृगपति की नाद से डरी हुई कण्टकित स्त्री के समान है; जो कहीं पर कोयलसमूह के समान मधुर आवाज करने वाली मत्त स्त्री के समान है; जो कहीं पर वायुवेग (रोग) के कारण ताली बजाने वाली उन्मत्त स्त्री के समान है; जो कहीं पर तालपत्रों को छोड़ देने वाली विधवा स्त्री के समान है; जो कहीं पर सैकड़ों शरों से युक्त युद्धभ्मि के समान है; जो कहीं पर हजारों नेत्रों से व्याप्त इन्द्र के शरीर के समान है; जो कहीं पर तमालपत्र के समान नील = श्याम वर्णवाली विष्णु की मूर्ति के समान है; जो कहीं पर कपि (हनुमान) से आक्रान्त
(अधिष्ठित) अर्जुन के रथ की पताका के समान है; जो कहीं पर सैकड़ों वेंत्रलताओं के कारण बहुत कष्ट से प्रवेश करने योग्य राजा के द्वारस्थान के समान है; जो कहीं पर सैकड़ों कीचकों (मत्स्यराज के सालों) से युक्त विराटनगरी के समान है; कीचक पोले बांस जिनमें हवा भर जाने पर आवाज हुआ करती है उनसे युक्त है। जो कहीं पर व्याघ्र का रूप धारण करने वाले शिवजी द्वारा पीछा किये जाते हुए अत एव भय से व्याकुल तारकमृग (मृगशिरा नामक नक्षत्र) से युक्त आकाश की श्री सुन्दरता के समान है; (विन्ध्याटवी – व्याधों द्वारा पीछा किये जाने के कारण चञ्चल तारक आँख की पुतली वाले मृगों से युक्त है।) जो कहीं पर दभ = कुश, चीर = वस्त्रखण्ड, जटा और वल्कल = पेड़ों की छाल को धारण करने वाली व्रतानुष्ठानकर्त्री स्त्री के समान हैं; जो असीमित और अत्यधिक पल्लवों के समूह वाली होकर भो सप्तपर्ण से सुशोभित है, जो क्रूरसत्त्व वाली होकर भो मुनिजनों से उपसेवित है; जो पुष्पवती = रजोधर्म से युक्त होती हुई भो पवित्र है, (विरोध का परिहार – पुष्पवती = फूलों से युक्त है।) (इस प्रकार की एक विन्ध्याटवी = विन्ध्याचल का वन) है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – समुत्खात – सम् + उत् + खन् + क्त; कण्टकिता – कण्टक + इतच्; आक्रान्ता – आ + क्रमु + क्त + टाप्।

विशेष – (1) क्वचित्.....मण्डला – यहाँ पर विष्णु के वराहावतार का संकेत मिलता है जब प्रलयकाल में जल में डूबी हुई पृथ्वी को वराह रूप धारी भगवान् विष्णु ने जल से ऊपर उठाया था। विन्ध्याटवी में जंगली सूअरों ने अपने दांतों से पृथ्वी को खोद रखा था। (2) वायुवेगकृततालशब्दा – वायु रोग से ग्रसित रोगी वात के कारण अकारण ही तालियाँ बजाने जैसी निरर्थक क्रियाएँ करने लगता है। विन्ध्याटवी में भो वायुवेग के कारण ताड़ के वृक्षों में शब्द उत्पन्न हो रहा था। (3) क्वचित्.....मृगा – इस अंश में शिव पुराण की एक कथा सन्दर्भित है, जिसके अनुसार ब्रह्मा अपनी सुन्दरी कन्या सन्ध्या के पीछे कामवशीभूत हो दौड़ पड़ते हैं और भगवान शंकर मृगरूपधारी ब्रह्मा का पीछा कर उसे मुक्त करवाते हैं। (4) अपरिमित....पवित्र – यहाँ पर बाणभट्ट द्वारा विरोधाभास अलंकार का चमत्कार प्रदर्शित किया गया है।

प्रसंग – विन्ध्याटवी में गोदावरी नदी के तट पर स्थित अगस्त्य ऋषि के आश्रम का वर्णन प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण ने वैशम्पायन शुक के माध्यम से कराया है।

तस्यांच दण्डकारण्यान्तःपाति सकलभुवनविख्यातम् उत्पत्तिक्षेत्रमिव भगवतो धर्म्मस्य, सुरपति–प्रार्थना–पीत–सकल–सागर–सलिलस्य मेरु–मत्सराद् गगनतल–प्रसारितशिरःसहस्रेण दिवसकर–रथगमन–पथमपनेतुमभ्युद्यतेन

अवगणितसकलसुर–वचसा विन्ध्यगिरिणाप्यनुल्लङ्घिताज्ञस्य, जठरानल–जीर्ण–वातापिदानवस्य सुरासुर–मुकुट–मकरपत्त्र–कोटि– चुम्बितचरण –रजसो दक्षिणाशा–मुख–विशेषकस्य सुरलोकादेवहुङ्कारनिपातितनहुषप्रकटप्रभावस्य भगवतो महामुनेरगस्त्यस्य भार्य्यया लोपामुद्रया स्वयमुपरचितालवालकैः करपुटसलिलसेक–संवर्द्धितैः सुतनिर्विशेषैरुपशोभितं पादपैः, तत्पुत्त्रेण च गृहीतव्रतेनाषाढिना पवित्त्रभस्म–विरचित– त्रिपुण्ड्रकाभरणेन कुश–चीवर–वाससा मौञ्जमेखलाकलितमध्येन गृहीत–हरितपर्णपुटेन प्रत्युटजमटता भिक्षां दृढदस्युनाम्ना पवित्त्रीकृतम्, अतिप्रभूतेध्माहरणाच्च यस्येध्मवाह इति पिता परिसरं द्वितीयं नाम चकार, दिशि दिशि शुकहरितैश्च कदलीवनैः श्यामलीकृत परिसरं सरिता च कलशयोनिपरिपीतसागरमार्गानुगतयेव बद्धवेणिकया गोदावर्य्या परिगतमाश्रमपदमासीत्।

अनुवाद – उस विन्ध्याटवी में दण्डकारण्य के भोतर पड़न वाला, (अगस्त्य महर्षि का) एक आश्रम था जो सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध था; भगवान् धर्म का तो मानो जन्मस्थान था। जिसे सुरपति की प्रार्थना से समुद्र के सारे जल को पी लेने वाले सुमेरु पर्वत की ईर्ष्या के कारण गगनतल तक अपनी विकट चोटियों को फैलाने वाले, सूर्य के रथ के गमन–मार्ग को समाप्त करने के लिए तैयार खड़े होने वाले, देवताओं के वचनों की उपेक्षा कर देने वाले विन्ध्य पर्वत ने भो जिन की आज्ञा का उल्लघंन नहीं किया था, अर्थात् मानी थी; जिन्होंने वातापी दैत्य को अपने उदर में पचा डाला था; जिनकी चरण–रज देवों और दैत्यों के मुकुट के मकरपत्रों के अग्रभाग से चुम्बित की जाती थी; जो दक्षिण दिशारूपी नायिका के मुख तिलक थे; जिन्होंने एक ही हुंकार द्वारा नहुष को स्वर्ग से गिराने में अपने प्रभाव को प्रकट किया था; ऐसे अति माहात्म्य वाले महर्षि 'अगस्त्य' की धर्मपत्नी 'लोपामुद्रा' द्वारा अपने आप जिनके आलवाल बनाये गये थै, जिन्होंनों हाथों से दिये गये जल के सिंचन से खूब बड़ा किया गया था, जो पुत्रों के समान थे, ऐसे वृक्षों से शोभित आश्रम था; और वन महर्षि अगस्त्य के उस 'दृढदस्यु' नामक पुत्र द्वारा पवित्र किया गया था, जिस पुत्र ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था, जिसने पलाश का दण्ड धारण किया था, जिसने पवित्र भस्म द्वारा त्रिपुण्ड मस्तक में तीन रेखाओं के तिलक रूपी आभरण की रचना की थी; जो कुशों के बने चीवर वस्त्र धारण किये हुए था; जिसने मूंज की मेखला (करधनी) अपने मध्य भाग में बाँध रखी थी, जो हरे–हरे पत्तों का दोना लेकर प्रत्येक कुटी में भिक्षा के लिए घूमता था, अत्यधिक काष्ठ लाने के कारण जिसका 'इध्मवाह' ऐसा दूसरा नाम पिता अगस्त्य ने रख दिया था; जो आश्रम हर दिशा में शुकों के समान हरे रंगवाले केलों के वनों से अन्धकारयुक्त सीमाओं वाला था, जो आश्रम घड़े से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि द्वारा पिये गये समुद्र के मार्ग का मानों अनुसरण करती हुई, वेणी (चोटी, जलधारा) युक्त (सदैव जलधारा वाली) गोदावरी नदी द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मौञ्ज – मुञ्ज + अण्; चकार – कृ + लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन; प्रत्युटजं भिक्षाम् अटता – यहाँ पर 'अकथितं च' सूत्र से भिक्षा की कम संज्ञा होकर 'कमणि द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई है; आषाढिना – आषाढः पलाशदण्डोऽस्यास्तीति तेन।

विशेष – (1) सुरपतिः.....जलस्य – महाभारत में वर्णित कथा के अनुसार समुद्र में छुपे रहने वाले राक्षसों के उपद्रवों को शान्त करने के लिए दवराज इन्द्र के निवेदन पर अगस्त्य ने सागर के समस्त जल को पी लिया था। यहाँ पर इसी कथा की ओर संकेत किया गया है। (2) जठर...दानवस्य – प्राचीनकाल में इल्वल और वातापि नामक राक्षसों को अगस्त्य ने खाकर अपनी जठराग्नि से पचा डाला था – इस कथा की ओर संकेत किया गया है। (3) प्रस्तुत गद्यांश में महर्षि अगस्त्य से सम्बन्धित विविध कथाओं की ओर संकेत प्राप्त होता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में वैशम्पायन पुनः अगस्त्य आश्रम की विशेषताओं का वर्णन करते हुए वहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता को चित्रित करता है। साथ ही अगस्त्य आश्रम से जुड़ी हुई पौराणिक घटनाओं का भो संकेत करता है।

यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदनलक्ष्मी–विभ्रमविरामो रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन् सह सीतया लक्ष्मणोपरिचित–रुचिर–पर्णशालः पञ्चवट्यां कञ्चित् कालं सुखमुवास। चिरशून्येऽद्यापि यत्र शाखानिलीन–निभृत–पाण्डु–कपोतपङ्क्तयोऽमललग्नतापसाग्नि–होत्र–धूमराजय इव लक्ष्यन्ते तरवः। बलिकर्म्म–कुसुमान्युद्धरन्त्याः सीतायाः करतलादिव सङ्क्रान्तो यत्र रागः स्फुरति लताकिसलयेषु। यत्र च पीतोद्गीर्ण–जलनिधि–जलमिव मुनिना निखिलमाश्रमोपान्तवर्त्तिषु विभक्तं महाह्रदेषु। यत्र च दशरथ–सुत–निशितशरनिकर–निपात–निहत–रजनीचर–बल – बहल – रुधिर–सिक्त–मूलमद्यापि तद्रागाविद्ध–निर्गतपलाशमिवाभाति नवकिसलयमरण्यम्। अधुनापि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनव–जलधर–निवह–निनादमाकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवन–विवर– व्यापिनश्चापघोषस्य स्मरन्तो न गृह्णन्ति शष्प–कवलमजस्रमश्रु–जल–लुलित–दृष्टयो वीक्ष्य शून्या दश दिशो जराजर्ज्जरित–विषाणकोटयो जानकीसंवर्द्धिता जीर्णमृगाः। यस्मिन्ननवरत–मृगयानिहत– शेष– वनहरिण–प्रोत्साहित इव कृतसीताविप्रलम्भः कनकमृगो राघवमतिदूरं जहार। यत्र मैथिलीवियोगदुःखदुःखितौ रावण–विनाश–सूचकौ चन्द्रसूर्य्याविव कबन्धग्रस्तौ समं रामलक्ष्मणौ त्रिभुवनभयं महच्चक्रतुः। अत्यायतश्च यस्मिन् दशरथसुतबाण–निपातितो योजनबाहोर्बाहुरगस्त्य–प्रसादनागतनहुषाजगर – कायशङ्कामकरोदृषिजनस्य। जनकतनया च भर्त्रा विरहविनोदनार्थमुटजाभ्यन्तरलिखिता यत्र रामनिवासदर्शनोत्सुका पुनरिव धरणीतलादुल्लसन्ती वनचरैरद्याप्यालोक्यते।

अनुवाद – और जिस आश्रम में पञ्चवटी में 'दशरथ' की आज्ञा का पालन करते हुए, अयोध्या के राज्य को छोड़ देने वाले, दशमुख की राज्यलक्ष्मी के विलास को समाप्त कर देने वाले (रावण के राज्य को समाप्त कर देने वाले), लक्ष्मण द्वारा बनाई गई सुन्दर कुटिया वाले 'राम' ने महामुनि 'अगस्त्य' की सेवा करते हुए सीता के साथ कुछ दिनों तक आनन्द–सहित निवास किया था। बहुत अधिक समय से (ऋषियों से) सूने (रहित) भो जिस आश्रम में आज भो वृक्षों की शाखाओं में लीन अत्यधिक श्वेतवर्ण के कबूतरों की पंक्तियों वाले वृक्ष की शाखओं में लीन (शान्त बैठे हुए) अत्यधिक श्वेतवर्ण के कबूतरों की पंक्तियों वाले वृक्ष ऐसे लगते हैं मानो उनम तपस्वियों के अग्निहोत्रों की स्वच्छ धुएं की पंक्तियाँ लगी हो। जहाँ लताओं के कोमल पत्तों पर लालिमा, ऐसी प्रतीत होती है मानों बलिकम (पूजनादि) के फूलों को तोड़ती हुई सीता के करतल से निकल कर उनमें संक्रान्त हो। और जहाँ महर्षि अगस्त्य द्वारा पहले पीने के बाद उगला गया सारे समुद्र का पानी आश्रम के समीपवर्ती बड़े–बड़े तालाबों में बांट दिया गया हो। जहाँ नवीन पल्लवों वाला अरण्य दशरथ के पुत्र राम के तीखे बाणों के समूह के लगने से मारे गये राक्षसों की सेना के अत्यधिक रुधिर से सींची गयी जड़ों वाला आज भो उस रुधिर की लालिमा से संसक्त होकर निकले हुए लाल–लाल पत्तों वाला प्रतीत हो रहा है। जहाँ आज भो बादलों के समय में नये–नये बादलों के समुदाय का गंभोर गर्जन सुनकर भगवान् राम के तीनों लोकों के छिद्र को व्याप्त कर देने वाले धनुष की आवाज को याद करते हुए, बुढ़ापे के कारण सींगों के जीर्ण अग्रभाग वाले, दसों दिशाओं को शून्य देखकर निरन्तर बहते हुए आँसुओं से व्याकुल अवरुद्ध नेत्रों वाले, जानकी द्वारा पाले गये बूढ़े मृग घास के कंवल ग्रहण नहीं कर रहे हैं। जहाँ निरन्तर शिकार करने से राम द्वारा मारे गये से बचे हुए जंगली हरिणों के द्वारा मानो प्रोत्साहित किया गया, अतएव सोता को धोखा देने वाला स्वर्ण मृग रामचंद्र को बहुत दूर तक ले गया था और जहाँ, सीता के वियोग के दुःख से दुःखी और रावण के विनाश की सूचना देने वाले, चंद्र और सूर्य के समान, कबन्ध (1. राहु 2. राम को ग्रसित करने वाला एक राक्षस) द्वारा ग्रस्त राम और लक्ष्मण ने तीनों लोकों के लिये एक साथ बहुत अधिक भय उत्पन्न कर

दिया था और जहाँ दशरथ–पुत्र राम के बाणों से काटकर गिराई गई योजनबाहु की अत्यन्त लम्बी भजा ने ऋषियों के मन में यह शंका उत्पन्न करा दी थी कि महर्षि अगस्त्य को प्रसन्न करने के लिए आये हुए अजगर रूपधारी नहुष का शरोर हो। और जहाँ सीता के वियोग के दुःख को दूर करने के लिए राम द्वारा कुटिया के भोतर बनाई गई सीता की मूर्ति आज भो वनचरों द्वारा ऐसी देखी जा रही है, मानों राम का निवास–स्थान देखने के लिए उत्कण्ठित होकर सीता पुनः पृथ्वीतल से निकल रही हों।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उत्सृष्टः – उत् + सृज् + क्त; निशितः – नि + शो (तनू करणे) + क्त; आविद्धः – आ + विध् + क्त; जहार हृञ् (हरणे) + लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन; चक्रतुः – कृ + लिट्, प्रथमपुरुष, द्विवचन; चकार – कृ + लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन; उल्लसन्ती – उत् + लस् + शतृ + ङीप्; चापघोषस्य स्मरन्तः – यहाँ स्मरण करने के अर्थ में 'स्मृ' धातु के योग में – 'कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव' – इस वचन के अनुसार कम में षष्ठी विभक्ति हुई है।

विशेष – (1) यस्मिन्....जहार – राम के द्वारा अनेक हरिणों के शिकार के कारण मानो उन्होंने ही राम से बदला लेने क लिए मारीच को सुवर्ण मृग बनाकर भजा हो। जो राम को दूर तक ले गया। (2) अधुनापि.....चापघोषस्य स्मरन्तः – यहाँ पर हरिणों द्वारा घन गर्जना को सुनने से राम के धनुष के घोष का स्मरण होने का वर्णन है। अतः यहाँ पर स्मरण अलंकार है। (3) अत्यायतः.....जनस्य – यहाँ योजनबाहु की लम्बी भजा में राजा नहुष का अजगर शरीर होने की भांति तपस्विजनों को हुई है अतः यहाँ भान्तिमान् अलंकार है। (4) विरामो रामो में यमक अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट द्वारा अगस्त्य आश्रम के पास ही स्थित पम्पा नाम के सरोवर का विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पम्पा सरोवर एवं उसके आसपास के प्राकृतिक दृश्यों की मनोरम छटा दर्शनीय है।

तस्य च सम्प्रत्यपि प्रकटोपलक्ष्यमाण – पूर्ववृत्तान्तस्यागस्त्याश्रमस्य नातिदूरे जलनिधिपानप्रकुपित – वरुणप्रोत्साहितेन अगस्त्यमत्सरात्तदाश्रमसमीपवर्त्यपर इव वेधसा
जलनिधिरुत्पादितः, प्रलयकाल – विघट्टिताष्ट – दिग्विभाग–सन्धिबन्धं गगनतलमिव भुवि निपतितम्, आदिवराहसमुद्धृत–धरामण्डल–स्थानमिव जलपूरितम्, अनवरत–मज्जदुन्मदशबरकामिनी– कुचकलशलुलित–जलम्, उत्फुल्ल–कुमुद–कुवलय–कह्लारम्, उन्निद्रारविन्दमधुबिन्दुनिष्यन्दबद्– धचन्द्रकम्, अलिकुलपटलानधकारितसौगन्धिकम्, सारसित – समद – सारसम्, अम्बुरुह – मधुपान–मत्त–कल–हंसकामिनीकृत– कोलाहलम्, अनेक – चलचर – पतङ्गशत – सञ्चलनचलित – वाचाल – वीचिमालम्, अनिलोल्लासितकल्लोल – शिखर– शीकरा–रब्ध–दुर्दिनम्, अशङ्कितावतीर्णाभिरम्भः क्रीडारागिणीभिः स्नानसमये वनदेवताभिः केश पाशकुसुमैः सुरभीकृतम्, एकदेशावतीर्णमुनिजनापूर्य्यमाण – कमण्डलु – कल – जलध्वनि–मनोहरम्, उन्मिषदुत्पलवनम– ध्यचारिभिः सवर्णतया रसितानुमेयैः कादम्ब–कदम्बकैरासेवितम्, अभिषेकावतीर्ण–पुलिन्दराज–सुन्दरी – कुच–चन्दनधूलि–धवलित–तरम्, उपान्त–केतकी–रजः–पटल–बद्ध–कूल–पुलिनम्, आसन्नाश्रमागत – तापसक्षालितार्द्र– वल्कल–कषाय–पाटल–तटजलम्, उपतट–विटपि– पल्लवानिल –वीजितम्,

अनुवाद – और जिसके पूर्वकालिक वृत्तान्त इस समय भो स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं, ऐसे उस महर्षि अगस्त्य के आश्रम से कुछ ही दूर पर 'पम्पा' नामक एक पद्मसर (कमलों वाला तालाब) है, जो समुद्र को पी लेने के कारण क्रुद्ध हुए वरुण द्वारा प्रोत्साहित ब्रह्मा द्वारा अगस्त्य के प्रति ईर्ष्या के कारण उनके आश्रम के समीप ही बनाया गया मानों दूसरा समुद्र है, जो प्रलयकाल में टूटे हुए आठ दिशाओं के विभागों के सन्धिबन्धन वाला, धरातल पर गिरा हुआ मानों गगनतल है; जो विष्णु के अवतारी आदि वराह द्वारा उठाये गये दाढ़ से खोद कर बाहर निकाले गये पृथ्वी–मण्डल का उस समय खाली हुआ और इस समय जल

से भरा हुआ मानों स्थित हैं, जिसका जल सदैव स्नान करने वाली डुबकियाँ लगाने वाली मदयुक्त शबर–स्त्रियों के स्तनरूपी कलसों से आलोडित क्षुब्ध होता रहता है; जो खिले हुए कुमुद (सफेद कमल), कुवलय (नील कमल) और सुगन्धयुक्त कह्लारों कमल विशेष से युक्त है, जो विकसित कमलों के निकलते हुए मधु की बिन्दुओं से बने हुए मोर–पंख के समान चन्द्रकों से युक्त है; जो भमरकुल के समूह द्वारा अन्धकारयुक्त किये गये सौगन्धिकों कमल–विशेषों से भरा हुआ है; जो आवाज करने वाले = चिल्लाने वाले मदयुक्त सारसों से युक्त है; जो कमलों के मधु को पीने से मत्त हुयी कलहंस की कामिनियों हंसिनियों द्वारा किये गये कोलाहल से युक्त है; जो विविध प्रकार के सैकड़ों जलचर पक्षियों हंस, सारस, बत्तख आदि के इधर–उधर चलने–फिरने से चञ्चल और ध्वनि करने वाली लहरों की मालाओं से युक्त है; हवा द्वारा उठाई गयी बड़ी–बड़ी लहरों के शिखरों के जलकणों से जिसमें दुर्दिन (मेघाच्छन्न–वर्षा का दिन) आरम्भ हो गया है; जलक्रीडा को अनुरागिनी, बिना किसी शंका के अवतीर्ण जल प्रविष्ट वन–देवियों द्वारा स्नान के समय में अपने केशपाश से फूलों से उनसे निकल कर पानी में गिरे फूलों से जो सुगन्धित बना दिया गया है; किसी एक भाग में उतरे जल में स्थित मुनिजनों द्वारा भरे जाते हुए कमण्डलुओं की मधुर जल की ध्वनि से जो मनोहर है; जो खिलते हुए कमलों के वन के मध्य में घूमने वाले, सफेदी के कारण कमलों के समान होने से केवल आवाज से पहचाने जाने वाले कादम्बों (कलहंसों) के समूह द्वारा उपसेवित हैं; स्नान करने के लिये उतरी हुई जल में प्रविष्ट शबरराज की स्त्रियों के स्तनों के चन्दनों से जो धवलित की गई तरङ्गों से युक्त है; जो समीप में उगे हुए केतकी (केवड़ा) के फूलों के परागसमूह से रेतीले बांध से युक्त है; समीपवर्ती आश्रमों में आए हुए तपस्वियों के द्वारा उसके जल में धोने के कारण गीले वल्कलों से गिरते रंगीन पानी से जिसके किनारों का पानी कसैला और पाटल लाल सफेद मिले हुए रंग वाला हो गया है। जो किनारे लगे हुए वृक्षों के पत्तों की हवा से किये गये पंखों वाला है; जो पद्मसर ऐसी वन–पंक्तियों द्वारा घिरे हुए तटों वाला है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उत्पादितः – उत् + पद् + णिच् + क्त; निपतितम् – नि + पत् + क्त।

विशेष – (1) जलनिधि....उत्पादितः – यहाँ पर कवि ने उत्प्रेक्षा द्वारा पम्पा सरोवर को दूसरा सागर कहा है। (2) प्रलयकाल–निपतितम्यहाँ पर पम्पा सरोवर की उत्प्रेक्षा आकाश मण्डल से की गई है। इससे सरोवर की विशालता और निर्मलता व्यंजित होती है। (3) प्रस्तुत गद्यांश में अनुप्रास अलंकार की छटा भो कहीं–कहीं दर्शनीय है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में पम्पा सरोवर के प्राकृतिक दृश्य का सुन्दर चित्रण कवि द्वारा किया गया है।

अविरल–तमाल–वीथ्यन्धकारिताभिर्वालिनिर्वासितेन संचरता प्रतिदिनमृष्यमूकवासिना सुग्रीवेणावलुप्त–फल–लघुताभिः, उदवासितापसानां देवतार्च्चनोपयुक्त–कुसुमाभिरुत्पतज्जलचर– पक्षपुट – विगलित – जलबिन्दुसेकसुकुमार – किसलयाभिः लतामण्डपतल – शिखण्डि – मण्डलारब्ध–ताण्डवाभिः अनेककुसुम–परिमलवाहिनीभिर्वनदेवताभिः स्वश्वासवासिताभिरिव वनराजिभिरुपरुद्धतीरम्, अपरसागरशङ्किकभिः सलिलमादातुमवतीर्णैर्जलधरैरिव बहल–पङ्क– मलिनैव्रनकरिभिरनवरतापीयमानसलिलम्, अगाधमनन्तमप्रतिमम् अपां निधानं पम्पाभिधानं पद्मसरः।

यत्र च विकच – कुवलयप्रभा – श्यामायमान – पक्षपुटान्यद्यापि मूर्त्तिमद्रामशापग्रस्ता – नीव मध्यचारिणामालोक्यन्ते चक्रवाकनाम्नां पक्षिणां मिथुनानि।

अनुवाद – जो वन–पंक्तियाँ घने तमालवृक्षों की पंक्तियों के द्वारा किये गये अन्धकार से युक्त हैं, जो वनपंक्तियाँ बाली द्वारा राज्य से निष्कासित, प्रतिदिन इधर–उधर घूमने वाले ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले सुग्रीव द्वारा तोड़े गये फलों के कारण फलभार–रहित हल्की लताओं से युक्त हैं; जो जल में निवास, करने वाले, खड़े होकर पूजा करने वाले तपस्वियों

की पूजा में उपयोगी फूलों से युक्त हैं; जो पानी से ऊपर उड़ते हुए जलचर पक्षियों के पंखों से गिरे हुए पानी की बूंदों के द्वारा सींचे जाने के कारण सुकोमल पल्लवों से युक्त है; जो लतामण्डपों के नीचे मयूर–समूह द्वारा आरम्भ किये गये नृत्य (ताण्डव) से युक्त हैं, जो विवध फूलों की सुगन्ध का वहन करने वाली साथ में लेकर उड़ने वाली इस कारण मानों वनदेवियों द्वारा अपनी सांसों से सुगन्धित है; ऐसी वनपस्तियों से जिस पम्पासर के तट घिरे हुए हैं। जो सरोवर अत्यधिक कीचड़ से लिप्त शरीर वाले हाथियों द्वारा निरन्तर पिये जाते हुये पानी वाला है, जो हाथी मानों दूसरे समुद्र की शंका भम से पानी लेने के लिए उसमें नीचे उतरे हुए बादल है। जो अगाध है, अनन्त है, अनुपम है, जो जल का निधान निधि है। ऐसा 'पम्पा' नामक कमलों का वन है।

जिस पम्पा सरोवर के मध्य घूमने वाले चक्रवाक पक्षियों के जोड़े आज भो मानों देहधारी राम के शाप से ग्रस्त जैसे दिखाई पड़ते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सेकः – सिच् + घञ्; शिखण्डिन् – शिखण्ड + इनि; आपीयमानम् – आ + पा + शानच्; संचरता – सम् + चर् + शतृ + टा;

विशेष – (1) अपर.....सलिलम् – आशय यह है कि उस विशाल पम्पा सरोवर में जल पीने के लिये प्रविष्ट हुए तथा कीचड़ से सने हुए अनेक काले–काले हाथी ऐसे लग रहे थे मानो उस विशाल सरोवर को महासागर समझ कर जल भरने के लिए अनेक बादल उतर आये हों। (2) यत्र...मिथुनानि – यहाँ पर भगवान् श्री राम और सीता का वियोग होने पर चक्रवाक पक्षियों द्वारा उपहास किये जाने और क्रुद्ध होकर राम के द्वारा उन्हें शाप दिये जाने की कथा की ओर संकेत है। (3) प्रस्तुत गद्यांश में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – वैशम्पायन शुक अपनी कथा को कहते हुए अगस्त्याश्रम के पास स्थित पम्पा सरोवर के पश्चिमी किनारे पर स्थित विशालकाय शाल्मली के वृक्ष का वर्णन प्रस्तुत गद्यांश में करता है।

तस्यैवंविधस्य सरसः पश्चिमे तीरे राघव–शर–प्रहार–जर्जरित–बालतरु–षण्डस्य च समीपे दिग्गज–करदण्डानुकारिणा जरदजगरेण सततमावेष्टितमूलतया बद्धमहालवाल इव तुङ्ग – स्कन्धावलम्बिभिरनिलवेल्लितैरहिनिर्म्मोकैर्धृतोत्तरीय इव, दिक्चक्रवाल–परिमाणमिव गृह्णता भुवनान्तरालविप्रकीर्णेन शाखासंचयेन प्रलयकाल–ताण्डव–प्रसारित–भुजसहस्रमुडुपतिशेखरमिव विडम्बयितुमुद्यतः पुराणतया पतनभयादिव वायुस्कन्धलग्नः, निखिलशरीरव्यापिनीभिरतिदूरोन्नताभिर्जीर्णतया शिराभिरिव परिगतो व्रततिभिः, जरा– तिलकबिन्दुभिरिव कण्टकैराचिततनुः, इतस्ततः परिपीतसागरसलिलैर्गगनागतैः, पत्त्ररथैरिव शाखान्तरेषु निलीयमानैः क्षणमम्बुभारालसैरार्द्रीकृतपल्लवैर्जलधरपटलैरप्यदृष्टशिखरः, तुङ्गतया नन्दनवनश्रियमिवावलोकयितुमायुद्यतः,

अनुवाद – इस प्रकार के उस 'पम्पा' सरोवर के पश्चिमी किनारे पर रामचन्द्र के बाणों के प्रहार से जर्जर किये गये 'ताड़' वृक्षों के समूह के निकट एक विशाल पुराना 'सेमल' का पेड़ स्थित है जो पेड़ दिग्गजों के सूंड रूपी दण्ड का अनुकरण वाले अर्थात् उसके समान बूढ़े अजगर द्वारा सदैव घिरी हुई जड़वाला होने से मानों बँधे हुए विशाल आलवाल युक्त है; जो ऊँची–ऊँची शाखाओं पर लटकने वाली, हवा से हिलती हुई साँप के केंचुलों से मानों उत्तरीय वस्त्र धारण किये हुए हैं, जो मानों लोकों के मध्य में फैली हुई शाखाओं के समूह द्वारा दिशामण्डल के परिमाण को ग्रहण करता (नापता) हुआ, प्रलयकाल में ताण्डवनृत्य में हजारों भजायें फैलाने वाले चन्द्रशेखर शंकर भगवान् का अनुकरण करने में तत्पर है, जो मानों पुराना होने से गिरने के भय से वायु के कन्धों का सहारा लिए हुए हो, जो सम्पूर्ण शरीर में लिप्त रहने वाली तथा बहुत ऊँची लताओं द्वारा ऐसा लगता है मानों वृद्धावस्था के कारण लम्बी और ऊँची शिराओं से व्याप्त है; जो कांटों से युक्त शरीर वाला मानों बुढ़ापे में निकले काले धब्बों से युक्त है; समुद्रों का पानी पिये हुए इधर–उधर से आकाश से आए हुए शाखाओं में छिपे हुए पक्षियों के समान, क्षण भर में जल के बोझ से अलसाए हुए, पत्तों को

गीला कर देने वाले बादलों के समूह द्वारा भो जिसका शिखर नहीं देखा जा सकता है, अत्यधिक ऊँचाई के कारण जो मानो इन्द्र के 'नन्दनवन' की शोभा देखने के लिए तत्पर है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – शाखासंचयेन – शाखानां संचयेन; उडुपतिशेखरम् – उडूनां पतिः उडुपतिः शेखरः यस्य तम्; जलधरपटलैः – जलधराणां पटलैः; अवलोकयितुम् – अव + लोक + तुमुन्;

विशेष – (1) राघवशर.....षण्डस्य – यहाँ पर ''भगवान राम में बालि को मारने का सामर्थ्य है अथवा नहीं'' सुग्रीव की इस शंका का निवारण करने के लिए भगवान् राम द्वारा एक ही बाण में सात ताड़पत्रों के वेधन की रामायणी कथा की ओर संकेत किया गया है। (2) प्रस्तुत गद्यांश में उत्प्रेक्षा अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में शाल्मली वृक्ष की भव्यता एवं विशालता का चित्रण किया गया है।

स्वसमीपवर्त्तिनामुपरि संचरतां गगनतल–गमन–खेदायासितानां रविरथतुरङ्गमाणां सृक्कपरिस्रुतैः फेनपटलैः सन्देहित–तूलराशिभिर्धवलीकृतशिखरशाखः, वनगजकपोलकण्डूयन–लग्नमद–निलीन– मत्तमधुकरमालेन लोहशृङ्खलाबन्धन–निश्चलेनेव कल्पस्थायिना मूलेन समुपेतः, कोटराभ्यन्तरनिविष्टैः स्फुरद्भिः सजीव इव मधुकरपटलैः, दुर्योधन इवोपलक्षित–शकुनिपक्षपातः, नलिननाभ इव वनमालोपगूढः, नवजलधरव्यूह इव नभसि दर्शितोन्नतिः, अखिलभुवनतलावलोकनप्रासाद इव वनदेवतानाम्, अधिपतिरिव दण्डकारण्यस्य, नायक इव सर्ववनस्पतीनाम्, सखेव विन्ध्यस्य, शाखाबाहुभिरुपगुह्येव विन्ध्याटवीमवस्थितो महान् जीर्णः शाल्मलीवृक्षः।

अनुवाद – अपने वृक्ष के समीप में स्थित, ऊपर चलने वाले, आकाशतल में चलने के परिश्रम से थके हुए, सूर्य के रथ के घोड़ों के ओठों के किनारे से निकले हुए फेनों के समूहों, जिन्होंने रुई के समूह की शंका उत्पन्न करा दी है, के द्वारा जिस वृक्ष की शाखायें सफेद कर दी गई हैं; जो वृक्ष जंगली हाथियों द्वारा गण्डस्थलों को खुजलाने से लगे हुए मदजल में डूबे हुए मत्त भोरों के समूह वाली; जो मानों लोहे की जंजीर से बँधे होने से निश्चल, अत एव कल्पपर्यन्त स्थायी है ऐसी जड़ से युक्त है; जो वृक्ष कोटर के भोतर विष्ट और चलने फिरने वाले भोरों के समूह द्वारा सजीव सा है, दुर्योधन में जिस प्रकार शकुनि अपने मामा में पक्षपात करते देखा जाता था उसी प्रकार उस वृक्ष में शकुनियों के पंखों का पात देखा जाता है; नलिन जिनकी नाभि में है ऐसे विष्णु जिस प्रकार 'वनमाला' से युक्त हैं उसी प्रकार जो वनों की माला = पंक्ति से घिरा हुआ है, नभ = श्रावण मास में जिस प्रकार नवीन मेघों का समूह उन्नति दिखाता है उसी प्रकार जो नभ = आकाश में ऊँचाई प्रदर्शित करने वाला है, जो मानों वन की अधिष्ठातृदेवियों का सम्पूर्ण भवनतलों को देखने का राजप्रासाद है; जो मानों दण्डकारण्य का राजा है, जो मानों सभो वनस्पतियों का नेता है, जो मानों विन्ध्यपर्वत का मित्र है, जो अपनी शाखारूपी भजाओं द्वारा 'विन्ध्याटवी' का आलिंगन करके स्थित है। इस प्रकार का जीर्ण और विशाल शाल्मली का पेड़ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – नलिननाभः – नलिनम् नाभो यस्य सः – यहाँ पर समासान्त अच् प्रत्यय कर भसंज्ञा इकारादि लोप होने पर नलिननाभ शब्द सिद्ध होता है।

विशेष – (1) कल्प – एक सृष्टि की आयु, जिसमें चौदह मन्वन्तर होते हैं और चारों युग एक हजार बार बीत जाते हैं। एक चतुर्युगी की आयु तैंतालिस लाख बीस हजार (43,20,000) है। इस प्रकार एक कल्प में चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होते हैं। (2) वनमाला – विष्णु के गले में धारण की जाने वाली माला जो कि घुटनों तक लम्बी होती है तथा उसमें सब ऋतुओं के पुष्प समाहित होते हैं और बीच में कदम्ब का पुष्प पिरोया जाता है। (3) अवलोकन प्रासाद – बाणभट्ट के समय में महल के सबसे ऊपर स्थित कक्ष के लिए अवलोकन प्रासाद शब्द का प्रयोग किया जाता था। जहाँ बैठकर राजा लोग प्रकृति दर्शन

किया करते थे। (4) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – वैशम्पायन कहता है कि उस शाल्मली के वृक्ष पर उसके सजातीय बन्धु निवास करते थे और उन्हीं के बीच उसके पिता भो रहते थे।

तत्र च शाखाग्रेषु कोटरोदरेषु पल्लवान्तरेषु स्कन्धसन्धिषु जीर्णवल्कलविवरेषु च महावकाशतया विश्रब्ध–विरचित–कुलायसहस्राणि दुरारोहतया विगतभयानि नानादेशसमागतानि शुक–शकुनि– कुलानि प्रतिवसन्ति स्म। यैः परिणामविरलदलसंहतिरपि स वनस्पतिरविरल–दलथनचय – श्यामल इवोपलक्ष्यते दिवानिशं निलीनैः।

ते च तस्मिन् वनस्पतावतिवाह्याऽतिवाह्य निशामात्मनीडेषु प्रतिदिनमुत्थायोत्थायाहारान्वेषणाय नभसि विरचितपङ्क्तयो मदकल–बलभद्र–हलधर–हलमुखाक्षेप–विकीर्णबहुस्रोतसमम्बरतले कलिन्दकन्यामिव दर्शयन्तः, सुरगजोन्मूलित–विगलदाकाशगङ्गा–कमलिनीशङ्कामुत्पादयन्तः, दिवसकर–रथतुरग– प्रभानुलिप्तमिव गगनतलं प्रदर्शयन्तः, सञ्चारिणीमिव मरकतस्थलीं विडम्बयन्तः, शैवलपल्लवावलीमिवाम्बरसरसि प्रसारयन्तः, गगनावततैः पक्षपुटैः कदलीदलैरिव दिनकर–खरकर– निकर–परिखेदितान्याशामुखानि वीजयन्तः, वियति विसारिणीं शष्पवीथीमिवारचयन्तः, सेन्द्रायुधमिवान्तरिक्षमादधाना विचरन्ति स्म।

अनुवाद – और उस शाल्मली वृक्ष में शाखाओं के छोरों पर, कोटर के भोतर, पत्तों के बीच में, प्रकाण्ड के जोड़ों में, जीर्ण छाल के छिद्रों में, अत्यधिक पर्याप्त स्थान के कारण, निंश्शङ्क होकर घोंसले बना लेने वाले चढ़ने में अत्यधिक कष्टप्रद होने से भयरहित, उस वृक्ष पर विभिन्न स्थानों से आने वाले तोते और दूसरे पक्षियों के समुदाय रहा करते थे। पुराना होने से थोड़े पत्तों वाला हेाता हुआ भो वह शाल्मली वृक्ष दिन–रात बैठे रहने वाले उन पक्षियों के कारण घने पत्तों के समूह से श्यामलवर्ण वाला सा दिखाई पड़ता है।

और वे तोते तथा अन्य पक्षी उस शाल्मली वृक्ष पर अपने–अपने घोंसलों में रातें बिता–बिताकर प्रतिदिन उठ–उठकर भोजन खोजने के लिये आकाश में पंक्ति बनाये हुए; मानों मद से मनोहर बलराम के हल के अग्रभाग द्वारा फेंकने से फैली हुई अनेक धाराओं वाली यमुना को आकाशतल में दिखलाते हुए; देवताओं के हाथी द्वारा उखाड़ी गई अत एव गिरती हुई आकाशगंगा की कमलिनी के भम को उत्पन्न करते हुए; आकाशतल को सूर्य के रथ के घोड़ों की हरित कान्ति से अनुलिप्त सा बनाते हुए; चलती फिरती मरकत–स्थलों का अनुकरण करते हुए; आकाशरूपी तालाब ने मानों शैवाल के पत्तों के समूह को फैलाते हुए, सूर्य की तीखी किरणों के समूह से खिन्न हुए दिशाओं के मुखों के लिए, आकाश में फैले हुए पंख–समूह से मानों केलों के पत्तों द्वारा पंखा डुलाते हुए; मानों आकाश में फैलने वाली नई घास के तृणों के मार्ग को बनाते हुए; मानों अन्तरिक्ष को इन्द्रधनुष से युक्त बनाते हुए घूमा करते थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आरचयन्तः – आ + रच् + शतृ, बहुवचन; दर्शयन्तः – दृश् + णिच् + शतृ, प्रथमा, बहुवचन; उत्थाय – उत् + स्था + क्त्वा (ल्यप्);

विशेष – (1) महावकाशतया – वृक्ष के अत्यधिक विशाल होने के कारण उसमें घोंसले आदि बनाने के लिए बहुत स्थान उपलब्ध था। (2) मदकल.....स्रोतसम् – भागवत पुराण के अनुसार एक बार बलराम ने मदमस्त होकर यमुना को विहार करने के लिए बुलाया और यमुना के न आने पर बलराम ने हल के अग्रभाग से यमुना की धारा को उछाला और यमुना स्त्री का वेश बनाकर बलराम के चरणों में गिर पड़ी।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में शाल्मली वृक्ष पर रहने वाले पक्षियों के दैनन्दिन क्रियाकलापों का सुन्दर चित्रण किया गया है।

कृताहाराश्च पुनः प्रतिनिवृत्त्यात्मकुलायावस्थितेभ्यः शावकेभ्यो विविधान् फलरसान् कलममञ्जरीविकारांश्च प्रहत–हरिण–रुधिरानुक्त–शार्दूलनखकोटिपाटलेन चुञ्चुपुटेन

दत्त्वा दत्त्वा अधरीकृत–सर्वस्नेहेनासाधारणेन गुरुणाऽपत्यप्रेम्णा तस्मिन्नेव क्रोडान्तर्निहिततनयाः क्षपाः क्षपयन्ति स्म।

अनुवाद – और फिर भोजन कर चुकने वाले वे पक्षी वापस लौटकर अपने घोंसलों में बैठे हुए बच्चों को, अनेक प्रकार के फलो के रसों तथा कमल की बालियों के कणों को, तत्काल मारे गये हिरन के खून से लाल–लाल हुए सिंह के नाखूनों के अग्रभाग के समान लाल–लाल चोंच के अग्रभाग से दे देकर उन्हें खिला–खिलाकर अन्य सभो वस्तुओं के प्रेम को तिरस्कृत = न्यून कर देने वाले, असाधारण, अत्यधिक सन्तानप्रेम से, अपने बच्चों को गोद में पंखों के भोतर छिपाये हुए उसी शाल्मली वृक्ष पर रातें बिताया करते थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रतिनिवृत्य – प्रति + नि + वृत् + क्त्वा (ल्यप्); दत्त्वा – दा + क्त्वा।

विशेष – (1) प्रस्तुत गद्यांश में पक्षियों के क्रियाकलापों का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्य खण्ड में वैशम्पायन अपने जन्म का वर्णन करता है।

एकस्मिंश्च जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात् सूनुरभवम्। अतिप्रबलया चाभिभूता ममैव जायमानस्य प्रसववेदनया जननी मे लोकान्तरमगमत्। अभिमतजायाविनाशशोकदुःखितोऽपि खलु तातः सुतस्नेहादभ्यन्तरे निगृह्य पटुप्रसरमपि शोकमेकाकी सत्संवर्धनपर एवाभवत्। अतिपरिणतवयाश्च कुशचीरानुकारिणीमल्पावशिष्ट – जीर्ण–पिच्छजाल–जर्जराम् अवस्रस्तांसदेशशिथिलाम् अपगतोत्पतनसंस्कारां पक्षसन्ततिम् उद्वहन्, उपारूढकम्पतया सन्तापकारिणीमङ्गलग्नां जरामिव विधुन्वन्, अकठोरशेफालिकाकुसुम – नाल–पिञ्जरेण कलममञ्जरी–दलन–मसृणित–क्षीणोपान्त्यलेखेन स्फुटिताग्रकोटिना चञ्चुपुटेन, परनीडपतिताभ्यः शालिवल्लरीभ्यस्तण्डुलकणानादायादाय वृक्षमूलनिपतितानि च शुककुलावदलितानि फलशकलानि समाहृत्य परिभ्रमितुमशक्तो मह्यमदात्। प्रतिदिवसमात्मना च मदुपभुक्तशेषम् अकरोदशनम्।

अनुवाद – और उस शाल्मली वृक्ष की एक पुरानी खोह में अपनी पत्नी के साथ रहते हुए अपनी आयु के अन्तिम चरण में विद्यमान अर्थात् बूढ़े पिता का भाग्यवश किसी प्रकार मैं अकेला ही पुत्र उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होने वाले मेरे प्रसव की अत्यधिक पीड़ा से पीड़ित मेरी माता परलोक चली गई। अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु के शोक से दुःखी होते हुए भो पिता मुझ अपने पुत्र के स्नेह के कारण, अत्यधिक प्रभावी शोक को भो अन्दर रोक कर अकेले ही मेरे पालन–पोषण में तत्पर हो गये और अत्यधिक वृद्ध अवस्था वाले मेरे पिता कुश के चीवर के समान प्रतीत होने वाले, बहुत कम बचे हुए पुराने पंखों के समूह से जर्जर, झुके हुए कन्धों पर शिलि, आकाश में उड़ने के संस्कार से शून्य पंखों के समूह को धारण करते हुए; शरीर के कम्पनयुक्त होने से मानो शरीर के अंगों में लगी हुई, सन्ताप उत्पन्न कराने वाली वृद्धावस्था को झाड़ कर दूर करते हुए, इधर–उधर घूमने में असमर्थ होते हुए मेरे पिता कोमल शेफालिका के फूल के नाल के समान लाल–लाल, कलम की मंजरी को कुतरने के कारण चिकनी और घिसी हुई अगली प्रान्तलेखा वाली चञ्चुपुट द्वारा, दूसरे घोसलों से गिरी हुई शालिनामक धान की बालियों में से चावल के दाने ला–ला कर और तोतों के समूह द्वारा कुतरे गये फलों के टुकड़े जो पड़ों की जड़ों पर गिरे थे, उन्हें एकत्रित करके मुझे दिया करते थे और प्रतिदिन मेरे खाने से बचे हुए को अपना भोजन बनाते थे, खाया करते थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निगृह्य – नि + ग्रह् + क्त्वा + ल्यप्; अवस्रंस्त – अव + स्रंस् + क्त; विधुन्वन् – वि + धू + शतृ; मम जायमानस्य एव – यहाँ पर 'षष्ठी चानादरे' सूत्र से अनादर अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुई है।

विशेष – (1) प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट ने वैशम्पायन के जन्म की करुण कथा का चित्रण किया है। (2) यहाँ पर 'जरामिव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

4.3 पारिभाषिक शब्दावली

मध्यदेश – हिमालय और विन्ध्याचल के बीच का हिस्सा मध्यदेश कहलाता है।

वायुवेगकृततालशब्दा – वायु रोग से ग्रसित रोगी वात के कारण अकारण ही तालियाँ बजाने जैसी निरर्थक क्रियाएँ करने लगता है। विन्ध्याटवी में भी वायुवेग के कारण ताड़ के वृक्षों में शब्द उत्पन्न हो रहा था।

इल्वल और वातापि – प्राचीनकाल में इल्वल और वातापि नामक राक्षसों को अगस्त्य ने खाकर अपनी जठराग्नि से पचा डाला था

कल्प – एक सृष्टि की आयु, जिसमें चौदह मन्वन्तर होते हैं और चारों युग एक हजार बार बीत जाते हैं। एक चतुर्युगी की आयु तैंतालिस लाख बीस हजार (43,20,000) है। इस प्रकार एक कल्प में चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होते हैं।

वनमाला – विष्णु के गले में धारण की जाने वाली माला जो कि घुटनों तक लम्बी होती है तथा उसमें सब ऋतुओं के पुष्प समाहित होते हैं और बीच में कदम्ब का पुष्प पिरोया जाता है।

4.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध–प्रश्न

1. अस्ति पूर्वापर–.....लुब्धैः शबरसेनापतिभिरभिहन्यमानकेसरिशता,
   उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
2. क्वचित् प्रलयवेलेव महावराह–..... पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम।
   उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
3. तस्यैवंविधस्य सरसः .....तुङ्गतया नन्दनवनश्रियमिवावलोकयितु–मायुद्यतः,
   उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
4. स्वसमीपवर्त्तिनामुपरि संचरतां.....महान् जीर्णः शाल्मलीवृक्षः।
   उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
5. विन्ध्याटवी का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्नों के उत्तर इकाई के 3.2 अंश से विद्यार्थी स्वयं खोजें।

4.5 सारांश

विन्ध्याटवी वर्णन से शुक जन्म वर्णन पर्यन्त वृत्तान्त का अध्ययन हमने इस इकाई गया है। कवि बाण ने इसमें विन्ध्यवन के प्राकृतिक दृश्यों को बड़े ही मनोरम ढंग से चित्रित किया गया है। कवि ने वन्य परिस्थितियों को पाठकों के सामने मानों साकार कर दिया है। साथ ही इसमें वैशम्पायन नामक शुक के जन्म का वर्णन भी यहाँ किया गया है।विन्ध्याटवी का बहुत ही सुन्दर एवं मनोहारी चित्रण किया गया है, जो कि यथार्थपरक भी है। गोदावरी नदी के तट पर स्थित अगस्त्य ऋषि के आश्रम का वर्णन पम्पा नाम के सरोवर का विशद वर्णन इस इकाई में किया गया है । इस प्रकार महाकवि बाणभट्ट ने प्रकृति के सौम्य एवं भीषण दोनों ही रूपों का प्रतिपादन कवि ने एकत्र उपस्थापित किया है ।

4.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कादम्बरी (कथामुखपर्यन्ता), व्याख्याकार : भानुचन्द्रसिद्धचन्द्र गणि मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2002.
2. कादम्बरी (कथामुखम्), सं. आचार्य रामनाथ शमा 'सुमन, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1967.
3. कादम्बरी, सं. डॉ. जयशंकरलाल त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी वाराणसी–1993.
4. कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल,चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी,1957.
5. कादम्बरी : इण्ट्रोडक्शन एण्ड नोट्स, पी. पेटरशन, बम्बई–1953.

इकाई – 5

प्रभात वर्णन एवं शबरसैन्य द्वारा विन्ध्याटवी के भयंकर विध्वंस का वर्णन

(एकदा तु..... मरणमद्यैव उपपादयेत् अंश की सप्रसंग व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 कादम्बरी कथामुख की सप्रसंग व्याख्या (एकदा तु..... मरणमद्यैव उपपादयेत् अंश की सप्रसंग व्याख्या)
5.3 पारिभाषिक शब्दावली
5.4 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.5 सारांश
5.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.0 उद्देश्य

- गद्यकाव्य बोध एवं विश्लेषण का सामर्थ्य विकसित करना।
- महाकवि बाणभट्ट के उत्कृष्ट गद्य से छात्रों को परिचित करवाना।
- कादम्बरी के प्राकृतिक वर्णन चित्रों के वैशिष्ट्य को प्रस्तुत करना।
- प्रतिपाद्य विषय कादम्बरी कथामुख के प्रभात वर्णन से शुकावस्था वर्णन पर्यन्त भाग को सुस्पष्ट करना।

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के महाकवि बाणभट्ट द्वारा विरचित कादम्बरी कथामुख भाग के प्रभातवर्णन से प्रारम्भ कर शुकावस्था वर्णनपर्यन्त भाग को विश्लेषणपूर्वक स्पष्ट किया गया है। कवि द्वारा प्रभातकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुपम चित्रण प्रस्तुत करते हुए शबर सैन्य एवं उसके द्वारा विन्ध्याटवी में किये गये भयंकर विध्वंस का भयावह चित्रण किया गया है। साथ ही शुक शावक की अवस्था का करुणोत्पादक निरूपण भो किया गया है।

5.2 कादम्बरी कथामुख की सप्रसंग व्याख्या (एकदा तु..... मरणमद्यैव उपपादयेत् अंश की सप्रसंग व्याख्या)

प्रसंग – प्रस्तुत गद्य खण्ड महाकवि बाणभट्ट विरचित कादम्बरी कथामुख से लिया गया है। इस अंश में महाकवि बाण प्रभातकाल का सुन्दर व मनोहारी वर्णन कर रहे हैं।

एकदा तु प्रभातसन्ध्यारागलोहिते गगनतले, कमलिनी–मधुरक्त–पक्षसम्पुटे वृद्धहंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपर–जलनिधि–तटमवतरति चन्द्रमसि, परिणत–रङ्कु–रोम–पाण्डुनि व्रजति विशालतामाशाचक्रवाले–गजरुधिर–रक्त–हरिसटा–लोहिनीभिः प्रतप्त–लाक्षिक–तन्तु–पाटलाभिराया – मिनीभिः अशिशिरकिरणदीधितिभिः पद्मरागशलाकासम्मार्जनीभिरिव समुत्सार्य्यमाणे गगन–कुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे, सन्ध्यामुपासितुमुत्तराशाऽवलम्बिनि मानससरस्तीरमिवावतरति सप्तर्षिमण्डले, तटगत–विघटित–शुक्ति–सम्पुटविप्रकीर्णमरुणकर–प्रेरणाधोगलितमुडुगणमिव मुक्ताफलनिकरमुद्वहति धवलितपुलिनमुदन्वति पूर्वेतरे,

अनुवाद – एक बार प्रातःकालीन उषा की लालिमा से लाल वर्ण के आकाशतल में कमलिनी के मधु से लाल पक्षपुटों वाले बूढ़े हंस के समान चन्द्रमा के आकाश–गंगा के रेतीले किनारों से पश्चिमी समुद्र के तट पर उतर जाने पर अथवा चन्द्रमा, जो मानों कमलिनी के मधु से लाल पंखों वाला बूढ़ा हंस हो, के आकाश गंगा के रेतीले तट से दूसरे पश्चिमी समुद्र के किनारे पर उतर जाने पर; बूढ़े रंकु के रोमों के समान पाण्डु वर्ण वाले दिशा–समूह के विशालता को प्राप्त कर लेने पर; हाथी के खून से लाल हुई शेर की सटाओं के समान लाल–लाल, खूब गरम की गई लाख के तन्तुओं के समान पाटल वर्ण वाली, खूब लम्बी–लम्बी सूर्य की किरणें, जो मानों पद्मराग मणि की सीकों से बनी झाड़ू हैं के द्वारा आकाशरूपी फश के पुष्पसमूह के समान तारासमूह को दूर कर दिये जाने पर उत्तर दिशा में लटकते हुए सप्तर्षिमण्डल के मानों सन्ध्या की उपासना के लिए मानसरोवर के तट पर उतर आने पर पूर्व से भिन्न पश्चिमी समुद्र के द्वारा तट पर स्थित फूटी सीपों के संपुटों से बिखरे हुए, पुलिन को श्वेत कर देने वाले मोतियों के समूह, जो मानों सूर्य की किरणों द्वारा नीचे गिराये गये तारागण हों, को धारण कर लेने पर;

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवतरति – अव + तृ + शतृ + ङि; प्रतप्तः – प्र + तप + क्त; उदन्वति उदक + मतुप् (उदन् आदेश)।

विशेष – (1) प्रभातसन्ध्या – पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार तीन सन्ध्यायें प्रचलित हैं – 1. प्रातःकालीन सन्ध्या, सायंकालीन सन्ध्या – जिन्हें क्रमशः पूर्वा और पश्चिमा सन्ध्या भो कहते हैं, तथा मध्याह्न सन्ध्या। (2) परिणतरङ्कु – बूढ़ा रङ्कु हरिण (मृग विशेष) जिसकी पीठ पर सफेद चितलियाँ होती हैं। (3) कुट्टिमकुसुमप्रकरे – यहाँ पर आकाश को फश तथा तारों को उन पर बिखरे हुए फूल बताया गया है, जिन्हें सूर्य अपनी किरण रूपी सम्मार्जनी से बुहार रहा है। तारों के अस्त होने की यहाँ माजनी से सम्मुत्सारण में उत्प्रेक्षा की गई है। (4) सप्तऋषि मण्डल – मारीच आदि मण्डल सप्तऋषि मण्डल के नाम से जाने जाते हैं। (5) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा, उत्प्रेक्षा एवं पुनरुक्त वदाभास अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में प्रकृति की कमनीयता के चित्रण में सिद्धहस्त महाकवि बाण ने प्रभातकालीन वन की सुषमा का सुन्दर वर्णन किया है।

तुषारबिन्दुवर्षिणि विबुद्धशिखिकुले विजृम्भमाणकेशरिणि करिणी–कदम्बक–प्रबोध्यमान–समदकरिणि क्षपाजलजडकेसरं कुसुमनिकरमुदयगिरिशिखरस्थितं सवितारमिवोद्दिश्य पल्लवाञ्जलिभिः समुत्सृजति कानने, रासभ–रोम–धूसरासु वनदेवताप्रासादानां तरूणां शिखरेषु पारावतमालायमानासु धर्म्मपताकास्विव समुन्मिषन्तीषु तपोवनाग्निहोत्रधूमलेखासु, अवश्यायशीकरिणि लुलितकमलवने रतिखिन्नशबरसीमन्तिनी–स्वेदजलकणापहारिणि वनमहिष–रोमन्थफेनबिन्दुवाहिनि चलितपल्लव– लता – लास्योपदेश – व्यसनिनि विघटमान – कमलखण्ड – मधुसीकरासारवर्षिणि कुसुमामोदतर्पितालिजाले निशावसानजातजडिम्नि मन्द–मन्दसञ्चारिणि प्रवाति प्राभातिके मातरिश्वनि,

अनुवाद – जिस में ओस की बूंदों की वर्षा हो रही थी, जिसमें मोर जाग चुके थे, जिनमें सिंह जम्हाई ले रहे थे, जिसमें हथिनियों के समूह द्वारा मत्त हाथियों को जगाया जा रहा था, ऐसे वन द्वारा रात्रिकालीन जल से जड़ीभूत केशर वाले पुष्प–समुदाय को पल्लवरूपी अंजलियों द्वारा उदयगिरि की चोटी पर स्थित सूर्य को मानो उद्देश्य करके दिये जाने पर; गधों के रोम के समान धूसरित वर्णवाली, वन के देवताओं के प्रासाद वृक्षों की चोटियों पर कबूतरों की माला के समान आचरण करने वाली, धर्म की पताकाओं के समान, तपोवन के अग्निहोत्रों की धुएँ की रेखाओं के द्वारा ऊपर फैलती हुई होने पर; ओस की बूंदों से युक्त, कमलवन को हिला देने वाली कामक्रीडा से अलसाई हुई शबर–पत्नियों के पसीने की बूंदों को सुखा देने वाली, जगली भसों के जुगाली के फेनों की बूंदों को वहन करने वाली, हिलते पल्लवों से युक्त लताओं को नृत्य के उपदेश व्यसनवाली, खिलते हुए कमलों के समूह के पुष्परस की बूंदों की घनी वर्षा वाली, फूलों की गन्ध से भमर–समूह को सन्तुष्ट कराने

वाली, रात्रि की समाप्ति से उत्पन्न जड़ता वाली, धीरे–धीरे चलने वाली प्रातःकालीन हवा के चलने पर,

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मन्दमन्दसंचारिणि – मन्दं मन्दं संचरति इति तच्छीलः तस्मिन्; प्राभातिके – प्रभाते भवः प्राभातिकः तस्मिन्; लुलितकमलवने – लुलितं कमलवनं येन तस्मिन्; उद्दिश्य – उत् + दिश् + ल्यप्; प्रबोध्यमान – प्र + बुध + णिच् + शानच्।

विशेष – (1) पारावतमालायमानासु – प्राचीन काल में महलों के शिखर भाग पर पत्थर में तराशी गई कबूतरों की आकृतियाँ बनाई जाती थी। उन्हें कपोताली कहा जाता था। यहाँ कवि ने यज्ञ के धुएँ की कपोताली से उपमा दी है। (2) आसार – धारा रूप में वर्षा, धारासम्पात आसारः स्यात्। (3) प्रस्तुत अंश में उत्प्रेक्षा, रूपक, समासोक्ति आदि अलंकारों के अङ्गागिभाव से संकर अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण ने प्रातःकालीन वन के मनोरम दृश्य का समुपस्थापन करते हुए भवरों का वर्णन किया है साथ ही वन में होने वाले विविध क्रिया–कलापों का स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया है।

कमलवनप्रबोधमङ्गलपाठकानाम् इभगण्डडिण्डिमानां मधुलिहां कुमुदोदरेषु घटमान–दलपुट– निरुद्धपक्षसंहतीनामुच्चरत्सु हुङ्कारेषु, प्रभातशिशिरवाय्वाहतमुत्तप्तजतुरसाश्लिष्ट –पक्ष्ममालमिव सशेषनिद्राजिह्मितारं चक्षुरन्मीलयत्सु शनैः शनैरूषरशय्या–धूसरक्रोडरोमराजिषु वनमृगेषु, इतस्ततः सञ्चरत्सु वनचरेषु, विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासरः कलहंसकोलाहले, समुल्लसति नर्त्तितशिखण्डिनि मनोहरे वनगजकणतालशब्दे, क्रमेण च गगनतलमवरतो दिवसकरवारणस्यावचूलचामरकलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठारागलोहिते किरणजाले, शनैःशनैरुदिते भगवति सवितरि, पम्पासरः पर्य्यन्त–तरु–शिखर–सञ्चारिणि, अध्यासित– गिरिशिखरे दिवसकरजन्मनि हृततारे पुनरिव कपीश्वरे वनमभिपतति बालातपे, स्पष्टे जाते प्रत्यूषसि, नचिरादिव कुलेषु, कुलाय–निलीननिभृत–शुक–शावकसनाथेऽपि निःशब्दतया शून्य इव तस्मिन् वनस्पतौ, स्वनीडावस्थित एव ताते, मयि च शैशवादसञ्जातबलसमुद्विद्यमानपक्षपुटे पितुः समीपवर्त्तिनि कोटरगते,

अनुवाद – कमलवन को जगाने के लिये मंगल वचनों का उच्चारण करने वाले, हाथियों के गालों पर नगाड़े के सदृश आवाज करने वाले भमर जिनके पंख–समूह कुमुदों के मध्य भाग में बन्द होती हुई पंखुड़ियों में बन्द हो रहे थे, ऐसे भमरों के हुँकार का उच्चारण करने पर, ऊषर (तृणादिशून्य) भूमि में शयन से धूसरित वक्षःस्थल के रोमसमूह वाले वनमृगों के प्रभातकालीन शीतल हवा से ताड़ित, मानों तपाये गए लाख के रस से चिपकाए गए, पलकों वाले, कुछ अवशिष्ट निद्रा के कारण तिरछी या अलसाई पुतली वाले नेत्रों को धीरे–धीरे खोले जाने पर, वनचरों के इधर–उधर घूमने पर; कानों को आकृष्ट करने वाले, पम्पासरोवर के कलहंसों के कोलाहल के बढ़ जाने पर; मोरों को नचाने वाले, मनोहारी, जंगली हाथियों के कानों के ताल–शब्द (फड़फड़ाहट या वाद्यविशेष की आवाज) के फैलने पर; मंजीठ की लालिमा के समान लाल किरणसमूह के क्रमशः आकाशतल में उतरते हुए सूर्यरूपी हाथी के नीचे मुख वाले (मजीठ सदृश लाल रंग वाले) चामरसमूह के समान दिखाई देने पर; भगवान् सूर्य के धीरे–धीरे उदित हो जाने पर; पम्पासरोवर की सीमाओं पर लगे हुए वृक्षों की चोटियों पर विचरण करने वाले, पहाड़ की चोटियों पर रहने वाले, सूर्य से उत्पन्न होने वाले, सुग्रीव पक्ष में – सूर्य के पुत्र, तारों का हरण करने वाले (सुग्रीव पक्ष में – बालि–पत्नी तारा का हरण करने वाले), बाल आतप = प्रातःकालीन धूप के मानों फिर से वानरराज सुग्रीव के समान वन में आ जाने पर; प्रातःकालीन धूप ऐसी लग रही थी मानों कपिराज सुग्रीव दुबारा वन में आ गए हों। प्रातःकाल के स्पष्ट प्रतीत हो जाने पर; पम्पासरोवर की सीमाओं तटों पर लगे हुए वृक्षों की चोटियों पर विचरण करने वाले, पहाड़ की चोटियों पर रहने वाले, सूर्य से उत्पन्न होने वाले, सुग्रीव पक्ष में – सूर्य के पुत्र, तारों का हरण करने वाले सुग्रीव पक्ष में बालि–पत्नी तारा का हरण करने वाले, बाल आतप = प्रातःकालीन धूप के मानों फिर

से वानरराज सुग्रीव के समान वन में आ जाने पर, प्रातःकालीन धूप एसी लग रही थी मानो कपिराज सुग्रीव दुबारा वन में आ गए हों। प्रातःकाल के स्पष्ट प्रतीत हो जाने पर;

कुछ ही समय बाद दिन के आठवें भाग = चार घड़ी को प्राप्त करने वाले सूर्य के स्पष्ट प्रभाववाला होने जाने पर; तोतों के समूहों के अपनी अभोष्ट दिशाओं की ओर से चले जाने पर; घोसलों में छिपे हुए निश्चल शुकों के बच्चों से युक्त होने पर भो शब्दरहित होने के कारण उस शाल्मली वक्ष के सूना सा लगने पर मेरे पिता के घोसले में बैठे ही रहने पर और बचपन के कारण जिन में उड़ने की शक्ति उत्पन्न नहीं हो पाई थी और जो बाहर निकल रहे थे ऐसे पंखों वाले अपने पिता के समीप रहने वाले मेरे कोटर में रहने पर;

व्याकरणात्मक टिप्पणी – समुद्विद्यमान – सम् + उद् + भिद् + शानच् कमवाच्य में यक्; विजृम्भमाण – वि + जृम्भ + शानच्; कुमुदोदरेषु – कुमुदानां उदरेषु; मधुलिहाम् – मधु लिहन्ति इति मधुलिहः तेषाम्; उच्चरत्सु – उत् + चर् + शतृ + सुप्; अवतरतः – अव + तृ + शतृ + ङस्।

विशेष – (1) मङ्गलपाठक – प्रातःकाल मङ्गलमय प्रशस्तियाँ गाने वाले चारण लोग राजा को जगाया करते थे। भोंरे भो मानों कमल–वन रूपी राजाओं के मङ्गलपाठी चारण हैं। (2) दिवसकरजन्मनि – आतप और सुग्रीव – रामायण की कथा के अनुसार सुग्रीव सूर्य का पुत्र था। ध्यानमुद्रा में स्थित भगवान् ब्रह्मा के नेत्रों से अकस्मात् आँसू टपक पड़ा, जिससे एक सुन्दर वानरी का जन्म हुआ और उससे सूर्य देव का औरस पुत्र सुग्रीव तथा इन्द्र का पुत्र बालि उत्पन्न हुआ।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण ने वन में शिकार के समय होने वाली खलबली का चित्रण किया है।

सहसैव तस्मिन् महावने संत्रासितसकलवनचरः, सरभसमुत्पतत्पतत्रिपक्षपुटशब्दसन्ततः, भीत–करिपोत–चीत्कारपीवरः, प्रचलितलताकुल–मत्तालिकुलक्वणितमांसलः, परिभ्रमदुद्धोणवनवराह– रवघर्घरो, गिरिगुहा–सुप्त–प्रबुद्ध–सिंहनादोपबृंहितः, कम्पयन्निव तरून्, भगीरथावतार्य्यमाण– गङ्गाप्रवाहकलकल – बहलो भीतवनदेवताकर्णितो मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरत्। आकर्ण्य च तमहमश्रुतपूर्वमुपजातवेपथुरर्भकतया जर्ज्जरित – कणविवरो भयविह्वलः समीपवर्त्तिनः पितुः प्रतीकारबुद्ध्या जराशिथिलपक्षपुटान्तरमविशम्।

अनुवाद – उस विशाल वन में अचानक ही मृगया शिकार के कोलाहल की आवाज होने लगी, जो सभो वनचरों को त्रस्त कर देने वाली, वेगपूर्वक उड़ने वाले पखियों के पंखों के पुट के शब्द से विस्तृत हो जाने वाली, डरे हुए हाथियों के बच्चों की चीत्कार से बढ़ी हुई, हिलती हुई लताओं में व्याकुल और मत्त भमरसमूह की गुंजन से मांसल (खूब बढ़ी हुई), इधर–उधर घूमने वाले अपने थूथन को ऊपर कर लेने वाले जंगली सुअरों की आवाज से कठोर, पहाड़ों की गुफाओं में सोए हुए जाग जाने वाले सिंह की नाद से बढ़ी हुई, मानों वृक्षों को हिला डालने वाली, भगीरथ द्वारा स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारी जाती हुई गंगा के प्रवाह के कलकल ध्वनि के समान प्रचुर, डरी हुई वन–देवताओं द्वारा सुनी गई थी। ऐसी शिकार के कोलाहल की ध्वनि होने लगी।

उससे पहले कभो भो न सुनी गई उस शिकार के कोलाहल की आवाज को सुन कर बच्चा होने के कारण काँपता हुआ, जर्जरित कण–छिद्रों वाला, भय से व्याकुल मैं प्रतीकार–बुद्धि (भय दूर करने की भावना) से पास में स्थित पिता के वार्धक्य से शिथिल पंखपुट के भोतर घुस गया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पतत्री – पक्षी, पतन्तं त्रायते इति पतत्रम् पक्षः तद् अस्य अस्तीति पतत्री; प्रतिकारः – प्रति + कृञ + घञ्; कम्पयन् – कम्प् + शतृ; उदचरत् – उत् + चर् + लङ्।

विशेष – (1) सहसा – यह सहस् शब्द का तृतीया का एकवचन का रूप है। (2) भगीरथ... बहल – यहाँ पर पौराणिक परम्परा के अनुसार कपिल मुनि के शाप से दग्ध सगर के साथ

हजार पुत्रों की सद्गति के लिए राजा भगीरथ गङ्गा को ब्रह्मलोक से पृथ्वी पर लाये थे। इस कथा की ओर संकेत किया गया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्य खण्ड में महाकवि बाण ने शबर सेनापति के शिकार का वर्णन करते हुए कोलाहल ध्वनि का निरूपण किया है।

अनन्तरञ्च सरभसम् इतो गजयूथपति–लुलित–कमलिनी–परिमलः, इतः क्रोडकुल–दश्यमान– भद्रमुस्ता–रसामोदः; इतः करिकलभ–भज्यमान–सल्लकी–कषाय–गन्धः; इतो निपतित–शुष्क– पत्त्रमर्म्मध्वनिः, इतो वनमहिष–विषाण–कोटिकुलिश–भिद्यमान–वल्मीकिधूलिः, इतो मृगकदम्बकम्, इतो वनगजकुलम्, इतो वनवराहयूथम्, इतो वनमहिषवृन्दम्, इतः शिखण्डिमण्डल–विरुतम्, इतः कपिञ्जल–कुल–कलकूजितम्, इतः कुररकुल–क्वणितम्, इतो मृगपतिनख–भिद्यमान–कुम्भ– कुञ्जर–रसितम्, इयमार्द्र–पङ्कमलिना वराहपद्धतिः, इयमभिनव–शष्पकवल–रस–श्यामला हरिण–रोमन्थ–फेन–संहतिः, इयमुन्मद – गन्धगजगण्ड – कण्डूयन – परिमलनिलीन – मुखरमधु–कर–विरुतिः, एषा निपतितरुधिरबिन्दुसिक्त–शुष्कपत्त्र–पाटला रुरुपदवी, एतद्द्विरद–चरण– मृदित–विटप–पल्लवपटलम्, एतत् खड्गिकुलक्रीडितम्, एष नखकोटि–विक्टविलिखित–पत्त्रलेखो रुधिरपाटलःकरिमौक्तिकदन्तुरो मृगपतिमार्गः, एषा प्रत्यग्रप्रसूतवनमृगीगर्भ–रुधिर–लोहिनी भूमिः, इयमटवी वेणिकानुसारिणी पक्षचरस्य यूथपतेर्मदजलमलिना, सञ्चार–वीथी–चमरीपङ्क्तिरियमनुगम्यताम्, उच्छुष्कमृग–करोष–पांसुला त्वरिततरमध्यास्यतामियं वनस्थली, तरुशिखर–मारुह्यताम्, आलोक्यतां दिगियम्, आकर्ण्यतामयं शब्दः, गृह्यतां धनुः अवहितैः, स्थीयताम्, विमुच्यन्तां श्वानः'इत्यन्योन्यमभिवदतो मृगयासक्तस्य महतो जनसमूहस्य तरुगहनान्तरितविग्रहस्य क्षोभितकाननं कोलाहलमशृण्वम्।

अनुवाद – उस अभ्तपूर्व कोलाहल के बाद शिकार में लगे हुए, वृक्षों के कुंजों में शरीर को छिपाए हुए विशाल जनसमूह का उस वन को क्षुब्ध कर देने वाला कोलाहल सुना जो जनसमूह परस्पर इस प्रकार से वेगपूर्वक कह रहा था – 'इस ओर हाथियों के स्वामी द्वारा रौंदी गई कमलिनी की खुशबू है; इस ओर जंगली सुअरों के समूह द्वारा चबाई जाती हुई नागरमोथा के रस की गन्ध है; इस ओर हाथियों के बच्चों द्वारा तोड़ी जाती हुई सल्लकी (हाथियों की प्रिय भोज्य पौधों) की कसैली गन्ध है; यहाँ गिरे हुए सूखे पत्तों की मर्मर आवाज है; यहाँ जंगली भसों के सींगों के अग्रभाग रूपी वज्र द्वारा गिराए जाते हुए दीमकों के बने हुए ढेर की धूलि है; यहाँ हिरनों का समूह है; यहाँ हाथियों का समुदाय है; यहाँ मयूरों के समूह की आवाज है; यहाँ कपिञ्जल (सफेद तीतर या चातक) पक्षियों के समुदाय की मधुर आवाज है; यहाँ कुरर नामक पक्षियों के समूह की आवाज है; यहाँ सिंह के नाखूनों से विदीर्ण किए जाते हुए मस्तकों वाले हाथियों की चीत्कार है; यह गीले कीचड़ से मलिन सुअरों का रास्ता है; यह नई ताजी घास के कौर (ग्रास) के रस से सांवला, हरिनों से जुगाली के, फेनों का समुदाय है; यह मदमत्त गन्ध–युक्त हाथियों द्वारा गण्डस्थल को खुजलाने के कारण निकली हुई गन्ध में लीन शब्द करने वाले भौंरों का शब्द = झंकार है; यह गिरे हुए खून की बूंदों से सींचे गए सूखे पत्तों से पाटल वर्णवाला गुलाबी रुरु नामक मृगों का रास्ता है; यह हाथियों के पैरों से मर्दित वृक्ष के पत्तों का समूह है, यह गैंडों के समूह का खेलना है; यह नाखूनों के अग्रभाग द्वारा भयंकर चित्रित पत्रलेखा वाला, रक्त से पाटलवर्ण वाला, हाथियों की मुक्ताओं के कारण ऊँचा–नीचा सिंह का रास्ता है; यह तत्काल ब्याई हुई हिरनी के गर्म खून से लाल जमीन है; यह समूह के साथ चलने वाले गजाधिप के मदजल से मलिन, वेणिका का अनुकरण करने वाली अटवी है।

संचरण मार्ग में चमरी गाय की इस पंक्ति का पीछा करो; हिरनों के सूखे पुरीष से धूलिवाली इस वनस्थली में तुरन्त पहुँचो, अधिकार कर लो; पेड़ों की चोटी पर चढ़ जाओ, इस दिशा की ओर देखो; यह आवाज सुनो; धनुष पकड़ लो, सावधान खड़े हो जाओ, शिकारी कुत्तों

को जंगली जानवरों का पीछा करने के लिए छोड़ दो।'' इस प्रकार के कोलाहल को मैंने सुना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निपतितः – नि + पत् + क्त; संहतिः – सम् + हन् + क्तिन्; दन्तुरः – दन्त + उरच्; सञ्चारवीथी – सञ्चारस्य वीथी; खड्गिकुलक्रीडितम – यहाँ क्रीडित शब्द में अधिकरण अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ है; अवहिते – अव् + धा + क्त, धा के स्थान में हि आदेश।

विशेष – (1) परिमल – किसी वस्तु के मसलने से उत्पन्न गन्ध का नाम परिमल है। यथा – विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे; (2) विटप – शाखा पल्लव समुदाय – शाखायां पल्लवे स्तम्बे विस्तारे विटपोऽस्त्रियाम्।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट ने शिकार के समय होने वाले कोलाहल एवं वन में होने वाली अस्त–व्यस्तता का स्वाभाविक चित्रण किया है।

अथ नातिचिरादेवानुलेपनार्द्र–मृदङ्गध्वनिधीरेण गिरिविवर–विजृम्भित–प्रतिनादगम्भीरेण शबर– शर – ताडितानां केसरिणां निनादेन, संत्रस्त – यूथ – मुक्तानामेकाकिनाञ्च सञ्चरतामनवरतकरास्फोटमिश्रेण जलधर–रसितानुकारिणा गजयूथपतीनां कण्ठगर्जितेन, रभस–सारमेयविलुप्यमानावयवानामालोलतरल–तारकाणामेणकानाञ्च करुण–कूजितेन, निहतयूथपतीनां वियोगिनीनामनुगत–कलभानाञ्च स्थित्वा स्थित्वा समाकर्ण्य कलकलमुत्कणपल्लवानामितस्ततः परिभ्रमन्तीनां प्रत्यग्र–पतिविनाशशोकदीर्घेण करिणीनां चीत्कृतेन, कतिपय – दिवस – प्रसूतानाञ्च खड्गिधेनुकानां त्रास – परिभ्रष्ट– पोतकान्वेषिणीनामुन्मुक्तकण्ठमारसन्तीनामाक्रन्दितेन, तरुशिखरसमुत्पततानामाकुलाकुलचारिणाञ्च पत्त्ररथानां कोलाहलेन, रूपानुसार–प्रधावितानाञ्च, मृगयूणां युगपदतिरभसपाद–पाताभिहताया भुवः कम्पमिव जनयता चरणशब्देन, कर्णान्ताकृष्टज्यानाञ्च मदकल – कुररकामिनी – कण्ठकूजितकलशबलितेन शरनिकरवर्षिणां धनुषां निनादेन, पवनाहतिक्वणितधाराणामसीनाञ्च कठिन–महिष–स्कन्धपीठपातिनां रणितेन, शुनाञ्च सरभसविमुक्तघर्घरध्वनीनां वनान्तरव्यापिना ध्वानेन सर्वतः प्रचलितमिव तदरण्यमभवत्।

अचिराच्च प्रशान्ते तस्मिन् मृगयाकलकले, निर्वृष्ट–मूक–जलधर–वृन्दानुकारिणि मथनावसानोपशान्तवारिणि सागर इव स्तिमिततामुपगते कानने, मन्दीभूतभयोऽहमुपजातकुतूहलः पितुरुत्सङ्गादीषदिव निष्क्रम्य कोटरस्थ एव शिरोधरां प्रसार्य्य सन्त्रास–तरल–तारकः शैशवात् किमिदमित्युपजातदिदृक्षस्तामेव दिशं चक्षुः प्राहिणवम्।

अनुवाद – तब कुछ ही देर बाद खाल पर लगाए गए लेप से गीले मृदङ्ग की आवाज के समान गम्भीर, पहाड़ों की गुफाओं में अत्यधिक प्रतिध्वनि से घनीभत, सैकड़ों भोलों द्वारा मारे गए सिंहों की निनाद से तथा भयातुर हाथियों के समूह से अलग हुए अत एव अकेले भटकने वाले, हाथियों के समूह के सरदारों के निरन्तर सूंडों के प्रहार से मिश्रित और मेघों की गर्जन का अनुकरण करने वाली अर्थात् उसके समान प्रतीत होने वाली कण्ठगर्जित = चिंघाड़ से और वेगवाले कुत्तों द्वारा काटे जाते हुए अङ्गोंवाले तथा अत्यन्त चंचल और डरी हुई पुतलियों वाले हिरनों के करुण क्रन्दन से और मारे गए स्वामियों वाली वियोगिनी तथा किशोर शिशुओं द्वारा अनुगम्यमान जिनके पीछे पीछे छोटे बच्चे चल रहे हैं ऐसी, रुक–रुक कर उस कोलाहल को सुनकर कणपल्लवों को ऊपर उठा लेने वाली, इधर–उधर भटकती हुई हथिनियों के ताजे पति के विनाश के शोक से बढ़े हुए चीत्कार से और कुछ ही समय पहले ब्याही हुई तथा भय से नष्ट या खोये हुए बच्चों को खोजने वाली ऊँचे–ऊँचे स्वर से चिल्लाने वाली मादा गेडाओं के करुण क्रन्दन से और पेड़ों की चोटियों से उड़ने वाले अत्यन्त व्याकुल होकर घूमने वाले पक्षियों के चीं–चीं इस प्रकार के कोलाहल से और मृगादि पशुओं के पीछे दौड़ने वाले शिकारियों की, एक साथ अत्यन्त वेग से पैरों द्वारा

ताड़ित पृथ्वी के मानों कम्पन को उत्पन्न कराते हए पैरों की आवाज से और कानों तक खींची गई डोरियों वाले, बाणों की वर्षा करने वाले धनुषों की, मद से सुन्दर कुररनामक पक्षियों की स्त्रियों के कण्ठ से निकली मधुर ध्वनि से मिले हुए टंकार से और हवा से टकराने के कारण शब्द करती हुई धारा वाली, भसों से कठोर कन्धों पर गिरने वाली तलवारों की आवाज से और बड़ी तेजी के साथ धुरंधर आवाज करने वाले कुत्तों की वन के मध्यभाग को व्याप्त कर लेने वाली आवाज से वह वन सभो ओर से मानों कांप उठा था।

और थोड़ी ही देर में उस शिकार के कोलाहल के शान्त हो जाने पर, वन के पूरी वर्षा कर देने से गर्जन रहित बादलों के समूह का अनुकरण वाला हो जाने पर, मन्थन के अन्त में शान्त जल वाले समुद्र के समान निश्चलता प्राप्त कर लेने पर कुछ कम भय वाला और कौतुकयुक्त मैं अपने पिता की गोद से कुछ ही बाहर निकल कर कोटर में ही स्थित रहता हुआ गर्दन फैलाकर, भय के कारण चंचल या क्षुब्ध पुतलियों वाला, शैशव के कारण 'यह क्या हुआ है?' इस प्रकार की उत्पन्न हुई इच्छा वाला होता हुआ उसी दिशा की ओर दृष्टि दौड़ाने लगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – दिदृक्षा – दृश् + सन् + टाप् – देखने की इच्छा; स्तिमित – स्तिम् + क्त; निर्वृष्टः – निर् + वृष् + क्त; समाकर्ण्य – सम् + आ + कर्ण् + ल्यप्; स्थित्वा – स्था + क्त्वा; अचिरात् – न चिरात् अचिरात्; यहाँ नञ् का अर्थ थोड़ा है। नञ् के छः अर्थ माने गये हैं

तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः।

विशेष – (1) अनुलेपनार्द्रमृदङ्गः – मृदङ्ग या ढोल की आवाज को मधुर बनाने के लिए उसके मुख पर विशेष प्रकार का लेप किया जाता है। लेप के कारण मृदङ्ग और भो अधिक गम्भोर ध्वनि करता है। (2) खड्गिधेनुका – गेण्डे की मादा; यद्यपि अमरकोश के अनुसार 'करिणी धेनुका वशा' तथा 'धेनुका तु करेण्वां च' के आधार पर केवल हथिनी और नवप्रसूता गौ को धेनुका कहा जाता है तथापि प्रत्येक जाति की नवप्रसूता मादा को सामान्यतः धेनुका पद से व्यवहृत किया जाता है। (3) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्य खण्ड में महाकवि बाण ने वैशम्पायन के माध्यम से वन में शिकार हेतु प्रविष्ट शबर सेना का भयावह चित्रण उपस्थित किया है।

अभिमुखमापतच्च तस्माद्वनान्तरादर्जुनभुजदण्ड–सहस्र–विप्रकीर्णमिव नर्म्मदाप्रवाहम्, अनिलचलितमिव तमालकाननम्, एकीभूतमिव कालरात्रीणां यामसङ्घातम्, अञ्जनशिलास्तम्भ– सम्भारमिवक्षितिकम्प–विघूर्णितम्, अन्धकारपुञ्जमिव रविकिरणाकुलितम्, अन्तकपरिवारमिव परिभ्रमन्तम्, अवदारित–रसातलोद्भूतमिव दानवलोकम्, अशुभ–कर्म्म–समूहमिवैकत्र समागतम्, अनेन–दण्डकारण्यवासि–मुनिजन–शाप–सार्थमिव सञ्चरन्तम्, अनवरतशर–निकर–वर्षि–राम– निहित–खर–दूषण–बलनिवहमिव तदपध्यानात् पिशाचतामुपगतम्, कलिकालबन्धुवर्गमिवैकत्र सङ्गतम्, अवगाहप्रस्थितमिव वनमहिषयूथम्, अचल–शिखर–स्थित–केसरि–करा–कृष्टि– पतनविशीर्णमिव कालाभ्रपटलम्, अखिलरूप–विनाशाय धूमकेतुजालमिव समुद्गतम्, अन्धकारितकाननम् अनेकसहस्रसंख्यम्, अतिभयजनकम्, उत्पात–वेतालव्रातमिव शबरसैन्यमद्राक्षम्।

अनुवाद – और इस के बाद उस वन के बीच से सामने आते हुए शबरसैन्य को देखा, जो मानो सहस्रार्जुन के हजारों भजदण्डों द्वारा इधर–उधर बिखेरा गया नर्मदा का प्रवाह था; जो मानों हवा द्वारा प्रकम्पित तमालवृक्षों का वन था; जो मानों कालरात्रियों के एकत्रित किये गये प्रहारों का समूह था; जो मानों भ्कम्प से हिलाई गई अंजन–शिला के स्तम्भों का ढेर था; जो मानों सूर्य की किरणों से व्याकुल किया गया अन्धकार का समूह था, जो मानो

इधर–उधर घूमता हुआ यमराज का परिवार था; जो मानों विदीर्ण (खोदी गई) पृथ्वी = तल (पाताललोक) से निकलता हुआ दानवों का समूह था; जो मानों एक स्थान पर आया हुआ पाप–कर्मों का समूह था; जो मानों दण्डकारण्य में रहने वाले अनेक मुनिजनों के शापों का समूह–सा घूम रहा था; निरन्तर बाणों के समूह की वर्षा करने वाले रामचन्द्र द्वारा मारे गये खर और दूषण की सेना जो मानों उस (राम) के प्रति अशुभचिन्तन के कारण पिशाचत्व को प्राप्त हुई थी; जो एक ही स्थान पर आये हुए कलियुग का बन्धुसमूह था, जो मानों तालाब आदि में नहाने के लिए चला हुआ जंगली भसों का समूह था; जो मानों किसी पर्वत पर बैठे हुए सिंह के हाथों से खींचने के कारण गिरने से इधर–उधर बिखरा हुआ काले मेघों का समूह था। जो मानो सम्पूर्ण रूप वाले पदार्थों या वन्य प्राणियों के विनाश की सूचना देने के लिए प्रकट हुआ धूमकेतुओं का समूह था; जो मानो सम्पूर्ण वन को अन्धकारयुक्त बनाने वाला, कई हजार की संख्या वाला, अत्यधिक भय को उत्पन्न कराने वाला, उत्पात के सूचक या करने वाले बेतालों का समूह था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आपतत् – आ + पत् + शतृ; परिभमन्तम् – परि + भम् + शतृ, द्वितीया एकवचन; उपगतम् – उप् + गम् + क्त; अवगाहप्रस्थितम् – अवगाहः स्नानं तदर्थं प्रस्थितम्।

विशेष – (1) अर्जुन.....प्रवाहमिव – हैहयवंशी राजा सहस्रबाहु अर्जुन ने एक बार अपनी हजारों भजाओं से नर्मदा के प्रवाह को रोककर जलक्रीड़ा की थी। (2) दण्डकारण्य..... सार्थमिव – यहाँ पर गौतम ऋषि द्वारा दुर्भिक्ष के समय तपस्विजनों की रक्षा एवम् उनके द्वारा गौतम से छल कर वहाँ से दण्डकारण्य जाने एवं शापग्रस्त होने की कथा संकेतित है। (3) इसमें शबरसैन्य की विभिन्न वाले, भयानक और विध्वंसक पदार्थों के रूप में उत्प्रेक्षा की गई है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में विशाल शबर सेना के सेनापति का वर्णन वैशम्पायन द्वारा किया गया है।

मध्ये च तस्य महतः शबरसैन्यस्य प्रथमे वयसि वर्तमानम्, अतिककशत्वादायसमयमित्र, एकलव्यमिव जन्मान्तरगतम्, उद्भिद्यमान–श्मश्रुराजितया प्रथम–मदलेखा–मण्ड्यमानगण्डभित्तिमिव गजयूथपतिकुमारम्, असित–कुवलय–श्यामलेन देहप्रभा–प्रवाहेण कालिन्दीजलेनेव पूरिताऽरण्यम्, आकुटिलाग्रेण स्कन्धावलम्बिना कुन्तल–भारेण केसरिणमिव गजमदमलिनीकृतेन केसरकलापेनोपेतम्, आधतललाटम्, अतितुङ्ग–घोरघोणम्, उपनीतस्यैककर्णाभरणतां भुजगफणामणेरापाटलैरंशुभिरालोहितीकृतेन पर्णशयनाभ्यासाल्लग्न–पल्लवरागेणेव वामपार्श्वेन विराजमानम्, अचिर–प्रहत–गज–कपोल–गृहीतेन सप्तच्छदपरिमलवाहिना कृष्णागुरुपङ्केनेव सुरभिणा मदेन कृताङ्गरागम्, उपरि तत्परिमलाऽन्धेन भ्रमता मायूर–पिच्छात–पत्रानुकारिणा मधुकरकुलेन तमाल–पल्लवेनेव निवारितातपम्, आलोलपल्लवव्याजेन भुजबलनिर्जितया भयप्रयुक्तसेवया विन्ध्याटव्येव करतलेनामृज्यमान–गण्डस्थल–स्वेदलेखम्,

अनुवाद – और मैंने भोलों की उस विशाल सेना के बीच में शबरसेनापति को देखा, जो प्रथम अवस्था में विद्यमान अर्थात् नवयुवक था, जो अत्यधिक कठोर होने के कारण मानों लौह से बना हुआ हो; वह ऐसा दिखाई दे रहा था मानों दूसरे जन्म में आया हुआ 'एकलव्य' हो, जो अभी निकली हुई दाढ़ी और मूंछों की रेखा से उसी प्रकार अच्छा लग रहा था जिस प्रकार प्रथमतः निकली हुई मदजल की रेखा से अलंकृत गजपति का राजकुमार हो; जो नीलकमल के समान श्यामला देह की कान्ति के प्रवाह द्वारा मानों उस जंगल को यमुना के जल से भर रहा था; जो आगे कुछ टेढ़े तथा कन्धों पर लटकने वाले केशों के समूह से ऐसा लग रहा था मानों हाथी के मदजल से मलिन किये गये केसरकलाप (ग्रीवास्थित जटाओं) से युक्त सिंह था; जो बहुत चौड़े मस्तकवाला था; जो बहुत ऊँची और भयानक नासिका वाला था; जो एक कान की आभ्षण बनाई गई, साँप के फन की, मणि की आलोहित किरणों से लाल–लाल किये गये अपने वामपार्श्व बायीं ओर से सुशोभित था अतः

ऐसा लग रहा था मानों पत्तों पर शयन के अभ्यास (बार–बार शयन) से नवपल्लवों का लाल रंग लग गया हो; जिसने कुछ समय पहले मारे गये हाथी के कपोलस्थल से लिए गये, सात–सात पत्तों वाले छितवन नामक वृक्ष की गन्ध को साथ में रखने वाले, सुगन्ध से सगन्धित मद से, मानो कृष्णागुरु (काली अगर) के कीचड़ से लेप किया हो, उसकी उत्कट गन्ध से अन्धे बनाये गये, ऊपर उड़ने वाला तथा मोर के पंखों के बने हुए छाते के समान दिखाई देने वाला भमरसमूह जो कि मानो तमाल पल्लव था, के द्वारा उस शबरसेनापति की धूप रोकी जा रही थी; कान में लगे हुए हिलते हुए पल्लव के बहाने से मानों भजबल से जीती गई अत एव भय के कारण सेवा में लगी हुई विन्ध्याटवी ही अपने करतल द्वारा जिसके गालों पर आये हुए पसीने की रेखाओं को पोंछ रही हो;

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विराजमानम् – वि + राज् + शानच्; परिभमता – परि + भम + शतृ + टा; मधुकरकुलेन – मधुकराणां कुलं तेन।

विशेष – (1) प्रथमे वयसि – जीवन को पूर्वार्द्ध एवम् उत्तरार्द्ध में विभक्त कर तरुणिमा को प्रथम वय के नाम से जाना जाता है। (2) एकलव्य – भोल कुमार जिसने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर धनुर्विद्या का अभ्यास कर अर्जुन को भो मात कर दिया था।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण ने शबर सेनापति का विविध विशेषण पूर्वक सुन्दर चित्रण किया है।

आपाटलया हरिणकुल–काल–रात्रि–सन्ध्यायमानया शोणितार्द्रयेव दृष्ट्या रञ्जयन्तमिवाशाविभागानाम्, आजानुलम्बेन कुञ्जर–करप्रमाणमिव गृहीत्वा निर्म्मितेन चण्डिका– रुधिरबलि–प्रदानायाऽसकृन्निशितशस्त्रोल्लेख–विषमित–शिखरेण भुजयुगलेनोपशोभितम्, अन्तरान्तरालग्नश्यान–हरिण–रुधिरबिन्दुना स्वेदजल–कणिका–चितेन गुञ्जाफलमिश्रैः करिकुम्भमुक्ताफलैरिव रचिताभरणेन विन्ध्यशिला–विशालेन वक्षःस्थलेनोद्भासमानम्, अविरतश्रमाभ्यासाद्लिखितोदरम्, इभ–मद–मलिनमालान–स्तम्भयुगलमुपसहन्तमिवोरुदण्डद्वयेन,
लाक्षालोहित–कौशेयपरिधानम्, आकारणेऽपि क्रूरतया बद्धत्रिपताकोदग्रभ्रुकुटिकराले ललाटफलके प्रबलभक्त्याराधितया 'मत्परिग्रहोऽयमि'ति कात्यायन्या त्रिशूलेनेवाङ्कितम्, उपजातपरिचयैरनुगच्छद्भिः, श्रमवशाद् दूरविनिर्गताभिः स्वभाव–पाटलतया शुष्काभिरपि हरिण–शोणितमिव क्षरन्तीभिर्जिह्वाभिरावेद्यमानखेदैः, विवृतमुखतया स्पष्ट–दृष्ट–दन्तांशून् दंष्ट्रान्तराल – लग्न – केसरिसटानिव सृक्वभागानुद्वहद्भिः, स्थूलवराटक – मालिका – परिगत– कण्ठैर्महावराह – दंष्ट्रा – प्रहार – जर्जरैः, अल्पकायैरपि महाशक्तित्वादनुपजात – केसरैरिव केसरिकिशोरकैः,

अनुवाद – जो कुछ लाल–लाल गुलाबी तथा हरिणों के समूह वंश के लिए कालरात्रि की सूचक सन्ध्या क समान बनी हुई मानों रक्त से लाल–लाल दृष्टि से दिशाओं के प्रदेशों लाल रंग से रंग रहा हो; जो घुटनों तक लटकने वाले, मानों हाथी की सूण्ड के माप से बनाए गए, चण्डिका देवी को रुधिर की बलि देने के लिए बार–बार तेज पैने किए गए खड्गादि शस्त्रों के द्वारा किए गए घर्षणों से ऊँचे–नीचे, खुरदुरे अग्रभाग वाले भजद्वय से उपशोभित था; उसकी दोनों भजाएँ घुटनों तक लटकने वाली थी, मानों किसी हाथी की सूण्ड की माप कर उसी प्रकार की बनाई गई थी, चण्डी देवी को खून की बलि देने के लिये शस्त्र को बार–बार पैना करने के कारण जिनका अगला हिस्सा खुरदरा हो गया हो। जो बीच–बीच में लगे हुए हिरन के सूखे खून के बिन्दुओं से युक्त तथा पसीने की बूंदों से व्याप्त वक्षःस्थल से शोभायमान था, जो वक्षःस्थल मानों गुंजाफल से मिश्रित हाथी की मुक्ताओं द्वारा आभरण–युक्त होते हुए विन्ध्य–शिला के समान विशाल था; उसकी छाती पर खून के लाल–लाल सूखे धब्बे और सफेद–सफेद पसीने की बूँदें ऐसी लग रही थीं कि विन्ध्यपर्वत की शिला पर गुंजाओं के साथ में हाथी की मुक्ताए मिल गई हों। निरन्तर शारीरिक श्रम करने के कारण जिसका मध्यभाग (उदर या कटिप्रदेश) पतला हो गया था; जो अपने उरुदण्डद्वय (दोनों जंघाओं) द्वारा मानों हाथी के मद से मलिन दूषित दो आलान–स्तम्भों हाथी बांधने के खम्भों का उपहास कर रहा था; उसकी जांघें हाथी को भो बांध कर रोकने

में समर्थ थी। लाख से लाल रंगे हुए रेशमी वस्त्र पहने हुए था; कोई विशेष कारण न होने पर भो स्वभावतः क्रूर होने के कारण त्रिवली तीन सलवटें बाँध लेने वाली और ऊँची भोंहों से भयानक मस्तक पटल पर, मानों अत्यधिक भक्ति से प्रसन्न कराई गई कात्यायनी (दुर्गा) द्वारा ''यह मेरा भक्त है' इस उद्देश्य से, त्रिशूल द्वारा जिसे चिह्नित कर दिया गया हो; उसके माधे पर बनी तीन सलवटें दुर्गा के त्रिशूल के चिह्न को सूचित करती हों। उसके पीछे अनेक रंगों वाले ऐसे कुत्ते चल रहे थे जो अत्यन्त परिचित थे, इसी कारण पीछे चल रहे थे, जो कुत्ते दौड़ना आदि परिश्रम के कारण दूर तक लम्बी निकली हुई, सूखी होने पर भो स्वभावतः पाटल गुलाबी होने के कारण मानों हिरनों के रक्त को चुवाती हुई जीभां से अपनी थकान सूचित रहे थे; जो कुत्ते फैले खुले हुए मुखों वाला होने के कारण स्पष्टरूप से दिखाई पड़ने वाली दांतों की किरणों वाले, मानों दाढ़ों के बीच में बाहरी ओर लगी हुईं सिंह को सटाओं (ग्रीवास्थित केशों) वाले सृक्कभागों (ओष्ठ के किनारों) को धारण किये हुए थे; (कुत्तों के दांतों की चमक से ऐसा लग रहा था कि वे भो सिंह के समान सटायुक्त सृक्क = ओंठ के किनारों को धारण किए हुए थे।) जिन कुत्तों के गले में बड़ी–बड़ी कौड़ियों की मालायें पड़ी थीं; जो कुत्ते बड़े–बड़े सुअरों की दाढ़ों के प्रहार से जर्जर घायल या निर्बल हो गए थे; जो कुत्ते छोटे आकार वाले होने पर भो अत्यधिक शक्तिवाले होने से, जिनकी सटायें (गरदन के बाल) नहीं निकली थीं ऐसे, सिंह के बच्चों के समान थे;

व्याकरणात्मक टिप्पणी – दृष्ट्वा – दृश् + क्त्वा; उपशोभितम् – उप + शोभ + क्त; उद्भासमानम् – उत् + भास् + शानच्; इभमदमलिनम् – इभानां मदेन मलिनम्;

विशेष – (1) आजानुलम्बिना – घुटनों तक लटकने वाली भजा, शबरसेनापति सरदार होने के कारण महापुरुष के इस लक्षण से युक्त है। (2) आलान – हाथी बाँधने का खूँटा 'आलान–बन्धस्तम्भ' (अमरकोश) के अनुसार आलान का अर्थ स्वयं बन्धस्तम्भ है फिर भो बाण ने आलानस्तम्भ लिखा है, इससे प्रतीत होता है कि उस समय आलान केवल 'बन्धन' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा था, इसलिये बाद के कोशों में 'आलान गजबन्धनम्' पाठ भो दिखाई देता है। (3) मत्परिग्रहोऽयम् – यह मेरा कृपापात्र है, मेरी कृपा है। त्रिशूल अङ्कित करना मानो दुर्गा का अनुग्रह है, कृपा है, प्रसाद है। परिग्रह का शाब्दिक अर्थ है 'लेना' तात्पर्य यह है कि मानो दुर्गा ने इसे अपनी शरण में ले लिया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश खण्ड में शबर सेनापति का वर्णन किया गया है।

मृगवधू–वैधव्य–दीक्षादान–दक्षैरनेकवर्णैः श्वभिः; अतिप्रमाणाभिश्च केसरिणामभयप्रदान –याचनार्थमागताभिः सिंहीभिरिव कौलेयककुटुम्बिनीभिरनुगम्यमानम्, कैश्चिदगृहीत–चमर– बालगजदन्तभारैः, कैश्चिदच्छिद्र–पर्ण–बद्ध–मधुपुटैः, कैश्चिन्मृगपतिभिरिव गज–कुम्भ– मुक्ताफलनिकर–सनाथ–पाणिभिः, कैश्चिद्यातुधानैरिव गृहीतपिशितभारैः; कैश्चित् प्रमथैरिव केसरिकृत्तिधारिभिः, कैश्चित् क्षपणकैरिव मयूरपिच्छधारिभिः, कैश्चिच्छिशुभिरिव काकपक्षधरैः, कैश्चित् कृष्णचरितमिव दर्शयद्भिः समुत्खात–विधृत–गजदन्तैः, कैश्चिज्जलदागमदिवसैरिव जलधरच्छायामलिनाम्बरैः, अनेकवृत्तान्तैः शबरवृन्दैः परिवृतम्,

अनुवाद – जो कुत्ते मृगों की वधुओं को वैधव्य की दीक्षा देने में अत्यन्त कुशल अर्थात् मृगों को मारने में निपुण थे और उस शबर सेनापति के पीछे कुतियाँ भो चल रही थीं, जो कुतियाँ बहुत बड़ी–बड़ी और अपने पतियों सिंहों के लिए अभय–प्रदान करने की प्रार्थना करने के लिए आई हुईं सिंहिनियों के समान प्रतीत हो रही थीं; वह शबर सेनापति शबरों के समूह से घिरा हुआ था, जो अनेक प्रकार के आचरण कर रहे थे, कुछ शबरों ने चमरीमृग के बाल और हाथी के दाँतों के भार को पकड़ रखा था; कुछ ने छिद्ररहित पत्तों में शहद ले रखा था; कुछ ने सिंह के समान अपने हाथों में हाथी के मस्तक–पिण्डों की मुक्ताओं के समूह को ले रखा था; जिस प्रकार सिंह हाथी की मुक्ताओं को अपने हाथ = पंजे में पकड़ लेता है उसी प्रकार वे शबर भो अपने हाथों में मुक्ताओं को लिए हुए थे। कुछ ने यातुधानों राक्षसों के समान मांस का भार पकड़ रखा था; कुछ ने प्रमथों (शिव के गणों) के समान

सिंह के चर्म को ओढ़ लिया था। कुछ ने क्षपणकों जैन संन्यासियों के समान मयूरपिच्छ धारण कर लिया था; जिस प्रकार दिगम्बर जैन भिक्षु मोर के पंखों को साथ में रखते हैं उसी प्रकार कुछ शबर भो मोर–पंख लिए हुए थे। कुछ बच्चों के समान काकपक्ष (घुंघराले बालों की चोटी, शबरपक्ष में कौवों के पंख) धारण किए हुए थे; बालक जिस प्रकार काकपक्ष = चोटी धारण करते हैं वैसे ही वे शबर काकपक्ष = कौवों के पंख धारण किए हुए थे। कुछ कृष्णचरित प्रदर्शित करते हुए उखाड़ कर हाथी का दांत लिये हुए थे; जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने कंस द्वारा प्रेरित कुवलयापीड हाथी और उसके महावत को मार कर हाथी के दांत निकाल कर पकड़ रखे थे उसी प्रकार कुछ शबर भो हाथियों के दांत उखाड़ कर पकड़े हुए थे। कुछ जलदागम (वर्षा ऋतु) के दिनों के समान, मेघों की छाया (परछाई या कान्ति) के समान मलिन वस्त्र वाले थे,

व्याकरणात्मक टिप्पणी – परिवृतम् – परि + वृञ् + क्त; शबरवृन्दैः – शबराणां भिल्लानां वृन्दानि तैः; समुत्खात – सम् + उत् + खन् + क्त।

विशेष – (1) गजदन्त – हाथी दाँत कुवलयापीड नामक हाथी का दाँत, जिसे कृष्ण ने कंस की मल्लशाला में प्रवेश करते समय सूण्ड पकड़ कर पटका था और उसका दाँत उखाड़कर उसी कुवलयापीड तथा उसके महावत अम्बष्ठ को मारा था।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में भो पूर्ववत् शबर सेनापति का वर्णन किया गया है।

अरण्यमिव सखड्गधेनुक, अभिवन–जलधरमिव मयूर–पिच्छ–चित्र–चापधारिणम्, बकराक्षसमिव गृहीतैकचक्रम्, अरुणानुजमिवोद्धृतानेक–महानाग–दशनम्, भीष्ममिव शिखण्डि–शत्रुम्, निदाघदिवसमिव सततविर्भूत–मगतृष्णम्, विद्याधरमिव मानसवेगम्, पराशरमिव
योजनगन्धानुसारिणम्, घटोत्कचमिव भीरूपधारिणम्, अचलराजकन्यका–केशपाशमिव नीलकण्ठ–चन्द्रकाभरणम्, हिरण्याक्ष–दानवमिव महावराह–दंष्ट्रा–विभिन्न–वक्षःस्थलम्, अतिरागिणमिव कृत–बहु–बन्दी–परिग्रहम्, पिशिताशनमिव रक्तलुब्धकम्, गीतकलाविन्यासमिव निषादानुगतम्, अम्बिका–त्रिशूलमिव महिष–रुधिरार्द्रकायम्, अभिनव–यौवनमपि क्षपित–बहुवयसम्, कृत–सारमेय–संग्रहमपि फलमूलाशनम्, कृष्णमप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दचारमपि दुर्गैकशरणम्, क्षितिभृत्पादानुवर्त्तिनमपि राजसेवानभिज्ञम्, अपत्यमिव विन्ध्याचलस्य, अंशकाऽवतारमिव कृतान्तस्य, सहोदरमिव पापस्य, सारमिव कलिकालस्य, भीषणमपि महासत्त्वतया गभीरमिवोपलक्ष्यमाणम्, अनभिभवनीयाकृतिम्, मातङ्गनामानं शबरसेनापतिमपश्यम्। अभिधानन्तु तस्य पश्चादहमश्रौषम्।

अनुवाद – जो शबरसेनापति खड्ग (= गैंडा) और धेनुका (= हथिनी) से युक्त वन के समान खड्ग (तलवार) और धेनुका (चाकू) से युक्त था; जो मयूरपिच्छों (मोर के पंखों) से सुशोभित धनुष को धारण किये हुए था; जिस प्रकार बक नामक राक्षस ने एकचक्रा नामक नगर को अपने अधीन कर लिया था; उसी प्रकार जिस शबर सेनापति ने एक चक्र पहिया को शस्त्र के रूप में पकड़ रखा था; जिस प्रकार अरुण (= सूर्य के सारथि) के अनुज गरुड़ ने अनेक महानगरों (विशाल सांपों) के दशन (दांत) उखाड़ दिये थे उसी प्रकार जिस (शबर सेनापति) ने अनेक महानाग (= विशाल हाथियों) के दाँतों को उखाड़ लिया था; जो शिखण्डी (= द्रुपदराज के पुत्र) के शत्रु भोष्म के समान शिखण्डी = शिखण्डियों (= मोरों) का शत्रु था; जो अनवरत मृगतृष्णा (= मृगमरीचिका) को प्रकट करने वाले निदाघ (= गर्मी) के दिनों के समान सदैव मृगों को मारने की तृष्णा (लालच) प्रकट करने वाला था; जो मानसरोवर की ओर वेग से जाने वाले विद्याधर (देवयोनि–विशेष) के समान मान (अहंकार) से सवेग (= तेज चलने वाला) था; (अथवा – मानस = मन के समान वेभव वाला था।) जो योजनगन्धा (= व्यास की माता सत्यवती) का अनुसरण करने वाले, (उस पर कामासक्त होने वाले) पराशर ऋषि के समान योजन (चार कोस) से गन्धयुक्त कस्तूरी मृग का पीछा करने वाला था; जिस प्रकार घटोत्कच (हिडिम्बा राक्षसी के पुत्र) ने भोमसेन (अपने पिता) क रूप (आकार) धारण किया था उसी प्रकार जो सेनापति भोम भयानक आकार धारण किये हुए

था। पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती जिस प्रकार नीलकण्ठ शंकर के चन्द्रमा को आभ्षण बनाये हुए हैं, उसी प्रकार उसने भो नीलकण्ठ (= मोर) के चन्द्रकों (पंखों) को आभ्षण बनाया था; जिस प्रकार हिरण्याक्ष दानव का वक्षःस्थल महावराह (= वराह अवतार) द्वारा दाढ़ से विदीर्ण किया गया था, उसी प्रकार उसका वक्षःस्थल भो महावराह (= बड़े–बड़े सुअरों) द्वारा दाढ़ से फाड़ा गया था; जिस प्रकार अत्यन्त रागी (विषयासक्त) व्यक्ति बहुत सी बन्दी (बलपूर्वक जीतकर अधीन की गई) स्त्रियों को रखता है उसी प्रकार उसने भो अनेक स्त्रियों को बन्दी बनाकर रखा था; जिस प्रकार पिशिताशन (मांसभक्षी राक्षस) रक्त के विषय में लालचयुक्त रहता है उसी प्रकार वह भो रक्त (अनुरक्त) लुब्धकों (= व्याधों) से युक्त था; जिस प्रकार गीतकला का विन्यास (रूपविशेष) निषाद नामक स्वर से अनुगत (युक्त) होता था। उसी प्रकार वह भो निषादों से युक्त था; जिस प्रकार अम्बिका का त्रिशूल भसे के खून से गीले शरीरवाला होता है, उसी प्रकार वह भो भसे के खून से आर्द्र शरीरवाला था; वह नयी जवानी से युक्त था तो भो बहुत अवस्था बिता चुका था; (यह विरोध है, अतः 'क्षपित–बहुवयसम् = मार डाले हैं, बहुत से पक्षी जिसने ऐसा यह अर्थ करके विरोध दूर करना चाहिए है। वयः = अवस्था, और पक्षी) तौलनेयोग्य सारभ्त (उत्कृष्ट) वस्तुओं का संग्रह किये हुए भो केवल फल और मूल (जड़ों) को खाने वाला था; यह विरोध है अतः 'कृतसारमेयसंग्रहम् = किया है सारमेय = कुत्तों का संग्रह जिसने – यह अर्थ करके परिहार करना चाहिये।) वह कृष्ण होता हुआ भो असुदर्शन = सुदर्शन चक्र से रहित था; (यह विरोध है, अतः 'असुदर्शन = अच्छे दर्शन वाला नहीं अर्थात् कुरूप था, यह परिहार करना चाहिए।) वह स्वच्छन्द विचरण करने वाला होता हुआ भो केवल दुर्ग (किला) की शरण लेने वाला (उसी में रहने वाला) था; (यह विरोध है अतः 'दुर्गेकशरणम्' दुर्गा ही है एकमात्र शरण = सहायक जिसकी – यह परिहार करना चाहिए।) क्षितिभत् = राजा के पैरों के समीप रहने वाला होता हुआ भो राजा की सेवा से अनभिज्ञ था; (यह विरोध है 'क्षितिभत्–पादानुवर्तिनमपि'= क्षितिभत् = पर्वतों के पाद = घाटियों में रहने वाला था – यह परिहार करना चाहिए। अब उत्प्रेक्षा के द्वारा उसका वर्णन प्रस्तुत है) हो मानों विन्ध्याचल का पुत्र था; मानों कृतान्त (यमराज) का अंशावतार था; मानों पाप का सगा भाई था; मानों कलियुग का सार था; जो भयानक होता हुआ भो अतिशय शक्तिवाला होने के कारण गम्भोर सा दिखाई देता था; जिसका आकार अभिभव = तिरस्कार या पराजय के योग्य नहीं था; जिसका 'मातङ्ग' यह नाम था। (उसे मैंने = वैशम्पायन शुक ने देखा) किन्तु उस शबरसेनापति का 'मातङ्ग' यह नाम तो मैंने बाद में सुना था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पिशिताशनम् – पिशितम् अशनम् यस्य सः तम्; अश्रौषम् – श्रू + लुङ् उत्तमपुरुष, एकवचन; अपश्यम् – दृश् + लङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

विशेष – (1) गृहीतैकचक्रम् – जिसने एक चक्र धारण कर रखा था; बकराक्षस पक्ष में एकचक्रा नगरी को जिसने अधीन कर रखा था। इस नगरी का नाम एकचक्रा इसलिये था, क्योंकि इस नगरी के राजा ने बकासुर के भोजन की व्यवस्था के लिये एक–एक व्यक्ति का चक्र बना दिया था। (2) अरुणानुज – अरुण का छोटा भाई गरुड, प्रजापति कश्यप की पत्नी विनता से इसका जन्म हुआ था, ये बड़े पराक्रमी थे। इन्होंने अपनी माता का दास्य भाव अपने पराक्रम से ही समाप्त किया था, ये भगवान् विष्णु के वाहन हैं। अरुण सूर्य का सारथि है। (3) प्रस्तुत गद्यांश में उत्प्रेक्षा, उपमाव व विरोधाभास अलंकार का सुन्दर वर्णन किया गया है। (4) एक बार मल्लाह की कन्या सत्यवती को देखकर पराशर ऋषि कामान्ध हो गए और उसके पिता से उसको मांग लिया। उसी से पुराणरचयिता व्यास की उत्पत्ति हुई थी। जैसे पराशर योजनगन्धा के पीछे दौड़ पड़े वैसे शबरसेनापति गन्धमृग के पीछे दौड़ता था। अथवा एक योजन दूर से गन्ध का अनुभव कर लेता था। (5) पुत्र प्रायः पिता की आकृति के समान आकृति वाले होते हैं अथवा 'आत्मा वै जायते पुत्रः' के अनुसार वह घटोत्कच भोम का ही रूप धारण किए हुए था।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण ने शबर सेनापति मातङ्ग के चरित्र का चित्रण किया है।

आसीच्च मे मनसि'अहो! मोहप्रायमेतेषां जीवितम्, साधुजन–गर्हितञ्च चरितम्। तथाहिपुरुष–पिशितोपहारे धर्म्मबुद्धिः, आहारः साधुजनविगर्हितो मधुमांसादिः, श्रमो मृगया, शास्त्रं शिवारुतम्, उपदेष्टारः सदसतां कौशिकाः, प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्, परिचिताः श्वानः, राज्यं शून्यास्वटवीषु, आपानकमुत्सवः, मित्राणि क्रूरकमसाधनानि धनूँषि, सहाया विषदिग्धमुखा भुजङ्गा इव सायकाः, गीतमुत्साहकारि मुग्धमृगाणाम्, कलत्राणि बन्दीगृहीताः परयोषितः, क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह संवासः, पशुरुधिरेण देवतार्च्चनम्, मांसेन बलिकम, चौर्य्येण जीवनम्, भूषणानि भुजङ्गमणयः वनकरि–मदैरङ्गरागः, यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति, तदेवोत्खातमूलमशेषतः कुर्वते।

अनुवाद – और मेरे शुक के मन में विचार हुआ – ''अहो! इनका जीवन कितना अज्ञानपूर्ण है और इनका आचरण सज्जनों द्वारा निन्दित है। उदाहरणार्थ – मनुष्यों के मांस की देवताओं को भट से धर्म का ज्ञान है; मनुष्यों को मार कर देवताओं को समर्पित करनाइनकी दृष्टि में धर्म है। सज्जनों द्वारा निन्दित मधु और मांसादि आहार है; शिकार ही व्यायाम है। सियारिनों की 'हुवा हुवा' ऐसी ध्वनि को कतव्याकतव्य का निर्णायक शास्त्र मानते हैं। उल्लू सत् और असत्, शुभ और अशुभ के उपदेश देने वाले हैं; पक्षियों का विविध ज्ञान प्रज्ञा, विवेज्ञ ज्ञान है; कुत्ते परिचित हैं, अत एव विश्वासपात्र हैं। सूने जंगलों में आधिपत्य है; मित्रों आदि के साथ मदिरा पीना उत्सव है; हिंसादि क्रूर कम में सहायक धनुष मित्र हैं; धनुष ही मित्रों के समान सदा सहायक रहते हैं। विष से व्याप्त मुख वाले सांपों के समान विष से लिप्त अग्रभाग वाले बाण सहायक हैं; भोले भाले मृगों को सुनने में उत्साह बढ़ाने वाला गीत है। (मधुर गीतादि सुन कर हिरन मुग्ध हो जाते हैं तब ये शबरादि उनका वध कर डालते हैं।) बन्दी बनाकर पकड़ी गईं दूसरों की स्त्रियाँ पत्नियाँ हैं, (अतः इनका विवाह नहीं होता है। किसी की भो पत्नी को पकड़ कर अपनी स्त्री बना लेते हैं।) क्रूर स्वभाव वाले बाघों के साथ रहना होता है; पशुओं के रक्त से देवताओं की पूजा करते हैं; मनुष्य या पशु आदि के मांस द्वारा बलिकम करते हैं, चोरी के द्वारा इनका जीवनयापन होता है; साँपों की मणियाँ इनके आभ्षण हैं, जंगली हाथियों के मदजल से अंगों से लेप किया जाता है। ये जिस वन में रहते हैं उसी को पूर्णरूप से उखाड़ डालते हैं, समूल नष्ट कर डालते हैं।**

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अपनिनीषुः – अप् + नी + सन् + उः; आगत्य – आ + गम् + ल्यप्; समुपाविशत् – सम् + उप् + आ + विश् + लङ् लकार, एकवचन;

विशेष – (1) मोहप्राय – प्रायः अज्ञान से भरे हुए अपने कार्य में शबर लोग निपुणता रखते हैं और दुर्गापूजन जैसा विवेकपूर्ण कार्य भो करते हैं इसलिए उनके जीवन को प्रायः अविवेकशील बताया है, पूर्णतः नहीं। (2) आपानकम् – आसमन्तात् आगत्य पिबन्ति यत्र तत् अपानमेव आपानकम्, शराब पीने के लिये गोष्ठी जिसमें सब मिलकर शराब पीते हैं। यही आयोजन शबरों के लिए उत्सव है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में शबर सेना के वन से प्रस्थान का वर्णन है।

इति चिन्तयत्येव मयि स शबर–सेनापतिरटवीभ्रमणसमुद्भवं, श्रममपनिनीषुरागत्य तस्यैव शाल्मलीतरोरधश्छायायामवतारित–कोदण्डस्त्वरित–परिजनोपनीते पल्लवासने समुपाविशत्।

अन्यतमस्तु शबरयुवा ससम्भ्रममवतीर्य्य तस्मात् करयुगल–परिक्षोभिताम्भसः सरसो वैदूर्य्यद्रवानुकारि प्रलय – दिवसकर – किरणोपतापादम्बरैकदेशमिव विलीनम्, इन्दुमण्डलादिव प्रस्यदिन्तम्, द्रुतमिव मुक्ताफल–निकरम्, अत्यच्छतया स्पर्शानुमेयं हिमजडम्, अरविन्दकोशरजःकषायमम्भः कमलिनीपत्त्रपुटेन प्रत्यग्रोद्धृताश्च धौतपङ्कनिर्म्मला मृणालिकाः समुपाहरत्।

आपीत – सलिलश्च सेनापतिस्ता मृणालिकाः शशिकला इव सैंहिकेयः क्रमेणादशत्। अपगतश्रमश्चोत्थाय परिपीताम्भसा सकलेन तेन शबर–सैन्येनानुगम्यमानः शनैः शनैरभिमतं दिगन्तरमयासीत्।

अनुवाद – इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से मैं जब सोच ही रहा था कि वह शबर–सेनापति वन में घूमने से उत्पन्न हुई थकावट कज्ञो दूर करने की इच्छा वाला होता हुआ उसी शाल्मली पेड़ के नीचे छाया में आकर धनुष को कन्धे से उतार कर सेवकों द्वारा लाये गये पत्तों के आसन पर बैठ गया।

उनमें से कोई एक शबरयुवक जल्दी–जल्दी उस सरोवर में उतर कर विसतन्तु, कमलिनी आदि अनावश्यक वस्तुओं को हटाने के लिए दोनों हाथों से हिलाये गए जलवाले उस सरोवर से कमलिनी के पत्तों से बनाए गए दोने में जल लाया, जो जल वैदूर्यमणि के द्रव के समान था, जो मानों प्रलय के समय के सूर्य की किरणों की गर्मी से पिघला हुआ आकाश का एक हिससा था, जो मानों चन्द्रमण्डल से रिसकर नीचे आया हुआ था, जो जल मानों पिघले हुए मोतियों का समूह था, जो जल अत्यधिक स्वच्छ होने के कारण केवल स्पर्श से अनुमान करने योग्य था, बर्फ के समान शीतल था; कमल के पराग से कसैला व सुगन्धित था और छोटे–छोटे मृणाल भो लाया जो कि उसी समय उखाड़े गये थे और जिनका कीचड़ धो दिया गया था अतः अत्यन्त निर्मल व स्वच्छ थे।

और पानी पीने के बाद उस शबरसेनापति ने उन मृणालिकाओं को उसी प्रकार क्रमशः, खा डाला जिस प्रकार राहु चन्द्रमा की कलाओं को क्रमशः खा डालता है। थकान दूर हो जाने पर (थकानरहित) वह सेनापति जिसके पीछे पानी पी चुकने वाली शबरसेना चल रही थी, (वहाँ से) उठ कर अपनी अभोष्ट दिशा की ओर धीरे–धीरे चल दिया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अयासीत् – या + लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन; अन्यतमः – जब बहुतों में से एक का निर्धारण होता है तो तमप् प्रत्यय का प्रयोग होता है; समुपाहरत् – सम् + उप् + आ + हृ + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन;

विशेष – (1) स्पर्शानुमेय – छूने से ही जिसे पहचाना जा सकता था। निर्मलता के कारण दृष्टि और धरातल के मध्य किसी वस्तु का होना प्रतीत नहीं होता था, केवल छूने पर यह पता चलता था कि यहाँ जल है; शशिकला इव सैंहिकेयः – जिस प्रकार सिंहिका का पुत्र राहु चन्द्रकलाओं का भक्षण करता है। दक्ष प्रजापति की पुत्री तथा कश्यप की पत्नी सिंहिका से उत्पन्न राहु पर्वकाल (पूर्णमासी व अमावस्या) पर चन्द्रमा को ग्रसित करता है;

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाण ने बूढ़े किरात का वर्णन किया है जो कि पक्षियों के मांस का लोभो है।

एकतमस्तु जरच्छबरस्तस्मात् पुलिन्द–वृन्दादनासादितहरिण–पिशितः पिशिताशन इव विकृतदर्शनः पिशितार्थी तस्मिन्नेव तरुतले मुहूर्त्तमिव व्यलम्बत। अन्तरिते च तस्मिन् शबरसेनापतौ स जीर्णशबरः पिबन्निवास्माकमायूंषि रुधिरबिन्दुपाटलया कपिलभ्रूलता–परिवेषभीषणया दृष्ट्या गणयन्निव शुककुल–कुलायस्थानानि श्येन इव विहगामिषास्वाद–लालसः सुचिरमारुरुक्षुस्तं वनस्पतिमामूलादपश्यत्। उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे तदालोकन–भीतानां शुककुलानामसुभिः।

अनुवाद – उन भोलों में से एक बूढ़ा भोल जिसे उस भोल समुदाय से हिरन का मांस नहीं प्राप्त हुआ था, जो मांसभक्षी सिंह आदि के समान भयानक दिखाई दे रहा था, मांस पाने की इच्छा करता हुआ उसी सेमल के पेड़ के नीचे कुछ देर के लिए रुक गया और उस शबरसेनापति के आँखों से ओझल हो जाने पर वह बूढ़ा भोल, मानों हमारी तोतों की आयु को पीते हुए, खून के बूंदों के समान पाटल (गुलाबी) और पीली भ्लता (भोंह के बालों) के परिवेष से भयानक आँखों द्वारा मानों तोतों के समूह के घोसलों को गिनते हुए, बाज पक्षी के समान पक्षियों के मांस (खाने) का लालची उस वृक्ष पर चढने का इच्छुक होते हुए बहुत देर तक जड़ से चोटी तक उस पेड़ को घूरने लगा। उस समय उस वृद्ध शबर के देखने से भयभोत तोतों के समूह के प्राण मानों निकल गये थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अपश्यत् – दृश् + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन; पिबन् – पा + शतृ; आरुरुक्षुः – आ + रुह् + सन् + उः; उत्क्रान्तम् – उत् + क्रमु + क्त।

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश में उत्प्रेक्षा एवं उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में वैशम्पायन अपनी कथा सुनाते हुए वृद्ध किरात द्वारा वृक्ष पर रहने वाले शुक शावकों को निर्ममतापूर्वक धरती पर गिराये जाने का करुण चित्रण प्रस्तुत करता है।

किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्? यतः स तमनेक–ताल–तुङ्गमभ्रङ्कष–शाखाशिखरमपि सोपानैरिवायत्नेनैव पादपमारुह्य ताननुपजातोत्पतनशक्तीन्, कांश्चिदल्पदिवस–जातान् गर्भच्छवि–पाटलाञ्शाल्मली–कुसुमशङ्कामुपजनयतः, कांश्चिदुद्विद्यमानपक्षतया नलिनसंवर्त्तिकानुकारिणः, कांश्चिदर्कफलसदृशान्, कांश्चिल्लोहितायमान–चञ्चु–कोटीन्, ईषद्विघटितदल–पुट–पाटलमुखानां कमलमुकुलानां श्रियमुद्वहतः, कांश्चिदनवरत–शिरःकम्प–व्याजेन निवारयत इव प्रतीकारा–समर्थान्, एकैकतया फलानीव तस्य वनस्पते शाखासन्धिभ्यः कोटरान्तरेभ्यश्च शुक–शावकानग्रहीत्, अपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत्।

अनुवाद – क्योंकि बिना कारण के ही निर्दय लोगों के लिये क्या दुष्कर (करने में कठिन) होता है? अर्थात् कुछ भी नहीं। क्योंकि उस बूढ़े शबर ने (नीचे से ऊपर रखे गये) अनेक ताड़ वृक्षों के समान ऊँचाई वाले और गगनचुम्बी चोटी (शाखाओं) वाले भी उस वृक्ष पर, बिना किसी कष्ट के मानों सीढ़ियों द्वारा चढ़ा और चढ़ कर उस वृक्ष की शाखाओं के जोड़ों में और खोहों के भीतर से शुकों के बच्चों को एक–एक करके उस पेड़ के फल के समान पकड़ लिया और प्राणहीन करके (मार डाल कर) पृथ्वी पर गिरा दिया। वे शुकशावक जिनमें अभी उड़ने की शक्ति नहीं पैदा हो पाई थी, उनमें कुछ तो थोड़े दिनों पहले ही पैदा हुये थे, इसीलिए गर्भ की कान्ति लालिमा से लाल लाल रंग वाले थे, इस कारण वे शाल्मली वृक्ष के फूलों की शंका पैदा कर रहे थे, उन्हें देखकर यह भ्रम हो रहा था कि वे उस सेमल–वृक्ष के फूल हों। उनमे कुछ ऐसे थे जिनके नये–नये पंख निकल रहे थे अतः कमल की नयी–नयी पत्तियों के सामन दिखाई दे रहे थे, कुछ अर्क के फल के समान थे; कुछ जिनकी चोंच के अग्रभाग लाल–लाल हो रहे थे अतः थोड़े से खिलते हुए पत्रपुटों के कारण पाटल (गुलाबी) हुये मुख (सिरा) वाली कमल की कलियों की सुन्दरता धारण कर रहे थे, उन कलियों के समान सुन्दर दिखाई दे रहे थे, कुछ लगातार अपने सिर को हिलाने के बहाने से मानों वैसा करने से अर्थात् निरपराध हम लोगों को मत मारिये मना कर रहे थे, वे प्रतीकार करने में असमर्थ थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – दुष्करम् – दुःखेन कर्तुं शक्यम् – दुस् + कृञ् + खल्; अभकषः – यहाँ पर 'सर्वकूलाभकरीषेषु कषः' सूत्र से खच् प्रत्यय और मुमागम होने पर रूप बनता है। अपातयत् + पत् + णिच् + लङ् प्र.प. एकवचन।

विशेष – (1) शिरःकम्पव्याजेन – सिर हिलाने के बहाने मानो बच्चे उस बूढ़े शबर को उनकी हत्या करने से रोक रहे हों कि हम बच्चे हैं और बच्चों का वध करना जघन्य अपराध है। (2) प्रस्तुत अंश में अर्थापत्ति, उत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्ग, उपमा, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों के योग से संकर अलंकार जानना चाहिये।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में वैशम्पायन के पिता द्वारा वैशम्पायन की रक्षा किये जाने का वर्णन है।

तातस्तु तं महान्तमकाण्ड एव प्राणहरमप्रतीकारमुपल्लवमुपनतमालोक्य द्विगुणतरोपजातवेपथुर्मरणभयादुद्भ्रान्त – तरल–तारको विषादशून्यामश्रुजलप्लुतां दृशमितस्ततो दिक्षु विक्षिपन्, उच्छुष्कतालुरात्मप्रतीकाराक्षमः, त्रास–स्रस्त–सन्धि–शिथिलेन पक्षपुटेनाच्छाद्य मां तत्कालोचितं प्रतीकारं मन्यमानः स्नेहपरवशो मद्रक्षणाकुलः किंकर्त्तव्यताविमूढः क्रोडविभागेन माममवष्टभ्य तस्थौ।

अनुवाद – मेरे पिता ने असमय में ही प्राण ले लेने वाली, प्रतीकार–रहित असाध्य, उस बहुत बड़ी विपत्ति को आई हुई देखा, देखकर उनका कांपना दूना हो गया; वह बहुत अधिक कांपने लगे। मृत्यु के भय से उनकी आँखों की पुतलियाँ घूमने लगीं और चंचल हो गयीं;

शोक के कारण सूनी और आँसुओं से भरी धुँधली दृष्टि सभो दिशाओं में चारों ओर फेंकी; उनका तालु बहुत सूख गया; अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो गया; उस पिता ने भय से ढीले हुए जोड़ों से शिथिल अशक्त पंखपुट द्वारा मुझ (शुकशावक) को ढक कर छिपा कर, इस काम को ही उस समय का उचित प्रतीकार भयनिवृत्ति का उपाय समझते हुए पुत्रप्रेम के कारण पराधीन होकर मेरी रक्षा के लिये व्याकुल हो गये; क्या करना उचित है – इस प्रकार का निश्चय करने में असमर्थ हो कर अपनी गोद के पंखों के भोतरी एक भाग से मुझे संभाल कर बैठ गये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवष्टभ्य – अव + स्तम्भ + क्त्वा (ल्यप्); विक्षिपन् – वि + क्षिप् + शतृ; आच्छाद्य – आ + छद् + णिच् + ल्यप्।

विशेष – अकाण्ड...एव – असमय में ही, अचानक ही। काण्ड मूलतः बांस की दो गाँठों का मध्यवर्ती भाग होता है, जो धीरे–धीरे किसी भाग विशेष अथवा समय के भाग विशेष अवसर के लिये प्रयुक्त किया जाने लगा। अकाण्डम् में काण्ड का अर्थ अवसर है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में बूढ़े किरात द्वारा पक्षियों के बच्चों के मारे जाने एवं वैशम्पायन के पिता के भो मारे जाने का वर्णन है।

असावपि पापः क्रमेण शाखान्तरैः सञ्चरमाणः कोटरद्वारमागत्य जीर्णासित–भुजङ्गभोगभीषणं प्रसार्य्य विविध–वन–वराह–वसा–विस्रगन्धिकरतलं अनवरत–कोदण्ड–गुणाकषण–ब्रणाङ्कित– प्रकोष्ठम्, अन्तक–दण्डानुकारिणं वामबाहुमतिनृशंसो मुहुर्मुहुर्दत्तचञ्चु–प्रहारमुत्कूजन्तमाकृष्य तातमपगतासुमकरोत्। मान्तु स्वल्पत्वाद् भयसम्पिण्डिताङ्गत्वात् सावशेषत्वाच्चायुषः कथमपि पक्षसंपुटान्तर–गतं नालक्षयत्। उपरतञ्च तमवनितले शिथिलशिरोधरमधोमुखमुञ्चत्। अहमपि तच्चरणान्तरे निवेशितशिरोधरो निभृतमङ्क–निलीनस्तेनैव सहापतम्। अवशिष्टपुण्यतया तु पवनवशसंपुञ्जितस्य महतः शुष्कपत्त्रराशेरुपरि पतितमात्मानमपश्यम्। अङ्गानि येन मे नाशीर्य्यन्त।

अनुवाद – उस अत्यन्त क्रूर पापी (वृद्ध शबर) ने भो, एक शाखा से दूसरी शाखा पर चलते हुये कोटर के द्वार पर आकर अपना बांया हाथ फैलाया जो (हाथ) बूढ काले साँप के शरीर के समान भयानक था, जो अनेक जंगली सुअरों की चर्बी और कच्चे मांस की गंध से युक्त करतल वाला था, जो धनुष की डोरी खींचने से होने वाले घाव (खरोंच) से अंकित प्रकोष्ठ (कलाई तथा कोहनी दोनों का मध्य भाग) वाला था, जो यमराज के दण्ड का अनुकरण करने वाला अर्थात् उसके सदृश था; इसके बाद उस क्रूर ने बार–बार चोंच मारने वाले, जोर–जोर से चिल्लाने वाले मेरे (शुक के) पिता को खींच कर प्राण रहित कर दिया, मार डाला। किन्तु छोटा शरीरवाला होने से, भय से सिकुड़े हुए अंगो वाला होने से और आयु शेष रह जाने के कारण पंखों के भोतर छिपे हुए मुझे किसी प्रकार नहीं देख पाया। मरे हुए मेरे पिता को जिनकी गर्दन शिथिल (ढीली) हो गई थी, नीचे मुख कर के जमीन पर गिरा दिया।

मैं शुक भो उन अपने पिता के पैरों के बीच में गर्दन छिपाये हए निश्चल या चुपचाप गोद में छिपा हुआ उन्हीं अपने पिता के साथ ही गिर पड़ा। किन्तु पुण्य बचे रहने के कारण अर्थात् सौभाग्यवश हवा द्वारा एकत्रित किये गये सूखे पत्तों के एक विशाल ढेर पर गिरे हुये अपने को पाया, अर्थात् सूखे पत्तों के ढेर पर गिर पड़ा। इस कारण मेरे अङ्ग नहीं टूटे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पापः – पापम् अस्यास्तीति पापः (अर्श आदिभ्योऽच्); संचरमाणः – सम् + चर् + शानच्; तृतीयान्त पद के साथ चर् धातु से पूर्व सम् उपसर्ग होने पर आत्मनेपद होता है (समश्च तृतीयायुक्तात्); अपश्यम् – दृश् + लङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन; अमुञ्चत् – मुच् + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन;

विशेष – (1) वनवराह....करतलम् – अनेक जंगली सुअरों की चर्बी की गन्ध जिसकी हथेली से आ रही थी, ऐसी बाईं भजा। यहाँ विस्र का अर्थ कच्चे मांस की गन्ध है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में वैशम्पायन के उस बूढ़े किरात के हाथों से बच जाने का वर्णन है।

यावच्चासौ तस्मात्तरुशिखरान्नावतरति तावदहमवशीर्ण–पत्त्र–सवर्णत्वादस्फुटोपलक्ष्यमाण–मूर्त्तिः पितरमुपरतमुत्सृज्य नृशंस इव प्राणपरित्यागयोग्येऽपि काले बालतया कालान्तर भुवः स्नेहरसस्यानभिज्ञो जन्मसहभुवा भयेनैव केवलमभिभूयमानः किञ्चिदुपजाताभ्यां पक्षाभ्यामीषत्कृतावष्टम्भो लुठन्नितस्ततः कृतान्तमुख–कुहरादिव विनिर्गतमात्मानं मन्यमानो नातिदूरवर्त्तिनः, शबरसुन्दरी – कर्णपूर – रचनोपयुक्त – पल्लवस्य, सङ्कषण – पट – नीलच्छाययोपहसत इव गदाधर – देहच्छविम्, अच्छैः कालिन्दी – जल–च्छेदैरिव विरचितच्छदस्य, वनकरिमदोपसिक्तकिसलयस्य, विन्ध्याटवी–केशपाश–श्रियमद्वहतः, दिवाप्यन्धकारितशाखान्तरस्य, अप्रविष्ट–सूर्य्यकिरणमतिगहनमपरस्येव पितुरुत्सङ्गमतिमहतस्तमालविटपिनो मूलदेशमविशम्।

अनुवाद – जब तक वह बूढ़ा भील उस शाल्मलीवृक्ष से नीचे उतरा तब तक उससे पहले नीचे गिरे हुए पत्तों के समान रंगवाला होने से स्पष्ट न दिखाई देने वाली आकृति वाला, क्रूर के समान मैं मरे हुए पिता को छोड़ कर (पिता के वियोग में अपने) प्राण छोड़ देने के योग्य समय में भी, जब वियोग में मुझे भी मर जाना चाहिए या उस समय भी बचपन के कारण भविष्य में होने वाले पुत्र स्नेह रस से अपरिचित, जन्म के साथ ही उत्पन्न होने वाले केवल भय से समाक्रान्त होता हुआ, कुछ निकले हुए पंखों से कुछ सहारा लिये हुए इधर–उधर लुढ़कता हुआ, अपने को यमराज के मुखविवर से निकला हुआ सा समझता हुआ, पास में स्थित एक बहुत बड़े तमाल वृक्ष के मूल प्रदेश जड़ के भीतर जिसमें सूर्य की किरणें भी प्रविष्ट नहीं होती थीं, जो मानों दूसरे पिता की गोद था; जिस तमाल–वृक्ष के मूल प्रदेश में मैं घुस गया था, उस तमाल वृक्ष के पत्तों को भीलों की पत्नियाँ अपने कान के आभूषण बनाने में प्रयुक्त करती थी; जो बलराम के नीले वस्त्र की कान्ति के समान नीली कान्ति से मानों श्रीकृष्ण भगवान् की देह की छवि का उपहास करता था, मानों निर्मल यमुनाजल के खण्डों से उसके पत्ते बनाये गये थे, जंगली हाथियों के मदजल द्वारा जिसके नवपल्लवों पर छिड़काव किया गया था, जो विन्ध्याटवी (रूपी नायिका) के केशपाश की शोभा धारण कर रहा था, (केशपाश के समान शोभायमान था) दिन में भी जिसकी शाखाओं के मध्य में अन्धेरा रहता था, मैं उसकी जड़ में घुस गया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – यावत् – जब तक, यह अवधिवाचक अव्यय है, इसका तावत् से नित्य सम्बन्ध है (यत्तदोः नित्यसम्बन्धः);

विशेष – (1) प्राणपरित्यागयोग्येऽपि – प्राण त्यागने के योग्य समय होने पर भी, जिस पिता ने अपना दुःख भूलकर पुत्र की रक्षा की हो उसकी हत्या देखकर भी जीवन धारण करना पाप है। ऐसे समय में पुत्र को बदला लेना चाहिए अथवा मर जाना चाहिए। इसलिए यह समय प्राणों के परित्याग के योग्य है। (2) केशपाशश्रियम् – केशपाश की शोभा, तमालवृक्ष विन्ध्याटवी रूप महिला के केशपाश के समान प्रतीत होता था। (3) प्रस्तुत अंश में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में बूढ़े किरात द्वारा मृत तोतों के बच्चों को इकट्ठा कर आगे चले जाने का वर्णन है।

अवतीर्य्य च स तेन समयेन क्षितितल–विप्रकीर्णान् संहृत्य तान् शुकशिशूननेकलतापाश– संयतानाबद्धच पर्णपुटेऽतित्वरित–गमनः सेनापतिगतेनैव वर्त्मना तामेव दिशमगच्छत्। मान्तु लब्ध – जीविताशं प्रत्यग्र–पितृमरण–शोक–शुष्क–हृदयम् अतिदूरापातादायसितशरीरं सन्त्रास–जाता सर्वाङ्गोपतापिनी बलवती पिपासा परवशमकरोत्। अनया च काल–कलया सुदूरमतिक्रान्तः स पापकृदिति परिकलय्य किञ्चिदुन्नमितकन्धरो भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्त इति तमेव पदे पदे

पापकारिणमुत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात्तमालतरुमूलात् सलिल–समीपं सर्त्तुं प्रयत्नमकरवम्।

अनुवाद – उस समय तक वृक्ष से उतर कर वह बूढ़ा भोल जमीन पर इधर–उधर गिरे हुये शुकों के बच्चों को इकट्ठा करके लतापाश से बाँध कर पत्तों की टोकरी में रखकर बहुत तेज चाल से उसी मार्ग की ओर चल पड़ा जिस ओर शबरसेनापति गया था।

जिसको जीने की आशा प्राप्त हो गयी थी, जो तत्काल मरे हुए पिता के शोक से सूखे हुये हृदयवाला था, बहुत दूर से गिरने के कारण जिसके शरीर में बहुत थकान आ चुकी थी, ऐसे मुझको अत्यधिक भय से उत्पन्न सारे अवयवों को सन्तप्त कर (कष्ट) देने वाली, प्रबल प्यास ने पराधीन (अत्यन्त व्याकुल) कर दिया।

इतनी देर में वह पापी बहुत दूर जा चुका होगा, ऐसा मन में सोच कर, गर्दन को थोड़ी सी उठा कर, भय से घबरायी हुई दृष्टि से सभो ओर देख कर तिनका भो हिलने पर 'वही फिर लौट आया' इस प्रकार पग–पग पर उसी पापी की सम्भावना करता हुआ, उस तमालवृक्ष की जड़ से निकल कर पानी के समीप जाने के लिये प्रयास करने लगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अपसर्तुम् – अप् + सृ + तुमुन्; उत्प्रेक्षमाणः – उत् + प्र + ईक्ष् + शानच्; निष्क्रम्य – निस् + क्रम् + ल्यप्; अगच्छत् – गम् + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन; विप्रकीर्णः – वि + प्र + किर् + क्त।

विशेष – (1) तेन समयेन – यहाँ काल वाचक समय शब्द से 'अपवर्गे तृतीया' सूत्र से तृतीया विभक्ति हुई है। क्योंकि उस समय में शबर ने शुक शावकों को इकट्ठा कर लिया था, जो फल प्राप्ति का द्योतक है। (2) अनया कालकलया – यहाँ पर भो 'अपवर्गे तृतीया' सूत्र से तृतीया विभक्ति हुई है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में वैशम्पायन द्वारा अपनी बाल्यावस्था का वर्णन किया गया है।

अजातपक्षतया नातिस्थिरतर–चरण–सञ्चारस्य मुहुर्मुहुर्मुखेन पततो मुहुस्तिर्यङ्निपतन्तमात्मानमेकया पक्षपाल्या सन्धारयतः क्षितितलसंसर्पण – श्रमातुरस्य अनभ्यासवशादेकमपि दत्त्वा पदमनवरतमुन्मुखस्य, स्थूलस्थलं श्वसतो धूलिधूसरस्य संसर्पतो ममाभून्मनसि 'अतिकष्टास्ववस्थास्वपि जीवित–निरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति प्राणिनां प्रवृत्तयः। नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्। एवमुपरतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते यदहमविकलेन्द्रियः पुनरेव प्राणिमि। धिङ्मामकरुणमतिनिष्ठुरमकृतज्ञम्। अहो! सोढपितृमरणशोकदारुणं येन मया जीव्यते, उपकृतमपि नापेक्ष्यते। खले हि खलु मे हृदयम्।

अनुवाद – पंख उत्पन्न बड़े न होने के कारण मेरे पैर अधिक दृढ़ता से नहीं चल पा रहे थे; अतः बार–बार मुँह के बल गिर पड़ता था; बार बार तिरछा एक ओर गिरते हुये अपने को एक ओर के पंखों से किसी प्रकार संभाल लेता था; जमीन पर सरकने के श्रम से अत्यधिक व्याकुल हो रहा था, अभ्यास न होने के कारण एक भो पग चल कर लगातार मुँह को ऊपर किये था; लम्बी लम्बी साँसें ले रहा था; धूलि से धूसरित (युक्त, मटमैला) होता हुआ जब मैं सरक रहा था तो मेरे मन में यह विचार उठा मैं यह सोचने लगा – ''संसार में प्राणियों की प्रवृत्तियाँ क्रियाकलाप अत्यन्त कष्टप्रद दशाओं में भो जीवन से निरपेक्ष नहीं होती हैं, जीने की इच्छा नहीं छोड़ पाती है। संसार में सभो जीवों को अपने जीवन से अधिक अभोष्ट प्रिय कोई दूसरी चीज नहीं होती है, क्योंकि सदा ग्रहण करने योग्य उच्चारणीय या स्मरणीय नाम वाले पिता के इस प्रकार से मेरे समक्ष ही दयनीय रीति से मर जाने पर भो सब समर्थ इन्द्रियों वाला मैं पुनः जी रहा हूँ। उनकी मृत्यु के साथ मुझे भो मरना चाहिए था किन्तु मैंने प्राण नहीं छोड़े। निर्दय, क्रूर और कृतघ्न मुझे धिक्कार है। आश्चर्य है कि मैं पिता की मृत्यु का दुःख सहन करता हुआ इतनी कठोरता से जी रहा ह्। मृत पिता द्वारा अपने ऊपर किये गये उपकारों की अपेक्षा नहीं कर रहा हूँ। उन पर कोई ध्यान नहीं दे रहा हूँ। वास्तव में मेरा हृदय बहुत दुष्ट है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पततः – पत् + शतृ + ङस्; दत्त्वा – दा + क्त्वा; उपकृतम् – उप + कृ + क्त।

विशेष – (1) मुखेन पततः – मुँह क बल गिरते हुये, पैरों की शक्ति के अभाव में बच्चा अधिकतर आगे की ओर ही गिरता है और कभो करवट की ओर। यहाँ बाण ने दोनों रूप में गिरने का स्वाभाविक चित्रण किया है। (2) वृत्तयः – मनोव्यापार, प्राणी अतिकष्टदायक दशाओं में भो जीवन से उदासीन नहीं होता है और उसका मनोव्यापार जीवन के साधन जुटाने में लगा ही रहता है। (3) सुगृहीतनाम्नि – जिनका नाम सम्मान के साथ लिये जाने योग्य है; प्रातः स्मरणीय – (स सुगृहीतनामा स्यात् यः प्रातरनुचिन्त्यते, त्रिकाण्डशेष)।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में जलपान का अभिलाषी वैशम्पायन अपने पिता की मृत्य पर शोक करता है।

अहं हि लोकान्तरगतायामम्बायां नियम्य शोकावेगमाप्रसव–दिवसात् परिणतवयसाऽपि सता तातेन तैस्तैरुपायैः संवर्द्धनक्लेशमतिमहान्तमपि स्नेहवशादगणयता यत् परिपालितः, तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्। अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः, यदुपकारिणमपि तातं क्वापि गच्छन्तमद्याऽपि नानुगच्छन्ति। सर्वथा न कञ्चिन्न खलीकरोति जीवित–तृष्णा, यदीदृगवस्थमपि मामायमायासयति जलाभिलाषः।

अनुवाद – मेरी माता के परलोक चले जाने अपने शोक के प्रवाह को अपने भोतर मन में रोक कर, बूढ़े होते हुए भो पिता ने जन्म के समय से लेकर पालन–पोषण के अत्यधिक कष्ट को भो मेरे प्रति स्नेह के कारण न गिनते हुए, उन उन अनेक उपायों से मुझे पाला पोसा था, वह सब मैंने एक बार में ही भला दिया। मेरे प्राण सचमुच अति कृपण लोभो या निकृष्ट हैं जो कहीं अज्ञात स्थान पर जाते हुए उपकारी पिता का अनुगमन अभो भो नहीं कर रहे हैं। जीने की इच्छा, ऐसा कोई नहीं है, जिसे दुर्जन न बना देती हो अर्थात् सभो को दुष्ट बना देती है वह हर प्रकार से जीने का प्रयास करने लगता है जो कि इस दुःखग्रस्त अवस्था में पड़े हुए भो मुझे पानी पीने की इच्छा कष्ट दे रही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विस्मृतम् – वि + स्मृ + क्त; नियम्य – नि + यम् + ल्यप्।

विशेष – (1) न कंचिन्न खलीकरोति – ऐसा कोई प्राणी नहीं होता है जिसे जीवन की अभिलाषा नीच नहीं बना देती है। अर्थात् प्रत्येक प्राणी को जीवन की अभिलाषा निश्चय ही नीच बना देती है। (2) निर्घृणतैव – निर्दयता, घृणा शब्द प्राचीन वाङ्मय में दया के अर्थ में प्रचलित रहा किन्तु बाद में इसका प्रयोग अरुचि के अर्थ में होने लगा।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में वैशम्पायन की तीव्र जल–पिपासा का वर्णन है।

मन्ये चागणित–पितृमरण–शोकस्य निर्घृणतैव केवलमियं मम सलिलपानबुद्धिः। अद्यापि दूर एव सरस्तीरम्। तथाहि–जलदेवतानुपूर–रवानुकारिदूरेऽद्यापि कलहंसविरुतम्। अस्फुटानि श्रूयन्ते सारसरसितानि। अयं च विप्रकर्षादाशामुखविसर्पण–विरलः सञ्चरति नलिनीषण्डपरिमलः।

दिवसस्य चेयं कष्टा दशा वर्तते। तथाहिरविरम्बरतलमध्यवर्ती स्फुरन्तमातपमनवरतमनल–
धूलि–निकरमिव विकिरति करैः। अधिकामुपजनयति तृषं सन्तप्त–पांसु–पटल–दुर्गमा भूः। अतिप्रबल–पिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि। अप्रभुरस्म्यात्मनः। सीदति मे हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति चक्षुः। अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैव उपपादयेत्?

अनुवाद – और मैं तो यह मानता हूँ कि पिता की मृत्यु के शोक की गणना न करने वाली अर्थात् उस पर कुछ भो ध्यान न देने वाली मेरी यह पानी पीने की इच्छा केवल क्रूरता ही है। अभो भो तालाब का किनारा दूर ही है क्योंकि – जलदेवता = परियों के पैरों के घुंघरुओं की आवाज के सदृश कलहंसों की यह आवाज दूर ही है। सारसों का कूजन भो स्पष्ट रूप से नहीं सुनाई पड़ रहा है। कमलवन की खुशबू दूर होने के कारण सभो ओर फैलने के कारण विरल फैल रही है, दूर से आने के कारण उसका प्रभाव कम हो रहा है।

दिन की यह कष्टकारक अवस्था है। वह इस प्रकार है – आकाश के बीच में पहुँचा हुआ सूर्य बढ़ती हुई ऊष्मा चिलचिलाती धूप को किरणों से ऐसे बिखेर रहा हो मानों कोई अपने हाथों से आग के कणों (अंगारों) को फैला रहा हो। खूब तपी हुई धूलिसमूह (बालू) के कारण अत्यन्त कठिनता से चलने योग्य भूमि और अधिक प्यास उत्पन्न कर रही है। बहुत तेज प्यास के कारण खिन्न मेरे छोटे–छोटे अंग थोड़ा भी चलने में समर्थ नहीं है। मैं अपने शरीर का नियन्त्रण करने में समर्थ नहीं हूँ। निराशा के कारण मेरा हृदय बैठा जा रहा है। आँखें अन्धकारता (धुंधलापन) को प्राप्त कर रही है, कमजोर होती जा रही है। सम्भव है दुष्ट विधाता न चाहने पर भी मेरी मृत्यु आज ही कर डालेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संचरति – सम् + चर् + तिप्; गन्तुम् – गम् + तुमुन्;

विशेष – (1) अनलधूलिनिकरः – आग की चिंगारियों का ढेर, यहाँ धूप के लिए अग्निकणों से उपमा दी गई है।

5.3 पारिभाषिक शब्दावली

प्रभातसन्ध्या – पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार तीन सन्ध्यायें प्रचलित हैं – 1. प्रातःकालीन सन्ध्या, सायंकालीन सन्ध्या – जिन्हें क्रमशः पूर्वा और पश्चिमा सन्ध्या भी कहते हैं, तथा मध्याह्न सन्ध्या।

परिणतरङ्कु – बूढ़ा रङ्कु हरिण (मृग विशेष) जिसकी पीठ पर सफेद चितलियाँ होती हैं।

कुट्टिमकुसुमप्रकरे – यहाँ पर आकाश को फश तथा तारों को उन पर बिखरे हुए फूल बताया गया है, जिन्हें सूर्य अपनी किरण रूपी सम्मार्जनी से बुहार रहा है।

सप्तऋषि मण्डल – मारीच आदि मण्डल सप्तऋषि मण्डल के नाम से जाने जाते हैं।

कपोताली – पारावतमालायमानासु – प्राचीन काल में महलों के शिखर भाग पर पत्थर में तराशी गई कबूतरों की आकृतियाँ बनाई जाती थी। उन्हें कपोताली कहा जाता था।

मङ्गलपाठक – प्रातःकाल मङ्गलमय प्रशस्तियाँ गाने वाले चारण लोग राजा को जगाया करते थे। भौंरे भी मानों कमल–वन रूपी राजाओं के मङ्गलपाठी चारण हैं।

खड्गिधेनुका – गेण्डे की मादा; यद्यपि अमरकोश के अनुसार 'करिणी धेनुका वशा' तथा 'धेनुका तु करेण्वां च' के आधार पर केवल हथिनी और नवप्रसूता गौ को धेनुका कहा जाता है तथापि प्रत्येक जाति की नवप्रसूता मादा को सामान्यतः धेनुका पद से व्यवहृत किया जाता है।

आलान – हाथी बाँधने का खूँटा 'आलान–बन्धस्तम्भे' (अमरकोश) के अनुसार आलान का अर्थ स्वयं बन्धस्तम्भ है

एकचक्रा – इस नगरी का नाम एकचक्रा इसलिये था, क्योंकि इस नगरी के राजा ने बकासुर के भोजन की व्यवस्था के लिये एक–एक व्यक्ति का चक्र बना दिया था।

अरुणानुज – अरुण का छोटा भाई गरुड, प्रजापति कश्यप की पत्नी विनता से इसका जन्म हुआ था, ये बड़े पराक्रमी थे। इन्होंने अपनी माता का दास्य भाव अपने पराक्रम से ही समाप्त किया था, ये भगवान् विष्णु के वाहन हैं। अरुण सूर्य का सारथि है।

5.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

1. एकदा तु .....धवलितपुलिनमुदन्वति पूर्वेतरे, उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
2. सहसैव ..... जराशिथिलपक्षपुटान्तरमविशम्। उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
3. मृगवधू–वैधव्य–.....अनेकवृत्तान्तैः शबरवृन्दैः परिवृतम्, उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
4. एकतमस्तु ज.....भीतानां शुककुलानामसुभिः। उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।

5. 'महाकवि बाणभट्ट ने प्रकृति के सौम्य एवं भयावह दोनों स्वरूपों का चित्रण किया गया है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्नों के उत्तर इकाई के 1.3 अंश से विद्यार्थी स्वयं खोजें।

5.5 सारांश

इस इकाई में प्रभातवर्णन से प्रारम्भ कर शुकावस्था वर्णनपर्यन्त का वर्णन किया गया है। कवि द्वारा प्रभातकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुपम चित्रण प्रस्तुत करते हुए शबर सैन्य एवं उसके द्वारा विन्ध्याटवी में किये गये भयंकर विध्वंस का भयावह चित्रण किया गया है। साथ ही शुक शावक की अवस्था का करुणोत्पादक निरूपण भी किया गया है। महाकवि बाण ने वन में शिकार के समय होने वाली खलबली का चित्रण, शबर सेनापति के शिकार का वर्णन वैशम्पायन की तीव्र जल–पिपासा का वर्णन इत्यादि में अपनी लेखनी को चमत्कृत किया है ।

5.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कादम्बरी (कथामुखपर्यन्ता), व्याख्याकार : भानुचन्द्रसिद्धचन्द्र गणि मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2002.
2. कादम्बरी (कथामुखम्), सं. आचार्य रामनाथ शर्मा 'सुमन, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1967.
3. कादम्बरी, सं. डॉ. जयशंकरलाल त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी वाराणसी–1993.
4. कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल,चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी,1957.
5. कादम्बरी : इण्ट्रोडक्शन एण्ड नोट्स, पी. पेटरशन, बम्बई–1953.
6. राजेन्द्रकुमार शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ–1993.

इकाई – 6

जाबालि आश्रम वर्णन

(इत्येवं चिन्तयत्येव..... यदि कुतूहलम् अंश की सप्रसंग व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कादम्बरी कथामुख की सप्रसंग व्याख्या (इत्येवं चिन्तयत्येव..... यदि कुतूहलम् अंश की सप्रसंग व्याख्या)

6.3 पारिभाषिक शब्दावली

6.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.5 सारांश

6.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.0 उद्देश्य

- उत्कृष्ट गद्य रचना के अर्थावगम कौशल का विकास करना।
- प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य छात्रों को महाकवि बाणभट्ट के रचना कौशल से परिचित करवाना है।
- व्याकरणात्मक विश्लेषण की क्षमता विकसित करना।
- प्रतिपाद्य विषय जाबालि आश्रम वर्णन को सुस्पष्ट करना।
- बाणभट्ट के प्राकृतिक चित्रण कौशल को रेखांकित करना।

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में महाकवि बाणभट्ट द्वारा विरचित कादम्बरी कथामुख के हारीत वर्णन से प्रारम्भ कर जाबालि आश्रम वर्णन पर्यन्त भाग को सुस्पष्ट किया गया है। शबर सेनापति के चले जाने के बाद पिपासा से व्याकुल वैशम्पायन सरोवर के मार्ग पर अग्रेसर होता है तभो स्नानादि नित्य कर्म सम्पादनार्थ सरोवर पर जाता हुआ ऋषि कुमार हारीत उधर से निकलता है। हारीत शुक शावक को पानी पिलाता है तथा उसे अपने साथ आश्रम पर ले जाता है, जहाँ पर उस शुक शावक को देखकर महर्षि जाबालि कहते हैं कि वह अपने ही दुष्कर्मों का फल भोग रहा है। इस पर सभो ऋषि कुमार उसके पूर्व वृत्तान्त को जानने की इच्छा प्रकट करते हैं।

6.2 कादम्बरी कथामुख की सप्रसंग व्याख्या (इत्येवं चिन्तयत्येव..... यदि कुतूहलम् अंश की सप्रसंग व्याख्या)

प्रसंग – महाकवि बाणभट्ट ने कादम्बरी कथामुख के प्रस्तुत गद्यांश में जाबालि ऋषि के पुत्र हारीत का वर्णन किया है।

इत्येवं चिन्तयत्येव मयि तस्मात् सरसो नातिदूरवर्त्तिनि तपोवने जाबालिर्नाम महातपा मुनिः प्रतिवसति स्म। तत्तनयश्च हारीतनामा मुनिकुमारकः सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः, सवयोभिरपरैस्तपोधन–कुमारकैरनुगम्यमानस्तेनैव पथा द्वितीय इव भगवान् विभावसुरतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्त्तिः, उद्यतो दिवसकर–मण्डलादिवोत्कीर्णः, तडिद्विरिव रचितावयवः, तप्तकनक–द्रवेणेव बहिरुपलिप्त–मूर्त्तिः, पिशङ्गावदातया देह–प्रभया स्फुरन्त्या सबालातपमिव दिवसं सदावानलमिव वनमुपदर्शयन्,

उत्तप्त–लोहलोहिनीनामनेक–तीर्थाभिषेकपूतानामंसस्थलावलम्बिनीनां जटानां निकरेणोपेतः, स्तम्भितशिक्षा–कलापः, खाण्डववन–दिधक्षया कृतकपट–वटु–वेष इव भगवान् पावकः,

अनुवाद – जब मैं इस प्रकार पूर्वोक्तरीति से सोच रहा था कि उसी समय पम्पासरोवर से अर्थात् समीप में ही वर्तमान एक तपोवन में जाबालि नामक एक महान् तपस्वी रहता था और उस तपस्वी का पुत्र हारीत नाम का तपस्वी कुमार जो सनत्कुमार के समान समस्त विद्याओं के ज्ञान से शुद्ध चित्त वाला, अपने समान अवस्था वाले दूसरे मुनिकुमारों से अनुगम्यमान होता हुआ उसी सरोवर में स्नान करने की इच्छा वाला उसी मार्ग से वहाँ आ गया। अत्यन्त तेजस्वी होने से उसका आकार अत्यन्त कष्ट से देखने योग्य था अतः मानों वह दूसरा अग्निदेव हो, वह मानों प्रातःकाल उदित होते हुए सूर्य–मण्डल से काट कर बनाया गया हो। मानों उसके शरीर के अवयव बिजली से काट कर बनाए गए हों। उसका बाह्य शरीर मानो पिघलाए गए सोने के द्रव से रंगा गया हो; वह फैलती हुई कुछ कुछ पीली और उज्ज्वल शरीरकान्ति से दिन को ऐसा बना रहा था कि मानो प्रातःकालीन धूप से युक्त हो और वन को ऐसा दिखा रहा था मानो दावाग्नि से युक्त हो। वह तपाये गए लोहे के समान, अनेक तीर्थों के जल के अभिषेक से पवित्र तथा कन्धो पर लटकने वाली, जटाओं के समूह से युक्त था। वह अपनी चोटियों के समूह को बांधे हुए ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अपनी ज्वालाओं के समूह को रोके हुए, खाण्डववन को जलाने की इच्छा से बनावटी ब्रह्मचारी का वेष बनाए हुए भगवान् अग्निदेव हों।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – चिन्तयति – चिन्त् + शतृ + ङि; दुर्निरीक्ष्य – दुर् + निर् + ईक्ष् + ण्यत्;

विशेष – (1) सनत्कुमार इव....चेता – ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार के समान सब विद्याओं का अध्ययन करने से जिसका चित्त निर्मल हो गया था। (2) खाण्डववन....पावकः – खाण्डव वन को जलाने की इच्छा से मानो अग्निदेव ब्रह्मचारी का वेश बनाकर आ गये हों। महाभारत के अनुसार अग्नि ने श्रीकृष्ण और अर्जुन की सहायता से खाण्डव वन को जलाया।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुये हारीत ऋषि का वर्णन किया गया है।

तपोवनदेवतानूपुरानुकारिणा धर्मशासन–कटकेनेव स्फाटिकेनाक्षवलयेन दक्षिणश्रवणावलम्बिना विराजमानः, सकल–विषयोपभोग–निवृत्त्यर्थमुपपादितेन ललाटपट्टके त्रिसत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेणालङ्कृतः, गगन–गमनोन्मुखबलाकानुकारिणा स्वर्गमार्गमिव दर्शयता सततमुद्ग्रीवेण स्फटिक–मणि–कमण्डलुनाध्यासित–वामकरतलः, स्कन्धदेशावलम्बिना कृष्णाजिनेन नीलपाण्डुभासा तपस्तृष्णानिपीतेनान्तर्निष्पतता धूम–पटलेनेव परीतमूर्त्तिः, अभिनव–विससूत्र–निर्मितेनेव परिलघुतया पवनलोलेन निर्म्मांस–विरलपार्श्वकपञ्जरमिव गणयता वामांसावलम्बिना यज्ञोपवीतेनोद्भासमानः, देवताार्च्चनार्थमागृहीत–वनलता–कुसुमपरिपूर्णपर्णपुट–सनाथ–शिखरेणाषाढदण्डेन व्यापृत–सव्येतरपाणिः, विषाणोत्खातामुद्वहता स्नानमृदमुपजात–परिचयेन नीवारमुष्टि–संवर्द्धितेन कुश–कुसुम–लतायास्यमान–लोल–दृष्टिना तपोवनमृगेणानुगम्यमानः–

अनुवाद – वह तपोवन की देवी के नूपुरों के समान प्रतीत होने वाली, धार्मिक उपदेश की रक्षा करने वाली सेना के समान प्रतीत होने वाली, दाहिने कान में लटकने वाली, स्फटिक मणि से बनी हुई अक्षमाला से सुशोभित था। सभो प्रकार के ऐन्द्रिय विषयों के उपयोग की निवृत्ति के लिए बनाए गए त्रिसत्य तीन बार कही गई प्रतिज्ञा के समान भस्म के त्रिपुण्ड्र से ललाट पट्ट पर अलङ्कृत था, उसके मस्तक पर त्रिपुण्ड्र की तीन रेखाएँ थीं जिनसे लग रहा था कि इन्द्रियसुखोपभोग को छोड़ने की तीन बार प्रतिज्ञा की हो। उसके बाएँ करतल से स्फटिक मणि–निर्मित कमण्डलु था, जिस कमण्डलु की ग्रीवा सदैव ऊपर रहने से ऐसा लग रहा था मानो आकाश में जाने के लिए तत्पर गर्दन ऊपर उठाए हुए बलाका हो तथा

मानों स्वर्ग के मार्ग को दिखाने वाला हो। कन्धे पर लटकने वाले नीले और पीले अर्थात् हरे रंग की कान्तिवाले कृष्णमृग–चर्म से आवृत शरीरवाला वह ऐसा लग रहा था मानों तपस्या करने की प्रबल तृष्णा (पिपासा) के कारण पिए गए (अतः) शरीर के बाहर निकलते हुए धुएँ से युक्त शरीर वाला हो। उसके कन्धों पर लटकता हुआ कृष्ण मृगचर्म ऐसा दिखाई दे रहा था कि मानों तपस्या में पान किया गया धुआँ अब बाहर निकल कर शरीर को घेर रहा हो। वह बाएं कन्धे पर लटकते हुए यज्ञोपवीत से शोभित हो रहा था जो यज्ञोपवीत मानों ताजे कमलनाल से बनाया गया हो, अत्यन्त हल्का होने से हवा से हिल रहा था, अधिक मांस–रहित अत एव विरल पसलियों को मानों गिन रहा हो। उसका दाहिना हाथ आषाढ़ दण्ड से युक्त था जिसके एक सिरे पर देवताओं को पूजा के लिए जंगली लताओं से चुने गए फूलों से भरा हुआ दोना बंधा था। उस मुनिकुमार के पीछे–पीछे तपोवन का एक मृग चल रहा था जो अपने सींग से खोदी हुई स्नानमृत्ति लिए हुए था, जो खूब परिचित हो चुका था, जो नीवार की मुट्ठियों से खिला–खिलाकर के बढ़ाया पाला पोसा गया था, जो कुश, फूल और लताओं से बार–बार देखने से थकाई गई अत एव चंचल आंखों वाला था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – (1) विराजमानः – वि + राज् + शानच्; अलंकृतः – अलं + कृ + क्त; उद्वहता – उद् + वह् + शतृ + टा।

विशेष – (1) धर्मशासनकटकेन इव – राजाओं के द्वारा ब्राह्मणों को जो भूमि दान के प्रमाण रूप में ताम्र–पत्र दिये जाते थे। उन पर धार्मिक उपदेश भी लिखे रहते थे। अतः उन्हें धर्म शासन कहा जाता था। (2) त्रिसत्येन इव – हारीत के मस्तक पर लगा हुआ त्रिपुण्ड्र त्रिसत्य का प्रतीक था। 'त्रिसत्या वैः दैवाः' इस वैदिक कल्पना के आधार पर मनसा, वाचा, कर्मणा विषय निवृत्ति के लिये किया गया त्रिविध संकल्प ही त्रिसत्य है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट द्वारा मुनिकुमार हारीत का चित्रण किया गया है। साथ ही उसके पद्म सरोवर पर स्नान करने आने का वर्णन है।

विटप इव कोमल–वल्कलावृत–शरीरः, गिरिरिव समेखलः, राहुरिवासकृदास्वादित–सोमः, पद्मनिकर इव दिवसकर–मरीचिपः, नदी–तट–तरुरिव सततजल–क्षालन–विमलजटः, करि–कलभ इव विकच–कुमुद–दल–शकलसित–दशनः, द्रौणिरिव कृपानुगतः, नक्षत्र–राशिरिव चित्रमृग – कृत्तिकाश्लेषोपशोभितः, घर्म्मकाल–दिवस इव क्षपितबहुदोषः, जलधर–समय इव प्रशमितरजः प्रसरः, वरुण इव कृतोदवासः, हरिरिवापनीत–नरकभयः, प्रदोषारम्भ इव सन्ध्या–पिङ्गलतारकः, प्रभातकाल इव बालातप – कपिलः, रविरथ इव दृढनियमिताक्षचक्रः, सुराजेव निगूढ – मन्त्रसाधन–क्षपित–विग्रहः, जलधिरिव कराल–शङ्खमण्डलावर्त्त–गर्त्तः, भगीरथ इव दृष्ट–गङ्गावतारः, भ्रमर इवासकृदनुभूतपुष्कर–वनवासः वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः, असंयतोऽपि मोक्षार्थी, सामप्रयोगफ्रोऽपि सततावलम्बितदण्डः, सुप्तोऽपि प्रबुद्धः, सन्निहित–नेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनस्तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागतम्।

अनुवाद – जिस प्रकार वृक्ष कोमल वल्कल से ढके हुए शरीर वाला होता है उसी प्रकार वह मुनिकुमार भी कोमल वल्कल से ढके हुए शरीरवाला था। जिस प्रकार पर्वत मेखला से युक्त होता है उसी प्रकार वह भी मेखला से युक्त था। जिस प्रकार राहु ने अनेक बार चन्द्रमा को निगला था उसी प्रकार उसने भी अनेक बार सोम रस का पान किया था। जिस प्रकार कमलों का समूह सूर्य की किरणों का पान करता है उसी प्रकार वह तपस्या करता हुआ सूर्य की किरणों का पान करने वाला था। जिस प्रकार नदी के तट पर स्थित वृक्ष जल से निरन्तर धोये जाने से अत्यन्त विमल जटाओं से युक्त होता है उसी प्रकार वह भी जल से सदा स्वच्छ की गई अत एव निर्मल जटाओं वाला था। जिस प्रकार हाथी का बच्चा खिले हए कमल–दल के टुकड़ों को खाने से श्वेत दाँतों वाला होता है उसी प्रकार वह भी खिले हुए श्वेत कमल की पंखुड़ियों के समान श्वेत चमकते हुए दाँतों वाला था। जिस प्रकार द्रौणि द्रोणपुत्र अश्वत्थामा कृपा कृपाचार्य से अनुगत था उसी प्रकार वह कृपा दया

से युक्त था। जिस प्रकार नक्षत्रराशि चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका, आश्लेषा से शोभायुक्त होती है उसी प्रकार वह चित्रमृगकृत्तिका = चितकबरे मृग के चर्म के आश्लेष से शोभायुक्त था। जिस प्रकार ग्रीष्मकाल का दिन बहुत छोटी की गई दोषा = रात्रि वाला होता है उसी प्रकार वह भो बहुत से दोषों को नष्ट कर चुकने वाला था। जिस प्रकार बादलों का समय वर्षा ऋतु रजःप्रसार = धूल उड़ना शान्त कर देती है उसी प्रकार उसने भो रजोगुण का प्रसार कामादि व्यापार शान्त कर लिया था। जिस प्रकार वरुण पानी में निवास करने वाला है उसी प्रकार उसने भो तपस्या करते समय उदक में वास या उदवास व्रत किया था। जिस प्रकार हरि विष्णु नरकासुर के भय को दूर करने वाले हैं उसी प्रकार वह भो नरक के भय को दूर करने वाला था। जिस प्रकार प्रदोष काल का आरम्भ सन्ध्या के कारण पिङ्गलवर्ण के तारकों = नक्षत्रों से युक्त होता है उसी प्रकार वह भो सन्ध्या के समान पीले तारकों = पुतलियों वाला था। जिस प्रकार प्रातःकाल बाल सूर्य से कपिल वर्ण का होता है उसी प्रकार वह बाल = नवोदित सूर्य के समान पिङ्गलवर्ण का था। सूर्य का रथ जिस प्रकार अच्छी तरह बँधे हुए अक्षचक्र = आरों से युक्त पहिया वाला है उसी प्रकार वह अक्षचक्र = इन्द्रिय–समूह को अच्छी तरह नियन्त्रित रखने वाला था। जिस प्रकार अच्छा राजा अतिगुप्त मन्त्र के अनुष्ठान से विग्रह को समाप्त कर देने वाला होता है उसी प्रकार वह गुप्त वेद मन्त्रों के अनुष्ठान से अपने विग्रह को दुर्बल बनाने वाला था। जिस प्रकार समुद्र कराल शंखमण्डल, आवर्त तथा गर्त वाला होता है उसी प्रकार वह कराल शंख–मण्डल, आवर्त = भौंरी और नाभिगर्त से युक्त था। उसका ललाट–मण्डल बीच में उठा हुआ, किनारों पर दबा हुआ था, बालों में दक्षिणावर्त भौंरी का स्वरूप था, नाभि गहरी थी। भगीरथ ने जिस प्रकार गङ्गा का अवतार = अवतरण देखा था उसी प्रकार वह भो गङ्गा का अवतार देख चुका था। जिस प्रकार भमर अनेक बार पुष्करवन में रहने का अनुभव करता है उसी प्रकार वह भो अनेक बार पुष्कर नामक तीर्थ में और वन में रहने का अनुभव कर चुका था।

वह वन में इधर–उधर घूमने वाला होता हुआ भो महान् आलयों में प्रवेश किये हुए था। (विरोध का परिहार महालय = परमात्मा, ब्रह्म में प्रवेश कर चुका था, समाधि लगा चुका था।) वह असंयत होता हुआ भो मोक्षार्थी = मोक्ष का अभिलाषी था। (विरोधपरिहार – सांसारिक वासना के वशीभ्त न होता हुआ मोक्षाभिलाषी था।) वह शान्ति के प्रयोग में लगा हुआ भो सदैव दण्ड का अवलम्बन करने वाला था। (विरोध–परिहार – सामनीति का प्रयोक्ता होता हुआ भो दण्ड = ब्रह्मचारी के पालाश दण्ड को पकड़े हुए था।) वह सोया हुआ भो प्रबुद्ध = जागृत था। वह समीप में विद्यमान दोनों नेत्रों वाला होता हुआ भो वामलोचन का परित्याग करने वाला था। इस प्रकार जाबालिपुत्र हारीत उसी मार्ग से उसी पम्पासरोवर में स्नान करने की इच्छा से आया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सिस्नासुः – स्ना + सन् + उः; उपागमत् – उप + आ + गम् + लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन; प्रबुद्धः – प्र + बुध् + क्त; दृष्टः – दृश् + क्त;

विशेष – (1) नरकासुर – नरकासुर नामक भयंकर राक्षस जो कि भ्मि का पुत्र होने के कारण भोमासुर भो कहलाता है, उसने प्राग्ज्योतिषपुर में अपनी राजधानी बनाकर 16000 राजकुमारियों को अपनी कैद में डाल रखा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका वध कर उन राजकन्याओं का उद्धार किया। (2) संध्यापिंगलतारकः – संध्या के समान पिङ्गल वर्ण की पुतलियों वाला। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पिङ्गल पुतलियों वाला महापुरुष होता है। (3) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में मुनिकुमार हारीत के करुणापरायण स्वभाव का चित्रण किया गया है।

प्रायेणाकारण–मित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि। यतः स मां तदवस्थमालोक्य समुपजातकरुणः समीपवर्त्तिनमृषिकुमारकमन्यतममब्रवीत् 'अयं कथमपि शुक–शिशुरसञ्जात–पक्षपुट एव तरुशिखरादस्मात् परिच्युतः, श्येन–मुख–परिभ्रष्टेन वाऽनेन भवितव्यम्। तथाहिअतिदवीयस्तया

प्रपातस्याऽल्पशेषजीवितोऽयमामीलित–लोचनो मुहुर्मुहुर्मुखेन पतति, मुहुर्मुहुरत्युल्बणं श्वसिति, मुहुर्मुहुश्चञ्चु पुटं विवृणोति, न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्। तदेहि, यावदेवायमसुभिर्न विमुच्यते तावदेव गृहाणेमम्, अवतारय सलिलसमीपम्' इत्यभिधाय तेन मां सरस्तीरमनाययत्।

अनुवाद – सज्जनों के हृदय सदा प्रायः बिना कारण मैत्री भाव वाले और अत्यन्त दया वाले होते हैं। क्योंकि वह मुनिकुमार हारीत मुझे उस प्रकार की कष्टयुक्त दशावाला देख कर अत्यन्त दयायुक्त होता हुआ समीपवर्ती किसी एक ऋषिकुमार से बोला – ''यह तोते का बच्चा जिसके पंख भो नहीं निकले हैं, इस पेड़ की चोटी से किसी प्रकार गिर पड़ा है अथवा यह बाज के मुख से छूट कर गिरा हुआ होना चाहिए। क्योंकि गिरने का स्थान बहुत दूर होने के कारण इसका जीवन बहुत थोड़ा ही बचा है, आँखें बन्द किए हुए यह बार–बार मुँह के बल गिर रहा है, बहुत तेजी से बार–बार सांसें ले रहा है, बार–बार चोंच फैला रहा है, अपनी गर्दन भो नहीं सँभाल पा रहा है। इसलिए आओ, जब तक प्राण इसे नहीं छोड़ते अर्थात् मृत्यु से पहले ही इसे पकड़ लो और पानी के पास उतार दो – ऐसा कहकर उस ऋषिकुमार ने मुझे पम्पासरोवर के निकट पहुँचवाया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अभिधाय – अभि + धा + ल्यप्; दवीयान – दृर् +ईयसुन्; मुखेन पतति – यहाँ पर 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' सूत्र के अनुसार तृतीया विभक्ति हुई है; तेन माम् अनाययत् – यहाँ पर 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ' सूत्र से कर्ता की कर्म संज्ञा प्राप्त थी किन्तु 'नीवह्योर्न' सूत्र से उसका निषेध होने से अनुक्त कर्त्ता में तृतीया विभक्ति हुई है।

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश में हारीत के प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव को दर्शाया गया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में ऋषिकुमार द्वारा शुक शावक को जल पिलाने और उसकी शुश्रूषा करने का वर्णन किया गया है।

उपसृत्य च जल–समीपमेकदेश–निहित–दण्ड–कमण्डलुरादाय स्वयमामुक्तप्रयत्नमुत्तानित– मुखमङ्गुल्या कतिचित् सलिलबिन्दूनपाययत्। अम्भःक्षोदकृतसेकञ्चोपजानवीन – प्राणमुपतट– प्ररूढस्य नवनलिनीदलस्य जलशिशिरायां छायायां निधाय स्वोचितमकरोत् स्नानविधिम्। अभिषेकावसाने चानेकप्राणायामपूतोऽपि जपन्नघमर्षणानि प्रत्यग्रभग्नैरुन्मुखो रक्तारविन्दैर्नलिनीपत्त्र– पुटेन भगवते सवित्रे दत्त्वार्घमुदतिष्ठत्। आगृहीत – धौत – धवल – वल्कलश्च सहज्योत्स्न इव सन्ध्यातपः करतल – निर्घूनन – विशद – सटः प्रत्यग्रस्नानार्द्र – जटेन सकलेन तेन मुनिकुमार – कदम्बकेनानुगम्यमानो मां गृहीत्वा तपोवनाभिमुखं शनैः शनैरगच्छत्।

अनुवाद – और जल के समीप पहुँच कर अपना दण्ड और कमण्डलु एक ओर रखा और जीवन के लिए प्रयत्न छोड़ देने वाले, ऊपर की ओर मुख फैलाए हुए मुझे स्वयं लेकर अपनी अंगुलियों से पानी की कुछ बूँदें पिलाई।

उसने जल बून्दों से मुझे सींच दिया था अतः मुझमें नये प्राणों का संचार हो गया था, मुझे तट के किनारे उगी हुई नवीन नलिनी–दल की जल के सम्पर्क से शीतल छाया में रख कर अपने योग्य विधि से स्नानकृत्य सम्पन्न किया। स्नान के समाप्त हो जाने पर अनेक प्राणायामों से पवित्र भो वह मुनिकुमार अघर्मषण मन्त्रों को जपता हुआ, ऊपर मुख करते हुए, उसी समय तोड़ कर लाए गए लाल कमलों से कमलिनी के पत्रपुटक द्वारा सूर्य को अर्घ्य देखकर उठ खड़ा हुआ।

और धुले हुए उज्ज्वल वल्कल को धारण किए हुए, चाँदनी सहित सायंकालीन सूर्य के प्रकाश के समान सा होता हुआ, अपने करतलों से फटकारने से स्वच्छ या बिखरी हुई जटाओं वाला, तत्काल स्नान करने से गोली जटाओं वाले उन मुनिकुमारों के समूह द्वारा अनुगमन किया जाता हुआ, मुझे लेकर तपोवन की ओर धीरे–धीरे चल पड़ा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उपसृत्य – उप् + सृ + क्त्वा (ल्यप्); पूतः – पूञ् + क्त; अपाययत् – पा (पाने) + णिच् + लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन; अगच्छत् गम् + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन; उदतिष्ठत् – उत् + स्था + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

विशेष – (1) अम्भःक्षोदकृतसेकम् – जलकणों से जिसे सींचा गया था, ऋषिकुमार हारीत ने वैशम्पायन को अपनी अंगुली से जल पिलाया और जल के छींटे उसके ऊपर छिड़के जिससे उसमें नवचेतना का संचार हो गया। (2) प्राणायामपूतः – शरीर की आन्तरिक शुद्धि के लिए धर्मशास्त्र में प्राणायाम का विधान है। इसके अनुसार श्वांस को अन्दर खींचना, रोके रखना और छोड़ना – ये तीन क्रियाएँ की जाती हैं, जिन्हें क्रमशः पूरक, कुम्भक व रेचक कहा जाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महर्षि जाबालि के आश्रम की विशिष्टताओं का प्रतिपादन महाकवि बाणभट्ट द्वारा किया गया है।

अनतिदूरमिव गत्वा दिशि–दिशि सदा सन्निहित–कुसुमफलैः ताल–तिलक–तमाल–हिन्ताल– बकुलबहुलैः, एलालताकुलित–नालिकेरी–कलापैः, लोल–लोध्र–लवली–लवङ्गु–पल्लवैः, उल्लिसितचूत–रेणु–पटलैः, अलिकुल–झङ्कार–मुख–सहकारैः, उन्मद–कोकिल–कुल–कलाप– कोलाहलिभिः, उत्फुल्ल–केतकी–रजःपुञ्ज–पिञ्जरैः, पूगीलता–दोलाधिरूढ–वनदेवतैः, तारका–वर्षमिवाधर्म्म–विनाश–पिशुनं कुसुम–निकरमनिल–चलितमनवरतमतिधवलमुत्सृजद्भिः संसक्तपादपैः काननैरुपगूढम्अचकितप्रचलितकृष्णारशतशबलाभिः, उत्फुल्लमलिनोलोहिनीभिः मारीचमायामृगावलूनरूढवीरुद्दालाभि, दाशरथिचापकोटिखतकन्दगर्तविषमिततलाभिः दण्डकारण्यस्थलीभिरुपशोभितप्रान्तम्। आगृहीतसमित्कुशकुसुममृद्भिः अध्ययन–मुखर–शिष्यानुगतैः सर्वतः प्रविशद्भिः मुनिभिरशून्योपकण्ठम्, उत्कण्ठितशिखण्डिमण्डल–श्रूयमाणजल – कलश – पूरणध्वानम्, अनवरताज्याहुतिप्रीतैश्चित्रभानुभिः सशरीरमेव मुनिजनममरलोकं निनीषुभिः उद्धूयमान–धूम–लेखाच्छलेनावबद्धच्यमान–स्वर्गमार्ग–गमन–सोपान–सेतुमिवोपलक्ष्यमाणम्

अनुवाद – यहाँ 'अनतिदूरमिव गत्वा आश्रमम् अपश्यम् – ' यह मुख्य वाक्यांश है। मध्य में उस जाबालि आश्रम की विशेषता बताने वाले अनेक विशेषणों का प्रयोग है।

थोड़ी सी दूर जाकर मैंने = शुक ने महर्षि जाबालि का आश्रम देखा जो ऐसे वनों से व्याप्त था जो सदैव फूलों और फलों से युक्त ताल, तिलक, तमाल हिन्ताल और वकुल की अधिकता वाले थे, जो एला की लताओं से घिरे हुए नारियल के वृक्षों के समूह से युक्त थे, जो लोध, लवली और लौंग के हिलते हुए पल्लवों से युक्त थे, जो उड़ती हुई आम की मंजरी के समूह से युक्त थे, जिनमें गुनगुनाते हुए भौंरों के कारण आम के वृक्ष झंकार–युक्त थे, जो मदमत्त कोयल–कुल के समूह के कोलाहल से युक्त थे, जो खिले हुए केतकी (केवड़े) के परागपुञ्ज से पोले थे, जिनमें पूगीलता (सुपारियों की लता) रूपी झूला में वन की अधिष्ठातृ देवियां चढ़ी हुई (विराजमान) थी, जो वन अधर्म के विनाश के सूचक उल्कापात के सदृश, वायु से हिलाये गए, अत्यन्त उज्ज्वल – पुष्पसमूह को सदा बिखेरने वाले, अत्यन्त घने वृक्षों वाले थे।

जिस आश्रम के प्रान्तभाग दण्डक वन की उन स्थली = अकृत्रिम भूमियों से उपशोभित थे जो स्थली अचकित निभय घूमते हुए सैंकड़ों कृष्णसारों मृगविशेषों से रंगबिरंगी थीं, जो स्थली खिली हुई स्थलकमलिनियों से लाल वर्ण की थी, जो मारीच रूप मायामृग (स्वर्णिम हिरन) द्वारा काटी गई बाद मे फिर उगी हुई लताओं के पत्तों से युक्त थी, जो दशरथ–पुत्र रामचन्द्र के धनुष की नोंक (कोटि) से उखाड़े गए कन्दों के गड्ढों के कारण ऊँचे–नीचे तल प्रदेश वाली थी।

जिस आश्रम के समीपवर्त्ती स्थान चारों ओर से प्रवेश करते हुए उन मुनियों से भरे हुए थे, जो समिधायें कुश, पुष्प और मृत्तिका लिए हुए थे, जिनके पीछे–पीछे अध्ययन करने के कारण बोलते हुए शिष्यगण चल रहे थे। जिस आश्रम में उत्कण्ठायुक्त मयूरों के समूह द्वारा घड़े भरने पर होने वाली ध्वनि को सुना जा रहा था। जो आश्रम निरन्तर घृत की आहुतियों से प्रसन्न होने वाली, मानों मुनिसमूह को सशरीर ही स्वर्ग ले जाने की इच्छुक ऊपर उठते हुए धुएँ की रेखा के बहाने से स्वर्गपथ पर जाने के लिए सोपानसेतु बनाती सी हुई अग्नियों से युक्त दिखाई दे रहा था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – गत्वा – गम् + क्त्वा; उपगूढम् – उप् + गूह् + क्त; उपलक्ष्यमाणम् – उप् + लक्ष् + यत् + शानच्।

विशेष – (1) मारीचमायामृगावलून – ताड़का के पुत्र मारीच ने रावण का कपट बनाकर लताओं के पत्तों को तोड़ा था। (2) दाशरथिचापकोटि – दशरथपुत्र श्री राम के द्वारा दण्डक वन में रहते समय अपने धनुष की नोक से उखाड़ कर कन्द–मूल खाने से हुए गड्ढों से मानों अब भो धरती ऊबड़–खाबड़ थी। (3) प्रस्तुत गद्यांश में उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में भो पूर्व की तरह जाबालि आश्रम की विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

आसन्न–वर्त्तिनीभिस्तपोधन–सम्पर्कादिवापगतकालुष्याभिः, तरङ्ग–परम्परा–संक्रान्तरविविम्ब– पङ्क्तिभिः, तापसदर्शनागतसप्तर्षि – मालाविगाह्यमानाभिरिव, अति – विकच – कुमुद – वनमृषिजनमुपासितुमवतीर्णं ग्रहगणमिव निशाशूद्वहन्तीभिर्दीर्घिकाभिः परिवृतम् अनिलावनमितशिखराभिः प्रणम्यमानमिव वनलताभिः, अनवरतमुक्तकुसुमैरभ्यर्च्यमानमिव पादपैः, आबद्धपल्लवाञ्जलिभिरुपास्यमानमिव विटपैः, उटजाजिर–प्रकीर्ण–शुष्यच्छ्यामाकम्, उपसंगृहीतामलक–लवली–ककन्धू–कदली–लकुच–चूत–पनस–तालफलम्

अनुवाद – जो आश्रम ऐसी दीर्घिकाओं से सभो ओर घिरा हुआ था, जो समीप में स्थित थीं, तपस्वियों के सम्पर्क के कारण मानो जिनका कालुष्य (गन्दगी) दूर हो चुका था, जिनकी लहरों में सूर्य प्रतिबिम्ब का समूह पड़ रहा था, अतः ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानों आश्रमस्थ तपस्वियों के दर्शनार्थ आए हुए सप्तर्षियों के समूह द्वारा आलोडित की जा रही हों, जो रात के अत्यन्त खिले हुए कुमुद–समूह को इस प्रकार से धारण किए हुई थी मानों ऋषि जनों की उपासना करने के लिए तारे उतर कर आए हों। कुमुद–पुष्प–समूह में तारों की उत्प्रेक्षा है।

जो आश्रम वायु द्वारा झोंकों से नीचे किए गए अग्रभाव वाली वनलताओं द्वारा मानों प्रणाम किया जा रहा हो। निरन्तर फूलों को गिराने वाले वृक्षों द्वारा मानों जिसकी पूजा की जा रही हो। पल्लवरूपी अञ्जलि बाँधे हुए वृक्षों द्वारा जिसकी उपासना की जा रही हो। जिस आश्रम में पर्णशालाओं के आँगनों में फैलाए गए अत एव सूखते हुए श्यामाक धान्य थे। जिसमें आँवला, लवली, लोंग, ककन्धू कदली लकुच, आम, कटहल और ताड़इन सभो के फल एकत्रित किए गये थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अर्च्यमानम् – अर्च् + शानच्; उपासितुम् – उप् + आस् + तुमुन्।

(1) आबद्धपल्लवाञ्जनलिभिः विटपैः – वृक्षों की शाखाओं में निकलते हुए कोमल किसलय ऐसे लगते थे मानों इन्होंने आश्रम की उपासना करने के लिए अञ्जलि बाँध रखी हो।

विशेष – प्रस्तुत खण्ड में आश्रम के प्राकृतिक वैभव का भव्य वर्णन किया गया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्य खण्ड में आश्रम का स्वाभाविक एवं यथार्थ चित्रण किया गया है।

अध्ययनमुखर–वटुजनम्, अनवरत–श्रवण–गृहीत–वषट्कार–वाचालशुककुलम्, अनेकसारिकोद्घुष्यमाण – सुब्रह्मण्यम्,

अरण्य–कुक्कुटोपभुज्यमान–वैश्वदेवबलिपिण्डम्, आसन्न – वापीकलहंसपोत – भुज्यमान–नीवारवलिम्, एणीजिह्वापल्लवोपलिह्यमानमुनिबालकम्, अग्निकार्य्यार्द्धदग्धसिमसिमायमान – समित्कुशकुसुमम्, इतस्ततो विक्षिप्त–भस्मलेखा–कृतमुनिजन– भेजन–भूमिपरिहारम्, परिचित–शाखामृग–कराकृष्टयष्टिनिष्कास्यमान–प्रवेश्यमान–जरदन्धतापसम्

अनुवाद – जो आश्रम वेदपाठ करने वाले बटुकजनों से युक्त था। जिस आश्रम में निरन्तर सुनने से ग्रहण किए गए वषट्कार को बोलने वाले तोतों का समूह था। जिस आश्रम में मैनाओं द्वारा सुब्रह्मण्य नामक निगद का उद्घोष किया जा रहा था। जिस आश्रम में जंगली मुर्गों द्वारा वैश्वदेवसम्बन्धी बलिपिण्ड खाए जा रहे थे। जिस आश्रम में समीपस्थ बावड़ी में कलहंसों के बच्चों द्वारा नीवार धान्यविशेष की बलि खाई जा रही थी। जिस आश्रम में हरिणियों द्वारा जिह्वा रूपी पल्लव से मुनिकुमारों को चाटा जा रहा था। जिस आश्रम में हवन में आधे जले हुए समिधा, कुश और फूल 'सिम सिम' ऐसी ध्वनि कर रहे थे। जिस आश्रम में पत्थरों से तोड़े गए नारियल के रस से शिलातल चिकने हो गए थे। जिस आश्रम में थोड़ी ही देर पहले तोड़े गए या निचोड़े गए वल्कलों के रस से भ्तल गुलाबी रंग का हो रहा था। जिस आश्रम में लाल चन्दन से चित्रित सूर्यमण्डल में करवीर के फूल चढ़ाए गए थे। जिस आश्रम में इधर–उधर फैली हुई भस्म की रेखाओं से मुनिजनों के भोजन के स्थान को अन्य लोगों के प्रवेश से वर्जित अर्थात् सुरक्षित कर दिया गया था। जिस आश्रम मे परिचित बन्दरों द्वारा हाथ से पकड़ी गई छड़ियों की सहायता से बूढ़े और अन्धे तपस्वियों को बाहर और भोतर ले जाया जा रहा था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विक्षिप्त – वि + क्षिप् + क्त;

विशेष – वैश्वदेव – देवयज्ञ, पंचमहायज्ञों में प्रथम वैश्वदेव यज्ञ होता है जिसमें देवताओं के निमित्त हवन किया जाता है। सभो देवताओं के कारण इसका नाम वैश्वदेव है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में आश्रम के निर्मल मनोहारी एवं पवित्र वातावरण का वर्णन किया गया है।

इभ–कलभार्द्धोपभुक्तपतितैः सरस्वती–भुजलता–विगलितैः शङ्खवलयैरिव मृणालशकलै कल्माषितम्, ऋषिजनार्थमणकैर्विषाण–शिखरोत्खन्यमानविविध–कन्दमूलम्, अम्बुपूर्णपुष्करपुटैर्वन – करिभिरापूर्य्यमाण – विटपालवालकम्, ऋषिकुमारकाकृष्यमाणवनवराहदंष्ट्रान्तरालग्न–शालूकम्, उपजात–परिचयैः कलापिभिः पक्षपुटपवन–सन्धुक्ष्यमाणमुनिहोम–हुताशनम्, आरब्धामृत–चरु – चारुगन्धम्, अर्द्धपक्व – पुरोडाश – परिमलामोदितम्, अविच्छिन्नाज्यधाराहुति – हुतभुग्– झङ्कार–मुखरितम्, उपचर्यमाणातिथिवर्गम्, पूज्यमानपितृ–दैवतम्, अर्च्यमान–हरि–हर–पितामहम्, उद्दिश्यमान–श्राद्धकल्पम्, व्याख्यायमानयज्ञविद्यम्, आलोच्यमान – धर्म्मशास्त्रम्, वाच्यमान – विविध–पुस्तकम्, विचार्य्यमाण–सकलशास्त्रार्थम् आरभ्यमाण–पर्णशालम्, उपलिप्यमानाजिरम्, उपमृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्, आबध्यमानध्यानम्, साध्यमान–मन्त्रम्, अभ्यस्यमान–योगम्, उपहियमाण–वनदेवताबलिम्,

अनुवाद – जो आश्रम हाथियों के बच्चों द्वारा आधे खाए गिरे हुए, कमलनाल के टुकड़े, जो मानों सरस्वती की भजलताओं से गिरे हुए शङ्ख के कंगनों हों, उनके द्वारा चित्रवर्ण किया गया था। जिश्रस आश्रम में ऋषि लोगों के लिए हिरनों द्वारा अपने सींगों से अनेक प्रकार के कन्दमूल खोदे जा रहे थे। जिस आश्रम में जंगली हाथियों द्वारा जल से भरे हुए सूण्ड के अग्रभागों से पेड़ों के नीचे बने हुए आलबाल भरे जा रहे थे। जिस आश्रम में जंगली सुअरों की दाढ़ के बीच में फँसे हुए कन्दों को ऋषि–कुमारों द्वारा खींचा जा रहा था। जिस आश्रम में परिचित मयूरों द्वारा अपने पंखों के पुटों द्वारा ऋषियों की हवनाग्नि सुलगाई जा रही थी। जिस आश्रम में अमृत में पकाना प्रारम्भ की गई चरु की मनोहर गन्ध थी। जो आधे पकाए गए पुरोडाश की सुगन्ध से सुगन्धित था। जो लगातार दी जाने वाली घी की

धार की आहुतियों से अग्नि के झंकार शब्द से शब्दायमान था। जिस में अतिथियों की सेवा की जा रही थी। जिस आश्रम में पितृदेवों की पूजा की जा रही थी। जिस में हरि = विष्णु, हर = शिव और पितामह = ब्रह्मा की अर्चना की जा रही थी। जिस आश्रम में श्राद्धविधियों का अनुष्ठान किया जा रहा था। जिस आश्रम में यज्ञ–विद्या की व्याख्या की जा रही थी। जिसमें आश्रम में धर्मशास्त्र के वचनों की समीक्षा की जा रही थी। जिस आश्रम में अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही थीं। जिस आश्रम में सम्पूर्ण शास्त्रीय विषयों का विचार किया जा रहा था।

जिस आश्रम में पर्णशालायें बनाना आरम्भ किया जा रहा था। जिस आश्रम में आंगन लीपे जा रहे थे। जिस आश्रम में पर्णशालाओं का भो भोतरी भाग जलादि से स्वच्छ किया जा रहा था। जिस आश्रम में तपस्वियों द्वारा ध्यान किया जा रहा था, मन्त्र सिद्ध किये जा रहे थे, योग का अभ्यास किया जा रहा था, देवताओं को बलि भट की जा रही थी।

विशेष – (1) पुष्करपुट – हाथी अपनी सूंड में पानी भरकर कलम के रूप में लगाई गई टहनियों के थाँवलों को भर रहे थे। (2) अमृतचरु – होम सामग्री जिसे घी, जौ, चावल आदि से पकाया जाता है। देवता लोग इस चरु का भोजन करते हैं। (हव्यपाके चरुः पुमान्) (3) पुरोडाश – हवनीय द्रव्य जो कि चावल के आटे से बनाया जाता है तथा जिसके टुकड़े काटकर मन्त्र के साथ आहुति दी जाती है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट ने भारतीय आश्रम संस्कृति को चित्रित करते हुए मानों उसे साक्षात् पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दिया है।

निर्वर्त्त्यमान – मौञ्जमेखलम्, क्षाल्यमान – वल्कलम्, उपसंगृह्यमाण – समिधम्, उपसंस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्, गृह्यमाण–गवेधुकम्, शोष्यमाण–पुष्करबीजम्, ग्रथ्यमानाक्षमालम्, गृह्यमाणत्रिपुण्ड्रकम्, न्यस्यमान–वेत्रदण्डम्, सत्क्रियमाण–परिव्राजकम्, आपूर्य्यमाणकमण्डलुम्, अदृष्टपूर्वं कलिकालस्य अपरिचितमनृतस्य, अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य, अब्जयोनिमिव त्रिभुवनवन्दितम्, असुरारिमिव प्रकटितनरसिंहवराहरूपम्, सांख्यमिव कपिलाधिष्ठितम्, मथुरोपवनमिव बलावलीढ – दर्पितधेनुकम्, उदयनमिवानन्दितवत्सकुलम्, किम्पुरुषाधिराज्यमिव मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमान – द्रुमम् निदाघसमयावसानमिव प्रत्यासन्न – जलप्रतापम्, जलधरसमयमिव वनगहन–मध्य – सुख – सुप्त – हरिम्, हनूमन्तमिव शिलाशकलप्रहारसञ्चूर्णिताक्षास्थिसञ्चयम्, खाण्डव–विनाशोद्यतार्जुनमिव प्रारब्धाग्निकार्य्यम्

अनुवाद – जिस आश्रम में मूंज की मेखलायें बनाई जा रही थीं, वल्कल धोए जा रहे थे, समिधायें (हवन की लकड़ियाँ) एकत्रित की जा रही थीं। कृष्णमृग – चर्म के उपसंस्कार या स्वच्छ करना आदि कार्य किए जा रहे थे, गवेधुक (कन्द या बाजरा अन्न) का संग्रह किया जा रहा था, कमल के बीज सुखाए जा रहे थे, रुद्राक्षमालाएँ गूथीं जा रही थीं, त्रिपुण्ड्र लगाए जा रहे थे, बाहर घूम कर आए हुए लोगों द्वारा वेत्रदण्ड (उचित स्थान पर) रखे जा रहे थे, परिव्राजकों (संन्यासियों) का सत्कार किया जा रहा था, कमण्डल (जल से) भरे जा रहे थे।

जिस आश्रम को कलियुग द्वारा पहले नहीं देखा गया था, अर्थात् कलियुग का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता था जो असत्य से अपरिचित था, अर्थात् कोई असत्य नहीं बोलता था। जो कामदेव द्वारा पहले नहीं सुना गया था। अर्थात् कामजन्य कोई विकार किसी में नहीं था। जो कमल–योनि (ब्रह्मा) के समान तीनों लोकों में वन्दित था। असुरों के शत्रु विष्णु ने जिस प्रकार नरहरि = नृसिंह और वराह = सूकर के रूप प्रकट किए थे उसी प्रकार जो नर = मनुष्यों, हरि = सिंहों, वराहों और रूपों = मृगों को प्रकट = प्रदर्शित करने वाला था अर्थात् उसमें ये जीव रहते थे। सांख्य दर्शन जिस प्रकार कपिल मुनि द्वारा अधिष्ठित है उसी प्रकार जो कपिलाओं (विशेष रंग की उन्नत गायों) से युक्त था। जिस प्रकार मथुरा का उपवन बल द्वारा अवलीढ अतः अत्यन्त घमण्डी धेनुक नामक राक्षस से युत था, उसी प्रकार

जो बलशाली और दर्पयुक्त धेनुकों से युक्त था। उदयन ने जिस प्रकार वत्सकुल (वत्सराज के वंश) को आनन्दयुक्त किया था उसी प्रकार जो वत्सकुल = बछड़ों के समूह को आनन्दित करने वाला था। किन्नरों का अधिराज्य (राष्ट्र) जिस प्रकार मुनियों द्वारा गृहीत (हाथों में लिए गए) कलसों (में स्थित जल) से अभिषेक कराए जाते हुए 'द्रुम' नामक राजा से युक्त था उसी प्रकार जो मुनिजनों द्वारा हाथों में लिए गए घड़ों के जल से सींचे जाते हुए द्रुमों = वृक्षों से युक्त था। गर्मी की ऋतु की समाप्ति जिस प्रकार जल के प्रपात के सामीप्य वाली होती है अर्थात् उसकी समाप्ति के बाद वर्षा होने वाली रहती है, उसी प्रकार जो समीपवर्ती जल के झरनों से युक्त था। वर्षा के दिन जिस प्रकार वन–गहन = गम्भोर समुद्र के बीच में सुख से सोए हुए हरि = विष्णु वाले होते हैं, उसी प्रकार जो वन की गुफाओं में सुख से सोते हुए हरि = सिंह से युक्त था। हनुमान ने जिस प्रकार शिलाखण्ड फेंक कर रावणपुत्र अक्ष की हड्डियों के समूह को चूर्ण–चूर्ण कर दिया था उसी प्रकार जो पत्थर के टुकड़ों से तोड़े गए अक्ष के मध्य भाग के समूह से युक्त था। खाण्डव–नामक वन का विनाश करने के लिए उद्यत अर्जुन ने जिस प्रकार अग्नि–कार्य प्रारम्भ कर दिया था उसी प्रकार जिस में अग्निकार्य प्रारम्भ कर दिया गया था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अतिथिः – अतति सदा गच्छति इति अतिथिः – अत् + इथिन, अनिश्चिता तिथिर्यस्य सः;

विशेष –

(1) अतिथि – जो वैश्वदेव के समय गृहस्थ के घर उपस्थित हो –

दूराच्चोपगतः श्रान्तं वैश्वदेव उपस्थितम्।
अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः।

(2) श्राद्धकल्प – श्राद्ध का विवेचन करने वाले आश्वलायन आपस्तम्ब आदि ऋषियों के ग्रन्थ जिन्हें वेदांग की कोटि में गिना जाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्य खण्ड में दूसरे ब्रह्म लोक के समान सुन्दर जाबालि आश्रम का वर्णन मिलता है।

सुरभिविलेपनधरमपि सततताविर्भूतधूमगन्धम्, मातङ्गकुलाध्यासितमपि पवित्रम्,
उल्लसित –
धूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्, परिपूर्णद्विजपति–मण्डल–सनाथमपि सदा– सन्निहित तरु –
गहनान्धकारम्, अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोकमाश्रममपश्यम्।

अनुवाद – जो सुरभि विलेपन द्रव्य = अंगरागादि को धारण करता हुआ भो सदैव उठने वाले धुएँ की गन्ध से युक्त था, जो मातङ्ग के समूह से युक्त होता हुआ भो पवित्र था, उल्लसित = प्रकट होने वाले सैंकड़ों धूमकेतुओं वाला होने पर भो अच्छी प्रकार शान्त हुए उपद्रवों वाला था, जो सम्पूर्ण = षोडशकलाओं सहित द्विजपतिमण्डल = चन्द्रमण्डल से युक्त होता हुआ भो घने वृक्षों के कारण सदा अन्धकारयुक्त रहता था, (विरोधपरिहार – सम्पूर्ण = पूर्ण विद्वान् द्विजपति = ब्राह्मणों के मण्डल = समूह स युक्त होता हुआ भो सदैव घने वृक्षों के अन्धकार वाला था।) अत्यन्त मनोहर अत एव मानों दूसरा ब्रह्मलोक था। (ऐसे जाबाल्याश्रम को मैंने = शुक ने देखा)

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अपश्यम् – दृश् + लङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन;

विशेष – (1) बलावलीढदर्पितधेनुकम् – यहाँ पर भगवान् कृष्ण के द्वारा मथुरा के समीप धेनुकासुर को मारे जाने की कथा की ओर संकेत है। (2) अब्जयोनि – भगवान् विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति होने के कारण उन्हें अब्जयोनि कहा जाता है। (3) प्रस्तुत गद्य खण्ड में उपमा और विरोधाभास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – महाकवि बाणभट्ट ने प्रस्तुत गद्य खण्ड में श्लेष–संकीर्ण शाब्दी परिसंख्या अलंकार के माध्यम से आश्रमवासियों की पवित्रता का मनोभिराम चित्रण प्रस्तुत किया है।

यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु, मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न कामिनीषु, पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु, भ्रान्तिरनलप्रदक्षिणासु न शास्त्रेषु, वसुसङ्कीर्त्तनं दिव्यकथासु न तृष्णासु, गणना रुद्राक्ष–वलयेषु न शरीरेषु, मुनि–बाल–नाशः क्रतु–दीक्षया न मृत्युना, रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन।

अनुवाद – और जिस आश्रम में मलिनता हवि के धुएँ में थी, आचरण में नहीं थी, मुखराग तोतों में ही था, क्रोध में नहीं था, तीक्ष्णता कुशों के अग्रभाग में ही थी, आश्रमवासियों के स्वभाव में नहीं थी, चञ्चलता केलों के पत्तों में ही थी आश्रमवासियों के हृदयों में नहीं थी, आँखों की लालिमा कोयलों में ही थी, आश्रमवासियों का किसी अन्य स्त्रियों के विषय में ऐसा कोई राग नहीं था। कण्ठ पकड़ना कमण्डलुओं में ही था रतिक्रीडा में नहीं था, मेखलाबन्धन व्रतों में ही था झगड़ों के कारण नहीं था। स्तनस्पर्श हवन की गायों के थन का छूना होता था कामिनियों का स्तन स्पर्श नहीं। पक्षपात (पंख गिरना) मुर्गों में ही था विद्या सम्बन्धी विद्वानों में नहीं। अग्नि की परिक्रमाओं म भांति थी शास्त्रों में भम नहीं था, दिव्य कथाओं में वसुओं का गुणगान होता था लालसा में वसुकीर्तन (धन की चर्चा) नहीं थी। रुद्राक्ष मालाओं में गणना होती थी शरीर में गणना (रुझान) नहीं। यज्ञ में दीक्षा लेने से मुनियों का मुण्डन (बाल नाश) होता था मृत्यु के द्वारा बाल नाश (बच्चों की मृत्यु) नहीं। रामायण के कारण राम के प्रति अनुराग था यौवन के कारण रामाओं (स्त्रियों) के प्रति नहीं। बुढ़ापे के कारण मुख पर अंग विकार था धन के अभिमान के कारण भौंहें सिकोड़ना आदि अंग विकार नहीं था।

विशेष – यहाँ महाकवि बाणभट्ट द्वारा शाब्दी परिसंख्या अलंकार सुन्दर प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत वाक्यों में अन्य पदार्थ का निराकरण किया गया है। मलिनता, मुखराग शब्दों में श्लेष है, जो कि परिसंख्या को अनुप्राणित करता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में आश्रमवासी मुनियों की सर्वथा निर्दुष्टता एवं निर्विकारता का प्रतिपादन किया गया है।

यत्र च महाभारते शकुनि–वधः, पुराणे वायु–प्रलपितम्, वयःपरिणामेन द्विज–पतनम्, उपवन – चन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां गीतश्रवण–व्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्य – पक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।

अनुवाद – जहाँ शकुनि (दुर्योधन का मामा) का वध केवल महाभारत ग्रन्थ में था, आश्रम में पक्षियों की हत्या नहीं। वायु का प्रलाप (प्रवचन) वायुपुराण में सुनाया जाता था वायु रोग के कारण प्रलाप नहीं था। अवस्था पक जाने से द्विजों (दांतों) का पतन होता था, ब्राह्मणों (द्विजों) का पतन नहीं था। उपवन के चन्दन वृक्षों में जड़ता (शीतलता) थी, मुनियों में जड़ता (अज्ञान) नहीं। मोरों का नृत्य पक्षपात (पंख गिरना) देखा जाता था, मुनियों का नृत्यों के प्रति झुकाव नहीं। सर्पों का भोग (सिर) दिखाई देता था, मुनियों का विषय भोग नहीं। वानरों की श्रीफल (बिम्बफल) क प्रति अभिलाषा थी, मुनिजनों की लक्ष्मी के प्रति नहीं। वृक्षों की जड़ों का अधोगमन होता था, आश्रमवासियों की अधोगति नहीं थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –जाड्यम् – जड + ष्यञ्; द्विजपतनम् – द्विजानां (दंतानां, ब्राह्मणानां) पतनम्;

विशेष – (1) मूलानामधोगति – भारतीय परम्परा के अनुसार पुण्यशाली लोग सदा ऊपर के लोकों को प्राप्त करते हैं तथा पापियों को नीचे के लोकों में जाना होता है। आश्रम में पाप के अभाव के कारण अधोगति केवल जड़ों में ही होती थी।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में जाबालि मुनि का दिव्य–स्वरूप वर्णित किया गया है।

तस्य चैवंविधस्य मध्यभागमलङ्कुर्वाणस्य, अलक्तकालोहित–पल्लवस्य मुनिजनालम्बितकृष्णाजिन– जल – करक – सनाथशाखस्य तापसकुमारिकाभिरालवाल – दत्त – पीत – पिष्ट – पञ्चाङ्गुलस्य, हरिणशिशुभिः परिपीयमानालवालसलिलस्य मुनिकुमारकाबद्ध–कुशचीरदाम्नो हरितगोमयोपलेपन–विविक्ततलस्य, तत्क्षण–कृत–कुसुमोपहार – रमणीयस्य, नातिमहतः परिमण्डलतया विस्तीर्णावकाशस्य रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टम् उग्रतपोभिर्भुवनमिव सागरैः, कनक–गिरिमिव कुलपर्वतैः, क्रतुमिव वैतानिक–वह्निभिः, कल्पान्त–दिवसमिव रविभिः, कालमिव कल्पैः, समन्तान्महर्षिभिः परिवृतम् उग्र–शाप–भीतयेव कम्पितदेहया, प्रणयिन्येव विहित–केशग्रहया, क्रुद्धयेव कृतभ्रूभङ्गया, मत्तयेवाकुलित–गमनया, प्रसाधितयेव प्रकटित–तिलकया जरया, गृहीतव्रतयेव भस्मधवलया धवलीकृत–विग्रहम्

अनुवाद – ऐसे उस आश्रम के मध्यभाग को सुशोभित करने वाले रक्त अशोक वृक्ष के नीचे उसकी छाया में बैठे हुए जाबालि मुनि को मैंने देखा, उस अशोक वृक्ष के पल्लव आलता के समान लाल–लाल थे, मुनिजनों द्वारा लटकाए गए कृष्ण–मृगचर्म और जलपात्रों से उसकी शाखायें युक्त थीं, तापस–कन्याओं द्वारा उसके आलवाल पर हल्दी के चूर्ण से पाँच अंगुलियों की छापें बनाई गईं थीं, उसके आलवाल के पानी को हिरनों के बच्चे पी रहे थे, मुनिकुमारों ने उस पर कुशतन्तु की रस्सी बांध रखी थी, उसके नीचे की जमीन ताजे गोबर से लीप दी गई थी, उसी समय उत्पन्न फूलों से मनोहर था, अत्यधिक विशाल न होता हुआ भो गोल आकार वाला होने से उसका क्षेत्र अति विस्तृत था। ऐसे अशोक वृक्ष के नीचे बैठे हुए जाबालि मुनि को देखा।

वे मुनि उग्र तपस्या करने वाले महर्षियों से ऐसे घिरे हुए थे जैसे कि समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी हो, कुलपर्वतों से घिरा हुआ सुमेरु पर्वत हो, वैतानिक अग्निओं से गिरा हुआ यज्ञ हो अथवा सभो सूर्यों से घिरा हुआ प्रलयकाल का अन्तिम दिन हो, अथवा कल्पों से घिरा हुआ स्वयं काल हो।

कठोर शाप के भय से डरी हुई स्त्री के समान शरीर को कम्पित करने वाली प्रेमिका स्त्री के समान केशग्रहण करने वाली (स्त्री–पक्ष में केशों को पकड़ने वाली, जरापक्ष में केशों में व्याप्त होने वाली, प्रभाव डालने वाली), क्रुद्ध स्त्री के समान भभग करने वाली मदिरापानादि से मतवाली स्त्री के समान आकुलित गति वाली सजी–सजाई स्त्री के समान तिलक को प्रकट करने वाली, व्रतधारण करने वाली स्त्री के समान, भस्म से श्वेत शरीर वाली जरा ने उस ऋषि के शरीर को धवल बना दिया था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उपविष्टम् – उप् + विश् + क्त; पीयमान – पा (पाने) + शानच्;

विशेष – (1) पीतपिष्टपञ्चाङ्गुल – पीसी हुई हल्दी से वृक्ष के थावले पर हाथ की छाप लगा दी जाती थी। यह परम्परा ग्रामीण क्षेत्र में प्रायः देखी जाती है। (2) वैतानिकवह्निभिः – यज्ञ से सम्बन्धित अग्नि। गार्हपत्य, आहवीय एवं दक्षिणाग्नि – ये तीन वैतानिक अग्नियाँ कहलाती हैं। (3) यहाँ पर एक ही जाबालि ऋषि के अनेकों उपमान निरूपित किये जाने के कारण मालोपमा नामक अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महर्षि जाबालि की विशेषताओं का प्रतिपादन किया गया है।

आयामिनीभिः पलित – पाण्डुराभिस्तपसा विजित्य मुनिजनमखिलं धर्म्मपताकाभिरिवोच्छिताभिरमर – लोकमारोढुं पुण्य–रज्जुभिरिवोप–संग्रहीताभिरतिदूर–प्रवृद्धस्य पुण्यतरोः कुसुम – मञ्जरीभिरिवोद्गताभिर्जटाभिरुपशोभितम्, उपरचित – भस्म – त्रिपुण्ड्रकेण तिर्य्यक्प्रवृत्त – त्रिपथगा – स्रोतस्त्रयेण हिमगिरि–शिलातलेनेव ललाट – फलकेनोपेतम्,

अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्यामवलम्बित – बलि – शिथिलाभ्यां भ्रूलताभ्यामवष्टभ्यमान – दृष्टिम्

अनुवाद – वे जाबालि लम्बी–लम्बी और वृद्धावस्था के कारण उत्पन्न श्वेतता से श्वेत अपनी उन जटाओं से शोभित थे जो जटाएं मानों समस्त मुनियों को तपस्या से जीत कर ऊपर उठाई गई विजयपताका हों, जो मानों स्वर्ग–लोक में चढ़ने के लिए उन ऋषि के द्वारा संगृहीत पुण्यों से बनाई गईं रस्सियाँ हों और जो जटाएँ मानों बहुत दूर तक बढ़ेहुए पुण्यरूपी वृक्ष की निकली हुई पुष्पमंजरियाँ हों। जो ऋषि ऐसे ललाट–फलक से युक्त थे, जिसमें भस्म का त्रिपुण्ड्र बना था इस कारण मानों तिरछी होकर बहने वाली गङ्गा के तीन स्रोतों वाले हिमालय का शिलातल हो, उल्टी चन्द्रकला = चन्द्रमा के समान और बुढ़ापे से लटकती हुई चमड़ी के कारण शिथिल भौंहों से जिन मुनि की दृष्टि रोकी जा रही थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विजित्य – वि + जि + क्त्वा (ल्यप्); आरोढुम् – आ + रुह् + तुमुन्।

विशेष – (1) त्रिपथगा – आकाश, पाताल एवं पृथ्वी रूपी तीन मार्गों पर बहने के कारण गङ्गा को त्रिपथगा कहा जाता है। यहाँ हिमालय पर ही उसके त्रिधारा रूप में बहने की उत्प्रेक्षा की गई है, जो ललाट का उपमान है। (2) प्रस्तुत गद्यांश में उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महामुनि जाबालि के विराट् स्वरूप का चित्रण किया गया है।

अनवरत – मन्त्राक्षराऽभ्यास – विवृताधरपुटतया निष्पतद्भिरतिशुचिभिः सत्यप्ररोहैरिव स्वच्छेन्द्रिय – वृत्तिभिरिव करुणारस–प्रवाहैरिव दशनमय्खैर्धवलित–पुरोभागम्, उद्वमदमलगङ्गा – प्रवाहमिव जह्नुम् अनवरतसोमोद्गार–सुगन्धिनिश्वासावकृष्टैर्मूर्त्तिमद्भिः शापाक्षरैरिव सदा मुखभाग–सन्निहितैः परिस्फुरद्भिरलिभिरविरहितम्, अतिकृशतया निम्नतर–गण्ड–गर्त्तम्, उन्नततर–हनु –घोणम्, आकराल – तारकम्, अवशीर्य्यमाण – विरल – नयन – पक्ष्ममालम्, उद्गत – दीर्घरोम – रुद्ध – श्रवण – विवरम् आनाभिलम्बित–कूर्च्चकलापमाननमादधानम्

अनुवाद – मन्त्र के अक्षरों के निरन्तर अभ्यास के कारण अधर पुट के खुले रहने से बाहर निकलने वाली दान्तों की किरणें – जो अत्यन्त उज्ज्वल होने से मानों सत्य की अंकुर हों, अथवा मुनि की स्वच्छ = निर्दोष इन्द्रियवृत्तियाँ हों, मानों करुण रस की धारायें हों – उनसे जिस मुनि का अग्रभाग धवल कर दिया गया हो, अतः ऐसा लग रहा था मानों स्वच्छ गङ्गाजल का उद्वमन करता हुआ राजा जह्नु था, (जाबालि ऋषि जब मन्त्रोच्चारण करते हुए जप करते थे तब ओंठ खुले रहने से उनके धवल दान्तों से बाहर निकलने वाली कान्ति ऐसी लगती थी मानो पहले गङ्गा को पी जाने वाले राजा जह्नु उसका वमन कर रहे हों।)

जो मुनि ऐसे मुख को धारण किए हुए थे निरन्तर यज्ञ में पिए गए सोमरस की सुगन्ध के उद्गार से सुगन्धित निश्वासों से आकृष्ट हुए (अत एव) सदैव मुख क पास रहने वाले और मंडराने वाले भौंरों से युक्त था जो (भौंरे) मानों शरीरधारी शाप के अक्षर हों, (भौंरें काले होने से शापाक्षर जैसे प्रतीत हो रहे थे।) जो मुख अत्यन्त दुर्बल होने से अत्यधिक गहरे गाल में गड्ढों वाला था, बहुत ऊपर उठी हुई ठोड़ी और नाक वाला था, कुछ तिरछी या भयानक पुतलियों वाला था, गिरते हुए अत एव विरल पलकों के बालों वाला था, ऊपर निकले हुए लम्बे रोमों से रुंधे या बन्द हुए कण–छिद्रों वाला था और नाभि तक लटकी हुई दाढ़ी को धारण किए हुए था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आदधानम् – आ + धा + शानच्।

विशेष – (1) सत्यप्ररोह – सत्य को सफेद मानकर दन्त किरणों के लिए सत्य के अङ्कुरों की उत्प्रेक्षा की गई है। (2) उद्वमद्....जह्नुम – पौराणिक कथा के अनुसार शिव की जटाओं से निकलकर जब गङ्गा जह्नु ऋषि की कुटिया को बहाने लगी तो उन्होंने उसे पी लिया

तथा भगीरथ के अनुनय विनय पर उसे मुक्त किया। यहाँ पर इसी कथा को संकेतित करते हुए जाबालि की उपमा जह्नु से दी गई है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में वैशम्पायन द्वारा महामुनि जाबालि को देखे जाने का वर्णन है।

अतिचपलानामिन्द्रियाश्वानाम् अन्तःसंयमन–रज्जुभिरिवाततामिः कण्ठनाडीभिर्निरन्तरावनद्ध–कन्धरम्, समुन्नत–विरलास्थि–पञ्जरम्, अंसावलम्बि–यज्ञोपवीतम्, वायु–वशजनित–तनु–तरङ्ग– भङ्गम्, उत्प्लवमान–मृणालमिव मन्दाकिनीप्रवाहम् अकलुषमङ्गमुद्वहन्तम्, अमल–स्फटिक– शकल–घटितमक्षवलयमत्युज्ज्वलस्थूल–मुक्ताफल–ग्रथितं सरस्वतीहारमिव चलदङ्गुलि–विवर– गतमावर्त्तयन्तम्, अनवरतभ्रमित–तारकाचक्रमपरमिव ध्रुवम्, उन्नमता शिराजालकेन जरत्कल्पतरुमिव परिणत–लतासञ्चयेन निरन्तर–निचितम्, अमलेन चन्द्रांशुभिरिवामृतफेनैरिव गुणसन्तान–तन्तुभिरिव निर्म्मितेन मानस–सरो–जल–क्षालनशुचिना दुकुलवल्कलेनाऽद्वितीयेनेव जराजालकेन संच्छादितम्,आसन्नवर्त्तिना मन्दाकिनी–सलिल–पूर्णेन त्रिदण्डोपविष्टेन स्फाटिक–कमण्डलुना विकचपुण्डरीकराशिमिव राजहंसेनोपशोभमानम्,स्थैर्येणाचलानां, गाम्भीर्येण सागराणां, तेजसा सवितुः, प्रशमेन तुषाररश्मेः, निर्म्मलतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्व्वाणम्

अनुवाद – वे ऐसे निर्मल शरीर धारण कर रहे थे जिसके गले को पूरी तरह से घेर कर फैली हुई कण्ठ–नाड़ियाँ, ऐसी प्रतीत होती थीं मानों चञ्चल इन्द्रिय रूपी घोड़ों के बीच से बाँधने की रस्सियाँ हों जिसकी हकृियों का ढाँचा उभरा हुआ अलग दिखाई देता था, जिसके बायें कन्धे पर स्वच्छ यज्ञोपवीत लटक रहा था। अस्थिपञ्जर व यज्ञोपवीत वाले शरीर को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों यह गङ्गा का प्रवाह है, जिसमें वायु के कारण छोटे तरङ्ग–खण्ड उत्पन्न हो गये हैं और उनके ऊपर कमलनाल तैर रहा है। वे निर्मल स्फटिक–शिला से बनायी गयी अक्षमाला को, जो मानो अत्यन्त उज्ज्वल तथा मोटे–मोटे मोतियों से गूंथा गया सरस्वती का हार हो, चलती हुइ अंगुलियों के बीच में रहकर घुमा रहे थे, प्रतीत होता था मानो यह निरन्तर नक्षत्रमण्डल को घुमाता हुआ दूसरा ध्रुव है।

उभरे हुये शिरासमूह से पूर्णतया व्याप्त (शरीर वाले) जाबालि पकी हुई बेलों के समूह से पूर्णतया वेष्टित पुराने कल्पवृक्ष जैसे दिखाई देते थे, मानसरोवर के जल में धोने से पवित्र, निर्मल रेशमी वस्त्र जैसे वल्कल से वे शरीर को ढके हुए थे, जो मानों चन्द्रमा की रश्मियों से अथवा अमृत से अथवा दयादाक्षिण्यादि गुण समूह के धागों से बनाया गया था जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों बुढ़ापे ने पहले शिराजाल के ऊपर दूसरी जाली से शरीर को ढक लिया हो। पास में स्थिर गंगाजल से भरे हुए तिपाई पर रखे हुए बिल्लोरी कमण्डलु से इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे विकसित कमलसमूह राजहंस से। वे मानों स्थिरता से पर्वतों को गम्भोरता में से सालरों को, तेज में से सूर्य को शान्ति में से शीतांशु (चन्द्रमा) को तथा निर्मलता में से गगनतल को हिस्सा बाँट रहे थे।

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में जाबालि ऋषि का वर्णन किया गया है।

वैनतेयमिव स्वप्रभावोपात्त–द्विजाधिपत्यम्, कमलासनमिवाश्रमगुरुम्, जरच्चन्दनतरुमिव भुजङ्ग – निर्म्मोक – धवलजटाकुलम्, प्रशस्त – वारणपतिमिव प्रलम्ब – कणबालम्, बृहस्पतिमिवाजजन्मवर्द्धित – कचम्, दिवसमिवोद्यदर्क–बिम्ब–भास्वर–मुखम्, शरत्कालमिव क्षीणवर्षम्, शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्, अम्बिका – करतलमिव रुद्राक्ष – वलय – ग्रहण – निपुणम्, शिशिर – समय – सूर्य्यमिव कृतोत्तरासङ्गम, वडवानलमिव, संतत–पयोभक्ष्यम्, शून्यनगरमिव दीनाऽनाथविपन्न–शरणम्, पशुपतिमिव भस्म–पाण्डु–रोमाश्लिष्ट–शरीरम्, भगवन्तं जाबालिमपश्यम्।

अनुवाद – जिन्होंने विनतापुत्र गरुड़ के समान अपने प्रभाव से द्विजों पर आधिपत्य प्राप्त कर लिया था। जो चार आश्रमों के गुरु ब्रह्मा के समान आश्रम के गुरु थे। जिस प्रकार पुराना चन्दनवृक्ष साँपों की केंचुल रूपी जटाओं से व्याप्त रहता है उसी प्रकार जो मुनि साँपों की केंचुल के समान उज्ज्वल जटाओं से युक्त था। जिस प्रकार प्रशस्त गजपति खूब लटकते हुए कानों और पूंछ वाला होता है उसी प्रकार जो कानों पर निकले हुए लम्बे–लम्बे बालों से युक्त थे। जिस प्रकार बृहस्पति ने अपने 'कच' नामक पुत्र को जन्मकाल से लेकर बढ़ाया, पाला–पोसा था उसी प्रकार जिसने जन्म से अपने कच = केशों को बढ़ा रखा था। जिस प्रकार दिवस उदित होते हुए सूर्य–बिम्ब से चमकीले मुख वाला होता उसी प्रकार जिनका मुख उदित होते हुए सूर्य की कान्ति के समान चमकने वाला था। जिस प्रकार शरत्काल समाप्त वर्षा वाला होता है उसी प्रकार जिसने अनेक वर्ष व्यतीत कर दिये थे। जिस प्रकार शन्तनु को सत्यव्रतभोष्म बहुत प्रिय थे उसी प्रकार जिसे सत्यव्रत = सत्यभाषण व्रत प्रिय था। पार्वती की हथेली जिस प्रकार रुद्र = शंकर की अक्षवलय = गोल आँखों को पकड़ने में निपुण है उसी प्रकार जो रुद्राक्ष की माला को पकड़ने में अति निपुण थे। शिशिर ऋतु का सूर्य जिस प्रकार उत्तर दिशा का सम्बन्ध करता है, उत्तरायण होता है उसी प्रकार जो उत्तरासंग = उत्तरीयवस्त्र का परिधान किये हुए थे। वडवानल जिस प्रकार सदैव समुद्र आदि के पयः = जल को भक्षण करता रहता है, उसी प्रकार जो सदैव पय = दूध का भक्षण किया करते थे। सूना नगर जिस प्रकार दीनों, अनाथों और विपन्न लोगों के शरणों से युक्त होता है उसी प्रकार दीनों, अनाथों और विपन्नों के शरण थे, भगवान् शंकर जिस प्रकार भस्म से पाण्डुवर्ण और उमा से आश्लिष्ट शरीर वाले हैं, अथवा भस्म के समान पाण्डु वर्ण वाली उमा से आलिङ्गित शरीर वाले हैं। उसी प्रकार वह भस्म से पाण्डुर वर्ण वाले रोमों से युक्त शरीर वाले थे, इस प्रकार के भगवान् परम तपस्वी जाबालि का दर्शन किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणो – उद्वहन्तम् – उत् + वह् + शतृ + अम्; अवनद्धः – अव + नह् + क्त; अचिन्तयम् – चिन्त + लङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन; प्रतिहन्ति – प्रति + हन् + झि।

विशेष – (1) संविभागमिव – वितरण–सा, जाबालि मुनि में स्थिरता आदि गुण अधिक मात्रा में विद्यमान थे अतः उन्होंने पर्वत आदि को उनम से कुछ दान कर दिया था, उसी दान किये गये अंश से ही पर्वत आदि में अचलता आदि गुण विद्यमान है। (2) शान्तनु..... प्रियसत्यव्रतम् – महाभारत के अनुसार शान्तनु अपने पुत्र सत्यव्रत से बहुत प्रेम करते थे, किन्तु सत्यवती से विवाह की इच्छा होने पर निषाद द्वारा अपनी पुत्री के पुत्र को ही राजगद्दी पर बैठाने का प्रस्ताव अस्वीकार कर अपने पुत्र प्रेम को प्रदर्शित किया। जाबालि भो सत्य व्रत से प्रेम करते हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में वैशम्पायन द्वारा महामुनि जाबालि के दर्शनों का वर्णन है।

अवलोक्य चाहमचिन्तयम् 'अहो! प्रभावस्तपसाम्। इयमस्य शान्तापि मूर्तिरुत्तप्तकनकावदाता परिस्फुरन्ती सौदामनीव चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि। सततमुदासीनापि महाप्रभावतया भयमिवोपजनयति प्रथमोपगतस्य। शुष्क–नल–काश–कुसुम–निपतितानल–चटुल–वृत्ति नित्यमसहिष्णु तपस्विनां तनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या दुःसहं भवति, किमुत सकल–भुवन–वन्दित–चरणानामनवरत–तप––सलिल–क्षपित–मलानां कर–तलामलकवदखिलं जगदालोकयतां दिव्येन चक्षुषा भगवतामेवविधानामघक्षयकारिणाम्? पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां किं पुनर्दर्शनानि।

अनुवाद – और उन महर्षि को देखकर मैं (शुक) सोचने लगा – अहो! तपों का प्रभाव कितना अद्भत है। क्योंकि इन महर्षि की शान्त भो यह मूर्ति तपाये गये स्वर्ण के समान स्वच्छ चमचमाती हुई है इसीलिये चमकती चकाचौंध करती हुई बिजली के समान नेत्रों के तेज अवलोकन शक्ति को नष्ट कर देती है, अर्थात् आँखें इन्हें ठीक से नहीं देख पाती हैं।

निरन्तर उदासीन व्यापार–शून्य होती हुई भो अतिशय प्रभावशाली होने के कारण, पहली बार दर्शनार्थ आये हुए व्यक्ति को भय–सा उत्पन्न करा देती है, थोड़ी–सी तपस्या करने वाले तपस्वियों का भो तेज भो स्वभावतः सदा असहनशील होता है। तब फिर सम्पूर्ण भवनतल द्वारा वन्दित चरणों वाले, निरन्तर तपस्या रूपी जल से सभो मलों = दोषों को नष्ट कर देने वाले, दिव्य नेत्रों से सम्पूर्ण जगत् को करतल में रखे हुए आंवले के फल के समान देखने वाले और पापों का विनाश करने वाले इस प्रकार के जाबालि जैसे भगवान् = ऐश्वर्यवान् तपस्वियों का तेज के विषय में तो कहना ही क्या है? अर्थात् इनके जैसे तपस्वियों के तेज का प्रभाव अवर्णनीय है। महामुनियों के नाम लेना भो पुण्यजनक होते हैं, फिर उनके दर्शनों का कहना ही क्या है?

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उपजनयति – उप् + जन् + णिच् + तिप्;

विशेष – (1) शान्ताऽपि – ब्रह्माण्ड के अन्य तेजस्वी पदार्थ उग्र होकर चकाचौंध उत्पन्न करते हैं, जबकि महात्मा जाबालि की मूर्ति शान्त तेज वाली होकर भो दृष्टि का प्रतिकार करती है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट के द्वारा वैशम्पायन के मुख से आश्रम संस्कृति की उत्कृष्टता का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः यह एक महाकवि का भारतीय आश्रम संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा का परिचायक है।

धन्यमिदमाश्रमपदमयमधिपतिर्यत्र अथवा भुवनतलमेव धन्यमखिलमननेनाधिष्ठितमवनितल –कमलयोनिना। पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनमपरमिव नलिनासनमपगतान्यव्यापारा मुखावलोकननिश्चलदृष्टयः पुष्याः कथाः शृण्वन्तः समुपासते। सरस्वत्यपि धन्या, याऽस्य तु सततमतिप्रसन्ने करुणाजल–निस्यन्दिन्यगाधगाम्भीर्य्य रुचिर– द्विजपरिवारा मुखकमल – सम्पर्कसुखमनुभवन्ती निवसति हंसीव मानसे। चतुर्मुखकमलवासिभिश्चतुर्वेदैः सुचिरादिवेदमपरमुचितमासादितं स्थानम्। एनमासाद्य शरत्कालमिव कलि–जलद–समय–कलुषिताः प्रसादमुपगताः पुनरपि जगति सरित इव सर्वविद्याः।

अनुवाद – यह आश्रम धन्य है जहाँ पर ये जाबालि ऋषि अधिपति हैं अथवा पृथिवीतल के ब्रह्मा इन महर्षि के द्वारा अधिष्ठित सम्पूर्ण पृथिवीतल ही धन्य = पुण्यशाली है। ये सभो मुनि–गण निश्चित् रूप से पुण्यभागी हैं जो कि दिन–रात दूसरे सभो कार्यों को छोड़कर जाबालि के मुख का दर्शन करने में निश्चल दृष्टि वाले होते हुए, पवित्र कथायें सदुपदेश सुनते हुए, दूसरे ब्रह्मा के समान इन जाबालि की सेवा करते रहते हैं। सरस्वती भो धन्य है, जो सदैव इनके अत्यधिक प्रसन्न = प्रसादगुणयुक्त, करुणा रूपी जल को प्रवाहित करने वाले, अगाध गम्भोरता वाले मानस = चित्त, मानसरोवर में हँसी के समान सुंदर द्विजों = पक्षियों, दांतों, छात्रों से घिरी हुई मुखरूपी कमल के सम्पर्क के सुख का अनुभव करती हुई निवास करती है। ब्रह्मा के चार मुखरूपी कमलों में रहने वाले चारों वेदों ने बहुत समय के बाद यह दूसरा निवास–स्थान प्राप्त किया है। शरद् ऋतु के समान इन जाबालि को प्राप्त कर, कलियुग रूपी वर्षा से कलुषित सम्पूर्ण विद्याओं ने नदियों के समान संसार में पुनः स्वच्छता प्राप्त की है। अर्थात् जिस प्रकार वर्षाकाल से नदियाँ गन्दे जल से कलुषित हो जाती हैं और शरद् ऋतु प्राप्त करके पुनः स्वच्छ निर्मल हो जाती हैं उसी प्रकार कलियुग रूपी वर्षा ऋतु से नदी रूपी समस्त विद्यायें कलुषित हो चुकी थीं, उन्होंने पुनः जाबालि रूपी शरद् ऋतु को प्राप्त करके निर्मलता = विशदता प्राप्त की है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पुण्यभाजः – पुण्यं भजन्ते इति पुण्यभाजः; शृण्वन्तः – श्रू + शतृ + झि।

विशेष – (1) सर्वविद्या – चौदह विद्यायें – **अङ्गानि वेदाश्चत्वारः मीमांसान्यायविस्तरः। धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश।**

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महर्षि जाबालि की महत्ता का वर्णन करते हुए कवि उन्हें सत्ययुग का अवतार बताते हैं।

नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूत–कलिकाल–विलसितेन धर्म्मेण न स्मर्य्यते कृत–युगस्य। धरणितलमनेनाधिष्ठितमालोक्य न वहति नूनमिदानीं सप्तर्षिमण्डलनिवासाभिमानमम्बरतलम्। अहो! महासत्त्वेयं जरा, यास्य प्रलय – रवि – रश्मि – निकर – दुर्निरीक्ष्ये रजनिकर – किरण – पाण्डु – शिरोरुहे जटाभारे फनपुञ्ज –

धवला गङ्गेव पशुपतेः क्षीराहुतिरिव शिखाकलापे विभावसोर्निपतन्ती न भीता।

अनुवाद – इस आश्रम में निश्चित रूप से सदा निवास करने वाले, कलियुग की सभो चेष्टाओं को समाप्त कर देने वाले भगवान धर्म द्वारा सत्ययुग का स्मरण नहीं किया जाता होगा। यह निश्चित है कि इन जाबालि मुनि द्वारा अधिष्ठित इस पृथ्वीतल को देखकर, आकाशतल इस समय सप्तर्षि–मण्डल के निवास–स्थान होने का अभिमान नहीं करता होगा।

अरे, यह वृद्धावस्था अतिशय बलशालिनी है, जो इन जाबालि के प्रलयकालीन सूर्य किरणों के समूह के समान कष्ट से देखने योग्य और चन्द्रमा की किरणों क समान सफेद केशों वाले जटा–समूह में, शिवजी के जटासमूह में फेन–पुञ्ज से धवल गंगा के समान और अग्नि के ज्वाला–समूह में दुग्ध की आहुति के समान गिरती हुई भयभोत नहीं हुई। जैसे गंगा शिव जी की जटाओं में और क्षीर की आहुति अग्नि की ज्वालाओं में गिरती हुई नहीं डरती है उसी प्रकार जाबालि के जटासमूह में आती हुई वृद्धावस्था भो नहीं डरी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आलोक्य – आ + लोक् + ल्यप्; अधिष्ठित – अधि + ष्ठा + क्त; रजनिकर – रजनीं करोति इति रजनिकरः – यहाँ पर 'ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्' सूत्र से ईकार को ह्रस्व आदेश होता है।

विशेष – (1) कृतयुग – सत्ययुग, युगगणना के अनुसार सबसे पहला युग जिसमें धर्म सर्वथा वर्तमान रहता है इस कारण जो कुछ भो किया जाता है वह सफल ही होता है। अतः इसे कृतयुग कहते हैं। (2) प्रस्तुत गद्य खण्ड में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्य खण्ड में महर्षि जाबालि के तपस्या के प्रभाव का वर्णन किया गया है।

बहलाज्य–धूम–पटल–मलिनीकृताश्रमस्य भगवतः प्रभावाद्भीतमिव रवि–किरणजालमपि दूरतः परिहरति तपोवनम्। एते च पवन–लोल–पुञ्जीकृत–शिखा–कलापा रचिताञ्जलय इवात्र मन्त्रपूतानि हवींषि गृह्णन्ति एतत्प्रीत्याशुशुक्षणयः। तरलित–दुकूलवल्कलोऽयञ्चाश्रमलता–कुसुम– सुरभि–परिमलो मन्दमन्दचारी सशङ्क इवास्य समीपमुपसर्पति गन्धवाहः।

प्रायो महाभूतानामपि दुरभिभवानि भवन्ति तेजांसि। सर्वतेजस्विनामयञ्चाग्रणीः। द्विसूर्य्यमिवाभाति जगदनेनाधिष्ठितं महात्मना। निष्कम्पेव क्षितिरेतदवष्टम्भात्।

अनुवाद – अत्यधिक घी की डाली गई आहुतियों के धुयें के समूह से मलिन आश्रम वाले भगवान् जाबालि के प्रभाव से मानों भयभोत होता हुआ सूर्य का किरण–समूह भो दूर से ही आश्रम को छोड़ देता है। सूर्य भो मलिनता दूर करने का साहस नहीं कर पाता है और ये अग्नियाँ जिनकी लपटों का समूह हवा से चञ्चल और एकत्रित कर दिया गया है, वे मानों इन मुनि के स्नेह के कारण हाथ जोड़कर मन्त्र द्वारा पवित्र की गई हवियों को ग्रहण करती हैं, इन महर्षि के रेशमी वस्त्र के समान वल्कल को चञ्चल कर देने वाला और आश्रम की लताओं के फूलों की सुगन्ध से सुगन्धित, धीरे–धीरे चलने वाला यह पवन मानों भयभोत होता हुआ इनके समीप आता है।

प्रायः महाभ्तों द्वारा भो तपस्वियों के तेज कष्ट से ही तिरस्कृत किये जा सकते हैं। और यह महर्षि तो सभो तेजस्वियों में प्रधान है। इन महात्मा के द्वारा अधिष्ठित यह संसार दो सूर्यों वाला–सा प्रतीत होता है। इनके अवलम्बन से पृथ्वी निश्चल–सी हो गई है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आशुशुक्षुणयः – अग्नियाँ, आ समन्तात् शोषितुम् इच्छति – आ + शुष् + सन् + अनि, अभ्यास को द्वित्व।

विशेष – (1) महाभ्तानामपि – पृथ्वी आदि पाँचों महाभ्त जो केवल जड़ हैं और स्वतः तेजस्वी न होकर परतः प्रकाश्य हैं। उनका तेज भो असहनीय होता है तो स्वयं तेजस्वी महात्मा जाबालि के तेज का तो कहना ही क्या। (2) प्रस्तुत गद्य खण्ड में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्य खण्ड में महर्षि जाबालि के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन किया गया है।

एष प्रवाहः करुणारसस्य, सन्तरणसेतुः संसारसिन्धोः आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृष्णालता–गहनस्य, सागरः सन्तोषामृत–रसस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य, अस्तगिरिरसद्ग्रहकस्य, मूलमपशमतरोः, नाभिः प्रज्ञाचक्रस्य, स्थितिवंशो धर्म्मध्वजस्य, तीर्थं सर्वविद्यावताराणाम् वडवानलो लोभार्णवस्य, निकषोपलः शास्त्ररत्नानाम्, दावानलो रागपल्लवस्य, मन्त्रः क्रोधभुजङ्गस्य, दिवसकरो मोहान्धकारस्य, अर्गलाबन्धो नरक–द्वाराणाम्, कुलभवन–माचाराणाम्, आयतनं मङ्गलानाम्, अभूमिर्मदविकाराणाम्, दर्शकः सत्पथानाम्, उत्पत्तिः साधुतायाः, नेमिरुत्साहचक्रस्य, आश्रयः सत्त्वस्य, प्रतिपक्षः कलिकालस्य, कोशस्तपसः, सखा सत्यस्य, क्षेत्रमार्जवस्य प्रभवः पुण्य–सञ्चयस्य, अदत्तावकाशो मत्सरस्य, अरातिर्विपत्तेः, अस्थानं परिभूतेः अननुकूलोऽभिमानस्य, असम्मतो दैन्यस्य, अनायत्तो रोषस्य, अनभिमुखः सुखानाम्। अस्य भगवतः प्रभावादेवोपशान्तवैरमपगतमत्सरं तपोवनम्।

अनुवाद – यह मुनि तो करुणा = दयारूपी जल के प्रवाह है, संसाररूपी समुद्र के पार जाने के लिए सेतु हैं, क्षमारूपी जल के आधार हैं, तृष्णारूपी लताओं के गहन वन के काटने के लिए कुल्हाड़ी हैं, संतोषरूपी अमृतरस का सागर हैं, मोक्षादि सिद्धि के मार्ग के उपदेशक हैं, शनि आदि अशुभ ग्रहों के अस्ताचल हैं, शान्तिरूपी वृक्ष की जड़ हैं, प्रज्ञा = प्रतिभा = बुद्धि रूपी चक्र के नाभि मध्य भाग हैं, धर्मरूपी पताका के आधारभ्त बांस हैं, समस्त विद्याओं के प्रवेश के तीर्थ हैं, लोभरूपी समुद्र के वडवानल हैं, शास्त्ररूपी रत्नों के कसौटी के पत्थर हैं, विषयाभिलाषरूपी पल्लवों के दावानल हैं, क्रोधरूपी सर्प के वशीकरण मन्त्र हैं मोहरूपी अंधकार के सूर्य हैं, नरक के द्वारों के बन्द करने वाले अर्गलाबन्ध हैं, सदाचारों के कुलभवन मूल निवास हैं, मङ्गलों के गृह = निवास हैं, मद = अहंकार के विकारों की अभ्मि हैं, इमनें मोहविकार कभो नहीं उत्पन्न होते हैं, सन्मार्गों के प्रदर्शक हैं, सज्जनता की उत्पत्ति = उद्गम स्थान हैं, उत्साहरूपी चक्र की नेमि = आश्रयभ्त स्थान है, सत्त्वगुण के आधार हैं, कलियुग के शत्रु हैं, तपस्या के कोष हैं, सत्य के मित्र हैं, सरलता के उत्पत्तिस्थान हैं, पुण्यसमूह के प्रभव = प्रथम प्रकाश स्थान हैं, ईर्ष्या को कभो भो स्थान न देने वाले हैं, विपत्ति के शत्रु हैं, अभिमान के प्रतिकूल रहने वाले हैं, दीनता के असम्मत हैं, दीनता इनके पास कभो नहीं आती है। क्रोध के अधीन नहीं है, सांसारिक सुखों से पराङ्मुख हैं।

इन भगवान् जाबालि के प्रभाव के कारण ही यह तपोवन शान्त वैरभाव वाला और दूर हुई ईर्ष्यावाला है। इनके प्रभाव से ही वैर और ईर्ष्या यहाँ नहीं हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महर्षि जाबालि के तपश्चर्या प्रभाव का वर्णन है।

अहो! प्रभावो महात्मनाम्। अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधमुपशान्तात्मानस्तिर्य्यञ्चोऽपि तपोवन–वसति–सुखमनुभवन्ति। तथा हिएष विकचोत्पलवन–रचनानुकारिणमुत्पतच्चारुचन्द्रकशतं हरिण–लोचन–द्युति–शबलमभिनव–शाद्वलमिव विशति शिखिनः कलापमातपाहतो निःशङ्कमहिः। अयमुत्सृज्य मातरमजातकेसरैः केसरिशिशुभिः सहोपजातपरिचयः क्षरत्क्षीरधारं पिबति कुरङ्ग–शावकः सिंहीस्तनम्। एष मृणाल–कलापाशङ्किभिः शशिकरधवलं सटाभारम् आमीलितलोचनो बहु मन्यते द्विरदकलभैराकृष्यमाणं मृगपतिः। इदमिह कपिकुलमपगत–चापलमुपनयति मुनि–कुमारकेभ्यः स्नातेभ्यः फलानि। एते च न निवारयन्ति मदान्धा अपि गण्डस्थलीभाञ्जि मदजल–पाननिश्चलानि मधुकरकुलानि सञ्जातदयाः कणतालैः करिणः।

अनुवाद – आश्चर्य है, महात्माओं का प्रभाव कैसा अद्‌भत होता है। क्योंकि इस आश्रम में तिर्यग्गण पशु–पक्षी आदि भो अपना सनातन स्वाभाविक विरोध छोड़ कर शान्तात्मा होते हुए तपोवन–निवास के सुख का अनुभव करते हैं। जैसा कि – सूर्य की प्रचण्ड धूप से व्याकुल होता हुआ यह सांप खिले हुए कमलवन की रचना का अनुकरण करने वाले, उसके समान दिखाई देने वाले, निकले हुए सैंकड़ों चन्द्रकों (पंखों) वाले, हिरनों के नेत्रों की कान्ति के समान चितकबरे और नई उगी हुई घास वाले भभाग के समान (दिखाई देने वाले) मयूरपंखों में निभय होकर प्रविष्ट हो रहा है। यह हरिण का बच्चा, जिसका अनुत्पन्न केसरों वाले सिंह के बच्चे से परिचय हो गया है, यह मृगशिशु अपनी माता को छोड़कर, दूध की धार बहाने वाली सिंहनी के स्तनों को पी रहा है। यह सिंह, चन्द्रमा की किरणों के समान सफेद अपने केसर–समूह को मृणाल का समूह समझ कर हाथी के बच्चों द्वारा खींचे जाते हुए देखकर आँखों को कुछ नीचे किए आनन्द ले रहा है। यहाँ यह बन्दरों का समूह अपनी चञ्चलता को छोड़ता हुआ, स्नान किये हुए मुनिकुमारों को फल लाकर दे रहा है और ये हाथी मदमत्त होते हुए भो अपनी कनपटियों पर बैठे हुए और मदजल पीने के कारण निश्चल भोरों के समूह को, दयायुक्त होते हुए, अपने कानों की फड़फड़ाहट द्वारा नहीं हटा रहे हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अपहाय – अप + हा + क्त्वा (ल्यप्); उत्सृज्य उत् + सृज् + क्त्वा (ल्यप्);

विशेष – (1) शाश्वतिक – सदा रहने वाला, जन्मजात वैर – अहि–मयूर, गजसिंह आदि का विरोध शाश्वतिक है। (2) आमीलितलोचना – कुछ कुछ नेत्र मूँदे हुए। सिंह गज शावकों द्वारा अपने केश खींचे जाने पर भो शाश्वत विरोध त्याग के कारण आनन्द का अनुभव करता है। (3) यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में ऋषिकुमार हारीत द्वारा शुक शावक को उठाकर आश्रम पद में लाये जाने का वर्णन है।

किं बहुना, तापसाग्निहोत्रधूमलेखाभिरुत्सर्पन्तीभिरनिशमुपपादितकृष्णाजिनोत्तरासङ्गशोभा फलमूलभृतो वल्कलिनो निश्चेतनास्तरवोऽपि सनियमा इव लक्ष्यन्तेऽस्य भगवतः। किं पुनः सचेतनाः प्राणिनः।

एवं चिन्तयन्तमेव मां तस्यामेवाशोकतरोरधश्छायायामेकदेशे स्थापयित्वा हारीतः पादावुपगृह्य कृताभिवादनः पितुरनतिसमीपवर्त्तिनि कुशासने समुपाविशत्। आलोक्य तु मां सर्वं एव मुनयः कुतोऽयमासादितः शुकशिशुः' इति तमासीनमपृच्छन्। असौ तु तानब्रवीत्'अयं मया स्नातुमितो गतेन कमलिनीसरस्तीर–तरु–नीड–पतितः शुक–शिशुरातपजनित–क्लान्तिरुत्तप्तपांसुपटल–मध्यगतो दूर–निपतन–विह्वल–तनुरल्पावशेषायुरासादितः, तपस्विदुरारोहतया च तस्य वनस्पतेर्न शक्यते स्वनीडमारोपयितुमिति जातदयेनानीतः। तद्यावदयमप्ररूढ–पक्षति–रक्षमोऽन्तरिक्षमुत्पतितुम्, तावदत्रैव कस्मिंश्चिदाश्रमतरुकोटरे मुनिकुमारकैरस्माभिश्चोपनीतेन नीवार–कण–निकरेण विविधफलरसेन च संवर्द्धयमानो धारयतु जीवितम्। अनाथ–परिपालनं हि धर्म्मोऽस्मद्विधानाम्। उद्भिन्नपक्षतिस्तु गगनतल–सञ्चरणसमर्थो यास्यति यत्रास्मै रोचिष्यते। इहैव वोपजात–परिचयः स्थास्यति।

अनुवाद – अधिक कहने से क्या? इन जाबालि मुनि के अल्पचेतनावाले वृक्ष भो फलमूलभत् (1. फलों और मूलों को धारण करने वाले, 2. फलों और मूलों से जीविकानिर्वाह करने वाले) वल्कलयुक्त (1. छाल से युक्त, 2. वल्कल पहने हुए) तथा ऊपर की ओर उठती हुई, तपस्वियों के अग्निहोत्र के धुयें की पंक्तियों से दिन–रात कृष्णमृगचर्म से बने हुए उत्तरीय वस्त्र को पहनने की शोभा को सम्पादित करने वाले होते हुए नियमव्रत धारण करने वाले से प्रतीत होते हैं। तब फिर सचेतन मानवादि प्राणियों की तो बात ही क्या है।

इस प्रकार से सोचते हुए ही मुझे अशोकवृक्ष की उसी छाया में एक स्थान पर रखकर हारीत अपने पिता के चरणों को छूकर अभिवादन करके अपने पिता से कुछ दूर पर कुशों के आसन पर बैठ गया। किन्तु मुझे देखकर सभो मुनियों ने बैठे हुए उस हारीत से पूछा – ''यह तोते का बच्चा कहाँ से मिला।'' उस हारीत ने उन मुनियों से कहा – ''यहाँ आश्रम से सरोवर में स्नान करने के लिए जाते हुए मैंने कमलिनी–सरोवर के किनारे वाले वृक्ष के घोसले से गिरे हुए, धूप के द्वारा उत्पन्न व्याकुलता वाले, तपी हुई गरम धूलि–समूह के बीच में पड़े हुए, दूर से गिरने के कारण विह्वल शरीर वाले और थोड़े ही बचे हुए जीवन वाले अर्थात् मरणासन्न इस तोते को प्राप्त किया है, उस शाल्मली वृक्ष पर बहुत ऊँचा होने से तपस्वियों द्वारा चढ़ना बहुत कठिन था इसलिए इस को अपने घोसले में नहीं रखा जा सकता था, अतः दयायुक्त होते हुए मैं यहाँ ले आया। तो जब तक पंख अच्छी तरह से न निकलने के कारण यह आकाश में उड़ने में समर्थ नहीं हो पाता तब तक यहीं पर आश्रम के किसी वृक्ष के कोटर में मुनिकुमारों द्वारा और हमारे द्वारा लाये गए, नीवार के कणसमूहों से और अनेक प्रकार के फलों के रसों से बढ़ाया जाता हुआ जीवन धारण करे, जीवित रहे, क्योंकि अनाथों का परिपाल करना हम जैसे तपस्वियों का धर्म है और पंखों के निकल आने पर तो आकाश–तल में उड़ने में समर्थ होता हुआ यह जहाँ इसे अच्छा लगेगा, चला जायेगा अथवा परिचय उत्पन्न हो जाने से निभय होता हुआ यही आश्रय में रह जायेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उपगृह्य – उप् + ग्रह् + क्त्वा (ल्यप्); स्नातुम् – स्ना + तुमुन्; आरोपयितुम् – आ + रोप् + णिच् + तुमुन्; आनीतः – आ + नी + क्त; दुरारोह – दुर् + आ + रुह् + खल्।

विशेष – अभिवादन – अपना नाम व गोत्र उच्चारण करते हुए चरण स्पर्श करना अभिवादन कहलाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महर्षि जाबालि द्वारा दिव्यदृष्टि से वैशम्पायन के पूर्ववृत्तान्त को जानन का वर्णन प्राप्त होता है।

इत्येवमादिकमस्मत्संबद्धमालापमाकर्ण्य किञ्चिदुपजात–कुतूहलो भगवान् जाबालिरीषदावलित–

कन्धरः पुण्यजलैः प्रक्षालयन्निव मामतिप्रशान्तया दृष्ट्या दृष्ट्वा सुचिरमुपजातप्रत्यभिज्ञान इव पुनः पुनर्विलोक्य 'स्वस्यैवाविनयस्य फलमनेनानुभूयते' इत्यवोचत्। स हि भगवान् कालत्रयदर्शी तपःप्रभावाद्दिव्येन चक्षुषा सर्वमेव करतलगतमिव जगदवलोकयति, वेत्ति च जन्मान्तराण्यप्यतीतानि, कथयत्यागामिनमप्यर्थम्, ईक्षण–गोचर–गतानाञ्च प्राणिनामायुषः संख्यामावेदयति। ततः सदैव सा तापस–परिषच्छ्रुत्वा विदित–तत्प्रभावा 'कीदृशोऽनेनाविनयः कृतः, किमर्थ वा कृतः, क्व वा कृतः, जन्मान्तरे वा कोऽयमासीत् इति?' कौतूहलिन्यभवत्, उपनाथितवती च तं भगवन्तम्'आवेदय प्रसीद भगवन्! कीदृशस्याविनयस्य फलमनेनानुभूयते, कश्चायमासीज्जन्मान्तरे, विहगजातौ वा कथमस्य सम्भवः, किमभिधानो वाऽयम्?, अपनयतु नः कुतूहलम्। आश्चर्य्याणां हि सर्वेषां भगवान् प्रभवः।'

अनुवाद – इस प्रकार का मुझसे सम्बद्ध वार्तालाप सुन कर कुछ कौतूहल–युक्त भगवान् जाबालि ने अपनी गरदन को कुछ मोड़ा और मानों पुण्यजल से प्रक्षालित करते हुए अत्यन्त शान्त नेत्रों से बहुत देर तक मुझे देखकर मानों उन्हें प्रत्यभिज्ञान पूर्वानुभत यह वही है – इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न हो गया हो, बार–बार मुझे देखकर – ''यह अपने ही अविनीत आचरण का फल भोग रहा है – ''ऐसा कहा।

क्योंकि वे भगवान् जाबालि तीनों कालों – भत, भविष्यत् और वर्तमान को देखने वाले हैं, तपस्या के प्रभाव से दिव्य–दृष्टि द्वारा सम्पूर्ण जगत् को करतल में स्थित जैसा देखते हैं। बीते हुए भो दूसरे जन्मों को जानते हैं। भावी – आगामी पदार्थ को भो कहते हैं और दृ ष्टिगोचर हो जाने वाले प्राणियों की आयु की संख्या कितने वर्ष जीवित रहने वाला है, को

बता देते हैं। अतः उनको मुझ शुक के पूर्व जन्म और भावी तथा वर्तमान का ज्ञान करना आश्चर्य नहीं है।

इसके बाद जाबालि के पूर्वोक्त वचनों को सुन कर तपस्वियों की पूरी सभा जो महर्षि के प्रभाव को जानने वाली थी – ''इसने किस प्रकार का अशिष्ट आचरण किया था? किसलिये किया? कहाँ किया? और दूसरे जन्म में यह शुक कौन था?'' – इस प्रकार के कौतूहल से युक्त हो गई, और उन भगवान् जाबालि से प्रार्थना करने लगी – ''भगवन्! प्रसन्न हो जाइये और बताइये किस प्रकार के अशिष्ट आचरण का फल यह भोग रहा है? दूसरे जन्म में यह कौन था? पक्षी–जाति में इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? इसका क्या नाम है? हम लोगों का कुतूहल दूर करिये। क्योंकि भगवान् आप सभी आश्चर्यों के उद्‌गम स्थान हैं। अतः आपके लिये सभी कुछ जानना और कहना संभव है।''

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आकर्ण्य – आ + कर्ण् + क्त्वा (ल्यप्); दृष्ट्वादृश् + क्त्वा;

विशेष – (1) दिव्येन चक्षुषा – अलौकिक दृष्टि – महर्षि जाबालि ने अपनी दिव्यदृष्टि से उस तोते के भूत का दर्शन कर लिया था। तपः प्रभाव से प्राप्त सिद्धि के आधार पर दिव्यदृष्टि प्राप्त की जा सकती है, जैसा कि पातंजल योगदर्शन में भी कहा गया है – प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् – योगदर्शन।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में मुनिकुमारों के निवेदन पर जाबालि ऋषि तोते के पूर्व वृत्तान्त को बतलाना स्वीकार करते हैं।

इत्येवमुपयाच्यमानस्तपोधनपरिषदा स महामुनिः प्रत्यवदत् – 'अतिमहदिदमाश्चर्य्यमाख्यातव्यम्। अल्पशेषमहः। प्रत्यासीदति च नः स्नानसमयः। भवतामप्यतिक्रामति देवार्च्चनविधिवेला। तदुत्तिष्ठन्तु भवन्तः, सर्वं एव तावदाचरन्तु यथोचितं दिवस–व्यापारम्। अपराह्ण–समये भवतां पुनः कृत–मूलफलाशनानां विस्रब्धोपविष्टानामादितः प्रभृति सर्वमावेदयिष्यामोऽयं यच्च कृतमनेनापरस्मिन् जन्मनि, इह लोके च यथास्य सम्भूतिः। अयञ्च तावदपगतक्लमः क्रियतामहारेण। नियतमयमप्यात्मनो जन्मान्तरोदन्तं स्वप्नोपलब्धमिव मयि कथयति, सर्वमशेषतः स्मरिष्यति' इत्यभिदधदेवोत्थाय समं तैर्मुनिभिः स्नानादिकमुचित–दिवस–व्यापारम् अकरोत्।

अनुवाद – तपस्वियों की सभा समूह द्वारा इस प्रकार से प्रार्थित किये जाते हुए महामुनि जाबालि ने उत्तर दिया – ''यह आश्चर्यजनक वृत्तान्त बहुत विस्तार से कहना होगा। दिन थोड़ा ही बचा है और हमारे स्नान करने का, बीतने जा रहा है, साथ ही आप लोगों का भी देवतापूजन–विधान का समय बीत रहा है। इसलिये आप लोग इस समय तो उठिये। सभी लोग अपना–अपना करने योग्य दिनकृत्य पहले पूरा कर लीजिये। अपराह्ण काल तीसरे पहर में फिर से फल और मूलादि का भोजन किये हुए तथा निश्चिन्तता से बैठे हुए आप लोगों से आरम्भ से लेकर सब कुछ पूरा–पूरा निवेदन करूँगा, यह जो था, इसने पूर्व जन्म में जो कुछ किया था और इस लोक में जिस प्रकार इसका जन्म हुआ है। पहले इसको भोजन कराकर क्लान्ति रहित किया जाय। यह भी मेरे द्वारा कहते ही अपने पूर्वजन्म के वत्तान्त को स्वप्न में देखे हुए के समान निश्चित रूप से पूरा–पूरा स्मरण कर लेगा – 'ऐसा कहते हुए ही महर्षि ने उठकर उन मुनियों के साथ स्नानादि उचित दिन–कृत्य सम्पादित किया, स्नान पूजनादि दिन का कार्य पूरा किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अभिदधत् – अभि + धा + शतृ; अकरोत् – कृ + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन। आदितः प्रभति – यह मर्यादा वाचक शब्द है, अतः इसके योग में पंचमी विभक्ति होती है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में संध्या का मनोहारी चित्रण किया गया है।

अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तः तमम्बर–तलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुदवहत्। ऊध्वमुखैरर्कबिम्ब–विनिहित– दृष्टिभिरूष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमान–तेजःप्रसरो

विरलातपस्तनिमानमभजत्। उद्यत्सप्तर्षिसार्थ– स्पर्श –परिजिहीर्षयेव संहृत–पादः पारावत–पाद–पाटलरागो रविरम्बरतलादवालम्बत। आलोहितांशु – जालं जलशयनमध्यगतस्य मधु–रिपोर्विगलन्मधुधारमिव नाभिनलिनं प्रतिमागतमपरार्णवे सूर्य्यमण्डलमलक्ष्यत। विहायाऽम्बरतलम् उन्मुच्य च कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तरु–शिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत। आलग्नलोहितातपच्छेदा मुनिभिरालम्बित –लोहितवल्कला इव तरवः क्षणमदृश्यन्त।

अनुवाद – इसी बीच में दिन ढल गया। स्नान से उठे हुए, पूजा–विधि पूरी करते हुए मुनि जनों द्वारा जो (लाल चन्दन) भ्तल पर लगाया गया था उस लाल चन्दन के अंगराग को आकाश–मण्डल में गये सूर्य ने मानों साक्षात् धारण कर लिया। मुनियों का लाल चन्दन ही सूर्य का लाल–लाल अंग राग–सा दिखाई पड़ने लगा। ऊपर मुख किये हुए, सूर्य–मण्डल में दृष्टि स्थिर किये हुए, सूर्य की धूप की पीते हुए तपस्वियों द्वारा मानों जिसके तेज का प्रसार रोक दिया गया था ऐसा हल्की धूपवाला सूर्य क्षीणता को प्राप्त हुआ अर्थात् सूर्य की धूप और हल्की हो गई। उदित होते हुए मरीचि आदि सप्तर्षियों पर पाद के स्पर्श को मानों छोड़ने की इच्छा से पादों को संकुचित कर लेने वाला, कबूतर के पैरों के समान गुलाबी रंग वाला सूर्य आकाश–तल से लटकने लगा, अलग नीचे दिखाई देने लगा।

थोड़ी सी लाल–लाल किरणों के समूह से युक्त सूर्यमण्डल पश्चिमी समुद्र में प्रतिबिम्बित होता हुआ ऐसा लग रहा था मानों जलशय्या पर विद्यमान विष्णु का गिरती हुई मधुधारा वाला नाभि–कमल हो। दिन की समाप्ति पर अर्थात् सायंकाल सूर्य की किरणें आकाशमण्डल को छोड़ कर और कमलिनी–वनों को भो छोड़कर वृक्षों की चोटियों पर और पर्वतों के शिखरों पर उसी प्रकार स्थित हो गई जिस प्रकार सायंकाल आकाश–मण्डल और भ्मण्डल को छोड़कर पक्षी रहते हैं। जिनमें कहीं–कहीं कुछ लाल–लाल धूप पड़ रही थी वे वृक्ष उस समय ऐसे दिखाई दे रहे थे मानों मुनियों द्वारा उन पर लाल–लाल वल्कल लटका दिये गये हों।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विहाय – वि + हा + क्त्वा (ल्यप्); उन्मुच्य – उत् + मुच् + क्त्वा (ल्यप्); अनेन समयेन – यहाँ पर दिन समाप्त हो गया, इस वाक्य के आधार पर फल प्राप्ति गम्यमान है अतः 'अपवर्गे तृतीया' सूत्र से यहाँ तृतीया विभक्ति हुई है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में सांध्यकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

अस्तमुपगते च भगवति सहस्रदीधितावपरार्णवतलादुल्लसन्ती विद्रुम–लतेव पाटला सन्ध्या
समदृश्यत। यस्यामाबध्यमानध्यानम्, एकदेशदुह्यमान–होमधेनु–दुग्धधाराध्वनित–धन्यतरातिमनोहरम्, अग्नि–वेदि–विकीर्य्यमाण–हरित्कुशम् ऋषिकुमारकाभिरितस्ततो विक्षिप्यमाण–दिग्देवताबलि– सिक्थम् आश्रमपदमभवत्। क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहित–तारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्त्तमाना सन्ध्या तपोधनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरि शोकविधुरा कमल–मुकुल–कमण्डलु– धारिणी हंस–सितदुकूल–परिधाना मृणाल–धवल–यज्ञोपवीतिनी मधुकर–मण्डलाक्षवलयम् उद्वहन्ती कमलिनी दिनपति–समागम–व्रतमिवाचरत्। अपर–सागराम्भसि पतिते दिवसकरे वेगोत्थितमम्भः– शीकर – निकरमिव तारागणमम्बरम् अधारयत्। अचिराच्च सिद्ध–कन्यका–विक्षिप्त–सन्ध्यार्च्चन– कुसुम – शबलमिव तारकितं वियदराजत। क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्व–विप्रकीर्णैः प्रणामाञ्जलि – सलिलैः क्षाल्यमान इवागलदखिलः सन्ध्यारागः। क्षयमुपगतायां सन्ध्यायां तद्विनाश–दुःखिता कृष्णाजिनमिव विभावरी तिमिरोद्गममभिनवमवहत्। अपहाय मुनि–हृदयानि सर्वमन्यदन्धकारतां तिमिरमनयत्।

अनुवाद – भगवान् सूर्य के अस्त हो जाने पर पश्चिमी समुद्र–तल से ऊपर निकलती हुई मूंगों की लाल लता के समान गुलाबी रंगवाली सन्ध्या सायंकाल दिखाई पड़ने लगी। जिस सन्ध्या में आश्रमस्थल इस प्रकार का हो गयाजहाँ मुनियों द्वारा ध्यान बाँधा जा रहा था, जो

एक ओर दुही जाती हुई होमधेनुओं के दूध की धारा की ध्वनि से युक्त होने से अधिक धन्य और अत्यधिक मनोहर था, जहाँ अग्नि की वेदियों पर ताजे कुश बिछाये जा रहे थे; जहाँ ऋषि–कन्याओं द्वारा इधर–उधर अनेक स्थानों पर दिग्देवताओं के लिए बलिपिण्ड रखे जा रहे थे।

तपस्वियों ने लाल–लाल तारों वाली कपिल–वर्ण वाली आती हुई सन्ध्या को उस प्रकार देखा मानों दिन की समाप्ति में कहीं इधर–उधर घूमकर लौटती हुई लाल तारों वाली कपिला गाय हो। कुछ ही समय पहले सूर्य के चले जाने पर, विदा हो जाने पर उसके शोक से व्याकुल, कमल की कलियाँ रूपी कमण्डलु को धारण करने वाली, हंस रूपी श्वेत रेशमी वस्त्र धारण करने वाली, मृणालरूपी उज्ज्वल यज्ञोपवीत वाली और भमर–समूह रूपी अक्षमाला को धारण करती हुई कमलिनी ने मानों दिनपति सूर्य के समागम का व्रत रख लिया हो। जिस प्रकार किसी प्रिय नायक के परदेश चले जाने पर उसके विरह से व्याकुल नायिका कमल की कलियों के समान कमण्डलु को धारण करती हुई, हंस के समान श्वेत रेशम वस्त्र पहिनती हुई, मृणाल = कमलनाल के समान यज्ञोपवीत पहनी हुई, भमरसमूह के समान रुद्राक्षमाला धारण करती हुई अपने पति के मिलन के व्रत–नियम का अनुष्ठान करती है। उसी प्रकार सूर्यास्त होने पर कमलिनी कर रही थी।

पश्चिमी समुद्र के जल में सूर्य के गिर जाने पर सूर्य के अस्त हो जाने पर आकाश ने तारागणों को ऐसे धारण कर लिया, मानों वेग से ऊपर उठे हुए जलकणों के समूह को धारण कर लिया हो। और शीघ्र ही तारागणों से युक्त आकाश ऐसा शोभित होने लगा मानों सिद्धों की कन्याओं द्वारा बिखेरे गये सन्ध्या की पूजा के फूलों से चितकबरा हो गया हो। क्षणभर में सन्ध्याराग = सायंकाल की लालिमा ऐसे लुप्त हो गई मानों कि ऊर्ध्वमुख वाले मुनिजनों द्वारा ऊपर की ओर फेंके गये प्रणाम की अंजलि के जल से धो दी गई हो। मुनियों ने प्रणामांजलि से जो जल ऊपर फेंका उससे सन्ध्या की रक्तिमा धुल सी गई थी और अंधेरा हो गया।

सन्ध्या के द्वारा नाश को प्राप्त कर लेने पर सन्ध्या समाप्त हो जाने पर उसके विनाश से दुःखी रात्रि ने अन्धकार के नवीन आविर्भाव को ऐसे धारण कर लिया मानों यह कृष्ण मृगचर्म हो। अन्धेरे ने मुनियों के ब्रह्म प्रकाश–युक्त हृदयों को छोड़ कर सारे संसार को अन्धकारमय बना दिया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अचरत् – चर् + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन; अधारयत् – अ + धारि + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन;

विशेष – (1) मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी – मृणाल ही कमलिनी का श्वेत यज्ञोपवीत था, इससे यह ध्वनित होता है कि प्राचीनकाल में स्त्रियाँ यज्ञसूत्र धारण करती थी। (2) ऊर्ध्वविकीर्णे – ऊपर की ओर बिखरे जल से सूर्य को जल देते समय जो अंजलि से जल छोड़ा जाता है उसे हाथ ऊपर उठाकर छोड़ने की प्रथा आज भो देखी जाती है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में रात्रि का स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

क्रमेण च रविरस्तं गत इत्युदन्तमुपलभ्य जातवैराग्यो धौत–दुकूल–वल्कल–धवलाम्बरः सतारान्तःपुरः, पर्य्यन्तस्थिततनुस्तिमिर–तमाल–वृक्ष – लेखम्, सप्तर्षि – मण्डलाध्युषितम्, अरुन्धतीसञ्चरणपूतम्, उपहिताषाढम्, आलक्ष्यमाणमूलम्, एकान्तस्थित–चारुतारकमृगम् अमरलोकाश्रममिव गगनतलम् अमृत–दीधितिरध्यतिष्ठत्।

चन्द्राभरणभृतस्तारका–कपाल–शकलालङ्कृतादम्बरतलात् त्र्यम्बकोत्तमाङ्गादिव गङ्गा सागरानापूरयन्ती हंस–धवला धरण्यामपतज्ज्योत्स्ना। हिमकरसरसि विकच–पुण्डरीक–सिते चन्द्रिका – जलपान – लोभादवतीर्णो निश्चलमूर्त्तिरमृतपङ्क – लग्न इवाऽदृश्यत हरिणः। तिमिरजलधर–समयापगमानन्तरम् अभिनव–सित–सिन्दुवार–कुसुम–पाण्डुरैरर्णवागतैरवागाह्यन्त हंसैरिव कुमुद –

सरांसि चन्द्रपादैः। विगलित – सकलोदयरागं रजनिकर –
बिम्बमम्बरापगावगाहधौत–सिन्दूरमैरावत–कुम्भस्थलमिव तत्क्षणमलक्ष्यत।

अनुवाद – और क्रम से सूर्य अस्त हो गया – इस वृत्तान्त को प्राप्त कर अमृतमय किरणों वाला चन्द्रमा जिसमें वैराग्य उत्पन्न हो गया था; (वैराग्य = विशिष्ट राग होना) विरक्ति, चन्द्रमा में अधिक लालिमा उत्पन्न हो गई थी। (किसी पुरुष में मित्रादि सम्बन्धी की मृत्यु सुनकर विरक्ति उत्पन्न हो जाती है।) जो धुले हुए रेशमी वल्कल के समान धवल = शुभ आकाश वाला था, पुरुषपक्ष में जो धुले हुए रेशमी वस्त्र के समान वल्कल रूपी धवल वस्त्र वाला होता है। (अम्बर = आकाश और वस्त्र) जो तारा = अश्विनी आदि तारा रूपी अन्तःपुर = स्त्रियों वाला था, पुरुषपक्ष में प्रणवयुक्त हृदय के मध्यवाला है अथवा जिसका लिङ्ग शरीर योगशक्ति से कुण्डलिनी के अन्त में अर्थात् सहस्रार कमल में स्थित होता है। जो चन्द्रमा आकाश के किसी एक भाग में स्थित शरीर = रूपवाला था, पुरुषपक्ष में सबसे अलग एकान्त में बैठने वाला होता है। ऐसा चन्द्रमा देवलोक के आश्रम के समान गगनतल में स्थित हो गया था जो गगनतल अन्धकार रूपी तमाल वृक्षों की पंक्ति = समूह वाला है आश्रम पक्ष में अन्धकार के समान काले–काले तमाल के वृक्षों के समूह वाला था; जो सप्तर्षिसंज्ञक नक्षत्रसमूह से युक्त है (आश्रमपक्ष में सप्तर्षि = मरीचि आदि ऋषियों के समूह से युक्त था); जो अरुन्धती नामक नक्षत्र के संचरण से पवित्र है, आश्रम–पक्ष में अरुन्धती = वसिष्ठपत्नी के संचरण से पवित्र था, जिसमें आषाढा = पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा नामक नक्षत्र हैं, (आश्रमपक्ष में – जिसमें वृक्षों की जड़ें दिखाई दे रही थीं), जिसका एक भाग सुन्दर मृगशिरा नामक तारा से युक्त है, (आश्रमपक्ष में – जिसमें एक ओर सुन्दर पुतलियों वाले मृग अथवा सुन्दर श्वेतहिरण रहते थे) (ऐसे देवलोक के आश्रम–सदृश गगन–तल पर चन्द्रमा विराजमान हो गया था)।

चन्द्ररूप आभ्षणवाल, तारागणों के समान कपालखण्डों से विभ्षित त्र्यम्बक (शिव) के उत्तमाङ्ग (शिर) से, सागरों को भरती हुई, हंसों के समान उज्ज्वल गंगा के समान चाँदनी भरती हुई, हंसों द्वारा या हंसों के समान श्वेत दिखाई देने वाली पृथ्वी पर फैल गई। खिले हुए कमलों के समान श्वेत हिमकर चन्द्ररूपी सरोवर में निश्चल शरीरवाला हरिण ऐसा दिखाई देने लगा मानों कि वह मृग चाँदनी रूपी जल को पीने के लोभ से उतरा और कीचड़ में फँस गया हो, कीचड़ से लिप्त हो गया हो।

अन्धकार रूपी वर्षाकाल के बीत जाने के बाद नये और सफेद सिन्दुवार के फूलों के समान श्वेत चन्द्रकिरणों ने, जलाशयों से आये हुए तथा ताजे और श्वेत सिन्दुवार के फूलों के समान सफेद हंसों के समान, कुमुदों वाले सरोवरों में आलोडन किया, उनमें फैल गई। उस समय उदयकाल की सम्पूर्ण लालिमा से रहित जिसकी उदयकाल वाली सारी लालिमा समाप्त हो चुकी थी ऐसा चन्द्रबिम्ब एसा दिखाई देने लगा मानों आकाश–गंगा में अवगाहन करने से धुले हुये सिन्दूर वाला ऐरावत का कुम्भस्थल हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उपलभ्य – उप् + लभ + क्तवा + ल्यप्; अनयत् – नी + लङ् + प्रथमपुरुष, एकवचन; अध्यतिष्ठत् – अधि + स्था + लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

विशेष – सप्तऋषिमण्डल – सात ऋषियों का समूह, आकाश में उत्तर की ओर दिखने वाला, सात नक्षत्रों का समूह जिसे सप्तऋषि मण्डल कहा जाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में महाऋषि जाबालि द्वारा मुनिकुमारों को कथा सुनाने का वर्णन किया गया है।

शनैः शनैश्च दूरोदिते भगवति हिमततिस्रति, सुधाधूलि–पटलेनेव धवली–कृते
चन्द्रातपेन जगति, अवश्यायजलबिन्दु–मन्दगतिषु
विघटमान–कुमुदवन–कषाय–परिमलेषु समुपोढ–निद्रा–
भरालस–तारकैरन्योन्य–ग्रथित–पक्ष्मपुटैरारब्ध–रोमन्थ–मन्थर–मुखैः
सुखासीनैराश्रममृगैरभिनन्दिता.गमनेषु प्रवहत्सु निशामुखसमीरणेषु,
अर्द्धयाममात्रावखण्डितायां विभावर्य्याम्, हारीतः कृताहारं मामादाय

सर्वैस्तैर्मंहामुनिभिरुपसृत्य चन्द्रातपोद्भासिनि तपोवनैकदेशे वेत्रासने सुखोपविष्टम्
अनतिदूरवर्त्तिना जालपादनाम्ना शिष्येण दर्भ–पवित्र–धवित्र–पाणिना
मन्दमन्दमुपवीज्यमानं पितरमवोचत्'हे तात!
सकलेयमाश्चर्य्यश्रवण–कुतूहलाकलित–हृदया समुपस्थिता तापस– परिषदाबद्धमण्डला प्रतीक्षते। व्यपनीतश्रमश्च कृतोऽयं पतत्त्रिपोतः। तदावेद्यतांयदनेन
कृतमन्यस्मिञ्जन्मनि कोऽयमभूद्भविष्यति चेति।

एवमुक्तस्तु स महामुनिरग्रतः स्थितं मामवलोक्य तांश्च सर्वानेकाग्राञ्छ्रवणपरान्
मुनीन् बुद्ध्वा शनैः शनैरब्रवीत्'श्रूयतां यदि कौतूहलम्'।

अनुवाद – और ओस की धारा को बहाने वाले अर्थात् चन्द्रमा के धीरे–धीरे दूर तक उदित हो जाने सुधा = चूना के चूर्ण–समूह के समान चाँदनी द्वारा संसार को धवलित कर दिये जाने पर, ओस की बूँदों के साथ होने के कारण मन्द–मन्द गतिवाले, खिलते हुए कुमुद–वन के कषाययुक्त गन्धवाल, आई हुई गहरी नींद के भार के कारण अलसाई पुतलियों वाले, परस्पर मिले हुए पलक–समूहों वाले, आरम्भ कर दी गई जुगाली से अलसाये मुख वाले तथा आराम से बैठे हुए आश्रममृगों के द्वारा अभिनन्दित आगमन वाले रात के प्रारम्भकालिक पवन के चलने पर रात के केवल आधा प्रहरबीत जाने पर, भोजन कर चुके हुए मुझे लेकर हारीत ने उन सभो महामुनियों के साथ समीप में जाकर, चाँदनी से खूब प्रकाशित तपोवन के एक स्थान में बेंत के बने हुए आसन पर सुख से बैठे हुए तथा कुछ ही दूरी पर स्थित कुश के समान पवित्र मृगचर्म के पंखे को हाथ में लिए हुए जालपादनामक शिष्य द्वारा धीरे–धीरे पंखा झले जाते हुए पंखा से हवा किये जाते हुए पिता जाबालि से कहा – ''हे पिता जी! आश्चर्यजनक या परिपूर्ण कथा को सुनने के लिए कुतूहल से व्याप्त हृदय वाली, आपकी सेवा में उपस्थित हुई, चारों ओर घेरा बनाये बैठी हुई तपस्वियों की यह पूरी सभा आपके कथन की प्रतीक्षा कर रही है और इस पक्षी के बच्चे को भो श्रमरहित कर दिया गया है। इसलिये अब आप बताइये इसने पूर्वजन्म में क्या किया था? पूर्व जन्म में यह कौन था और भावी जन्म में क्या होगा?''

ऐसा कहे गये महामुनि जाबालि ने आगे रखे गये मुझे देखकर और उन समस्त मुनियों को एकाग्र तथा सुनने में जान कर धीरे–धीरे कहा – ''यदि सुनने की उत्सुकता है तो सुनिये।''

व्याकरणात्मक टिप्पणी – समुपोढः – सम् + उप् + वह् + क्त; बुद्ध्वा – बुध् + क्त्वा + अवलोक्य – अव + लोक् + ल्यप् हिमस्रुति – हिमं स्रवतीति हिमस्रुत् तस्मिन्; उपविष्टम् – उप् + विश् + क्त; अभूत् भ् + लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश में महामुनि जाबालि आश्रमवासी मुनिकुमारों की जिज्ञासा को शांत करने के लिए कथा कहना प्रारम्भ करते हैं।

6.3 पारिभाषिक शब्दावली

त्रिसत्य – हारीत के मस्तक पर लगा हुआ त्रिपुण्ड्र त्रिसत्य का प्रतीक था। 'त्रिसत्या वैः दैवाः' इस वैदिक कल्पना के आधार पर मनसा, वाचा, कर्मणा विषय निवृत्ति के लिये किया गया त्रिविध संकल्प ही त्रिसत्य है।

नरकासुर – नरकासुर नामक भयंकर राक्षस जो कि भूमि का पुत्र होने के कारण भौमासुर भी कहलाता है, उसने प्राग्ज्योतिषपुर में अपनी राजधानी बनाकर 16000 राजकुमारियों को अपनी कैद में डाल रखा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका वध कर उन राजकन्याओं का उद्धार किया।

प्राणायाम – शरीर की आन्तरिक शुद्धि के लिए धर्मशास्त्र में प्राणायाम का विधान है। इसके अनुसार श्वांस को अन्दर खींचना, रोके रखना और छोड़ना – ये तीन क्रियाएँ की जाती हैं, जिन्हें क्रमशः पूरक, कुम्भक व रेचक कहा जाता है।

वैश्वदेव – देवयज्ञ, पंचमहायज्ञों में प्रथम वैश्वदेव यज्ञ होता है जिसमें देवताओं के निमित्त हवन किया जाता है। सभी देवताओं के कारण इसका नाम वैश्वदेव है।

अमृतचरु – होम सामग्री जिसे घी, जौ, चावल आदि से पकाया जाता है। देवता लोग इस चरु का भोजन करते हैं। (हव्यपाके चरुः पुमान्)

पुरोडाश – हवनीय द्रव्य जो कि चावल के आटे से बनाया जाता है तथा जिसके टुकड़े काटकर मन्त्र के साथ आहुति दी जाती है।

अब्जयोनि – भगवान् विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति होने के कारण उन्हें अब्जयोनि कहा जाता है।

कृतयुग – सत्ययुग, युगगणना के अनुसार सबसे पहला युग जिसमें धर्म सर्वथा वर्तमान रहता है इस कारण जो कुछ भी किया जाता है वह सफल ही होता है। अतः इसे कृतयुग कहते हैं।

6.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

1. विटप इव .....सिस्नासुरुपागतम्। उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
2. उपसृत्य च.....शनैः शनैरगच्छत्। उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
3. आसन्न–वर्त्तिनीभिस्तपोधन.....कदली–लकुच–चूत–पनस–तालफलम्। उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
4. वैनतेयमिव स्वप्रभावोपात्त–.....जाबालिमपश्यम्। उपर्युक्त गद्यांश का सप्रसंग अनुवाद कीजिए।
5. 'बाण प्रकृति के कुशल चितेरे हैं' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

6.5 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में जाबालि आश्रम वर्णन पर्यन्त भाग को सुस्पष्ट किया गया है। इस इकाई में हमने जाना कि किस प्रकार शबर सेनापति के चले जाने के बाद पिपासा से व्याकुल वैशम्पायन सरोवर के मार्ग पर अग्रेसर होता है तभी स्नानादि नित्य कर्म सम्पादनार्थ सरोवर पर जाता हुआ ऋषि कुमार हारीत उधर से निकलता है। हारीत शुक शावक को पानी पिलाता है तथा उसे अपने साथ आश्रम पर ले जाता है, जहाँ पर उस शुक शावक को देखकर महर्षि जाबालि कहते हैं कि वह अपने ही दुष्कर्मों का फल भोग रहा है। इस प्रकार इस अत्यन्त लघुकथानक को बाण ने अपनी शैली से उत्कृष्ट बनाया है ।

6.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कादम्बरी (कथामुखपर्यन्ता), व्याख्याकार : भानुचन्द्रसिद्धचन्द्र गणि मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2002.
2. कादम्बरी (कथामुखम्), सं. आचार्य रामनाथ शर्मा 'सुमन, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1967.
3. कादम्बरी, सं. डॉ. जयशंकरलाल त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी वाराणसी–1993.
4. कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल,चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1957.
5. कादम्बरी : इण्ट्रोडक्शन एण्ड नोट्स, पी. पेटरशन, बम्बई–1953.

इकाई – 7

महाकवि माघ कृत 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य की विशेषताओं का मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 द्वितीय सर्ग के आधार पर माघ की भाषा शैली
7.4 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' का विवेचन
7.5 द्वितीय सर्ग के वर्ण्यविषय का वैशिष्ट्य
7.6 द्वितीय सर्ग की सूक्तियों की व्याख्या
7.7 पारिभाषिक शब्दावली
7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.9 सारांश
7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.1 उद्देश्य

महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं जिनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व से परिचित होने के साथ–साथ प्रस्तुत इकाई के अधोलिखित उद्देश्य हैं –

- शिक्षार्थी बृहत्त्रयी में परिगणित महाकवि माघ एवं उनके शिशुपालवध से परिचित हो सकेंगें।
- शिक्षार्थी महाकवि माघ की भाषा शैली एवं वर्ण्य विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कृष्ण, बलराम एवं उद्धव की राजनीतिक एवं नैतिक चर्चा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इकाई के माध्यम से 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' का विवेचन एवं काव्य के प्रति रुचि जागृत होगी।

7.2 प्रस्तावना

शिशुपालवध महाकाव्य की कथावस्तु महाभारत से ली गई है। माघ के अभीष्ट देव विष्णु हैं। इनके पितामह सर्वाधिकारी सुप्रभदेव गुर्जर देश के श्रीवर्मलातनामक राजा के प्रधानमंत्री थे। माघ के पिता का नाम दत्तक सर्वाश्रय था। माघ ने जिस कथानक को आधार बनाकर अपने महाकाव्य शिशुपालवध की रचना की, वह कथा महाभारत के सभापर्व (33–45 अध्याय तक) तथा श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित है। पद्मपुराण के 252 वें अध्याय में शिशुपालवध की कथा का उल्लेख है। कवि ने उक्त कथन को अपनी प्रतिभा कल्पना और मौलिक उद्भावना के सहारे सवर्धित और परिवर्तित करके काव्यानुरूप बनाया है। नारद मुनि आकाश मार्ग से द्वारकापुरी में स्थित श्री कृष्ण के घर आते हैं। तब नारद कृष्ण को इन्द्र का संदेश सुनाते हैं कि भगवन् हिरण्यकशिपु और रावण का वध आपने नृसिंहावतार एवं रामावतार में किया था। वही रावण अब शिशुपाल के रूप में जगत् को पीड़ित कर रहा है। अतः पृथ्वी का भार हल करने के लिए अवतार धारण करने वाले आप उस शिशुपाल को भी यमलोक का अतिथि बनायें। नारद के प्रस्थान करने पर कृष्ण शिशुपाल के प्रति क्रुद्ध हो उठते हैं और सभा भवन में जाकर बलराम और उद्धव से विचार विमर्श करते हैं। इसी का वर्णन शिशुपाल वध के द्वितीय सर्ग में है।

7.3 माघ की भाषा शैली

संस्कृत कवियों में महाकवि माघ की भाषा शैली अपनी साख रखती है वे जिस शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं उसका श्रीगणेश किसी ने भी किया हो, परन्तु उस शैली की प्रौढता और भाषा की प्राञ्जलता माघ के काव्य में ही देखने को मिलती है।

महाकवि माघ ने भावप्रवणता कालिदास से, कलात्मकता भारवि से तथा पाण्डित्य भट्टि से लेकर समन्वयवादी काव्य विचारणा पर आधारित नवीन काव्य के रूप में शिशुपाल वध की रचना की। माघ की भाषा पूर्ण रूप से प्रचलित और अप्रचलित शब्दों के साथ लेकर चलती है।

नवीन शब्दों के प्रयोग में माघ दक्ष है। भाषा और व्याकरण पर पूर्ण अधिकार होने के कारण यथावसर शब्दों का तुरन्त निर्माण कर लेते हैं। अतएव माघ के सम्बन्ध में प्रशस्ति है–

''नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते''

यह उक्ति अक्षरशः सत्य भले ही न हो परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि माघ के काव्य में शब्दों का दारिद्र्य नहीं है। माघ की भाषा में शब्द वैपुल्य तथा भावों के सामासिक प्रयोग के दर्शन हैं। माघ का पदविन्यास संस्कृत कवियों में अपनी सानी नहीं रखता। वे जहाँ एक ओर प्रकृति–वर्णन आदि कोमल प्रसंगों में कोमलकान्त पदावली प्रयोग करते हैं तो दूसरी ओर कठोर एवं समासान्त पदावली प्रयेाग करते हैं।

माघ काव्य की गणना बृहत्त्रयी में की जाती है। माघ को शैली की दृष्टि से अलंकृत शैली का कवि कहा जा सकता है। वस्तुतः शैली का काव्य प्रस्तुतीकरण का वह माध्यम है जिसमें किसी एक सामान्य विद्या या सम्प्रदाय का होते हुए भी कवि का व्यक्तित्व प्रतिम्बित करता है। अलंकृत शैली के कवियों में माघ अतुलनीय है। कालिदास की शैली सरल, स्वाभाविक और कोमल है, माघ की शैली धीर और गंभीर। माघ का समासान्त पदविन्यास उनकी शैली की गंभीरता और उदात्तता प्रदान करता है। कालिदास की शैली मालव की समतल भूमियों की याद दिलाती है, जहाँ पाठक को उतार–चढाव के साथ नहीं चलना पड़ता। माघ की शैली अरावली पर्वतमाला की याद दिलाती है जहाँ सघन निकुञ्ज, उज्ज्वल अधित्यकाएँ, सुन्दर उपत्यकाएँ, विशाल चोटियाँ और कोमल शिलाएँ है। माघ की शैली में इसी कोटि का आनन्द है। कालिदास की शैली में कोकिल की काकली है, पर माघ 'प' को छोडकर 'ध' पर बढ गये मालूम देते है। उसका संगीत पञ्चम की कोमल की अपेक्षा धवत की गंभीर धीरता को व्यक्त करता है। कृष्ण के मागधों के सामने माघ की रागिनी भी पञ्चम का पीडन (परित्याग) करती जान पडती है –

श्रुतिसमधिकमुच्चैः पञ्चमं पीडयन्तः सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम्।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः परिणतिमिरात्रेर्मागधा माधवाय।।

कालिदास द्वारा प्रवर्तित रसप्रधान शैली का स्थान भारवि द्वारा प्रवर्तित अलंकृत शैली ने ले लिया था और इसी अलंकृत शैली में माघ ने अपने काव्य की रचना की है जिसमें कृत्रिमता और पाण्डित्य दर्शन की प्रधानता है। माघ ने काव्य रचना में हृदय और मस्तिष्क दोनों का ही उपयाग किया है, हृदय पटल से स्रवित रसवन्ती कविता की सार्थकता को ही महत्व नहीं दिया है।

माघ की काव्य शैली अपनी विशिष्टता रखती है। माघ के काव्य में मुख्य रूप से गौड़ी की विकटबन्धता प्राप्त होती है परन्तु कोई भी कवि कुछ नाम्ना–निर्दिष्ट रीतियों में ही बंधकर काव्य को रचना नहीं कर सकता है। इसी प्रकार माघ के काव्य में गौड़ी के अतिरिक्त वैदर्भी आदि रीतियों का भी दर्शन होता है। यह अवश्य है कि माघ के पद–विन्यास में गौडी के विकट–बन्धता होते हुए भी एक प्रकार का आकर्षण है।

माघ वीरता एवं साहस के कवि रहे हैं। उनका काव्य वीर रस प्रधान काव्य है, अतः उसके अनुरूप ही ओज गुण की प्रधानता है। ओज के अतिरिक्त माधुर्य गुण का प्रयोग हुआ है। प्रसाद गुण का प्रयोग बहुत कम हुआ है। डॉ. हरिदत्त शास्त्री की दृष्टि में माघ के काव्य में

ओज तथा माधुर्य गुण अवश्य मिलते हैं किन्तु वे प्रसाद गुण के अभाव की पूर्ति नहीं कर पाते।

वस्तुतः माघ अलंकृत शैली के उच्चकोटि के कवि हैं। वैदर्भी रीति की प्रधानता है, ओज गुण प्रमुख है। डॉ. भोलाशंकर व्यास के शब्दों में, ''कालिदास का काव्य शैक्सपियर की भाँति भाव प्रधान है, माघ का काव्य मिटन की भाँति अत्यधिक अलंकृत है जिसे हम अलंकृत शब्दों का उद्भावक कह सकते हैं।''

अलंकार – अलंकार काव्य का विशिष्ट गुण है। अलंकृत शैली के कवि होने के कारण माघ के काव्यों में अलंकारों का चमत्कार दर्शनीय है। माघ शब्द और अर्थ दोनों को सत् कवि की कसौटी मानते हैं। उन्होंने इन अलंकारों का एक साथ बडा सुन्दर और चमत्कारिक ढंग से प्रयोग किया है।

अलंकृत शैली के परिचायक माघ के यमक और श्लेष अलंकार बहुत प्रिय थे, ऐसा लगता है कि इन दोनों का एक साथ प्रयोग भी खूब किया है। इसके अतिरिक्त अन्य अलंकारों का प्रयोग भी श्लेष के सहारे कवि ने किया है। माघ की श्लेषप्रियता के सम्बन्ध में डॉ. भोलाशंकर व्यास कहते हैं माघ श्लेष के बड़े शौकीन है। श्री हर्ष को अपनी 'परिरम्भक्रीडा' (श्लेष) का घमण्ड है, पर माघ के शब्दविलास की 'परिरम्भक्रीडा' अपना अलग सौन्दर्य रखती है। श्लेष प्रयोग में माघ भारवि से अधिक कुशल है। माघ के अन्य अलंकार भी श्लेष का सहारा लेकर आते है। श्लेष संकीर्ण उपमा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

हस्तस्थिताखण्डितचक्रशालिनं, द्विजेन्द्रकान्त श्रितवक्षसं श्रियां।
सत्यानुरक्तं नरकस्य जिष्णवो गुणैर्नृपाः शाङ्र्गणमन्त्रयासिषुः।

अर्थात् हाथ में चक्र की रेखा धारण करने वाले, सुशोभित वक्षस्थल वाले, चन्द्रमा के समान सुन्दर, सत्यशील, नरक को जीतने वाले (पुण्यात्मा) राजाओं के हाथ में चक्र धारण करने वाले चन्द्रमा के समान सुन्दर नरकासुर के विजेता लक्ष्मी से युक्त वक्षस्थल वाले तथा सत्यभामा में अनुरक्त कृष्ण का उनके गुणों की दृष्टि से अनुमान किया। यहाँ दो अर्थों की प्रतीति विभक्ति विपरिणमन से होती है।

यद्यपि माघ ने श्लेष का प्रयोग अधिकाशंतः अन्त अलंकारों के अंग के ही रूप में किया है, तथापि शुद्ध श्लेष के भी अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। श्लेष अलंकारों का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

यस्यामजिह्मा महतीमपङ्काः सीमानमत्यायतयोऽत्यजन्तः।
जनैरजातस्खलनैर्न जातु द्वयेऽप्यमुच्यन्त विलीनमार्गाः 3/57।।

श्लेष, यमक एवं अनुप्रास के साथ–साथ उपमा अलंकार के चित्रण में किसी ने माघ को कालिदास के समान माना है। उसकी यथार्थता चाहे कुछ भी हो, परन्त माघ के काव्य में सुन्दर और स्वाभाविक उपमाओं की कमी नहीं है। सूर्योदय–वर्णन में उपमा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

क्षणमतुहिनधाम्नि प्रोष्य भूयः पुरस्तादुपगतवति पाणिग्राहवद्दिग्वधूनाम्।
द्रुततरमुपयाति स्रंसमानांशुकोच्चसावुपपतिरिव नीचैः पश्चिमान्तेन चन्द्रः।।11/65।।

''दिशारूपिणी वधू के पति सूर्य के कुछ समय तक प्रवास करके पुनः आ जाने पर गिरती हुई रश्मियों वाला यह चन्द्रमा उपपति के समान पश्चिम दिशा के द्वार से वेगपूर्वक भागा जा रहा है।''

सर्वज्ञ माघ ने अनेक शास्त्रीय उपमाओं का भी प्रयोग किया है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार बौद्धों के यहां पञ्चस्कन्ध के अतिरिक्त अन्य कोई आत्मा नहीं है, उसी प्रकार राजाओं के लिए पांच अंगों के अतिरिक्त अन्य कोई मंत्र नहीं है –

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।। 2/28।।

उत्प्रेक्षा अलंकार निरूपण के चमत्कार में माघ बहुत आगे बढे हुए हैं। कवि की कल्पना–शीलता तथा प्रतिभा का वास्तविक चमत्कार तो उसके उत्प्रेक्षा के प्रयोग में दिखायी देता है। नारद और कृष्ण की कान्तियाँ परस्पर दूसरे पर पड़ने के कारण दोनों एक वर्ण के हो जाते है –

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः।
परस्परेणच्छुरिंतामलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः।। 1/22।।

माघ ने एक बहुत ही सुन्दर उत्प्रेक्षा की योजना की है –

अपशङ्कमङ्परिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।। 4/47।।

''पर्वत की नदी रूपी पुत्रियाँ, जो निःशङ्क होकर अपने पिता (पर्वत) की गोद में लौट आया करती थीं, वे आज अपने पति समुद्र को प्राप्त करने जा रही है। अतः मानो पर्वत अपनी पुत्रियों के विदाई के अवसर पर पक्षियों के कलरव के रूप में करुण क्रन्दन कर रहा है।

उत्प्रेक्षा के अलावा स्वभावोक्ति को अलंकार माना जाये अथवा न माना जाये, परन्तु स्वभावोक्ति चित्रण के काव्य में विशेष सौन्दर्य अवश्य आ जाता है। कालिदास स्वभावोक्ति के कुशल चित्रकार माने जाते हैं परन्तु उनके बाद धीरे–धीरे इसका प्रयोग कम होता गया। अलंकृत शैली के कवियों में माघ ही एक ऐसे कवि है जिनके काव्य में स्वभावोक्ति का वर्णन पर्याप्त रूप से मिलता है। स्वभावोक्ति चित्रण में कालिदास के बाद माघ का ही स्थान है। शिशुपालवध में पाँचवें, ग्यारहवें, बारहवें तथा अठारहवें सर्ग में स्वाभावोक्ति के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। दुष्ट घोड़े का माघ कितना स्वाभाविक चित्र उपस्थित करते हैं –

दुर्दान्तमुत्प्लुप्य निरस्तसादिनं सहासहाकारमलोकयज्जनः।
पर्याणतस्रस्तमुरोविलम्बिनस्तुरङ्गमं प्रद्रुतमेकया दिशा।। 12/22।।

''किसी बिगड़ैल घोड़े की लटकती हुई काठी (पल्ययन) ढीली हो गयी है। वह उछल कर अपनी पीठ पर बैठे हुए सवार को पृथ्वीं पर फेंक देता है और एक ओर भाग जाता है। लोग घोड़े की इस स्थिति को देखकर हा–हा करते हुए हँस रहे हैं।

चित्रालटारों की विशेष छटा शिशुपालवध के उन्नीसवें सर्ग में मिलती है। भारवि के समान ही माघ ने सर्वतोभद्र, मुरजबन्ध, गोमूत्रिका बन्ध तथा एकाक्षर आदि छन्दों के प्रयोग से दिमागी कसरत का प्रदर्शन किया है। माघ के ऐसे प्रयोग उत्तम काव्यता में व्याघात ही कहे जा सकते हैं, परन्तु यह उनकी विवशता थी कि भारवि द्वारा प्रचलित परम्परा को वे आगे बढ़ाना चाहते थे। उक्त प्रदर्शन के अतिरिक्त भी माघ ने शब्दालटारों का बडा ही सुन्दर समायोजन किया है। यमक के सुन्दर प्रयोग से काव्य में पदलालित्य का कितना आधान हुआ है। इसका एक उदाहरण दर्शनीय है –

मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।। 6/2।।

शब्दालङ्कारों के प्रयोग में आलोचकगण माघ में अनेक प्रकार का दोष दर्शन करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जब कवि शब्दक्रीडा में लग जाता है, तब भावजगत् कमजोर पड़ जाता है और स्वाभाविकता नष्ट होने लगती है।

पद्यों में अर्थालङ्कारों के प्रयोग में कवि बहुत सजग है। वह जिस सामर्थ्य के साथ शब्दक्रीडा करता है, उसी सामर्थ्य के साथ वह अर्थजगत् (भाव जगत्) में भी ऊँची–ऊँची कल्पनाएँ करता है। माघ ने जिस प्रकार चित्रकाव्य की रचना में भारवि को पीछे छोड़ दिया है, उसी प्रकार अर्थालङ्कारों के प्रयोग में भी दूर की कौडी लगाने में भारवि से कम नहीं हैं। निदर्शना के सुन्दर प्रयोग के कारण पण्डितों ने माघ को घण्टा माघ की उपाधि दे डाली है। रैवतक पर्वत का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि ''प्रातः किरणों को बिखेरता हुआ सूर्य इस पर्वत के एक ओर उदित हो रहा है और अपनी किरणा को समेटता हुआ

चन्द्रमा एक ओर अस्त हो रहा है, ऐसे समय में यह पर्वत उस हाथी के समान सुशोभित हो रहा है, जिसके दोनों ओर रस्सी से बँधे दो बड़े घण्टे लटक रहे हैं''।

महाकवि माघ के काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, समासोक्ति, तुल्ययोगिता, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिङ्ग स्वभावोक्ति तथा विरोध आदि अर्थालङ्कार प्रमुख रूप से पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ युवतियों के स्तनों की कठोरता का वर्णन कवि लोग अनेक रूपों में करते आये हैं, परन्तु माघ का अतिशयोक्ति वर्णन देखिये। वे कहते हैं कि युवतियों के स्तन पर्वत जैसे कठोर हैं। उन युवतियों ने युद्ध क्षेत्र की ओर प्रयाण करने के लिए लोहे के कवच को धारण किये हुए अपने प्रियतम को जब वेगपूर्वक आलिङ्गन किया, तब कठोर स्तनों से टकराकर उन योद्धाओं के लौहकवच चूर–चूर हो गये।

कवि ने यथावसर काव्यलिङ्ग अलंकार का प्रयोग किया है। इन अलंकारों के अतिरिक्त माघ ने रूपक, समासोक्ति तथा विरोध आदि अलंकारों का भी रमणीय प्रयोग किया है। माघ के कतिपय पद्यों में अनेक अलंकारों की योजना एक साथ दिखायी देती है। महाकवि माघ आलङ्कारिक चित्रणों में अत्यन्त निपुण हैं। उनकी आलङ्कारिक छटा प्रशंसनीय है। कहीं–कहीं पर अतिशय आलङ्करिता से कृत्रिमता का समावेश हो जाता है तथा काव्य की प्रासादिकता एवं स्वाभाविकता व्याघातित हो जाती है।

छन्दः योजना – काव्य को आनन्दमय बनाने के लिए छन्दों का अपना स्थान है। महाकवि माघ, भारवि तथा कालिदास से अधिक कलावादी हैं जिसका प्रभाव उनके छन्दों के प्रयोग में भी लक्षित है। छन्दों के प्रयोग में माघ बहुत सजग दिखायी देते हैं। कालिदास ने विशेष रूप से 6 छन्दों का, भारवि ने 12 तथा माघ ने 16 छन्दों का प्रयोग किया है। माघ ने मुख्य रूप से अनुष्टुप् छन्द का प्रयाग किया है, यह उनके दूसरे तथा उन्नीसवें सर्ग का आधारभूत छन्द है। प्रथम सर्ग तथा द्वादश सर्ग में वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया है। तीसरे में इन्द्रवज्रा, पाँचवें में वसन्ततिलका, छठे में द्रुतविलम्बित, सातवें में पुष्पिताग्रा, आठवें में प्रहर्षिणी, नवें में प्रतिमाक्षरा, दशवें में स्वागता, ग्यारहवें में मालिनी, तेरहवें में मञ्जुभाषिणी, चौदहवें में रथोद्धता, पन्द्रहवें में उद्गता, सोलहवें में वैतालीय, सत्रहवें में रुचिरा, अठारहवें में शालिनी तथा बीसवें सर्ग में औपच्छन्दसिक वृत्त का प्रयोग किया है। माघ का अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग कालिदास और भारवि से भिन्न है। उन्होंने विपुला कोटि के अनुष्टुप छन्दों का प्रयोग किया है। माघ के वसन्ततिलका तथा मालिनी छन्दों के प्रयोग बहुत ही सुन्दर रूप में हुए हैं। अन्ततः माघ के छन्दों के संबंध में कह सकते हैं कि वे भारवि से कम कलावादी नहीं है और विषयानुकूल छन्दों के प्रयोग में कालिदास से पीछे नहीं हैं। कलावादिता की दृष्टि से उन्होंने सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका, मुरजबन्द, एकाक्षर तथा द्वयक्षर आदि भिन्न बन्धों की सफलतापूर्वक रचना की है तथा रस की दृष्टि से वसन्ततिलका, मालिनी, द्रुतविलम्बित आदि छन्दों का प्रयोग अवश्य ही प्रशंसनीय हैं।

माघ की भाषा व्याकरण की दृष्टि से वस्तुतः शुद्ध वर्ण सरस्वती है क्योंकि माघ की भाषा में अव्याकरणिक प्रयोग कहीं दिखाई नहीं देते हैं। वाक्य विन्यास तथा कथोपकथनों में निहित भाषिक प्रयोगों पर विद्वान् माघ काव्य में भट्टि के प्रयोगों को सहज स्वीकार करते हैं। संस्कृत कवियों में भाषा के साथ–साथ माघ की शैली में भी उन्हें लोकोत्तर बना देती है। यद्यपि माघ की शैली में कालिदास जैसी सरलता, स्वाभाविकता तथा कोमलता का अभाव है तथापि विषयानुकूल धीर गंभीर शैली माघ के वर्णनों को पाठकों के हृदय की गहराई तक ले जाने में पर्याप्त सफल कहीं जा सकती है। माघ की शैली में गंभीरता का मूल कारण उनका समासान्त पदविन्यास तथा गौड़ी रीति रही है। माघ की शैली में पदलालित्य भी स्पष्ट रूप से झलकता है।

रस परिपाक – काव्य का प्रमुख तत्व है – रस। रसाभिव्यञ्जना काव्य की कसौटी ही नहीं, अपितु काव्य की आत्मा भी है ''वाक्य रसात्मकं काव्यम्।'' काव्यशास्त्रीय दृष्टि से माघ को रसवादी कवि कहा जा सकता है। यह बात अवश्य है कि माघ रसवादी कवि होते हुए भी मुख्य रूप से विद्वत् समाज के कवि माने जा सकते हैं। उनके काव्य के पढ़ने से उनके रसवादी होने की अवधारणा स्थिर हो जाती है। उनकी दृष्टि से रससिद्ध कवि ओज, प्रसाद

आदि गुणों के पीछे नहीं भागता है, अपितु ये गुण कवि की वाणी का स्वतः अनुगमन करते हैं – ''नैक ओजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः।'' महाकवि माघ निर्विवाद रूप से रससिद्ध कवि हैं। शिशुपालवध में वीर, श्रृंगर तथा अन्य अभीष्ट रसों का उन्होंने हृदयग्राही वर्णन किया है। शिशुपालवध का प्रधान रस 'वीर रस' है। अङ्ग रूप में शृङ्गार, हास्य, रौद्र, बीभत्स आदि रसों का चित्रण किया गया है। माघ के रस–वर्णन में एक बात अवश्य खटकती है कि वीर रस प्रधान काव्य में कवि की सहृदयता एवं सरसता के उद्रेक के कारण अंगभूत शृङ्गार वीर–रस का अतिशायी हो गया है। कुछ भी हो, शिशुपालवध के रस–चित्रण को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका प्रिय रस शृङ्गार है और मुख्यतः प्रतिपाद्य है – वीर रस। उनका हृदय शृङ्गार की ओर है तथा मस्तिष्क वीर की ओर। इन दोनों रसों के चित्रण में माघ का व्यक्तित्व द्विधा विभक्त सा हो गया है।

संभवतः लघु काव्य कलेवर के विस्तार के लिए कवि कल्पित कथानक के शृङ्गारपरक होने के कारण ही शृङ्गार का आधिक्येन वर्णन करना पड़ा हैं साथ ही अन्य रसों की अपेक्षा शृङ्गार का अधिक लोकप्रिय होना भी कारण हो सकता है। माघ ने वीर तथा शृङ्गार दोनों रसों का समान रूप से प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। उक्त दोनों रसों के चित्रण में माघ की सहृदयता रसवत्ता, अनुभूतिमत्ता की वर्णन क्षमता परिलक्षित होती है।

7.4 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' का विवेचन

संस्कृत साहित्यालोचन की पद्धति ही ऐसी रही है कि उसमें साहित्य के विशुद्ध शास्त्रीय या तात्त्विक स्वरूपों का तो अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, किन्तु उसकी व्यावहारिक भित्तियों की मीमांसा अत्यल्प हो पाई है। आलोचना के विशिष्ट सिद्धान्तों का अनुशीलन करते हुए हमारे आचार्य यदा कदा भारतीय कवियों के काव्य ग्रंथों से किंचित् उदाहरण दे देना अपने आचार्य धर्म की इयत्ता मान लेते हैं। उदाहरण के लिए यदि श्रृंगार का कोई दृष्टान्त देना है तो कालिदास, माघ, श्री हर्ष आदि किसी भी कवि के तद्विषयक श्लोक उपस्थित कर दिये जाते हैं। वहाँ तनिक भी यह नहीं सोचा जाता है कि कालिदास तथा माघ आदि कवियों की श्रृंगारिक स्थापनाएँ एक–सी नहीं है, उनमें कुछ मौलिक भेद भी है। इसी प्रकार यदि कालिदास एवं माघ की उपमाओं को देखें तो उनमें एक बडी सीमा तक भावात्मक पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। हमें संस्कृत के शास्त्रीय सिद्धान्तों की खिल्ली नहीं उड़ानी है, वस्तुतः अपनी सीमाओं में उनकी तात्त्विक स्थापनाएँ सम्पूर्ण विश्व साहित्य में अद्वितीय है।

ऐसी सैद्धान्तिक मान्यताओं की अपनी साहित्यगत विशिष्टता है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु कवियों की विशिष्ट प्रशस्ति के रूप में संस्कृति की साहित्यिक परम्परा में कुछ ऐसी सूक्तियाँ विद्यमान रही है जिन्हें प्रायः साहित्यालोचन के चश्में से देखने की प्रवृत्ति रही है। ऐसी सूक्तियों में किसी सहृदय विशेष का किसी विशेष के प्रति वैयक्तिक आग्रह का भाव ही मुखरित हुआ है, उनमें किसी काव्य की वास्तविकताओं का परिज्ञान प्रायः नहीं के बराबर होता है। ऐसी ही सूक्तियों में एक है –

'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।

अर्थात् कालिदास में उपमा, भारवि में अर्थगौरव, दण्डी में पदलालित्य और माघ में उक्त तीनों गुण विद्यमान हैं। यह सूक्ति अवश्य ही माघ काव्य से प्रभावित किसी सहृदय विद्वान् की है। इस कथन के दो पक्ष हैं– (1) स्वीकृतिमूलक और (2) निषेधमूलक। प्रथम पक्ष यह स्थापित करता है कि कालिदास आदि तीन कवियों में उपमा आदि एक–एक गुण वर्तमान हैं, जबकि माघ में तीनों गुण पाये जाते हैं। द्वितीय पक्ष की स्थापना यह है कि कालिदास आदि तीन कवियों में शेष दो गुण या तो नहीं पाये जाते, या अत्यल्प पाये जाते हैं; हमें इन दोनों पक्षों की मीमांसा करनी होगी।

यह सही है कि कालिदास उपमा के धनी कवि हैं। वस्तुतः उनकी उपमा की समता संस्कृत का कोई भी दूसरा कवि नहीं कर पाया है। इसका कारण है सौन्दर्य के प्रति उनका विशुद्ध

रागात्मक एवं कलात्मक दृष्टिकोण। काव्य जगत् में सादृश्य योजना का प्राण है। चूँकि काव्य में अलंकार सौन्दर्य की ही अभिव्यक्ति बनकर आते हैं, अतः सादृश्य का महत्व उनके लिए सर्वोपरि हो जाता है; दूसरे शब्दों में, सादृश्य योजना अलंकार का प्राण तत्त्व है और उपमा सादृश्यमूलक अलंकारों में सर्वोत्तम है। अलंकारों में उपमा की श्रेष्ठता कई आचार्यों ने मानी है। राजशेखर उसे अलंकारों का शिरोरत्न एवं कवियों की माता कहकर उसके साहित्यिक मूल्यों का महत्व दर्शाते हैं –

अलङ्कारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम।।

1. **उपमा** – माघ के काव्यों में अनेक उपमाएँ ऐसी हैं, जिनमें कालिदास जैसा लालित्य एवं चमत्कार मिलता है। शास्त्रीय उपमान की दृष्टि से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।।2/112।।

''जिस प्रकार (महाभाष्य) के पस्पशाह्निक के ज्ञान के बिना व्याकरणशास्त्र की शोभा नहीं होती, उसी प्रकार राजनीति (स्पश) गुप्तचर क बिना सुशोभित नहीं होती हैं।''

कवि ने नारद की पर्वतराज हिमालय से कितनी सुन्दर उपमा प्रस्तुत की है –

दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिङ्गस्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्र व्रततीततीरिव।।1/5।।

रैवतक पर्वत की श्रेष्ठ द्विज के साथ समानता करते हुए महाकवि ने उपमा में अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत कर दिया है।

विद्वद्भिरागमपरैर्विवृतं कथञ्चिच्च्युत्वापि दुर्ग्रहमनिश्चितधीभिरन्यैः
श्रेयान्द्विजातिरिव हन्तुमघानि दक्षं गूढार्थमेष निधिमन्त्रगणं बिभर्ति।।4/37

जिस प्रकार बौद्धों के अनुसार पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार राजा के लिए सन्धि–विग्रहादि पांच अंगों के अतिरिक्त कोई मंत्र नहीं है –

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम्
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।।2/28।।

निम्नलिखित श्लोक में मेघ के समान नीलवर्ण वाली मुक्तलता से सुशोभित श्रीकृष्ण के वक्षस्थल की समानता आकाश गङ्गा से देते हुए कवि ने अनुपम कौशल का प्रदर्शन किया है –

उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहावाकाशगङ्गापयसः पतेताम्।
तनोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः।।3/8।।

इस प्रकार माघ की उपमाओं के पर्यालोचन से कहा जा सकता है कि कालिदास जैसी सुष्ठुता एवं मनोहरता का उनके काव्य में अभाव नहीं है।

इस प्रकार यदि कोई उपमा में सिद्ध है तो यह तथ्य उसकी कलात्मक वरीयता का स्पष्ट प्रमाण हो जाता है। कालिदास ने अपने काव्य में जिस व्यापक सौन्दर्य की सृष्टि की है उसके पीछे जीवन एवं जगत् के विविध रूपों में बिखरे हुए अक्षय सौन्दर्य की सही सादृश्य प्रतीति है जिसे अभिव्यक्ति देने में उनकी कला की कोई समता नहीं पाई जाती। अतः 'उपमा कालिदासस्य' ही उक्त सूक्ति का वास्तविक अंश है जिसका साहित्यिक दृष्टि से महत्व हो जाता है।

2. **अर्थ गौरव** – भारवि–काव्य में अर्थ गौरव की प्रधानता बतायी गई है और दण्डी में पद लालित्य की। सामान्यतः जब कोई कम से कम पदों का प्रयोग करके उनसे अधिक से अधिक भावों की निष्पत्ति करता है तो वह अर्थ गौरव का अधिकारी माना जाता है। यदि अर्थ–गौरव की यह कसौटी मान ली जाय तो भारवि में निश्चय ही यत्र–तत्र इसकी झलक प्राप्त होती है। किन्तु अर्थ गौरव का वास्तविक अधिकारी वही कवि माना जा सकता है

जिसके न केवल भाषा–पक्ष एवं भाव पक्ष समृद्ध हों, प्रत्युत भावों के अनुरूप ही अभिव्यंजना हुई हो। भारवि की वाणी को उनके विद्वान् टीकाकार मल्लिनाथ 'नारिकेलफलसम्मित' कहते हैं। मल्लिनाथ का यह अभिमत बिल्कुल ठीक है। नारियल के कसे हुए कठोर छिलके के भीतर तरल रस की स्थिति की तरह ही भारवि का कठिन या दुर्बोध भाषा के अन्तस् में मधुर काव्य रस का निवास है।

अर्थ गाम्भीर्य की दृष्टि से भारवि मानदण्ड के रूप में स्थित है, अतः एव भारवि के अर्थगाम्भीर्य की बात माघ के लिए कही गयी है। वस्तुतः अर्थ गंभीरता माघ का विशेष गुण है। इसका कारण यह था कि वे सभी शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। माघ के अर्थगाम्भीर्य के कुछ उदाहरण

देखिये –

अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।। 4/47।।

अर्थात् पति के समीप जाती हुई क्रोडक्रीडिता आत्मजा पुत्री के समान समुद्र को जाती हुई आत्मजा क्रोडक्रीडिता अपने से उत्पन्न होकर बीच स बहती हुई नदियों को देखकर करुण पक्षी शब्दों से पितृ स्थानीय यह रैवतक पर्वत वत्सलता के कारण रो रहा है। इस प्रकार का सहृदय संवेद्य अनुपम भावपूर्ण अर्थगौरव से युक्त यह पद्य है। यह दूसरा उदाहरण देखिये –

''जब प्रातःकाल का बालसूर्य लाल–लाल कोमल किरणों को फैलाकर आगे ऊपर आकाश की ओर बढ़ने लगा और पक्षी समूह कलरव करने लगे तब ऐसा आभास हो रहा था मानो 'दिव' रूपिणी माता कोमल हाथ फैलाये हुए बाल सूर्य को उच्च स्तर से पुकार कर बुला रही है और पुत्र रूप वह बाल सूर्य मातृ–रूपिणी आकाश की ओर बढ़ रहा है।'' सरस मधुर होते हुए भी अत्यन्त गाम्भीर्यपूर्ण अर्थ गौरव है।

चन्द्रमा (भाग्य) के प्रतिकूल होने के अनेक साधन भी निरर्थक होते हैं। चन्द्रमा के प्रतिकूल दशा में होने पर अस्त होते हुए सूर्य की हजारों किरणें भी रोकने में समर्थ नहीं होती हैं।

रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः।
ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथाः सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ।।9/13।।

''अर्थात् जिस प्रकार सती स्त्री पति के दिवंगत होने पर अग्नि में प्रविष्ट होकर अगले जन्म में पुनः उसी पति को प्राप्त करती है, उसी प्रकार सूर्यास्त होने पर उसकी निर्मल कान्तियाँ अग्नि में प्रविष्ट होकर पुनः सूर्य को पति रूप में प्राप्त करती है।''

इस प्रकार के उदाहरणों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि माघ के काव्य में भारवि जैसा अर्थगौरव विद्यमान हैं।

3. पदलालित्य – पदलालित्य के विषय में असन्दिग्ध रूप में कहा जा सकता है कि वे अपनी सानी नहीं रखते हैं। ''नैषधे पदलालित्यम्'' अथवा ''दण्डिनः पदलालित्यम्'' की प्रसिद्धि होते हुए भी महाकवि माघ किसी से कम नहीं है। उनकी कोमलकान्त पदावली हठात् पाठक का मन मोह लेती है। पदलालित्य की दृष्टि से कुछ उदाहरण प्रस्तुत है –

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डम्
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां हा विचित्रो विपाकः।। 11/64।।

इस पद्य में कितना लालित्य है। इसके श्रवण मात्र से ही पदलालित्य की अनुभूति होती है।

पद–लालित्य वस्तुतः काव्य शैली का एक गुण–विशेष है। नाद सौन्दर्य पद–लालित्य का प्राण होता हैं। कर्कश पदों का परिहार करके जब कोई कवि मधुर पदों का सांगीतिक विन्यास करता है तो उसकी काव्य–शैली स्वभावतः ही 'ललित' हो जाती है। दण्डी ने अपने दशकुमारचरित में ऐसी शैली अवश्य अपनाई है, किन्तु वहां इस शैली का प्रकर्ष दिखाई नहीं देता। जब कोई कवि आयासपूर्वक अपने काव्य को ललित बनाना चाहेगा तो उसके काव्य

का लालित्य स्वाभाविक न होकर कृत्रिम बन जायेगा। कालिदास की मधुर वस्तु प्रकृति ने अपनी अभिव्यक्ति का जो मार्ग बनाया है, वह स्वभावतः ही ललित है। वैसे बाह्यतः कवि ने कहीं भी अपने काव्य पर लालित्य आरोपित नहीं किया है और यही तथ्य उसके शैलीगत माधुर्य या लालित्य को कलात्मक दृष्टि से स्पृहणीय बना देता है। संक्षेप में उक्त तीनों कवियों में यदि किसी एक कवि में उक्त तीनों गुणों का प्रकर्ष दीखता है तो वे निश्चय ही कालिदास हैं।

माघ ने प्रकृति–चित्रण में यमक अलङ्कार के साथ बड़ी ही मनोरम शब्द योजना का विधान किया है–

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।। 6 /2।।

इसी प्रकार का एक और पद्य दर्शनीय है –

मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।6/20।।

पद लालित्य की दृष्टि से माघ के काव्य का परिगणन असंभव है। उनके पदलालित्य के संबंध तो कहा जा सकता है कि कुछ ही ऐसे श्लोक होंगे जिनमें पदलालित्य का अभाव होगा।

सम्बद्ध सूक्ति माघ को कालिदास, भारवि एवं दण्डी तीनों की अपेक्षा अधिक महत्व देती है, चूँकि माघ में उपमा, अर्थ–गौरव एवं पद–लालित्य तीनों का एकत्र परिणमन हुआ है। हम ऐसा तो नहीं मान सकते हैं कि माघ में उपमा आदि काव्य तत्व हैं ही नहीं। वस्तुतः इन तीनों गुणों के निदर्शक बहुत सारे श्लोक माघ में उपलब्ध होते हैं किन्तु यह केवल माघ का ही काव्य वैशिष्ट्य हो, ऐसी बात नहीं– भारवि, दण्डी आदि किसी भी विशिष्ट कवि की कृतियों में उक्त तीनों गुणों का यत्र–तत्र परिपाक मिलता है। अतः माघ में उपमा आदि तीनों गुण विद्यमान है, निश्चय ही इस कथन का यहाँ सामान्य अर्थ नहीं लगाया जा सकता है। ये तीनों गुण माघ में सत्ता एवं इयत्ता दोनों ही दृष्टियों में कालिदास आदि की अपेक्षा पूर्णतर हैं और सूक्ति का अभिप्रेत अर्थ यही है कि हमें इसी दृष्टि–बिन्दु से विचार भी करना है।

इस प्रकार माघ के काव्य मे उपमा, अर्थगारव तथा पद लालित्य गुण पदे–पदे विद्वानों को उपलब्ध होंगे। इससे ''माघे सन्ति त्रयो गुणाः'' यह लोकोक्ति महाकवि माघ के विषय में अक्षरशः सत्य है। इसमें किसी प्रकार के विवाद या विचिकित्सा का अवसर नहीं है।

7.5 द्वितीय सर्ग के वर्ण्यविषय का वैशिष्ट्य

एक कलावादी कवि होने के नाते माघ के शिशुपालवध में जितनी कलात्मकता है उतना ही पाण्डित्य व प्रतिभा के मणि काञ्चन संयोग के फलस्वरूप भावपक्ष भी मुखर हो उठा है। पण्डित माघ की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। शिशुपाल वध के अनुशीलन से पता चलता है कि संस्कृत वाङ्मय के समस्त विषयों वेद–वेदांग, दर्शन, राजनीति, संगीत, नाटक इत्यादि का प्रौढ पाण्डित्य इस कृति में प्रतिफलित होता है। नवीन शब्दों में पद–पद पर पाण्डित्य प्रस्तुत करना माघ की निजी विशेषता है। इन्हीं विशेषताओं के फलस्वरूप अनेक विद्वानों ने प्रशस्तियाँ लिखी हैं –

(1) माघे सन्ति त्रयो गुणाः।

(2) नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते।

(3) तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।

(4) मेघे माघे गतं वयः।

उपमा वैशिष्ट्य –

सर्वथा नवीन और चमत्कारिणी उपमा का विन्यास करना माघ की 'नवनवोन्मेशशालिनी' प्रतिभा का परिचायक है। प्रथम सर्ग में कवि लिखता है कि नवीन बड़े–बड़े बादलों के नीचे उतरते हुए कपूर के चूर्ण के समान श्वेत नारद ऐसे लग रहे थे जैसे ताण्डव नृत्य के समय गजासुर की काली खाल ऊपर उछालकर उसके नीचे नाचते हुए भस्म युक्त भगवान् शंकर हों। कमल के पराग के समान कान्ति वाली एवं शरद कालीन चन्द्रमा के समान श्वेत आकार वाले। नारद ऐसे लग रहे थे जैसे सूख जाने से पीली पडी हुई लता समूह को धारण करता हुआ पर्वतराज हिमालय हो।

इसी प्रकार कालिदास ''श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्'' जैसी शास्त्रपुष्ट उपमायें प्रस्तुत करते हैं तो माघ भी शास्त्रीय उपमायें देने में अपनी सिद्धहस्तता को प्रकट करते हैं–

''अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।। (2/112)

माघ ने कालिदास जैसी कमनीय तथा शास्त्रीय उपमाओं के अतिरिक्त दार्शनिक उपमायें भी प्रस्तुत की हैं, जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट है –

''सर्वकार्यशरीरेषु मुक्तवाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।'' (2/28)

तर्कपुष्टभावों का चमत्कार तथा उक्ति वैचित्र्य से आप्लावित गूढार्थता भी माघ के काव्य में कहीं–कहीं उपमाओं के माध्यम से बड़ी ही ललित दृष्टिगोचर जान पड़ती है। उदाहरण के लिए माघ का निम्न पद्य उद्धृत किया जा सकता है –

''स्वयंकृतप्रसादस्य तस्याह्नो भानुमानिव।
समयावधिमप्राप्य नान्तायालं भवानपि।।'' (2/110)

उक्त विवरण के आधार पर यह कहना सर्वाधिक उचित होगा कि कालिदास की उपमायें चाहें शास्त्रीय रही हों या साहित्यिक दोनों ही स्थितियों में वे सहज समविष्ट हुई हैं जबकि माघ की उपमायें सर्वत्र पाण्डित्य एवं प्रतिभा में पर्याप्त बौद्धिक श्रम के उपरान्त संजोयी गयी हैं। कालिदास की उपमायें मनोरम हार्दिक अनुभूति से अभिभूत अवश्य कर लेती हैं, पर माघ की उपमाओं की भांति समीक्षकों एवं विचारको पर चिन्तन का विषय नहीं बन पातीं। माघ की उपमाओं को विशिष्ट दर्जा देने का यही मूलकारण है।

अर्थगौरव –

माघ के काव्य में पद–पद पर भारवि अर्थ की गंभीरता दृष्टिगोचर होती हैं। सांख्यदर्शन में यह माना जाता है कि इस सृष्टि में कुल 25 तत्व हैं। इनमें मुख्य तत्त्व है – प्रकृति तथा पुरुष। प्रकृति जड़ है, पुरुष चेतन है। अव्यक्त प्रधान प्रकृति ही महदादि 28 तत्वों को व्यक्त करती है। पुरुष न तो किसी का कार्य है और न ही कारण, अपितु वह मध्य तथा द्रव्य मात्र। इसी भाव का एक मात्र पद्य में विवेचन माघ ने प्रथम सर्ग में कर दिया है जिसम सम्पूर्ण सांख्य दर्शन का सार आ चुका है। महर्षि नारद श्री कृष्ण को सांख्यदर्शन के पुरातन पुरुष कहते हैं।

भारवि का अर्थगौरव पर्याप्त प्रसिद्ध रहा था। चूंकि माघ ने भारवि के अनुकरण को ही अपना मूल लक्ष्य बना दिया था, फलतः माघ का अर्थगौरव भारवि से टक्कर लेता हुआ जान पड़ता है। अन्तर केवल इतना है, कि भारवि के अर्थगौरव में काव्य के केवल अर्थतत्व की ही गंभीरता विद्यमान है। भारवि ने अर्थगौरव के आधार रूप में उक्ति वैचित्र्य को महत्त्व नहीं दिया है कि जबकि माघ ने अर्थगौरव को और अधिक चमत्कृत करने के लिए प्रौढोक्ति की लम्बी उड़ान भरी हैं। उदाहरण के लिए कतिपय पद्य उद्धृत किये जा सकते हैं –

''बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृततिकञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोपि पार्थिवः।। (2/28)

''अनिर्लोठितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो यथा।
निमित्तादपराद्धेषोर्धानुष्कस्येव वल्गितम्।।'' (2/27)

''तदेव रूपं रमणीयतायाः'' (4/17)
''अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी'' (16/25)

सूक्तियों के माध्यम से भी अर्थान्तरन्यास की रमणीय उपस्थापना करके माघ प्रभावोत्पादक अर्थगौरव का निदर्शन करते हैं। ''महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः, ''समानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः'', ''समय एवं करोति बलाबलं'', ''भ्रान्तिभाजि भवति क्व विवेकः'' इत्यादि सैकड़ों सूक्तियाँ माघकाव्य में अर्थगौरव को अपने आप में समेटे हुए हैं। ये सूक्तियाँ भारवि की सूक्तियों की भाँति व्यावहारिक पक्ष का तो पोषण करती ही हैं, सैद्धान्तिक पक्ष को भी प्रबलरूप में उपस्थापित करती हैं।

व्याकरण वैशिष्ट्य – 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाःअनेन इति' के अनुसार व्याकरण के विशिष्ट प्रयोगों की दृष्टि से माघ का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है, जिसमें लकारार्थ प्रक्रिया से सिद्ध होने वाली क्रियाओं का प्रयोग किया गया है। कौमुदीकार ने सिद्धान्तकौमुदी में इस श्लोक को उद्धृत भी किया है।

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवंदिवः ।। 1/51।।

माघ ने एकत्र व्याकरण शास्त्रीय उपमान भी प्रस्तुत किया है –

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिपरस्पशा ।। शिशु 2/112

माघ का व्याकरणशास्त्र पर पूरा आधिपत्य था। शिशुपाल का उन्नीसवाँ सर्ग इसका पुष्ट प्रमाण है। तभी उनकी एकाक्षरी द्वयक्षरी रचनाएँ संभव हो सकी है। 'पा' (पाने, रक्षणे) धातु का दोनों अर्थो में चमत्कारिक ढंग से एक साथ प्रयोग करते हुए कवि कहता है कि कृष्ण के बाण 'पा' धातु के दोनों (पीने और रक्षा करने) अर्थों का अनुसरण कर रहे हैं क्योंकि ये बाण शत्रुओं का रक्त पीते है और विश्व की रक्षा भी करते हैं।

उद्धतान् द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः।
पानार्थं रुधिरं रक्षार्थं भुवनं शराः ।। 12 /103

दार्शनिक वैशिष्ट्य – महाकवि माघ के काव्य–अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनको दर्शनशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने केवल सांख्य दर्शन भारतीय आस्तिक दर्शनों का ही नहीं, अपितु बौद्धदर्शन का भली–भाँति अध्ययन किया है। प्रकृति, विकृति तथा पुरुष शब्दों के प्रयोग के साथ ही कृष्ण के साथ तादात्म्य भी स्थापित किया है –

उदासितारं निगृहीतमानसैः गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ।।1/33।

माघ ने योग दर्शन के यमनियमासनादि आठों अङ्गों मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा चार चित्तवृत्तियों एवं अविद्या आदि पंच क्लेशों का उल्लेख करते हुए लिखा है –

मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय,
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।
ख्यातिं च सत्वपुरुषान्यतयाधिगम्य
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम् ।।4/55।

कवि ने वेदान्तमूलक सिद्धान्तों का भी अपने काव्य में प्रयोग किया है। निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुए कवि ने कृष्ण को ही मोक्ष प्राप्त करने वालों का एकमात्र प्राप्यस्थल बताया गया है –

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयाऽतिदुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया। ।1/32।

माघ के निम्नलिखित श्लोक से उनके बौद्धदर्शन सम्बन्धी ज्ञान का पता चलता है, जिससे बौद्ध दर्शन के पाँच स्कन्धों और अनात्मवादी सिद्धान्तों का उल्लेख है –

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम् ।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रा महीभृताम् ।।2/28।।

इस प्रकार माघ के काव्य में प्रायः समस्त आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों का उल्लेख मिलता है जिससे यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि माघ को दर्शन शास्त्र का अच्छा ज्ञान था।

राजनीतिक ज्ञान – संस्कृत कवियों में मुख्य रूप से महाकवि भारवि को राजनीति का विद्वान माना जाता है परन्तु यह कहना असंगत नहीं होगा कि भारवि का राजनीतिक ज्ञान व्यावहारिक तथा अनुभव जन्य था और माघ का राजनीतिक ज्ञान शास्त्रों के गहन अध्ययनों का परिणाम था। माघ ने राजनीति के ग्रंथों का अनुशीलन किया था। उनके प्रमुख सिद्धान्तों से वे भली–भांति परिचित थे। माघ ने राजनीति सम्मत राजा के बारह भेदों का उल्लेख किया है –

उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते।। 2/81

राजनीति में वर्णित सात राज्य अङ्गें का उल्लेख करते हुए कवि लिखता है –

बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यंगे घनसंवृति कञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपिः पार्थिव।।

राजनीति में वर्णित शत्रुपक्ष के अट्ठारह तीर्थों का भी माघ ने उल्लेख किया है –

कृत्वा कृत्यविदस्तीर्थेष्वन्तः प्रणिधयः पदम्।
विदांकुर्वन्तु महतस्तलं विद्विषदम्भसः।। 2/111।

इस प्रकार से शिशुपाल का द्वितीय सर्ग राजनीति सिद्धान्तों से भरपूर है, जिससे माघ के राजनीतिज्ञ होने की बात सिद्ध होती है ।

माघ का वैदिक ज्ञान – संस्कृत का प्रथम ग्रंथ वेद है। माघ निःसंदेह वैदिक सनातन धर्म के अनुयायी थे। वेद और पुराणों का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। शिशुपालवध के एकादश एवं चतुर्दश सर्ग के अध्ययन से उनके वैदिक ज्ञान का पता चलता है। प्रभात वर्णन के प्रसंग में कवि ने अग्निहोत्र का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है –

प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां
विधिविहितविरिब्धैः सामधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यं
हुतमयमुपलीढे साधु सान्नाप्यमग्निः ।।11/41।।

माघ का अपर शास्त्रों का ज्ञान – वेद, व्याकरण आदि के साथ माघ का प्रायः सभी शास्त्रों का ज्ञान था। शिशुपालवध का निम्नलिखित श्लोक उनके संगीतशास्त्रज्ञ होने का परिचायक है –

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः।।1/10।।

माघ के काव्य में यत्र–तत्र आयुर्वेद के ऐसे सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि माघ को आयुर्वेद शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। उदाहरणार्थ निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है–

चतुर्थोपायसाध्येऽपि रिपौ सान्त्वमपक्रिया।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति।। 2/54।।

अर्थात् आद्य ज्वर को कोई भी व्यक्ति शीतल जल से नहीं सींचता है। उसको प्रस्वेदकारी उपचार से शान्त किया जा सकता है। इसी प्रकार द्वितीय एवं तृतीय सर्ग में अधिकांशतः आयु सम्बन्धी बातों का निर्देश मिलता है।

7.6 द्वितीय सर्ग की सूक्तियों की व्याख्या

सूक्ति – उत्तिष्ठमानस्त परो नोपेक्ष्य पथ्यमिच्छता ।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत सूक्ति में भगवान श्री कृष्ण ने शत्रु के विषय में विशिष्ट सचेत होने की बात को बताकर शत्रु की अनुपेक्षणीयता का प्रतिपादन कर रहे है।

व्याख्या – यज्ञ में शामिल होकर उसके पूरा होने के बाद विजय के लिए प्रस्थान करना उचित नहीं है क्योंकि हिताभिलाषी व्यक्ति को बढते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि बढने वाले रोग तथा शत्रु को राजनीतिज्ञ विद्वानों (शिष्टों) ने समान घातक कहा है। जिस प्रकार बढते हुए रोग की उपेक्षा करने पर वह रोगी को मारने वाला हो जाता है उसी प्रकार बढते हुए शत्रु की उपेक्षा करने पर वह भी विपक्षी को पराजित करने वाला होता है। अतः शिशुपाल का वध करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

सूक्ति – ज्ञातसारोऽपि खल्वेकःसन्दिग्धः कार्यवस्तुनि।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि माघ विरचित शिशुपालवध महाकाव्य के द्वितीय सर्ग से अवतरित है। इस सूक्ति में श्री कृष्ण के मन्तव्य को उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या – श्रीकृष्ण अपनी दशा को बताते हुए कहते हैं कि दो कार्य के उपस्थित रहने पर मुझे कौनसे कार्य को करना चाहिए? हे बलराम और उद्धव! आप दोनों की राय मुझे सुननी चाहिये क्योंकि सारभूत तत्व को जानता हुआ भी एक व्यक्ति कर्तव्य कार्य में संदेह युक्त रहता है। जब किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा उसमें समर्थन नहीं किया जाता है तब व्यक्ति अपने कार्य के विषय में सन्तुष्ट नहीं होता है–

सूक्ति – महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः।

प्रसङ्ग – जब श्रीकृष्ण अपना मत प्रतिपादित करने के बाद चुप हो गये तब कवि माघ ने यह सूक्ति उद्धृत की।

व्याख्या – श्री कृष्ण का वक्तव्य पर्याप्त संक्षिप्त एवं सरल था। वे परिमित शब्दों में अपनी बात कहकर रुक गये। तब मितभाषिता नामक गुण की महत्ता को कवि प्रस्तुत सूक्ति में प्रतिपादित करता है कि महापुरुष स्वाभाविक रूप से कम बोलने वाले होते हैं। लम्बी किन्तु सारहीन बात बोलना उन्हें पसन्द नहीं है। ठीक ही कहा है – 'मितं च सारं च वचो हि वाग्मितां।

सूक्ति – इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत सूक्ति में सारयुक्त संक्षिप्त कथन के औचित्य एवं प्रभावशीलता को दृष्टान्त के
माध्यम से बताया गया है –

व्याख्या – अग्नि भी तेजस् प्रधान होती है किन्तु वह तेजस् प्रधान सूर्य का अतिक्रमण नहीं करती है। छोटे होने पर भी श्रीकृष्ण की बात विस्तार पूर्वक कही जाने वाली वाणी के द्वारा नहीं लांघी जा सकती है क्योंकि ईधन के ढेर को जलाने वाली होने पर भी अग्नि अपने तेज से सूर्य को नहीं तिरोहित कर देती। अर्थात् श्रीकृष्ण के कहे सार युक्त वचन बलराम के कथन का उल्लंघन नहीं कर सकते हैं यह सूचित करने के लिए बलराम के मुख से यह कथन प्रस्तावित है।

सूक्ति – तृप्ति योग : परेणापि महिम्ना न महीयसाम्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत सूक्ति में बलराम जी प्रकारान्तर से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि राजाओं के लिए सन्तुष्ट होना कदापि उचित नहीं होता हैं।

व्याख्या – बलराम जी कह रहे है कि संतोष करना हानिकारक भी हैं जो राजा लोग थोडी भी सम्पत्ति से अपने को सुरक्षित मानता है। कृतकृत्य ब्रह्मा उसकी उस सम्पत्ति को बढाते नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि हम लोगों को समृद्धिमान रहते हुए भी अर्जितमात्र से सन्तुष्ट

होकर चुप नहीं बैठना चाहिए। समृद्धि चाहने वाले बड़े लोगों को बड़ी समृद्धि से भी तृप्ति नहीं होती, इस विषय में चन्द्रमा के उदय को चाहने वाले महासमुद्र उदाहरण हैं।

सूक्ति – समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः।

प्रसंङ्ग – यह सूक्ति आत्मोदय रूप विषय को उपस्थापित करने के लिए कार्य के माध्यम से शत्रु–नाश निर्दिष्ट करने के लिए उदधृत ग्रंथकार के द्वारा की गई है अर्थात् पराक्रम से उपपादित उदय ही वास्तविक उदय है।

व्याख्या – शत्रुओं को मूलोच्छेदन पूर्वक नष्ट न करने वाले स्वाभिमानी पुरुष अभ्युदय को नहीं प्राप्त करते हैं, इस विषय में उदय होने के पहले रात्रि के गाढ अंधकार को नष्ट करने वाला सूर्य उदाहरण है। अर्थात् अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य को उदित होना पड़ता है। उसी तरह स्वाभिमानी पुरुष को आगे आना पड़ेगा।

सूक्ति – विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत सूक्ति में बलराम जी वीर पुरुष द्वारा शत्रु विनाशोपरान्त ही प्राप्त प्रतिष्ठा लाभ के विषय में अपना मत प्रतिपादित करते हैं।

व्याख्या – शत्रु का नाश किये बिना प्रतिष्ठा होना दुर्लभ है क्योंकि धूलि को बिना कीचड बनाये पानी भूमि पर नहीं ठहरता है। अतः विजयार्थी राजा शत्रु को परास्त करते ही यश प्राप्त कर लेता है।

सूक्ति – उपकर्त्राऽरिणासन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत सूक्ति में बलराम जी शत्रु तथा मित्र के व्यावहारिक लक्षण का प्रतिपादन कर रहे हैं।

व्याख्या – उपकार करने वाले शत्रु के साथ सन्धि करनी चाहिए किन्तु अपकार (बुराई–हानि) करने वाले मित्र के साथ नहीं। इस कारण इन दोनों (मित्र या शत्रु) के लक्षण उपकार और अपकार को लक्षित करते हैं। शिशुपाल अपकार कर्ता अर्थात् कृत्रिम शत्रु सिद्ध होता है। अतः उसके लिए सन्धि करना उचित नहीं है।

सूक्ति – बद्धमूलस्यमूलं हि मद्वैरतरोः स्त्रियः।

प्रसङ्ग – ग्रंथकार के द्वारा प्रस्तुत सूक्ति शत्रुता के कारणत्व को बताने के लिए बलराम के मुख से प्रस्तुत की गई है। शिशुपाल को कृत्रिम शत्रु प्रमाणित करते हैं –

व्याख्या – यहां बलराम श्रीकृष्ण को सूचित करते हैं कि स्त्री भी कभी शत्रुता का मूल कारण होती है। आप ने भी पहले शिशुपाल को प्रदत्त विदर्भराज कुमारी भीष्म कन्या रूक्मणी का हरण किया। उसी हरण से शिशुपाल बुआ का पुत्र होते हुए भी सहज मित्रत्व को छोड़कर कृत्रिम शत्रु हो गया। क्योंकि दृढमूल वाले वैररूपी वृक्ष की जड़ स्त्रियाँ ही होती है। अतः रुक्मिणी के हरण के कारण शिशुपाल के साथ वैर होना कोई नयी बात नहीं है।

सूक्ति – समानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः।

प्रसङ्ग – बलराम जी द्वारा संकटग्रस्त शत्रु पर आक्रमण के संदर्भ में स्वाभिमानी मनुष्य की पक्षता का प्रतिपादन करने के अन्तर शारीरिक बल तथा नियंत्रित बल के अनन्तर को स्पष्ट कर रहे हैं –

व्याख्या – अबाध रूप से पीडित करने वाला बल अन्य प्रकार का होता है तथा इसी प्रकार शास्त्र द्वारा नियंत्रित बल अन्य प्रकार का होता है क्योंकि प्रकाश तथा अंधकार का एक समय में समान रूप से उपस्थित होना कैसे संभव हो सकता है? जब प्रकाश होता है तब अंधकार नहीं होता तथा अंधकार होने पर प्रकाश नहीं होता उसी प्रकार नियंत्रण रहित स्वतंत्र बल तथा शास्त्र से नियंत्रित बल दोनों में समानता नहीं लाई जा सकती है।

सूक्ति – सर्वः स्वार्थं समीहते।

प्रसङ्ग – बलराम जी द्वारा शत्रु की राजधानी को घेर लेने के निर्देश के अनन्तर अपनी लक्ष्य पूर्ति की मङ्गलकामना अभिव्यक्त कर रहे हैं –

व्याख्या – जिस प्रकार युधिष्ठिर इन्द्र तथा सूय दूसरे के कार्य साधन की अपेक्षा न करके अपने अपने यज्ञादि कार्यों में संलग्न हैं। युधिष्ठिर यज्ञ करें, इन्द्र स्वर्ग की रक्षा करें, सूर्य प्रकाशित होवें तथा हम शत्रुओं का वध करें क्योंकि सभी स्वार्थ साधना चाहते हैं अर्थात् सभी व्यक्ति अपने लक्ष्य को पूरा करना चाहते ह यही शुभकामना है।

सूक्ति – मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते ।

प्रसङ्ग – उद्धव जी क्षमायुक्त तेजस्विता की श्रेष्ठता को दीपक के उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करते हैं–

व्याख्या – उद्धव कहते हैं कि कोमलता से ढका हुआ तेज ही राज्यादि विषयों को भोगने के लिए योग्य होता है। जिस प्रकार भीतर विद्यमान वर्तिका के द्वारा ही जलता हुआ दीपक तेल को ग्रहण करने में समर्थ होता है।

सूक्ति – अयथाबलारम्भो निदानं क्षयसम्पदः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत सूक्ति के माध्यम से उद्धव जी शक्ति के समुचित प्रयोग से ही शत्रु के कृत्यों का निदान बतला रहे हैं।

व्याख्या – उद्धव जी कहते हैं कि शक्य विषय में क्षमाशील सप्ताङ्गवाले राजाओं की भी प्रभुत्व, मंत्र, उत्साह आदि की शक्ति द्वारा पुष्टि देखी जाती है। अपनी शारीरिक क्षमता के प्रतिकूल व्यायाम प्रारंभ किया जाता है तो उस मनुष्य में क्षय रोग का कारण स्पष्टतया बन जाता है अर्थात् शक्ति विस्तार का कार्य करता है तो वह उसकी राजनीतिक हानि का कारण भी बन जाता है। अतः शक्ति का समुचित प्रयोग करना चाहिए।

सूक्ति – उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।

प्रसङ्ग – उद्धव जी के द्वारा अकर्मण्य तथा कर्मठ व्यक्ति की कार्यप्रवृत्ति को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करने के अनन्तर कर्मठ व्यक्ति की कार्यप्रवृत्ति में आलस्य की बाधकता का निरूपण प्रस्तुत सूक्ति में प्रतिपाद्य दृष्टिगोचर होता है।

व्याख्या – उपाय से भी कार्य करते हुए ही प्रमादी पुरुष के कार्य बिगड़ जाते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं अतः विशेष कार्यों में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। सोने वाला शिकारी मृगों के मार्ग में स्थित व्याधों के छिपकर रहने के गड्डे में रहता हुआ भी मृगों को नहीं मारता है। अतएव विजयार्थी को प्रमाद कदापि नहीं करना चाहिए अन्यथा वह समीपस्थ और आपदग्रस्त शत्रु को भी नहीं मार सकता है।

सूक्ति – बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत सूक्ति में उद्धव जी प्रबल सहाय पक्ष के कारण शिशुपाल की दुर्जेयता का कथन कर रहे हैं।

व्याख्या – अत्यधिक सहायकों वाला होने पर क्षुद्रतर व्यक्ति भी अपने कार्य के अन्त तक अर्थात् कार्य की सफलता पाने तक पहुंच जाता है। सहायकों के बल पर लक्ष्य प्राप्ति तक पहुंच जाता है। जैसे छोटी पहाड़ी नदी गंगा जैसी बड़ी नदी के साथ मिलकर समुन्द्र तक पहुंच जाती है।

सूक्ति – महात्मनोऽनुगृह्णन्ति भजमानान् रिपूनपि।

प्रसङ्ग – पस्तुत सूक्ति में उद्धव जी महापुरुषों के परहित साधन की दृष्टि से भी युधिष्ठिर के प्रति श्रीकृष्ण की भावी उपकारशीलता का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या – पहले स्वीकार कर पुनः छोडने पर दोष होता है किन्तु पहले से ही यज्ञ भार वहन करने का निषेध कर दिया होता तो हमारे ऊपर कोई दोष नहीं आता। इस कृष्णादि की आशंका का उद्धव जी निवारण करते हैं जैसे गंगा आदि महानदियां सपत्नी रूप पहाड़ी नदियों को पतिरूप समुद्र के पास पहुंचा देती हैं। उसी प्रकार महापुरुष भी अपने बन्धुरूप

परिवार वालों को अवश्य ही कार्यसफलता प्रदान करते ही हैं। अतः युधिष्ठिरादि पाण्डव भी तो आपके बन्धु हैं। अतः उनके प्रति कृपालु होने के विषय में कोई संशय नहीं है।

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

प्रकृति तथा पुरुष – सांख्यदर्शन में यह माना जाता है कि इस सृष्टि में कुल 25 तत्व हैं। इनमें मुख्य तत्त्व है – प्रकृति तथा पुरुष। प्रकृति जड़ है, पुरुष चेतन है।

मितभाषिता – श्री कृष्ण का वक्तव्य पर्याप्त संक्षिप्त एवं सरल था। वे परिमित शब्दों में अपनी बात कहकर रुक गये। तब मितभाषिता नामक गुण की महत्ता को कवि प्रस्तुत सूक्ति में प्रतिपादित करता है कि महापुरुष स्वाभाविक रूप से कम बोलने वाले होते हैं। लम्बी किन्तु सारहीन बात बोलना उन्हें पसन्द नहीं है।

त्रयांगुणा – माघ में तीन गुण हैं । (1) उदमा (2) अर्थगौरव (3) पदला तित्य

पञ्चसंधि – कौटिल्य के अनुसार पञ्च संधियां मानी गयी हैं । (1) संधि (2) विग्रह (3) यान (4) आसन (5) द्वैधिभाव

7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. माघ ने।
2. इन्द्र का।
3. उद्धव से।
4. भावप्रवणता कालिदास से, कलात्मकता भारवि से तथा पाण्डित्य भट्टि से लिया है।
5. माघ के संबंध में
6. 16 छन्दों का।
7. वीर रस
8 उपमा अर्थगौरव एवं पदलालित्य।
9. कालिदास को।
10. भारवि
11. देखिए – 6.4
12. देखिए – 6.5
13. देखिए – 6.5
14. देखिए – 6.5
15. देखिए – 6.5
16. देखिए – 6.6 सूक्ति व्याख्या
17. देखिए – 6.6
18. देखिए – 6.6

7.9 सारांश

नारद जी के लौटने के उपरान्त धर्मराज युधिष्ठिर से राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होकर सहायता करने के लिए निमन्त्रित श्रीकृष्ण भगवान् को मित्रकार्य–सम्पादनार्थ युधिष्ठिर यज्ञ में सम्मिलित होने हस्तिनापुर जाना चाहिए या देवकार्य सम्पादनार्थ शिशुपाल के साथ युद्ध करने चेदिदेश जाना चाहिए ? इस विषय में संशयालु होकर मन्त्रणा करने के लिए मंत्री एवं चाचा उद्धव जी तथा अग्रज बलराम जी के साथ मन्त्रणा गृह में पहुंचे और हम लोगों के बिना भी युधिष्ठिर लोकविजय भीम, अर्जुन आदि भाइयों के साथ यज्ञ कर सकते हैं, अतएव जगत्पीडनकर्ता शत्रु की उपेक्षा करना उचित प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार अपना अभिमत व्यक्त करते हुए उन लोगों से अपनी–अपनी सम्मति देने की प्रार्थना की। पद एवं अवस्था में

बड़े होने के कारण यद्यपि उद्धवजी पहले बोलना चाहते थे, तथापि मद के नशे में चूर अधिक क्रुद्ध होने से उत्पन्न स्वेदबिन्दुओं से आर्द्र एवं रक्तवर्ण शरीर वाले बलराम जी को बोलने का इच्छुक जानकर वे चुप हो गये। तदनन्तर बलराम जी ने अनेकविध युक्त तथा दृष्टान्तों के द्वारा श्रीकृष्ण भगवान् के वचन का समर्थन करते हुए शीघ्रातिशीघ्र शिशुपाल के प्रति अभियान करने के लिए अपनी सम्मति दी। तदनन्तर श्रीकृष्ण भगवान ने नेत्र का संकेत कर उद्धव जी को अपनी सम्मति देने के लिए कहा। उनका संकेत पाकर उद्धव जी ने तर्कपूण विविध युक्तियुक्त वचनों से बलराम जी के प्रत्येक वचन का खण्डन कर धर्मराज युधिष्ठिर के यहाँ यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए कहा तथा उन्होंने यह भी कहा कि अपने गुप्तचरों द्वारा शिशुपाल के पक्ष के राजाओं में फूट डालना तथा अपने पक्ष के राजाओं को युद्ध के लिए तैयार होकर युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए सूचित कर देना चाहिए क्योंकि जब युधिष्ठिरादि पाण्डव आप (श्रीकृष्ण भगवान) की अधिक भक्ति एवं पूजासत्कार करने लगेंगे तब उसे सहन नहीं करता हुआ चपलप्रकृतिक शिशुपाल आपकी निन्दा करने लगेगा। इस प्रकार अपनी बुआ शान्तनवी, सात्वती के प्रति शिशुपाल सौ अपराधों को सहन करने के पूर्व प्रतिज्ञात वचन का सम्यक् पालन कर चुकने पर जब आप शिशुपाल का वध करेंगे तब उसके यहां चढाई करने के उद्देश्य की सिद्धि उसी हस्तिनापुर में स्वतः सम्पन्न हो जायेगी। राजनीति–निपुण पितृव्य एवं मन्त्री उद्धवजी के वचन के अनुसार ही कार्य करने का निर्णय कर श्रीकृष्ण सभा विसर्जित कर कार्यान्तर साधन में लग गये।

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास,डॉ. जयकृष्ण खण्डेलवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985.
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास,आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा निकेतन वाराणासी, 1995.
3. शिशुपालवधम्,(व्याख्याकार)हरगोविन्द शास्त्री ,चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय वाराणासी,1978.

इकाई– 8

सभाभवन में श्रीकृष्ण, बलराम एवम् उद्धव की मन्त्रणा से सम्बन्धित वर्णन

(शिशुपालवधम् द्वितीय सर्ग, श्लोक 1 से 40)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 श्लोकों का सप्रंसग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरणगत टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य, छंद, अलंकार आदि

8.3 पारिभाषिक शब्दावली

8.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.5 सारांश

8.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में शिशुपालवध महाकाव्य के द्वितीय सर्ग 'मंत्र वर्णन' नामक सर्ग के श्लोकों में निहित अंलकृत शैली से शिक्षार्थी परिचित हो सकेंगे। जनता को पीड़ित करने वाले शिशुपाल के कृत्यों एवं समस्या से सम्बन्धित समाधानों की जानकारी प्राप्त होगी। शिक्षार्थी महाकवि माघ के काव्यत्व से परिचित हो सकेंगे। शत्रु एवं मित्र का विवेचन जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में माघ का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वे बृहत्त्रयी की मध्यमणि के रूप में अपने सर्वातिशायी व्यक्तित्व को लेकर उपस्थित होते हैं तथा संस्कृत साहित्य में एक पारम्परिक श्रेष्ठ काव्य सृजन की नूतन पद्धति की स्थापना करते हैं। माघ की रचना शिशुपालवध महाकाव्य में बीस सर्ग हैं। जिसके द्वितीय सर्ग में श्रीकृष्ण इस ऊहापोह में पड़ जाते हैं कि वे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जायें अथवा शिशुपाल के वध के लिए उस पर आक्रमण करें। सभा भवन में जाकर बलराम और उद्धव के साथ विचार–विमर्श करते हैं। उक्त मंत्रणा का प्रस्तुत श्लोकों में वर्णन हैं।

8.2 श्लोंकों का सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरणात्मक टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य छंद, अलंकार आदि

शिशुपालवध (द्वितीय सर्ग)

यियक्षमाणेनाहूतः पार्थेनाथ द्विषन्मुरम्।
अभिचैद्यं प्रतिष्ठासुरासीत्कार्यद्वयाकुलः।। 1।।

अन्वय – अथ यियक्षमाणेन पार्थेन आहूतः अभिचैद्यं प्रतिष्ठासुः मुरं द्विषन् कार्यद्वयाकुलः आसीत्।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक महाकवि माघविरचित 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग 'मंत्र वर्णन' नामक सर्ग से अवतरित है। इन्द्र के संदेश को कहने के उपरांत नारद जी चले जाते हैं। उनके चले जाने पर श्रीकृष्ण द्वैधीभावजन्य व्याकुलता में पड़ जाते हैं। उसका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं –

अनुवाद – इस (इन्द्र का संदेश नारदजी से सुनने तथा उसकी स्वीकृति पाकर नारदजी के चले जाने) के बाद यज्ञ करने के इच्छुक पृथापुत्र (युधिष्ठिर) के द्वारा निमंत्रित तथा

शिशुपाल के यहां (युद्ध करने के लिए) यात्रा करने के इच्छुक श्रीकृष्ण भगवान् (परस्पर विरोधी) दो कार्यों (के उपस्थित होने) से व्याकुल थे।

भावार्थ – नारद के चले जाने पर कृष्ण चिंताव्यग्र हो जाते हैं। एक तरफ युधिष्ठिर के यज्ञ में जाना उचित था और दूसरी ओर इन्द्र के आदेश से शिशुपाल का वध करने का आदेश था। दोनों ही कार्य अपरिहार्य हैं। अतः किसको प्राथमिकता दी जाये कृष्ण इसी द्वैधीभाव में पड़ गये हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

यियक्षमाणेन	–	यज्, + सन् + शानच् (लट्) + टा तृ. एक.।
पार्थेन	–	पृथा + अण् 'तस्येदम्' सूत्र से अण्।
आहूतः	–	आ + ह्वे + क्त।
द्विषन्	–	द्विष् + शतृ।
अभिचैद्यम्	–	चैद्यम् अभि (अव्ययीभाव समास) 'अभिरभागे' सूत्र से अभि के योग में द्वितीया।
कार्यद्वयाकुल	–	कार्ययोः द्वयम् (षष्ठी तत्पुरुष) तेन व्याकुलः (तृतीयातत्पुरुष)।

छन्द – अनुष्टुप्।

लक्षण – श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम्। द्विचतुष्पादयो ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अलंकार – स्वभावोक्ति।

'सार्धमुद्धवसीरिभ्यामथासावासदत्सदः।
गुरुकाव्यानुगां बिभ्रच्चान्द्रीमभिनभः श्रियम्।। 2।।

अन्वय – अथ असौ अभिनभः गुरुकाव्यानुगां चान्द्रीं श्रियं बिभ्रत् उद्धवः सीरिभ्यां सार्धं सदः असदत्।

प्रसंग – श्रीकृष्ण के द्वैधी भाव में पड़ने के अनन्तर उद्धव एवं बलराम जी के साथ मन्त्रणा गृह पहुंचते हैं।

अनुवाद – इस (परस्पर विरुद्ध दो कार्यों के एक साथ उपस्थित होने पर श्रीकृष्ण भगवान् के व्याकुल होने) के बाद ये (श्रीकृष्ण भगवान्) उद्धव (अपने पितृव्य एवं मंत्री) तथा बलरामजी (अपने बड़े भाई) के साथ आकाश में बृहस्पति तथा शुक्र जिसके पीछे चल रहे हों, उस चन्द्र–सम्बन्धिनी शोभा को ग्रहण करते हुए सभास्थान को गये।

भावार्थ – इस उपमा से जिस प्रकार चन्द्रमा की अपेक्षा बृहस्पति तथा शुक्र की शोभा कम होती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् की अपेक्षा उद्धव तथा बलरामजी की शोभा कम थी और वे दोनों श्रीकृष्ण भगवान् के पीछे–पीछे चल रहे थे, यह सूचित होता है। श्रीकृष्ण भगवान् को चन्द्र, उद्धवजी को बृहस्पति, बलरामजी को शुक्र तथा सभामण्डप की आकाश के साथ उपमा दी गयी है। ।।2।।

व्याकरण टिप्पणी –

बिभ्रत्	–	डुभृञ् + शतृ
चान्द्रीम्	–	चन्द्रस्येमाम् (बहुव्रीहि समास)।
अभिनभ :	–	नभः अभि (अव्ययीभाव समास)।
अयासावसदत्	–	अय + असौ + असदत् (दीर्घ अयादि)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – निदर्शना।

लक्षण – यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना।

यहां चन्द्र, गुरु तथा शुक्र ग्रहों के साथ कृष्ण उद्धव तथा बलराम की तुल्यता निदर्शित की गई है।

जाज्ज्वल्यमाना जगतः शान्तये समुपेयुषी।
व्यद्योतिष्ट सभावेद्यामसौ नरशिखित्रयी।। 3।।

अन्वय – जगतः शान्तये समुपेयुषी जाज्वल्यमाना असौ नरशिखित्रयी सभावेद्यां व्यद्योतिष्ट।

प्रसंग – मन्त्रणा गृह में पहुंचने पर सभावेदी पर बैठे कृष्ण, उद्धव एवं बलराम की शोभा का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – संसार (में होने वाले उपद्रवों) की शान्ति के लिए एकत्रित तथा अतिशय दीप्यमान मानवरूपी अग्नित्रय (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीयाग्नि) सभामण्डपरूप वेदी पर शोभित हुआ।

भावार्थ – संसार की शान्ति के लिए एकत्रित अत्यधिक प्रज्वलित होती हुई दक्षिणाग्नि आदि तीनों अग्नि वेदी पर जिस प्रकार शोभित होती है और वैसा होने से संसार में शान्ति अवश्यमेव होती है, उसी प्रकार शिशुपालादि से पीड़ित संसार की शान्ति के लिए एकत्रित अपने–अपने तेज से दीप्यमान वे तीनों सभामण्डप में शोभित होने लगे, और इस सम्मिलन से संसार में अवश्यमेव शान्ति स्थापित होगी। यह भी सूचित हुआ।। 3।।

व्याकरण टिप्पणी –

जाज्वल्यमाना	–	ज्वल् + यङ् + शानच् + टाप्।
सूत्र	–	धातोरकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्।
समुपेयुषी	–	सम् + उप + इ क्वसु + ङीप्।
व्यद्योतिष्ट	–	वि+द्युत् + त (लुङ्)

छन्द – अनुष्टुप्।

अंलकार – रूपक।

विशेष – यज्ञ की तीन अग्नियां आहवनीय, दक्षिणाग्नि एवं गार्हपत्याग्नि हैं। विश्व कल्याण हेतु यज्ञ अग्नियों का सम्मिलन ही कृष्ण, उद्धव तथा बलराम के मिलने में आरोपित कर दिया गया है।

रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिमास्ते चकाशिरे।
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव।। 4।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में सभा में स्थित कृष्ण, उद्धव, बलराम के न्यूनसंख्यक होने पर भी रत्नस्तम्भों में प्रतिबिम्ब के फलस्वरूप अधिक संख्यता का वर्णन किया गया है।

अन्वय – रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिमाः ते एकाकिनः अपि परितः पौरुषेयवृता इव चकाशिरे।

अनुवाद – रत्न जड़े हुए खम्भों में प्रतिबिम्बित मूर्तिवाले वे तीनों अकेले रहते हुए भी पुरुष समुदाय से घिरे हुए के समान शोभायमान होते थे।

भावार्थ – यद्यपि खम्भों तथा खिड़कियों से रहित तथा बिना दीवाल के भीतर स्थित छत के ऊपर था, वन में मन्त्र करने के लिए शास्त्रकारों के कहने से और यहाँ पर रत्नजटित खम्भों का वर्णन होने से इस स्थान का मन्त्र के अयोग्य होना सूचित होता है, तथापि उक्त वचन एकान्त स्थान का उपलक्षण होने से यहाँ भी एकान्त स्थान होने से कोई दोष नही होता। ।। 4।।

व्याकरण टिप्पणी –

संक्रान्त	–	सम् + क्रमु + क्त।
परितः	–	परि + तसिल्, पर्यभिभ्यां च ' सूत्र से।
चकाशिरे	–	काश् + झ (लिट्)।
वृताः	–	वृञ् + क्त + जस्।
पौरुषेय	–	पुरुष + ढञ्।

रत्नस्तम्भेषु :– रत्नमयेषु स्तम्भेषु (मध्यमपदलोपी तत्पुरुष)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उत्प्रेक्षा।

अध्यासामासुस्तुङ्गहेमपीठानि यान्यमी।
तैरूहे केसरिक्रान्त त्रिकूटशिखरोपमा।। 5।।

अन्वय – अमी यानि उत्तुङ्ग हेमपीठानि अध्यासामासुः। तैः केसरिक्रान्तत्रिकूट शिखरोपमा ऊहे।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में स्वर्णपीठों पर विराजमान कृष्ण, उद्धव तथा बलराम की शोभा का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – ये तीनों जिन ऊंचे–ऊंचे स्वर्णमय सिंहासनों पर बैठे थे, उनसे तीन सिंहों से आक्रान्त अर्थात् जिन पर तीन सिंह बैठे हों ऐसे त्रिकूट पर्वत के तीनों शिखरों की समानता होती थी अर्थात् वे सिंहासन तीन सिंहो से अधिष्ठित त्रिकूट के शिखर जैसे मालूम पड़ते हैं। ।। 5।।

भावार्थ – सभा स्थल पर स्वर्णमय चमकने वाले आसन थे उन पर कृष्ण, उद्धव एवं बलराम तीनों विराजमान थे। इन की शोभा त्रिकूट पर्वत के तीनों शिखरों से की गई है। ये शिखर सिंहों से आक्रान्त होते हैं तो इनकी शोभा अनिर्वचनीय होती हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

अध्यासामासु	–	अधि + आस् + आम् + अस् + उस् (लिट्)। 'आस उपवेषने' लिट्।
ऊहे	–	वह् + त (एष्) लिट्
क्रान्त	–	क्रमु + क्त।

उत्तुङ्गहेमपीठानि – उत्तुङ्गानि च तानि हेमपीठानि (कर्मधारय)

केसरिक्रान्तत्रिकूट शिखरोपमा – केसरिभिः क्रान्ताः त्रिकूट शिखरास्तेषां उपमा (तत्पुरुष)

छन्द – अनुष्टुप्

अलंकार – उपमा

गुरुद्वयाय गुरुणोरुभयोरथ कार्ययोः।
हरिर्विप्रतिषेधं तमाचचक्षे विचक्षणः।। 6।।

अन्वय – अथ विचक्षणः हरिः गुरुद्वयाय उभयोः गुरुणोः कार्ययोः तं विप्रतिषेधम् आचचक्षे।

प्रसंग – आसन पर विराजने के पश्चात् श्रीकृष्ण उद्धव तथा बलराम के समक्ष अपनी समस्या व्यक्त करते हैं।

अनुवाद – इस (सभामण्डप में यथास्थान बैठन) के बाद आचार के ज्ञाता श्रीकृष्ण भगवान् ने बड़े–बड़े उन दो कार्यों (युधिष्ठिर के यहां यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए हस्तिनापुर को जाना तथा इन्द्रकार्यार्थ शिशुपाल को मारने के लिए चेदिदेश को जाना) के विप्रतिषेध (पारस्परिक समान विरोध) को दोनों गुरुजनों (चाचा उद्धवजी तथा बड़े भाई बलराम जी) से कहा ।। 6।।

भावार्थ – श्रीकृष्ण अपने मन में स्थित दोनों अपरिहार्य कार्यों को उद्धव एवं बलराम के सामने प्रस्तुत करते हैं कि युधिष्ठिर के यज्ञ में जाये या शिशुपाल का वध करने के लिए जाये यह अन्तर्द्वन्द्व है।

व्याकरण – टिप्पणी

विप्रतिषेधम्	–	वि+प्रति + षिघ् + घञ + अम्।
आचचक्षे	–	आङ् + चक्ष् + त (एष्) लिट्।

विचक्षण – वि + चक्ष् + ल्युट्।

गुरुद्वयाय – गुर्वोः द्वयं तस्मै (तत्पुरुष)।

विचक्षण – विचष्टे इति (उपपद समास)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अनुप्रास।

द्योतितान्तःसभैः कुन्दकुड्मलाग्रदतः स्मितैः।
स्नपितेवाभवत्तस्य शुद्धवर्णा सरस्वती ।। 7।।

अन्वय – कुन्दकुड्मलाग्रदतः तस्य सरस्वती द्योतितान्तः सभैः स्मितैः स्नपिता इव शुद्धवर्णा अभवत्।

प्रसंग – अपनी मनः स्थिति में कथ्यप्रस्तुति के समय श्रीकृष्ण की वाणी के वैशिष्ट्य का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – कुन्दकलिकाग्र के समान दांतवाले उन (श्रीकृष्ण भगवान्) की वाणी सभामध्य को प्रकाशित करने वाले स्मितों से नहलायी गयी के समान शुद्धवर्ण (स्पष्ट अक्षर–समुदायवाली, पक्षा. स्नान कराने से अतिशुभ्र रंगवाली) हुई ।।7।।

भावार्थ – जब श्रीकृष्ण ने बोलना प्रारम्भ किया तब उसके दाँत कुन्दकलिका के अग्रभाग की भाँति सुन्दर लग रहे थे, उनके हंसने से सभा मण्डप प्रकाशित हो रहा था। श्रीकृष्ण की वाणी उस प्रकाश से नहायी हुई प्रतीत हो रही थी।

व्याकरण टिप्पणी –

द्योतितः – द्युत् + क्त (सेट्)।

स्नपिता – श्णा + णिच् + क्त + टाप्।

शुद्धः – शुद्ध + क्त।

द्योतितान्तःसभैः – द्योतिता अन्तः सभा यैस्तैः (बहुव्रीहि)

कुन्दकुड्मलाग्रदतः – कुन्दकुड्मलानाम् अग्रणीव दन्ता यस्य तस्य (बहुव्रीहि)।

शुद्धवर्णा – शुद्धो वर्णः यस्याः सा, शुद्धावर्णा यस्यां सा (बहुव्रीहि)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उत्प्रेक्षा।

भवद्गिरामवसरप्रदानाय वचांसि नः।
पूर्वरङ्गः प्रसङ्गाय नाटकीयस्य वस्तुनः।। 8।।

अन्वय – भवद्गिराम् अवसरप्रदानाय नः वचांसि। (यथा) नाटकीयस्य वस्तुनः प्रसङ्गाय पूर्वरङ्गः (भवति)

प्रसंग – भगवान् श्रीकृष्ण ने अनुपम वाणी द्वारा उद्धव तथा बलराम के प्रति अपनी कथ्यप्रस्तुति की आधाररूपता को उक्त श्लोक में प्रतिपादित किया गया है।

अनुवाद – (श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि –) आप लोगों के वचनों को अवसर देने के लिए हमारे ये वचन हैं, क्योंकि नाटक सम्बन्धी कार्य पसंग के लिए पूर्वरङ्ग होता है।

भावार्थ – जैसे नाटक की पूरी तैयारी करने के लिए पहले देवस्तुति, गाना, बजाना आदि किये जाते हैं, वस्तुतः वे नाटक के विषय नहीं होते है, वैसे ही हम जो कह रहे हैं, वह वस्तुतः निर्णीत सिद्धान्त नहीं है, किन्तु आप लोगों को कहने का अवसर देने के लिए नाटकीय पूर्वरङ्ग के समान यत्किच्चिन्मात्र है।। 8।।

व्याकरण टिप्पणी –

प्रदानाय – प्र + डुदाञ् + ल्युट् + ङे (चतुर्थी)।

नाटकीयस्य – नाटक + छ + ङस् (षष्ठी)।

भवद्गिराम्	–	भवतोः गिरस्तासाम् (षष्ठी तत्पुरुष)
अवसरप्रदानाय	–	अवसरस्य प्रदानाय (षष्ठी तत्पुरुष)
वच	–	भारती भास्वती भर्गो गीर्वाणी वचनं वचः–कोश

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – प्रतिवस्तूपमा।

करदीकृतभूपालो भ्रातृभिर्जित्वरैर्दिशाम्।
विनाप्यस्मदलम्भूष्णुरिज्यायै तपसः सुतः।। 9।।

अन्वय – दिशां जित्वरैः भ्रातृभिः करदीकृतभूपालः तपसः सुतः अस्मद्विनापि इज्यायै अलम्भूष्णुः।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृत विषय के प्रस्तुतिकरण के अन्तर्गत अपने मन्तव्य में सर्वप्रथम यज्ञ का संदर्भ बता रहे हैं।

अनुवाद – (अब श्रीकृष्ण भगवान् अपना मत प्रकट कर रहे हैं –) दिग्विजयी भाइयों से राजाओं को करदाता बनाने वाले (जीतकर राजाओं से कर लेने वाले) धर्मराजपुत्र (युधिष्ठिर) हमारे बिना यज्ञ के लिए समर्थ हैं।

भावार्थ – युधिष्ठिर के भीम, अर्जुन आदि भाई दिग्विजयी हैं, उनके बल से पराजित सब राजा लोग युधिष्ठिर के लिए कर देते हैं, अतएव ऐसे बलशाली वे हम लोगों के यज्ञ में सम्मिलित नहीं होने पर भी निर्विघ्नतापूर्वक यज्ञ कर सकते हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

करदीकृत	–	कर + दा + क्विप् + च्वि + कृ + क्त।
जित्वरैः	–	जि + तुक् + क्वरप् + भिस्।
अलम्भूष्णुः	–	अलम् + भू + ग्स्नु।
इज्यायै	–	यज् + क्यप् : टाप् + ङे। सुतः – सुञ् + क्त + सु।

विशिष्ट शब्दार्थ –

तपः – ''तपष्चान्द्रायणादौ स्याद् धर्मे लोकान्तरेऽपि च''

कोष :-

दिशा – ककुत्काष्ठा दिशा दिक् च''

करः – ''भागधेयः करो बलिः''

करदीकृत भूपालः – अकरदाः करदाः सम्पद्यमानाः कृताः करदीकृता भूपालाः यस्य सः (बहुव्रीहिः)

भ्रातृभिर्जित्वरैर्दिशां – भ्रातृभिः + जित्वरैः + दिशां (विसर्ग)

विनाप्यस्मत् – विना + अपि + अस्मत् (दीर्घ, यण्), अलम्भूष्णुरिज्यायै अलम्भूष्णुः + इज्यायै (विसर्ग)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलकांर – विनोक्ति

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च ।। 10।।

अन्वय – उत्तिष्ठमनः परः तु पथ्यम् इच्छता न उपेक्ष्यः। हि वर्त्स्यन्तौ आमयः सः च षिष्टैः समौ आम्नातौ।

प्रसंग – यज्ञ का संदर्भ बताने के अनन्तर श्रीकृष्ण ने शत्रु के विषय में विषिष्ट सचेत होने की बात कहीं है तथा शत्रु की उपेक्षणीयता नहीं करने का प्रतिपादन किया है।

अनुवाद – (यज्ञ में सम्मिलित होकर उसके पूरा होने के बाद विजय के लिए प्रस्थान करना उचित नहीं है, क्योंकि) हिंताभिलाषी व्यक्ति को बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि बढ़ने वाले रोग तथा शत्रु को शिष्टों (राजनीतिज्ञ विद्वानों) ने समान (घातक) कहा है।

भावार्थ – जिस प्रकार बढ़ते हुए रोग की उपेक्षा करने पर वह रोगी को मारने वाला हो जाता है, उसी प्रकार बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा करने पर वह भी विपक्षी को पराजित करने वाला होता, अतः शिशुपाल का वध करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये।

व्याकरण टिप्पणी–

उत्तिष्ठमान	–	उत् + स्था + मुम् + शानच् + सु।
उपेक्ष्यः	–	उप + ईक्ष् : ल्यप्।
पथ्यम्	–	पथिन् + यत्र।
वर्त्स्यन्तौ	–	वृध् + लृट् (स्य) + शतृ + औ।
आम्नातौ	–	आङ् + म्ना + क्त + औ।
उत्तिष्ठमानस्तु	–	उत्तिष्ठमान्ः + तु (विसर्ग), नोपेक्ष्यः – न + उपेक्ष्यः (गुण)
शिष्टैराम्नातौ	–	शिष्टैः + आम्नातौ (विसर्ग)
वर्त्स्यन्तावामयः	–	वर्त्स्यन्तौ + आमयः (अयादि)
सूक्ति	–	उत्तिष्ठमानास्तु परो नोपेक्ष्य पथ्यमिच्छता।

कोष – आमय – ''रोगव्याधिगदामयाः''।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा एवं दृष्टान्त।

न दूये सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति।
यत्तु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम्।।11।।

अन्वय – सात्वतीसूनुः यत् मह्यम् अपराध्यति, (ततः) न दूये। तु यत् लोकं दन्दह्यते अदः मां दुःखाकरोति।

प्रसंग – उक्त श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण शिशुपाल द्वारा की जा रही प्रजापीडन की प्रवृत्ति के प्रति अपना क्षोभ व्यक्त कर रहे हैं–

अनुवाद – सात्वती (मेरी बुआ–फूआ) का पुत्र (शिशुपाल) जो मेरे साथ अपराध करता है, इस कारण मैं दुःखित नहीं होता हूँ, किन्तु जो लोगों को बुरी तरह सन्तप्त (पीड़ित) करता है, यह (लोकपीडन) मुझे दुःखित करता है।

भावार्थ – श्रीकृष्ण कहते हैं कि शिशुपाल केवल मेरे प्रति अपराध करता है उससे में उतना पीड़ित नहीं होता हूँ किन्तु वह जनता को बार–बार पीड़ित करता है उससे मैं दुःखी हो रहा हूँ।

व्याकरण टिप्पणी –

दन्दहयते	–	दह् + यङ् + त (लट्)।
अपराध्यति	–	अप् राघ् + यक् + तिप्।
दुःखाकरोति	–	दुःख + डाच् + कृ + तिप् (लड़्)
सात्वतीसूनुः	–	सात्वत्याः सूनुः (षष्ठी तत्पुरुष)
यत्तु	–	यद् + तु (हल् सन्धि)
सात्वती	–	सत्वत + अण् + ङीप्

छन्द – अनुष्टुप।

अलंकार – हेतु अलंकार।

मम तावन्मतमिदं श्रूयतामङ्ग वामपि।
ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धः कार्यवस्तुनि ।।12।।

अन्वय – तावत् मम इदं मतम् अङ्ग। वाम् अपि श्रूयताम्। ज्ञातसारः अपि एकः कार्यवस्तुनि सन्दिग्धः खलु।

प्रसंग – उक्त श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण अपने वक्तव्य का उपसंहार प्रस्तुत करते हैं।

अनुवाद – (अपने कथन का उपसंहार करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् कहते है–) मेरी यह राय है – हे अङ्ग। आप दोनों की भी राय मुझे सुननी चाहिये, क्योंकि सारभूत तत्व को जानता हुआ भी एक व्यक्ति कर्तव्य कार्य में संदेह युक्त रहता है।

भावार्थ – यहां पर श्रीकृष्ण भगवान् ने उद्धव तथा बलरामजी को अतिशय सामीप्यसूचक 'अङ्ग' शब्द से सम्बोधित कर उनकी बातों को सुनना तथा तदनसार उचित कार्य करने में ही अपनी सम्मति होना सूचित किया है।

व्याकरण टिप्पणी–

मतम्	–	मन् + क्त।,
ज्ञात	–	ज्ञा + क्त।
संदिग्ध	–	सम् + दिह् + क्त।,
कार्य	–	कृ + ण्यत्।
ज्ञातसार	–	ज्ञातः सारो येन सः (बहुव्रीहि)।
कार्यवस्तुनि	–	कार्यमेव वस्तु तस्मिन् (कर्मधारय)

छन्द – अनुष्टुप्।

अंलकार – अर्थान्तरन्यास।

यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः।।13।।

अन्वय – एवं माधवः यावदर्थपदां वाचम् आदाय विरराम। महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः।

प्रसंग– अपने मत प्रस्तुतीकरण के उपरान्त कृष्ण के चुप हो जाने में मितभाषिता नामक गुण की महत्ता का प्रतिपादन है।

अनुवाद– इस प्रकार परिमित अर्थ–पदवाला वचन कहकर श्रीकृष्ण भगवान् चुप हो गये, क्योंकि बड़े लोग स्वभाव से ही थोड़ा बोलते हैं। (बात को बढ़ा–चढाकर नहीं बोलते)।

भावार्थ – महापुरुषों का स्वभाव ही इस प्रकार का होता है कि वे मितभाषी होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण स्वकीय मितभाषिता का परिचय देने के लिए इस सभा में बहुत कम बोले हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

आदाय	–	आङ् + दा + ल्यप्।
महीयांस	–	महत् + ईयसुन् + जस्।
पकृत्या	–	प्र + कृ + क्तिन् + टा।
मितभाषिण	–	मित + भाण् + इनि + जस्
यावदर्थपदाम्	–	यावदर्थ पदानि यस्यास्ताम्।
मितभाषिण	–	मितं भाषन्ते ते (उपपद समास)
सूक्ति	–	महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा।
ओष्ठेन रामो रामौष्ठबिम्बचुम्बनचञ्चुना ।।14।।

अन्वय – ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा रामोष्ठबिम्बचुम्बनचञ्चुना ओष्ठेन रामः (जगाद)।

प्रसंग – भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अपना वक्तव्य समाप्त करने के उपरान्त श्री बलरामजी के बोलने का वर्णन 8 श्लोकों के कुलक द्वारा कह रहे हैं –

अनुवाद – तदनन्तर (श्रीकृष्ण भगवान के ऐसा कह कर चुप होने के बाद) शत्रु (शिशुपाल) के
अपराधों के स्मरण होने से उत्पन्न क्रोध से काँपते हुए, रेवती के ओष्ठ–बिम्ब के चुम्बन में प्रसिद्ध ओष्ठ से बलराम जी (बोले)।

भावार्थ – शत्रु के अपराध स्मरण से ओष्ठकम्पन होने से बलराम जी का शूरवीर होना तथा रेवती के ओष्ठबिम्बके चुम्बन में प्रसिद्ध कहने से बलरामजी का विलासी होना सूचित होता है (इस श्लोक में कर्तृ पद 'राम' है और 21 वें श्लोक में क्रियापद 'जगाद' है। अतः अग्रिम आठवें (21 वें) श्लोक में क्रियापद होने से यह 'कुलक' कहा जाता है। सभी श्लोक में जगाद का अध्याहार होने से 'बलरामजी बोले' ऐसा अर्थ होगा।

व्याकरण टिप्पणी–

स्मरण – स्मृ + ल्युट्।

अनुशयस्फुरा – अनुशय + स्फुर + क्विप् + टा।

चुम्बन चञ्चुना – चुम्बन + चञ्चुप् + टा।

सपत्नापनयस्मरणानुषयस्फुरा – सपत्नानाम् अपनयस्य स्मरणेन यो अनुशयस्तेन स्फुरतीति (तत्पुरुष मूल के उपपद समास)।

चुम्बनचञ्चुना – चुम्बनेन चञ्चु तेन (तत्पुरुष)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा, अनुप्रास

विवक्षितामर्थविदस्तत्क्षण प्रतिसंहृताम्।
प्रापयन् पवनव्याधेर्गिरमुत्तरपक्षताम्।।15।।

अन्वय – विवक्षितां तत्क्षणप्रतिसंहृताम् अर्थविदः पवनव्याधेः गिरम् उत्तरपक्षतां प्रापयन्।

प्रसंग – उद्धव जी से पूर्व बलराम जी के बोलने के कारण उद्धव जी की वाणी की उत्तर पक्षता के लिए बलराम जी वाणी की पूर्वपक्षता सिद्ध की जा रही है।

अनुवाद – कहने के लिए अभिलषित (किन्तु बलरामजी को बोलते हुए देखकर) तत्काल ही निवर्तित (रोके गये) कार्यपटु उद्धवजी के वचन को उत्तरपक्ष (सिद्धान्तरूप) में स्थापित करते हुए (बलरामजी बोले)।

भावार्थ – बलराम के कथन में उद्धव के कथन की अपेक्षा व्यग्रता अधिक थी। उद्धव का कथन सिद्धान्त पक्ष की भूमिका के रूप में बलराम के पूर्व पक्ष को स्थापित करना चाहते हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

विवक्षताम् – वि + वच् + सन् + क्त् + टाप् + अम्।

अर्थविदः – अर्थ + विद् + क्विप् + ङस्।

प्रतिसंहृताम् – प्रति + सम् + हृ + क्त + टाप्।

प्रापयन् – प्र + आप् + णिच् + शतृ।

पक्षताम् – पक्ष + तल् + टाप्।

अर्थविद् – अर्थं वत्तीति तस्य (उपपद समास)।

तत्क्षण प्रतिसंहृताम् – तत्क्षणे प्रतिसंहृता या ताम् (सुप्सुपा समास)।

पवनव्याधेः – पवनेन व्याधिर्यस्य तस्य (बहुव्रीहि)।

छन्द – अनुष्टुप्

घूर्णयन् मदिरास्वादमदपाटलितद्युती।
रेवती–वदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ ।।16।।

अन्वय – मदिरास्वादमदपाटलितद्युती रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ घूर्णयन् (बलरामो जगाद)।

प्रसंग – बलराम जी के द्वारा वक्तव्य प्रस्तुत करते समय उनके नेत्रों के सौंदर्य का वर्णन उक्त श्लोक में किया गया है।

अनुवाद – मद्यपान करने से उत्पन्न नषे में रक्तवर्ण तथा रेवती के मुख से जटे (मद्यपान आदि) से शुद्ध प्रान्तों (या पलकों) वाले दोनों नेत्रों को घुमाते हुए (बलराम जी बोले)।

भावार्थ – रतिकाल में स्त्री का मुख शुद्ध होने से जब रेवती ने उनके नेत्रों का चुम्बन किया तब भी वे अपवित्र नहीं हुए, रतिकाल में नेत्र का चुम्बन करना भी काम शास्त्र म वर्णित है।

व्याकरण टिप्पणी –

घूर्णयन् – घूर्ण + णिच् + शतृ।

आस्वाद – आङ् + स्वद् + घञ्।

पाटलित – पाटला + इतच्।

द्युति – द्युत् + क्तिन्।

उच्छिष्ट – उत् + शिष् + क्त।

परिपूत – परि + पूञ् + क्त।

मदिरास्वादमदपाटलितद्युती – मदिराया आस्वादेन यो मदस्तेन पाटलिता द्युतिर्ययोस्ते (बहुव्रीहि)।

रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे – रेवत्या वदनेन उच्छिष्टे अतएव च परिपूत पुटे ययोस्ते (बहुव्रीहि)।

छन्द – अनुष्टुप्

अलंकार – विरोधाभास।

आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीम्।
म्लापयन्नभिमानोष्णैर्वनमालां मुखानिलैः ।।17।।

अन्वय – आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीं वनमालाम् अभिमानोष्णैः मुखानिलैः म्लापयन् (बलरामः जगाद)।

प्रसंग – बलराम जी के बोलने के समय उनके श्वास की विशेषता तथा प्रभावकारिता उक्त श्लोक में वर्णित की गयी है।

अनुवाद – आलिङ्गन करने की विशेष अभिलाषा करने वाली रेवती के स्तनों की कठोरता को जानने वाली वनमाला को अभिमान से उष्ण मुखवायु (ष्वास वायु) से मलिन करते हुए (बलरामजी बोले)।

भावार्थ – पैर तक लटकती हुए पुष्पमाला को वनमाला कहते हैं, उसे पहने हुए बलराम ने आलिङ्गन चाहने वाली रेवती का आलिङ्गन किया, इससे वे माला के पुष्प मर्दित हो गये, क्योंकि रेवती के स्तन कठोर थे, अतएव उनकी कठोरता को जानने वाली वह वनमाला ही

थी। ऐसी वनमाला को बोलते समय अभिमानपूर्ण वचन बोलने से उष्ण श्वासवायु द्वारा मलिन करते हुए बलराम जी बोले। मुख से निकली हुई वायु स्वतः उष्ण होती ह, किन्तु अभिमानपूर्वक बोलने के समय निकली हुई मुखवायु विशेष उष्ण थी, उससे पुष्पमयी कोमल वनमाला मलिन होना उचित ही था।

व्याकरण टिप्पणी–

आश्लेष – आङ् + श्लिष् + घञ्।

कार्कष्य – कर्कष + श्यञ्।

साक्षिणीम् – साक्ष + इनि + ङीप् + अम्।

म्लापयन् – म्ल + पुक् + शतृ।

आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीम् – आष्लेषाय लोलुप या वध्वः तासां स्तनयोः कार्कश्यस्य साक्षिणीम्। (तत्पुरुष)

अभिमानोष्णैः – अभिमानेन उष्णैः (तृतीया तत्पुरुष)

मुखानिलः – मुखस्य अनिलैः (षष्ठी तत्पुरुष)

छन्द – अनुष्टुप्

अलंकार – अतिशयोक्ति।

दधत्सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः।
द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः स्वेदविप्रुषः ।।

अन्वय – सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः स्वेदविप्रुषः दधत् (बलरामः जगाद)।

प्रसंग – बलराम जी के बोलने के समय उनके शरीर पर विद्यमान पसीने की बूंदों का वर्णन उक्त श्लोकों में किया गया हैं।

अनुवाद – सायंकालीन अरूणवर्ण आकाश में चमकती हुई ताराओं का अनुकरण करने वाली (उन ताराओं के समान दिखने वाली), शत्रु के विषय में उत्पन्न विरोध से अरुणवर्ण शरीर में संसक्त स्वेदबिन्दुओं को धारण करत हुए (बलरामजी बोले)।

भावार्थ – बलराम जी का शरीर स्वतः अत्यन्त गौरवर्ण था और शिशुपाल पर क्रोध करने के कारण वह और अधिक लाल हो गया तथा उस पर कुछ पसीने की बूंदें चमकने लगी।

व्याकरण टिप्पणी –

दधत् – धा + शतृ + सु।

स्फुरत् – स्फु + शतृ।

अनुकारिणीः – अनु + कृ + णिनि + ङीप् + शस्।

द्विषत् – द्विष् + क्विप्।

उपरक्त – उप + रञज् + क्त।

सङ्गिनीः – सङ्ग + इनि + ङीप् + शस्।

सन्ध्यारुणव्योमस्फुरतारानुकारिणीः– सन्ध्यायाम् अरुणे व्योम्नि स्फुरतां ताराणाम् अनुकरणं यासान्ताः (बहुव्रीहिः) अथवा तारा अनुकुर्वन्तीति (उपपद)।

द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनी – द्विषतो द्वेषेण उपरक्ते अङ्गे सङ्गे यासान्ताः (बहु.)।

स्वेदविप्रुष – स्वेदजन्या विप्रुषः (मध्यमपदलोपी तत्पु.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोतपद्मरागदलत्विषा।
कृष्णोत्तरासङ्गरुचं विदधच्चौतपल्लवीम् ।।19।।

अन्वय –प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोतपद्मरागदलत्विषा कृष्णोत्तरासङ्गरुचं चौतपल्लवीम् विदधत् (बलरामो जगाद)।

प्रसंग – बोलते समय बलरामजी के कर्णाभूषणों की कान्ति की प्रभावशालिता का वर्णन उक्त श्लोक में किया गया है।

अनुवाद – अत्यधिक चमकते हुए कुण्डलों में जड़े गये पद्मराग मणियों के टुकड़ों की कान्ति से ओढ़े हुए अपने नीले दुपट्टे की कान्ति को आम्रपल्लव के समान करते हुए (बलराम जी बोले)।

व्याकरण टिप्पणी –

व्युत्पति – प्रोल्लसत् – प्र + उत् + लस् + शतृ। प्रोत + प्र + वेञ् + क्त। त्विषा :– त्विष् + क्विप् + टा। विदधत् :– वि + धा + शतृ। चौतपल्लवीं – चूतपल्लव + अण् + ङीप् + अम्।

प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोतपद्मरागदलत्विषा :– प्रोल्लसतां कुण्डलयोः प्रोतानां।

पद्मरागदलानां त्विषां (षष्ठी तत्पुरुषः), कृष्णोत्तरासङ्गरुचं :– कृष्णष्चासावुत्तरासङ्ग ।

(कर्मधा.) तस्य रुक् तां (षष्ठी तत्पु.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – निदर्शना।

ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया।
मुखामोदं मदिरया कृतानुव्याधमुद्वमन्।। 20।।

अन्वय – ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवसया मदिरया कृतानुव्याधं मुखामोदमुद्धमन्।

प्रसंग – बोलते समय बलराम जी क मुख से निकलने वाली शराब की गन्ध का वर्णन उक्त श्लोक में किया गया है।

अनुवाद – ककुद्मीकी कन्या (रेवती) के मुख में रहने से सुवासित मदिरा से संसृष्ट मुखसौरभ को उगलते (सभाभवन में फैलाते) हुए (बलरामजी बोले)।

भावार्थ – रेवती 'पद्मिनी' संज्ञक नायिका थी, उसने जिस मदिरा का पान किया। वह मदिरा स्वभावतः उसके मुख संसर्ग से सुवासित हो गयी और उस (उच्छिष्ट) मदिरा का बलरामजी ने ही पान किया, जिससे उनका मुख भी उसके संसर्ग सुवासित हो गया था।

रतिकाल में स्त्री का मुख शुद्ध रहने से उसके उच्छिष्ट मद का पान करना दूषित नहों माना गया है।

व्याकरण टिप्पणी –

अन्तर्वास	–	अन्तः + वस् + घञ्।
लब्ध	–	लभ् + क्त।
अमोदं	–	आङः मद्+ घञ् + अम्।
कृत	–	कृ + क्त।
उद्वमन्	–	उत् + वम् + शतृ।
कृतानुव्याधं	–	कृतः अनुव्याधः येन तं (बहुव्रीहिः)।

ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वार्सलब्धाधिवासया – ककद्मिकन्यायाः वक्त्रस्य अन्तर्वासेन लब्धः।

अधिवासः यया तया (बहुव्रीहिः), मुखामोद – मुखस्य आमोदं (षष्ठी तत्पु.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – तद्गुण।

जगाद वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः।
नयन्मधुलिहः श्वैत्यमुदग्रदशनांशुभिः।। 21 ।।

अन्वय – वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः मधुलिहः उदग्र दशनांशुभिः श्वैत्यं (बलराम) जगाद।

प्रसंग – बोलते समय बलराम जी के दाँतो की चमक की प्रभावशीलता का वर्णन कवि उक्त श्लोक में कर रहा है।

हिन्दी – मुखरूपी कमल के चारों तरफ (सौरभ ग्रहणार्थ) गिरते हुए भौरों को अत्यधिक दर्शनकान्ति से श्वेत करते हुए बलरामजी बोले।

भावार्थ – बलरामजी का मुख सुगन्ध से युक्त कमलतुल्य था, उसके सौरभ के लोभ से चारों तरफ से भौरे आ रहे थे। जब बलरामजी बोलने लगे, तब उनके दाँतों की स्वच्छतम कान्ति उन भौरों को श्वेत बना रही थी।

व्याकरण टिप्पणी –

पातिन	–	पत् + णिनि + शस्।
मधुलिह	–	मधु + लिह + क्विप् + शस्।
नयन	–	नी + शतृ।
वैत्यम्	–	वेत + ष्यञ्।
वदनछद्मपद्मपर्यन्त पातिन	–	वदनमेव छद्म यस्य तत् पद्म तस्य पर्यन्तं पतन्तीति तान्। (बहुव्रीहिमूलक उपपद समास)
उदग्रदशनांशुभि	–	उदग्रा दशनानामंशवस्ताभिः।

छन्द – अनुष्टुप

अलंकार – अपह्नुति एवं तद्गुण।

यद्वासुदेवेनादीनमनादीनवमीरितम्
वचसस्तस्य सपदि केवलमुत्तरम्।। 22।।

अन्वय – वासुदेवेन अदीनम् अनादीनवं यद्ईरितम्, तस्य वचसः सपदि क्रिया केवलम् उत्तरम्।

प्रसंग – कृष्ण के कथन के प्रति बलराम जी का वक्तव्य उक्त श्लोक में कहा गया है।

अनुवाद – कृष्णजी ने ओजस्वी (अकातर) तथा निर्दोष जिस वचन को कहा है, तत्काल कार्यरूप में परिणत करना ही उस वचन का उत्तर है (क्योंकि उन्होंनें सिद्धान्तभूत वचन कहा है)।

व्याकरण टिप्पणी –

वासुदेवेन	–	वसुदेव + अण् + टा।
ईरित	–	ईर् + (इट) + क्त।
अदीनं	–	न दीनमिति (नञ्)।
अनादीनवं	–	न आदीनवं (नञ् तत्पु.)
यद्वासुदेवेनादीनम्	–	यत् + वासुदेवेन (हल्संधि) + अदीनम् (दीर्घ.)
वचसस्तस्य	–	वचसः + तस्य (विसर्ग.)

छन्द – अनुष्टुप्।

नैतल्लघ्वपि भूयस्या वचो वाचाऽतिशय्यते।
इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम् ।। 23।।

अन्वय – लघु अपि एतद्वचः भूयस्या वाचा न अतिषय्यते। इन्धनौघधक् अपि अग्निः त्विषा पूषणं न अत्येति।

प्रसंग – उक्त श्लोक में सारयुक्त संक्षिप्त कथन के औचित्य को दृष्टांत के माध्यम से बताया गया है।

अनुवाद – थोड़े (परिमिताक्षर) भी इस (कृष्णोक्त) वचन का उल्लंघन अधिक विस्तृत भी वचन से नहीं किया जा सकता, क्योकि इन्धन–राशि को जलाने वाली भी अग्नि तेज से सूर्य का उल्लघंन नहीं करती है। ।। 23।।

व्याकरण टिप्पणी –

भूयस्या	–	बहु + इयसुन् + ङीप् + टा।
अतिशय्यते	–	अति + शीङ् + कर्मणि तिप् (लट्)। इन्धनौघधक् + इन्धनौघ + दह् + क्विप् + सु। त्विषा – त्विट् + टा।
अत्येति	–	अति + इण् + तिप्। पूषणं – पूषन् + अम्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – दृष्टान्त अलंकार।

संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः।
सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे ।। 24 ।।

अन्वय – अतः :– मे (बलरामस्येत्यर्थः), सुविस्तृततराः वाचः संक्षिप्तस्यापि अर्थगरीयसः अस्यैव वाक्यस्य भाष्यभूता भवन्तु।

प्रसंग – उक्त श्लोक में श्रीकृष्ण के संक्षिप्त वचन के समर्थन में बलराम अपने विस्तृत कथन का औचित्य प्रतिपादित करते हैं।

अनुवाद – अतएव अर्थात् सिद्धान्त भूत होने के कारण संक्षिप्त (अल्पाक्षर) होने पर भी अर्थगौरव युक्त यह (कृष्णोक्त) वचन के, अत्यन्त विस्तृत मेरे वचन भाष्यरूप हों।

भावार्थ – जिस प्रकार सूत्र बहुत थोड़े अक्षरों में परन्तु अर्थ गौरव से युक्त और सिद्धान्त रूप में कहा जाता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता और उन सूत्रों के अनुकूल ही कार्य का प्रतिपादन करने वाला विस्तृत भाष्य होता है, उसी प्रकार अल्पाक्षर होते हुए भी अर्थ गौरव से पूर्ण श्रीकृष्णोक्त वचन के सिद्धान्त को ही प्रतिपादन करने वाला में विस्तृत वचन कहूँगा।

व्याकरण टिप्पणी –

संक्षिप्तस्य	–	सम् + क्षिप् + क्त + ङस्।
वाक्यस्य	–	वच् + ण्यत् + ङस्।
गरीयसः	–	ग + ईयसुन+ङस्।
सुविस्तृततराः	–	सु+ वि + सृ + क्त + तरप् + टाप् + जस्।
भाष्य	–	भाष् + यत्। भूताः – भू + क्त + टाप् + जस्।
अर्थगरीयसः	–	अर्थेन गरीयसः (तृतीया तत्पु.)।
भाष्यभूता	–	भाष्यमिव भूताः (उपमित.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

विरोधिवचसो मूकान् वागीशानपि कुर्वते।
जडानप्यनुलोमार्थान् प्रवाचः कृतिनां गिरः।। 25।।

अन्वय – कृतिनां गिरः विरोधिवचसः वागीशान् अपि मूकान् कुर्वते। अनुलोमार्थान् अपि प्रवाचः (कुर्वते)।

प्रसंग – बलराम जी उक्त श्लोक में कुशलवक्ता की वाणी की प्रभावशालिता का वर्णन कर रहे हैं।

अनुवाद – (इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् के कहे हुए वचन को सिद्धान्त रूप में मानकर उद्धवजी के निषेधक वचन को हृदय में रखते हुए उसका तीन श्लोकों (25–27) से खण्डन

करते हैं) कार्यज्ञ (चतुर) लोगों के वचन विरुद्ध बोलने वाले प्राणियों (वचनाधिपतियों–बृहस्पतियों अर्थात् बृहस्पति तुल्य विद्वानों) को भी मूक बना देते हैं तथा अनुकूल बोलने वाले मूकों को भी बृहस्पति (तुल्य वाग्मी) बना देते है।

व्याकरण टिप्पणी –

प्रवाच	–	प्र + वच् + क्विप् + ङस्।
कृतिनां	–	कृत + इनि + आम्।
गिरः	–	गृ + अप् + अस्।
कुर्वते	–	कृ + त (लट्)।
विरोधिवचसः	–	विरोधि वचनं येषान्ते, तान् (बहुव्रीहिः),
वागीशान्	–	वाच ईशास्तान् (षष्ठी तत्पु.),
अनुलोमार्थान्	–	अनुलोमोऽर्थो येषां तान् (बहुव्रीहिः)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – विशेषोक्ति एवं अतिशयोक्ति।

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्त्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्त्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम्। ।। 26।।

अन्वय – दुर्मेधसः अपि ग्रन्थान् अधीत्य गुणाः षट्, शक्तयः सिद्धयश्च तिस्त्रः, उदयाः त्रयः इति व्याकर्त्तुम् अलम्।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलराम जी राजनीति में व्यवहार शून्य सैद्धान्तिक ज्ञान की महत्वहीनता प्रतिपादित कर रहे हैं।

अनुवाद – मंदबुद्धि व्यक्ति भी (शुक्रनीति आदि) ग्रंथों को पढ़कर छः गुण, तीन शक्ति, तीन सिद्धि तथा तीन उदय, इनका व्याख्यान करने के लिए समर्थ होता हैं।

भावार्थ – संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय ओर द्वैधीभाव ये छः गुण हैं। प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति– ये तीन सिद्धियां है। तथा वृद्धि, क्षय और स्थान– ये तीन उदय हैं। इनका व्याख्यान ग्रंथों को पढ़कर मंदबुद्धि भी कर सकता है (किन्तु किस अवसर पर क्या करना चाहिये, यह तो कार्यकुशल राजनीतिज्ञ श्रीकृष्णादि ही जान सकते हैं, उद्धवजी आदि– जैसे व्यक्ति नहीं जान सकते।

व्याकरण टिप्पणी –

शक्तय	–	शक् + क्तिन् + जस्। सिद्धयः – सिध् + क्तिन् + जस्।
अधीत्य	–	अधि + इण् + ल्यप्। व्याकर्त्तुं – वि + आङ्+ कृ + तुमुन्।
दुर्मेधसः	–	दुष्टा मेधाः येषान्ते (बहुव्रीहिः)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अर्थापत्ति।

अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा।
निमित्तादपराद्धेषोर्धानुष्कस्यैव वल्गितम् ।। 27।।

अन्वय–अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्मिनः वाग्जालं निमित्ताद् अपराद्धेषोः धानुष्कस्य वल्गितम् इव वृथा (भवति)।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलराम जी वाक्पटु राजनता के वाग्जाल की असफलता का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं।

अनुवाद – कार्य का आलोडन नहीं करने वाले अर्थात् कर्तव्याकर्तव्य को नहीं जानने वाले वाग्मी (बहुत बोलने वाले विद्वान्) का वचन समूह, लक्ष्य भ्रष्ट वाण– वाले धनुर्धारी के उछलने–कूदने (या बढ़चढ़कर बातें करने) के समान व्यर्थ होता है (अतएव कार्यज्ञ के लघु

वचन को भी ग्रहण करना चाहिए, अकार्यज्ञ के विस्तृत वचन को भी नही ग्रहण करना चाहिए। यहाँ भी बलराम जी ने उद्धव के वचन को ग्रहण नहीं करने का संकेत किया है)।

व्याकरण टिप्पणी –

टनिर्लोडित	–	न निर् + लोड् + क्त।
कार्य	–	कृ + ण्यत्। वाग्मिन – वाक् + ग्मिनि।
निमित्तात्	–	नि + मिद् + क्त। अपराद्ध – अप् + राघ् + क्त।
धानुष्कस्य	–	धनुः + ठक्।
अनिर्लोडित कार्यस्य	–	अनिर्लोडितं कार्य येन तस्य (बहुव्रीहि)।
वाग्जालम्	–	वाचां जालम् (षष्ठी तत्पुरुष)। वाग्जन्यं जालम् (मध्यम पद लोपी तत्पुरुष)।
अपराद्धेषः	–	अपराद्ध इषुर्यस्य तस्य (बहुव्रीहि)।
वाग्मिन	–	वाचोऽस्य सन्तीति वाग्मी (उपपद समास)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपंचकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।। 28।।

अन्वय – सर्वकार्यशरीरेषु अङ्गस्कन्धपंचकं मुक्त्वा सौगतानाम् आत्मा इव महीभृताम् अन्यः मन्त्रः न अस्ति।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलराम जी विजिगीषु के लिए मंत्रणा की अपेक्षा पंचाङ्ग की महत्ता का प्रतिपादन कर रहे हैं।

अनुवाद – (सन्ध्यादि) समस्त कार्यों में (सहायादि) पांच अङ्गों के अतिरिक्त राजाओं का उसी प्रकार दूसरा कोई मन्त्र नही है, जिस प्रकार इस शरीर में पांच स्कन्धों के अतिरिक्त बौद्धों के मत से दूसरा कोई आत्मा नहीं है।

भावार्थ – 1. कार्यों के आरम्भ करने वाला उपाय, 2. कार्यों की सिद्धि में उपयोगी वस्तुओं का संग्रह, 3. देश तथा काल (स्थान तथा समय) का यथायोग्य विभाजन, 4. विपत्तियों को दूर करने के उपाय और, 5. कार्यों की सिद्धि ये पांच अङ्ग ही राजाओं के मंत्र है तथा 1. रूपस्कन्ध, 2. वेदनास्कन्ध, 3. विज्ञान स्कन्ध, 4. संज्ञानस्कन्ध और 5. संस्कार स्कन्ध – ये पांच स्कन्ध बौद्धों के मत में है। इनमें इस संसार में दृष्टिगोचर होने वाली समस्त वस्तुओं का आकार रूपस्कन्ध, उनकी जानकारी होना या मुखादि का अनुभव होना, वेदनास्कन्ध, अध्ययन किये हुए का विस्मरण नहीं होना या धाराप्रवाह से होने वाला आश्रयज्ञान विज्ञानस्कन्ध, चैतन्य या पदार्थों का नाम संज्ञास्कन्ध और चित्त में जमी हुई वासना या शास्त्रादिशरीराभूषण संस्कार स्कन्ध है। इन पांच स्कन्धों के अतिरिक्त शरीर में 'आत्मा' नाम की कोई वस्तु नहीं है, किन्तु उक्त स्कन्ध पंचक से परिवर्तन होता हुआ ज्ञान सन्तान ही आत्मा है। यहाँ पर बलराम जी के कहने का तात्पर्य यह है कि – यदि राजाओं के सहाय आदि पांच अङ्ग ठीक रहते हैं तो उनके सन्धि, विग्रह आदि समस्त कार्य अनायास सिद्ध हो जाते है। ऐसी अवस्था में उन्हें मन्त्रणा करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, अतएव हम लोगों के भी सहायादि पांच अङ्ग ठीक–ठीक व्यवस्थित है, इस कारण हमारी विजय अवश्यमेव होगी, एतदर्थ मन्त्रणा करने की काई आवष्यकता नहीं है, हम लोगों को अब शीघ्र शिशुपाल से लड़ने के लिए प्रस्थान कर देना चाहिये।

व्याकरण टिप्पणी –

मुक्त्वा	–	मुच् + क्त्वा, पञ्चकं :– पञ्च + क + अम्।
सौगतानां	–	सुगत + अण् + आम्। महीभ'तां :– मही + भ' + क्विप् + आम्।
सर्वकार्यशरीरेषु	–	सर्वाणि कार्याणि एवं शरीराणि तेषु (कर्मधा.)
अङ्गस्कन्धपञ्चकं	–	अङ्गानि स्कन्धा इव (उपमित.) तेषा पञ्चकं (षष्ठी तत्पु.),

महीभृतां – महीं विभर्तीति तेषां (उपपद.)

छन्द – अनुष्टुप।

अलंकार – उपमा, रूपक एवं अतिशयोक्ति

मन्त्रो योध इवाधीरः सर्वाङ्गैः संवृतैरपि।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया।।29।।

अन्वय – सर्वाङ्गैः संवृतैः अपि मन्त्रः अधीरः योधः इव परेभ्यः भेदशङ्कया चिरं स्थातुं न सहते।

प्रसंग – बलराम उक्त श्लोक में मन्त्रणाकार्य की महत्ता का प्रतिपादन तथा मंत्रणा को अधिक स्थायी रखने का निषेध करते हैं।

अनुवाद – (मन्त्रणा करने के बाद विलम्ब करना अहितकर भी है, यह बात बलरामजी कह रहे हैं –) जिस प्रकार कातर योद्धा छाती, हाथ, पैर आदि सम्पूर्ण अङ्गों के कवचादि से सुरक्षित रहने पर भी शत्रु के भेदन करने (शत्रु से मारे जाने) के भय से (युद्ध में) बहुत समय तक नहों ठहरता, उसी प्रकार सहायादि सम्पूर्ण अङ्गों से सुरक्षित भी मंत्र (परस्पर गुप्त विचार–विनिमय से किया निर्णय) शत्रुओं के गुप्तचरों के द्वारा भिन्न ज्ञात होने के भय से बहुत समय तक नहीं ठहर सकता।

भावार्थ – तात्पर्य यह है कि हम लोगों ने शिशुपाल को मारने के लिए उस पर चढ़ाई करने का निर्णय कर लिया, युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित न होकर हमें शिशुपाल पर शीघ्रतया चढ़ाई ही कर देनी चाहिये, विलम्ब करने से यदि किसी प्रकार यह बात उसे मालूम हो जायेगी तो हम लोगों का निर्णय कार्यसाधक नहीं होगा।

व्याकरण टिप्पणी –

योधः – युध् + अच्।
संवृतैः – सम् + वृ + क्त + भिस्।
स्थातुं – यथा + तुमुन्।
सहते – सह् + त (लट्)।
अधीरः – न धीर इति (नञा तत्पु.)।
भेदशङ्कया – भेदस्य शङ्का तया (षष्ठी तत्पु.)
सर्वाङ्गैः – सर्वाणि च तान्यङ्गानि तैः (कर्मधा.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती।
तदूरीकृत्य कृतिभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते ।। 30।।

अन्वय – आत्मोदयः परज्यानिः इति द्वयम् इयती नीतिः। तदूरीकृत्य कृतिभिः वाचस्पत्यं प्रतायते।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी स्वपक्ष तथा परपक्ष के प्रसंग में नीति के मौलिक स्वरूप का प्रतिपादन कर रहे हैं –

अनुवाद – नीतिक परामर्श करने पर भी विलम्ब करना उचित सिद्ध नहीं होता, यह बात बलराम जी कहते हैं –) अपनी उन्नति तथा शत्रु की वृद्धि (होने पर युद्ध करना चाहिए) बस, इतनी ही राजनीति है, इसे स्वीकार कर कुशल पुरुष वाग्मिता का विस्तार करते (अतिशय अधिक बोलने वाले बन जाते) है।

भावार्थ – आगे (59–60) अपनी समृद्धि तथा शत्रु की अवनति का वर्णन करेगें, अत एव बलरामजी कहते हैं कि अब अभियान में विलम्ब करना ठीक नहीं है। अथवा– दूसरा अर्थ

यह भी हो सकता है कि अपनी उन्नति तथा शत्रु की हानि (करना ही युद्ध करने का लक्ष्य है) बस, इतनी ही राजनीति है।

व्याकरण टिप्पणी –

ज्यानिः	–	ज्या + नि + सु।
इयती	–	इयत् + ङीप्, नीतिः – नी + क्तिन्।
ऊरीकृत्य	–	ऊरी + कृ + ल्यप्। कृतिभिः – कृति + इनि + भिस्।
वाचस्पत्यम्	–	वाचस्पति + श्यञ् + अम्। प्रतायते – प्र + तन् + त (कर्मणि लट्।
आत्मोदयः	–	आत्मनः उदयः (षष्ठी तत्पु.),

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – हेतु अलंकार।

तृप्तियोगः परेणापि महिम्नां च महात्मनाम्।
पूर्णश्चन्द्रोदयाकाङ्क्षी दृष्टान्तोऽत्र महार्णवः ।। 31।।

अन्वय – महीयसां परेण महिम्ना अपि तृप्तियोगः न। अत्र पूर्णचन्द्रोदयाकांक्षी महार्णवः दृष्टान्तः।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम जी प्रकारान्तर से यह सिद्ध करना चाहते हैं, कि राजाओं के लिए सन्तुष्ट होना कदापि उचित नहीं होता।

अनुवाद – (समृद्धिमान् को दूसरे की हानि हो या न हो इससे क्या प्रयोजन है? – इस मनोगत प्रश्न का खण्डन करते हुए बलराम जी कहते हैं –) समृद्धि चाहने वाले बड़े लोगों को बड़ी समृद्धि से भी तृप्ति नहीं होती, इस विषय में चन्द्रमा के उदय को चाहने वाला पूर्ण महासमुद्र दृष्टान्त है।

व्याकरण टिप्पणी –

तृप्ति	–	तृप् + क्तिन्। महिम्ना – मह् + इमनिच् + टा।
महीयसां	–	महत् + ईयसुन् + आम्। आकांक्षीः– आङ् + कांक्ष् + णिनि (आकांक्षा+इनि)।
तृप्तियोगः	–	तृप्तया योगः (तृतीया तत्पु.),
चन्द्रोदयाकांक्षी	–	चन्द्रोदयम् आकांक्षते इति (उपपद.)। महार्णवः महाँश्चासौ अर्णवः (कर्मधा.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा एवं एकावली।

संपदा सुस्थिरंमन्यो भवति स्वल्पयापि यः।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम् ।।32।।

अन्वय – यः स्वल्पतया सम्पदा अपि सुस्थिरम्मन्यः। तस्य तां कृतकृत्यः विधिः न वर्धयति मन्ये।

प्रसंग – बलराम प्रस्तुत श्लोक में सन्तुष्टि करने वाले राजा के प्रति विद्याता की असहाय नीति का प्रतिपादन कर रहे है –

अनुवाद – ('सन्तोष करना हानिकर भी है' यह बात बलराम जी कहते है –) जो (राजादि) थोड़ी भी सम्पति से अपने को सुस्थिर मानता है, कृतकृत्य ब्रह्मा (देव) उसकी उस सम्पति को भी बढ़ाते नहीं, ऐसा मैं मानता हूँ।

भावार्थ – तात्पर्य यह है कि हम लोगों को समृद्धिमान् रहते हुए भी एतावन्मात्र से सन्तुष्ट होकर चुप नहीं बैठना चाहिए।

व्याकरण टिप्पणी –

सम्पदा		– सम् + पद् + क्विप् + टा।

सुस्थिरम्मन्यः – सुस्थिर + मन् + खष् + सु

विधिः – वि + धा + कि + सु। वर्धयति – वृध् + णिच् + तिप्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – दीपक।

समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः।
प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः।।33।।

अन्वयः – परान् समूलघातम् अघ्नन्तः मानिनः न उद्यन्ति। तत्र प्रध्वंसितान्धतमसः रविः उदाहरणम् (अस्ति)।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी सूर्य का उदाहरण देकर स्वाभिमानी पुरुष की अभ्युदय प्राप्ति का वर्णन करते हैं।

अनुवाद – (पराक्रम से उपपादित उदय ही वास्तविक उदय हैं यह कहते हैं–) मानो लोग शत्रुओं को समूल नष्ट किये बिना उदित नहीं होते हैं, इस विषय में (उदय होने के पहले रात्रि के) गाढ़ अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य उदाहरण हैं।

भावार्थ – ऐसा ही दृष्टान्त महाकवि भारवि ने अपने किरतार्जुनीय महाकाव्य में भीमसेन को समझाते हुए युधिष्ठिर के मुख से कहलवाया हैं – 'अविभिद्य निशाकृतं तमः प्रभया नांशुमताप्युदीयते।' इति

व्याकरण टिप्पणी –

अघ्नन्तः – न + हन् + शतृ + जस्।

मानिनः – मान + इनि + जस्।

प्रध्वंसित – प्र + ध्वंस् + क्त।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा, अनुप्रास।

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खुल दुर्लभा।
अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते।। 34।।

अन्वय – विपक्षम् अखिलीकृत्य प्रतिष्ठा दुर्लभा खलु। उदकं धूलिं पङ्कताम् अनीत्वा न अवतिष्ठते।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी वीर पुरुष द्वारा शत्रुविनाशोपरान्त ही प्राप्त प्रतिष्ठालाभ के विषय में अपना मत प्रतिपादित करते हैं।

अनुवाद – शत्रु का नाष किये बिना प्रतिष्ठा होना दर्लभ है, यह कहते है– शत्रु का बिना समूल नाश किये प्रतिष्ठा लाभ होना दुर्लभ है, क्योंकि धूलि को बिना कीचड़ बनाये पानी (भूमि पर) नहीं ठहरता है।

व्याकरण टिप्पणी –

अखिलीकृत्य – अखिल + च्वि + कृ + ल्यप्।

प्रतिष्ठा – प्र + स्थान + अङ्।

अनीत्वा – न + नी + क्त्वा। पङ्कताम् – पङ्क + तल् + अम्।

अखिलीकृत्य – नञ् खिलीकृत्य इति (नञ्)

दुर्लभा – दुःखेन लभते या सा (उपपद समास)

अनीत्वा – नञ् + नी + क्त्वा।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – दृष्टान्त।

ध्रियते यावदेकोपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम्।
पुरः क्लिश्नाति सोमं हि सैंहिकेयोऽसुरद्रुहाम्। ।।35।।

अन्वय – एकः अपि रिपुः यावद् ध्रियते तावत् सुखं कुतः? हि सैंहिकेयः असुरद्रुहां पुरः सोमं क्लिश्नाति।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी यह कह रहे है कि एक भी शत्रु का बचे रहना भविष्य के लिए प्रतिघात का सूचक है।

अनुवाद – (एक शत्रु का भी रहना हानिकर है, यह बलरामजी कहते हैं –) जब तक एक भी शत्रु बना रहता है, तब तक सुख कहाँ से हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता, क्योंकि असुरवैरी (देवों) के सामने (देखते–देखते) ही राहु चन्द्रमा को पीड़ित करता है।

भावार्थ – अत एव 'हम लोगों के बहुत शत्रु तो हैं नहीं, अकेला शिशुपाल क्या करेगा?' ऐसा आप लोगों को नहीं सोचना चाहिए।

व्याकरण टिप्पणी –

सैंहिकेयः	–	सिंहिका + ढक् + सु। असुरद्रुहां – असुर + द्रुह् + क्विप् + आम्
कुतः	–	किम् + तसिल्। ध्रियते – धृ + रिङ् + त (लट्)।
क्लिश्नाति	–	क्लिष् + तिप् (लट्। असुरदुहां :– असुरेभ्य दुह्यन्तीति तेषाम्। (उपपद)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः।
स्याताममित्रौ मित्रे च सहजप्राकृतावपि।। 36।।

अन्वय – कृत्रिमः सखा शत्रुश्च गरीयान् (भवतः)। हि तौ कार्यतः (भवतः)। सहजप्राकृतौ अपि अमित्रौ मित्रे च स्याताम्।

प्रसंग – बलरामजी उक्त श्लोक में शत्रु तथा मित्र के नीतिसम्मत प्राकारिक भेदों की विषेषता बता रहे हैं।

अनुवाद – कृत्रिम मित्र तथा बलवान् शत्रु (मुख्य) हैं, क्योंकि वे कार्यवश होते हैं एवं सहज तथा प्राकृत मित्र भी कार्यवश मित्र तथा शत्रु होत हैं।

भावार्थ – मित्र तथा शत्रु के 3–3 भेद हैं – सहज, प्राकृत और कृत्रिम, इनमें से सहज मित्र मामा तथा बुआ के पुत्र और सहज शत्रु चाचा तथा उसके पुत्र होते हैं, प्राकृत मित्र अपने राज्य के बाद जो राज्य है उस राज्य के बाद वाले अर्थात् पड़ोसी राज्य के पड़ोस से रहने वाला राजा और प्राकृत शत्रु अपने राज्य के बाद वाले अर्थात् अपने पड़ोस के राज्य का राजा होता है। तथा कृत्रिम मित्र साम, दान आदि के द्वारा बनाया गया और कृत्रिम शत्रु हानि करने वाला तथा जिसकी हानि की गयी हो, वह होता है। इन सभी में कृत्रिम (कार्यवंश होने वाले) मित्र या शत्रु ही मुख्य हैं, क्योंकि कार्यवश – भलाई या बुराई करने से क्रमशः मित्र–शत्रु बने है, इतना ही नहीं, जो सहज तथा प्राकृत मित्र हैं, वे भी कार्यवश (भलाई तथा बुराई के करने से) मित्र तथा शत्रु बन जाते हैं, अत एव सहज, प्राकृत तथा कृत्रिम – तीनों प्रकार के मित्र तथा शत्रुओं में कृत्रिम ही मित्र तथा शत्रु प्रधान होते हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

गरीयान्	–	गृ + ईयसुन्।
सहज	–	सह + जन + ड।
प्राकृतः	–	प्रकृति + अच्। सहज प्राकृतौ – सहजश्च प्राकृतष्च (द्वन्द्व)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – दीपक।

उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः।। 37।।

अन्वय – उपकर्त्रा अरिणा सन्धि, अपकारिणा मित्रेण न। हि एतयोः लक्षणं उपकारापकारौ लक्ष्यम्।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलराम जी शत्रु तथा मित्र के व्यावहारिक लक्षण का प्रतिपादन कर रहे हैं।

अनुवाद – उपकार करने वाले शत्रु के साथ सन्धि (मेल) करना चाहिए, किन्तु अपकार (बुराई–हानि) करने वाले मित्र के साथ नहीं, इस कारण इन दोनों (मित्र तथा शत्रु) के लक्षण उपकार और अपकार को लक्षित करना चाहिए।

भावार्थ – वक्ष्यमाण कारणों से शिशुपाल अपकारकर्ता अर्थात् कृत्रिम शत्रु सिद्ध होता है, अतएव बुआ का पुत्र (फूफेरा भाई) होने के कारण सहज मित्र होने पर भी उसके साथ सन्धि करना उचित नहीं है।

व्याकरण टिप्पणी –

उपकर्त्रा	–	उप + कृ + तृच् + टा।
अपकारिणा	–	अप + कृ + णिनि + टा।
उपकार	–	उप + कृ।
अपकारः	–	अप + कृ + घञ्,
लक्ष्य	–	लक्ष् + यत्।
लक्षणं	–	लक्ष् + ल्युट्।
उपकर्त्रा	–	उपकरोतीति तेन (उपपद.)
अपकारिणा	–	अपकरोति इति तेन (उपपद),
उपकारापकारौ	–	उपकारष्च अपकारष्चेत (द्वन्द्व)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – हेतु।

त्वया विप्रकृतश्चैद्यो रूक्मिणीं हरता हरे।
बद्धमूलस्य मूलं हि महद्वैरतरोः स्त्रियः ।। 38।।

अन्वय – हरे! रुक्मिणीं हरता त्वया चैद्यः विप्रकृतः। हि बद्धमूलस्य वैरतरोः स्त्रियः महत् मूलं (भवन्ति)।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम जी शिशुपाल से श्रीकृष्ण की विशिष्ट शत्रुता का सहैतुक वर्णन कर रहे हैं।

अनुवाद – (अब बलराम जी चार श्लोकों (38–41) से शिशुपाल को कृत्रिम शत्रु प्रमाणित करते हैं–) हे कृष्ण जी! रूक्मिणी को हरण करते हुए आपने शिशुपाल को पराभूत किया हैं, क्योंकि दृढमूलवाले वैररूपी वृक्ष की मूल (जड़) स्त्रियाँ ही होती हैं।

भावार्थ – इन स्त्रियों के कारण ही महान ग्रन्थों की रचना हुई है, यथा– सीता जी के अपहरण करने के कारण चौबीस सहस श्लोकों वाले रामायण की तथा द्रौपदी के अपमान के कारण सवा लाख श्लोकों वाले महाभारत की। अतः रुक्मिणी के कारण शिशुपाल के साथ बैर होना कोई नया काम नहीं है।

व्याकरण टिप्पणी –

विप्रकृत	–	वि + प्र + कृ + क्त + सु।
हरता	–	हृ + शतृ + टा।
बद्ध	–	बन्ध् + क्त।
बद्धमूलस्य	–	बद्धं मूलं यस्य तस्य (बहुव्रीहि)।
वैरतरोः	–	वैरमेव तरुस्तस्य (कर्मधा.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – रूपक एवं अर्थान्तरन्यास

त्वयि भौमं गते जेतुमरौत्सीत्स पुरीमिमाम्।
प्रोषितार्यमणं मेरोरन्धकारस्तटीमिव।। 39।।

अन्वय – त्वयि भौमं जेतुं गते सः इमां पुरीम् प्रोषितार्यमणं मेरोः तटीम् अन्धकारः इव अरौत्सीत्।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम जी शिशुपाल के मन में निहित बदले की भावना को प्रतिपादन करते हैं –

अनुवाद – भौमासुर (भूमि–पुत्र नरकासुर) को जीतने के लिए आपके जाने पर उस (शिशुपाल) ने इस नगरी (द्वारकापुरी) को उस प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार सूर्य के अस्त होने पर मेरु के तटी (प्रान्तीय भाग) को अन्धकार घेर लेता है।

व्याकरण टिप्पणी–

गते	–	गम + क्त + ङि।
त्वयि	–	यु"मद् + ङि्।
जेतुं	–	जि + तुमुन्।
भौमं	–	भूमि + अण् + अम्।
प्रोषितार्यमणम्	–	प्रोषितः अर्यमा यस्यास्ताम् (बहुव्रीहि)।
अन्धकार	–	अन्धं करोतीति (उपपद समास)।

छन्द – अनुष्टुप।

अलंकार – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा।

आलप्यालमिदं बभ्रोर्यत्स दारान् अपाहरत्।
कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः।।40।।

अन्वय – सः बभ्रोः दारान् अपाहरत् इति यत् इदम् आलप्य अलम्। यतः पापानां कथा अपि अश्रेयसे अलम् खलु।

प्रसंग – बलराम जी प्रस्तुत श्लोक में शिशुपाल के आंषिक प्रतीकार का वर्णन कर कृष्ण को सावधान करना चाहते हैं।

अनुवाद – उस (शिशुपाल) ने जो यादवों की स्त्रियों का अपहरण किया, उसे नहीं ही कहना चाहिए, क्योंकि पापियों की चर्चा भी अमङ्गल के लिए होती है।

व्याकरण टिप्पणी –

आलप्य	–	आङ् + लप् + ल्यप्। अपाहरत् :– अप + हृ + तिप् (लङ्)
अश्रेयसे	–	न + श्रेयस् (श्रि + ईयसुन् + ङे्। यतः :– यत् + तसिल्।
अश्रेयसे	–	न श्रेयसे इति (नञ्)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

8.3 पारिभाषिक शब्दावली

छन्द – अनुष्टुप्। एक छंद है जिसका लक्षण है –
अग्नित्रय (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीयाग्नि)

''रोगव्याधिगदामयाः'–'कोष – आमय – ''रोगव्याधिगदामयाः''। रोग एवं व्याधि को आमय कहते है ।

महीयांस – महत् + ईयसुन् + जस्। महान व्यक्ति को महान कहा जाता है।

वनमाला – पैर तक लटकती हुए पुष्पमाला को वनमाला कहते हैं,

तीन सिद्धियां – संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय ओर द्वैधीभाव ये छः गुण हैं। प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति– ये तीन सिद्धियां है।

तीन उदय – वृद्धि, क्षय और स्थान– ये तीन उदय हैं।

पांच स्कन्ध – 1. रूपस्कन्ध, 2. वेदनास्कन्ध, 3. विज्ञान स्कन्ध, 4. संज्ञानस्कन्ध और 5. संस्कार स्कन्ध – ये पांच स्कन्ध बौद्धों के मत में है।

8.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

1. हिताभिलाषी व्यक्ति को शत्रु की उपेक्षा क्यों नही करनी चाहिए?
2. महापुरुषों का स्वभाव कैसा हैं?
3. कुशलवक्ता की वाणी की प्रभावशीलता लिखिए।
4. पाँच अङ्ग एवं स्कन्ध लिखिए।
5. निम्न श्लोकों का सप्रसंग अनुवाद कीजिये।

   1, 3, 6, 8, 15, 20, 25, 28, 30, 32, 36, 40

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 7.3 श्लोक–10
2. मितभाषी।
3. देखिए 7.3 श्लोक 25
4. देखिए 7.3 श्लोक 27
5. देखिए इकाई 7 के 7.3

8.5 सारांश

नारदजी के लौटने के उपरान्त धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होकर सहायता करने के लिए निमन्त्रित श्रीकृष्ण भगवान को मित्रकार्य–सम्पादनार्थ युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने हस्तिनापुर जाना चाहिये या देवकार्य–सम्पादनार्थ शिशुपाल के साथ युद्ध करने चेदिदेश जाना चाहिये? इस विषय में संशयालु होकर मन्त्रणा करने के लिए मंत्री एवं चाचा उद्धवजी तथा अग्रज बलरामजी के साथ मन्त्रणा गृह में पहुंचे और 'हमलोगों के बिना भी युधिष्ठिर लोकविजयी भीम, अर्जुन आदि भाइयों के साथ यज्ञ कर सकते हैं, अतएव जगत्पीडनकर्ता शत्रु की उपेक्षा करना उचित प्रतीत नहीं होता' इस प्रकार अपना अभिमत व्यक्त करते हुए उन लोगों से भी अपनी–अपनी सम्मति देने की प्रार्थना की। पद एवं अवस्था में बड़े होने के कारण यद्यपि उद्धवजी पहले बोलना चाहते थे, तथापि मदके नशे में चूर अधिक क्रुद्ध होने से उत्पन्न स्वेदबिन्दुओं आर्द्र एवं रक्तवर्ण शरीर वाले बलराम जी को बोलने का इच्छुक जानकर वे चुप हो गये। तदनन्तर बलराम जी ने अनेकविध युक्ति तथा दृष्टान्तों के द्वारा श्री कृष्ण भगवान् के वचन का समर्थन करते हुए शीघ्रातिशीघ्र शिशुपाल के प्रति अभियान करने के लिए अपनी सम्मति दी।

8.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास,डॉ. जयकृष्ण खण्डेलवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985.
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास,आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा निकतन वाराणासी, 1995.
3. शिशुपालवधम्,(व्याख्याकार)हरगोविन्द शास्त्री ,चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय वाराणासी,1978.

इकाई 9

सभाभवन में श्रीकृष्ण, बलराम एवम् उद्धव की मन्त्रणा से सम्बन्धित वर्णन

(शिशुपालवधम् द्वितीय सर्ग, श्लोक 41 से 80)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 श्लोक का सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य, छन्द अलंकार आदि

9.3 पारिभाषिक शब्दावली

9.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.5 सारांश

9.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में शिशुपालवध महाकाव्य के द्वितीय सर्ग 'मंत्र वर्णन' नामक सर्ग के श्लोकों में निहित अंलकृत शैली से शिक्षार्थी परिचित हो सकेंगे।

- जनता को पीड़ित करने वाले शिशुपाल के कृत्यों एवं समस्या से सम्बन्धित समाधानों की जानकारी प्राप्त होगी।
- शिक्षार्थी महाकवि माघ के काव्यत्व से परिचित हो सकेंगे। शत्रु एवं मित्र का विवेचन जान सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में माघ का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वे बृहत्त्रयी की मध्यमणि के रूप में अपने सर्वातिशायी व्यक्तित्व को लेकर उपस्थित होते हैं तथा संस्कृत साहित्य में एक पारम्परिक श्रेष्ठ काव्य सृजन की नूतन पद्धति की स्थापना करते हैं। माघ की रचना शिशुपालवध महाकाव्य में बीस सर्ग हैं। जिसके द्वितीय सर्ग में श्रीकृष्ण इस ऊहापोह में पड़ जाते हैं कि वे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जायें अथवा शिशुपाल के वध के लिए उस पर आक्रमण करें। सभा भवन में जाकर बलराम और उद्धव के साथ विचार–विमर्श करते हैं। उक्त मंत्रणा का प्रस्तुत श्लोकों में वर्णन हैं।

9.2 श्लोक का संप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य छन्द अलंकार आदि।

विराद्ध एवं भवता विराद्धा बहुधा च नः।
निर्वर्त्यतेऽरिः कियया स श्रुतश्रवसः सुतः।। 41।।

अन्वय – एवं भवता विराद्धः बहुधा न विराद्धा च सः श्रुतश्रवसः सुतः कियया अरिः निर्वर्त्यते।

प्रसंग – इस श्लोक में बलराम जी ने शिशुपाल को कृत्रिम शत्रु के रूप में सिद्ध किया हैं।

अनुवाद – इस प्रकार आपने जिसका विरोध किया है ऐसा तथा आपका जिसने अनेक बार विरोध किया है, ऐसा वह शिशुपाल कार्यवश शत्रु सिद्ध होता हैं।

भावार्थ – यद्यपि शिशुपाल बुआ का पुत्र होने से सहज मित्र हैं, किन्तु रुक्मिणी – हरण करके आपसे विरोधित और नरकासुर को जीतने के लिए आपके जाने पर इस द्वारकापुरी

को घेरने तथा यदुवंशियों की स्त्री का अपहरण करने के कारण अनेक बार आपका विरोध करने से यह कृत्रिम शत्रु सिद्ध होता हैं: इस कारण अपकार करने से उसके साथ संधि नहीं करनी चाहिए।।

व्याकरण टिप्पणी –

विराद्धः	–	वि + राध् + क्त + सु ।
विराद्धा	–	वि + राध् + तृच + सु ।
निर्वर्त्यते	–	निर् + वृत् + णिच् + त (लट्) ।
विराद्धा	–	विरोधमाचरतीति अथवा विशेषं राध्यतीति (उपपद)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – यमक, अनुप्रास।

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्।। 42।।

अन्वय– सामर्षे अरौ वैरं विधाय ये नरः उदासते, ते कक्षे उदर्चिषं प्रक्षिप्य मारुतम् अभि शेरते।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी शत्रु के प्रति उदासीनता के दुष्परिणाम का उल्लेख कर रहे हैं।

अनुवाद (भावार्थ) – (उसकी उपेक्षा करने से हानि होगी यह बात बलरामजी कह रहे हैं –) जो व्यक्ति कोधयुक्त शत्रु के साथ विरोधकर उसमें उदासीन हो जाता (उसकी अपेक्षा करता) हैं, वह घास की ढेर में जलती हुई आग को डालकर हवा के सामने सोता हैं, अर्थात् घास की ढ़ेर में जलती हुई आग डालकर हवा के रूख पर सोने वाले व्यक्ति के समान क्रुद्ध शत्रु के साथ विरोधकर उसकी उपेक्षा करने वाला व्यक्ति मारा जाता हैं।।

व्याकरण टिप्पणी –

विधाय	–	वि + धा + ल्यप् ।
उदासते	–	उत् + आस् + त (लट्) ।
प्रक्षिप्य	–	प्र +क्षिप् + ल्यप्, शेरतेः = शीङ्:+ झ (लट्)।
सामर्षे	–	अमर्षेण सहितः सामर्षस्तस्मिन् (प्रादितत्पुरुष)।
उदर्चिष	–	उद्गतानि अर्चींषि यस्य तं (बहुव्रीहिः)।
अभिमारुतं	–	मारुतमभि (अव्ययीभावः)।
नरोऽरौ	–	नरः + अरौ (पूर्वरूप)।
तेऽभि	–	ते + अभि (पूर्वरूप)।।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – निदर्शना ।

मनागनभ्यावृत्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः।। 43।।

अन्वय – यः क्षमी (सः) मनाक् अनभ्यावृत्या वा विराध्यन्तं कामं क्षाम्यतु (किन्तु) क्रियासमभिहारेण
विराध्यन्तं कः क्षमेत।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलरामजी शत्रु के प्रति क्षमाशीलता के अनौचित्य की उपस्थापना कर रहे हैं।

अनुवाद (भावार्थ) – (यद्यपि वह बुआ का लड़का होने से बान्धव है, तथापि उसे क्षमा नही करना चाहिए, यह बलरामजी कहते हैं –) जो क्षमाशील हैं, वह थोड़ा या एक बार विरोध

करने वाले को भले ही क्षमा कर दे, किन्तु बार–बार विरोध करने वाले को कौन क्षमा करेगा ? अर्थात कोई नहीं।।

व्याकरण टिप्पणी –

अनभ्यावृत्या	–	न + अभि + आङ् + वृतु + क्तिन् + टा ।
क्षाम्यतु	–	क्षम् + तिप् (लोट्)।
क्षमी	–	क्षम् + घिनुण् + सु
समभिहारेण	–	सम् + अभि + हृ + घञ् + टा ।
विराध्यन्तंः	–	वि + राध् + शतृ + अम्।
क्षमेतः	–	क्षम + तिप् (लिङ्)।
अनभ्यावृत्या	–	न अभ्यावृत्तिज्ञारिति अनभ्यावृतिस्तया (नञ्)
क्रियासमभिहारेण	–	क्रियायाः समभिहारस्तेन (षष्ठी त्तपु.)

छंद – अनुष्टुप्।

अलंकार – वक्रोक्ति।

अन्यदाभूषणं पुंसां क्षमा लज्जेव योषितः।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव।। 44।।

अन्वय – योषितः लज्जा एवं पुंसः क्षमा अन्यदा भूषणम् (अस्ति)। सुरतेषु वैयात्यम् इव परिभवे पराक्रमः (भूषणं भवति)।

प्रसंग – बलरामजी उक्त श्लोक में क्षमा नीति के सामयिक औचित्य का पक्ष प्रतिपादित कर रहे हैं।

अनुवाद (भावार्थ) – (वीर पुरुष के लिए सर्वदा क्षमा ही भूषण हैं, अतएव अपराधी शिशुपाल को भी क्षमा कर देना चाहिए, इस बात का खण्डन करते हुए बलरामजी कहते हैं –) रतिभिन्नकाल में स्त्रियों की लज्जा के समान अपमान या पराभव न होने पर पुरुषों को क्षमा करना पुरुषों का भूषण हैं तथा रतिकाल में स्त्रियों की धृष्टता के समान परिभव (तिरस्कार) होने पर पराक्रम (बल प्रयोग) करना ही पुरुषों का भूषण हैं।।

व्याकरण टिप्पणी –

भूषणं	–	भूष् ल्युट् + सु ।
अन्यदा	–	अन्य + दा।
क्षमा	–	क्षम् + अङ् + सु।
वैयात्यम्	–	वि + यत् + ष्यञ्।
सुरतेषु	–	सु + रम् + क्त + सुप्।
भूषणम्	–	भूष्यते अनेनेति।
सुरतेषु	–	सुष्ठु रम्यते येषु तानि सुरतानि तेषु (बहुव्रीहि)।
लज्जेव	–	लज्जा + इव (गुण.)।
सुरतेष्विव	–	सुरतेषु + इव (यण.)।

छंद – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः।। 45।।

अन्वय – परावज्ञादुः खदग्धः यः मा जीवन् अपि जीवति। जननीक्लेशकारिणः तस्य अजनिः एव अस्तु।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलरामजी परिभवकाल में क्षमानीति अपनाने वाले व्यक्ति के जीवन की व्यर्थता प्रतिपादित कर रहे हैं।

अनुवाद (भावार्थ) – (अब बलरामजी परिभव होने पर भी क्षमा करने की तीन श्लोको से निंदा करते हैं–) जो व्यक्ति शत्रु के अपमानजन्य दुःख से सन्तप्त होकर भी निन्दित जीवन बिताते हुए जीता हैं, (गर्भ में दश मास रहने से) माता को क्लेश देने वाला उसका जन्म ही न हो। (अथवा – जो व्यक्ति जीता है, वह न जीये अर्थात मर जाय और गर्भ में दश मास रहने से माता को कष्ट न हो)।।

व्याकरण टिप्पणी –

जीवन्	–	जीव् + शतृ।
अवज्ञा	–	अव + ज्ञा + क्विप् + टाप्।
दग्धः	–	दह् + क्त + सु।
अजनिः	–	न + जनि + सु (जनिः त्र जन् + इनि)
जननीक्लेशकारिणः	–	जननी + क्लेश + कृ + णिनि + ङस्।
परावज्ञादुःखदग्धः	–	परस्य अवज्ञया दुःखं तेन दग्धः (तत्पुरुष)

छंद – अनुष्टुप्।

अलंकार – वक्रोक्ति, अन्योक्ति।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः।। 46।।

अन्वय – यत् (रजः) पादाहतं, उत्थाय मूर्धानम् अधिरोहति। अपमान अपि स्वस्थात् देहिनः तद् रजः वरम्।

प्रसंग – उक्त श्लोक में धूलि के उदाहरण द्वारा बलराम जी श्रीकृष्ण को शिशुपाल से प्रतिशोध हेतु त्तपर बना रहे हैं–

अनुवाद – जो धूलि पैर से आहत होने पर (आहतकर्ता) के शिर पर चढ़ जाती है, अपमान होने पर भी शान्त रहने वाले उस प्राणी से वह धूलि भली है।

व्याकरण टिप्पणी –

आहतं	–	आङ् + हन् + क्त + सु।
उत्थाय	–	उत् + स्था + ल्यप्।
अपमाने	–	अप + मा + ल्युट् + ङि।
स्वस्थात्	–	स्व + स्था + क + ङसि।
देहिनः	–	देह + इनि + ङसि।
अधिरोहति	–	अधि + रूह + तिप् (लट्)।
पादाहतं	–	पादाभ्याम् आहतं (तृतीया त्तपु),
देहिनः	–	देह अस्यास्तीति तस्य।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – व्यतिरेक।

असम्पादयतः कश्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः।
यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम् ।। 47।।

अन्वय – जातिक्रियागुणैः कश्चिद् अर्थम् असम्पादयतः पुंसः जन्म यदृच्छाशब्दवत् केवलं संज्ञायै (भवति)।

प्रसंग – पूर्ववत्।

अनुवाद – जाति (गोत्व आदि), क्रिया (पाचकत्व आदि) और गुण (शुक्लत्व आदि) के द्वारा किसी अर्थविशेष को सम्पादन नहीं करते हुए (डित्थ डवित्थ आदि) यदृच्छा शब्द के समान जाति (ब्राह्मणत्व आदि), क्रिया (अध्ययन आदि) तथा गुण (शौर्य आदि) के द्वारा किसी (पुण्य, क्रीति, पुरुषार्थ आदि) प्रयोजन की सिद्धि को नहीं करते हुए पुरुष का जन्म केवल (देवदत्त यज्ञदत आदि) नाम के लिए है।

भावार्थ – जिस प्रकार जात्यादि प्रवृत्ति शून्य स्वेच्छाकल्पित डित्थादि पारिभाषिक शब्द किसी नाम मात्र का अनुभव (ज्ञान–संकेत) कराने के लिए हैं, (उन से प्रवृत्ति–निर्मित अन्य कोई अवयवार्थ नहीं निकलता) उसी प्रकार ब्राह्मणत्वादि प्रवृत्ति शून्य किसी अर्थसिद्धि को नहीं करने वाले पुरुष का जन्म भी देवदत्त, यज्ञदत्त आदि नाम के लिए है। (उसो पुरुष से कोई कार्य विशेष सिद्ध नहीं हो सकता, अत एव उनका जन्म लेना व्यर्थ है) ।।47।।

व्याकरण टिप्पणी –

जाति	–	जन् + क्तिन्।
असम्पादयतः	–	न + सम् + पद् + णिच् + शतृ + ङस्।
शब्दवत्	–	शब्द + मतुप्।
संज्ञायै	–	सम् + ज्ञा + क + टाप् + ङे।
जातिक्रियागुणैः	–	जातिश्च क्रिया च गुणानि च तैः (द्वन्द्वसमासः)
यदृच्छाशब्दवत्	–	यदृच्छया शब्दस्तद् इव (तृतीया त्तपु.)।
असम्पादयतः	–	न सम्पादयतीति तस्य (नञ्.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता।
अलङ्घनीयताहेतुरुभयं तन्मनस्विनि।। 48।।

अन्वय – अद्रौ तुङ्गत्वम् इतरा न। सिन्धौ अगाधता इदं न। मनस्विनि तद् उभयम् अलङ्घनीयता हेतुः।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम जी अकर्मण्य पुरुष की निन्दा के उपरान्त पुरुषार्थी पुरुष की महत्ता का प्रतिपादन कर रहे हैं।

अनुवाद – (उक्त श्लोक से पुरुषार्थ शून्य होने की निन्दा कर अब आग पुरुषार्थी होने की प्रशंसा करते हैं–) पर्वत में ऊँचाई है, किन्तु अगाधता (गाम्भीर्य) नहीं है, तथा समुद्र में अगाधता (गाम्भीर्य) है, किन्तु ऊँचाई नही हैं, परन्तु मनस्वी पुरुष में अलङ्घनीय होने के कारण ये दोनों (ऊँचाई तथा गाम्भीर्य) वर्तमान हैं।

भावार्थ – मनस्वी पुरुष में उच्चता (महानता) तथा गम्भीरता दोनों विद्यमान हैं, अतः उसका कोई लंघन करे (उसे अपमानित करे) और वह चुपचाप बैठा रहे, यह सर्वथा अनुचित है। इसलिए शिशुपाल से अपमानित होकर हम लोगों को चुपचाप नहीं बैठना चाहिए। ।।48।।

व्याकरण टिप्पणी –

तुङ्गत्वम्	–	तुङ्ग + त्व।
अगाधता	–	अगाध + तल् + टाप्
अलङ्घनीयता	–	न + लङ्घ + अनीयर् + तल्।
मनस्विनि	–	मनस् + विनि + ङि।
अलङ्घनीयता हेतु	–	अलङ्घनीयतायाः हेतुः (षष्ठी त्तपुरुष)
छन्द	–	अनुष्टुप्।
अलंकार	–	व्यतिरेक।

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत्।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्।।49।।

अन्वय – अपराधे तुल्ये (अपि) स्वर्भानुः यत्र भानुमन्तं चिरेण, हिमांशु (च) आशु ग्रसते त्त् म्रदिम्नः फलं स्फुटम् (ज्ञेयम्)

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलरामजी शत्रु के प्रति नम्रता के दुष्परिणाम को सूचित कर रहे हैं –

अनुवाद – (पुनः तेजस्वी होने के गुण को कहते हैं–) समान अपराध होने पर राहु सूर्य को विलम्ब से तथा चन्द्रमा को शीघ्र ग्रसता है, यह कोमल (शान्त) होने का स्पष्ट फल है ।। 49।।

व्याकरण टिप्पणी –

भानुमन्तं	–	भानु + मतुप् अम्।
तुल्ये	–	तुल् + यत् + ङि।
म्रदिम्नः	–	मृदु + इमनिच् + ङस्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अप्रस्तुतप्रशंसा।

स्वयं प्रणमतेऽल्पेऽपि परवायावुपेयुषि।
निदर्शनमसाराणां लघुर्बहु तृणं नरः।। 50।।

अन्वय – असाराणां निदर्शनं बहुतृंण लघु नरः अल्पेऽपि परवायौ उपेयुषि स्वयं प्रणमते।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलरामजी दुर्बल व्यक्ति के पराभव को उदाहरण द्वारा निरूपित कर रहे हैं –

अनुवाद – निस्सार वस्तुओं का उदाहरण तृणतुल्य मनुष्य थोड़े (छोटे) भी शत्रुरूपी हवा के आने पर स्वयं प्रणाम करता (झुक जाता) है।

भावार्थ – जब मन्द हवा चलती है, तब भी निःसार तृण स्वयं झुक जात है। उसी प्रकार जो मनुष्य छोटे शत्रु के उपस्थित होने पर भी स्वयं नम्र हो जाते है, वे तृण के समान निःसार पदार्थों के उदाहरण हैं। ।। 50।।

व्याकरण टिप्पणी –

असाराणां	–	नञ् + सृ + घञ + आम्।
निदर्शन	–	नि + दृश् + ल्युट् + अम्।
बहुतृणं	–	तृण + बहुच्।
उपेयुषि	–	उप + इण् + सन् + ङि।
प्रणमते	–	प्र + नम् + त (लट्)।
नरः	–	नृ + अप्।
परवायौ	–	परः वायुरिव तस्मिन् (उपमित.)।
असाराणां	–	नास्ति सारो येषान्तेषां (बहुव्रीहिः)।
निदर्शनं	–	निदर्शयतीति (उपपद.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवोयानपि गण्यते।
पञ्चमः पञ्चतपसस्तपनो जातवेदसाम्।। 51।।

अन्वय – दवीयान् अपि तेजस्वी तेजस्विमध्ये गण्यते। पञ्चतपसः तपनः जातवेदसां पञ्चमः।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलराम जी तेजस्वी पुरुष की प्रभावशालिता को पञ्चाग्नि के दृष्टान्त से स्पष्ट कर रहे हैं।

अनुवाद – अत्यन्त दूर रहने वाला भी तेजस्वी पुरुष नेजस्वियों में उस प्रकार गिना जाता है, जिस प्रकार पञ्चतप वाले तपस्वियों की पञ्चाग्नि में (अतिशय दूरस्थ होने पर भी) सूर्य पांचवीं अग्नि होता है। ।। 51।।

व्याकरण टिप्पणी –

तेजस्वी	–	तेजः + विनि।
दवीयान्	–	दूर + ईयसुन् + सु।
गण्यते	–	गण + यक + त।
पच्चमः	–	पञ्च + डट्।
जातवेदसाम्	–	जात + विद + घञ + आम्।
तेजस्विमध्ये	–	तेजस्विनां मध्ये (षष्ठी त्तपु.)।
पंचतपसः	–	पंचाग्निसाध्यं तपो यस्य तस्य (बहुब्रीहिः)
पंचमः	–	पंचानां पूरणः। (पूरणार्थे डट्)।
जातवेदसां	–	जात एवं वेत्तीति जातवेदा तेषाम्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्धसु विद्विषाम्।
कथंकारमनालम्बा कीर्त्तिर्द्यामधिरोहति ।। 52।।

अन्वय – उच्चैः विद्विषां मूर्धसु हेलया पादम् अकृत्वा, अनालम्बा कीर्त्तिः द्यां कथंकारम् अधिरोहति।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम जी शत्रुदमन से ही यशः प्रसार का प्रतिपादन करके अपने वक्तव्य की पुष्टि कर रहे हैं –

अनुवाद – शत्रुओं के उन्नत मस्तक पर बिना पैर को रखे आलम्बन रहित कीर्ति किस प्रकार स्वर्ग को जायेगी?

भावार्थ – जिस प्रकार ऊपर चढने के लिए ऊँची सीढ़ियों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार कीर्ति को स्वर्ग तक पहुंचाने के लिए शत्रुओं का वध करना आवश्यक है, जिससे उनके ऊँचे मस्तक रूपी सीढ़ियों पर पैर रख कर कीर्ति स्वर्ग तक पहुँचा जाय। ।।52।।

व्याकरण टिप्पणी –

अकृत्वा	–	न + कृ + क्त्वा।
विद्विषां	–	वि + द्विष् + क्विप् + आम्।
कथंकारम्	–	कथम् + कृ + णमुल्।
कीर्तिः	–	कृ + क्तिन् + सु।
अधिरोहति	–	अधि + रुह् + तिप् (लट्)।
अकृत्वा	–	न कृत्वा (नञ्.)।
अनालम्बा	–	न विद्यते आलम्बो यस्याः सा (बहुव्रीहि),
विद्विषां	–	विशेषेण द्विषन्तीति तेषां (उपपद.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – समासोक्ति।

अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलांछनः।
केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः।। 53।।

अन्वय – अङ्काधिरोपितमृगः चन्द्रमाः मृगलाच्छनः निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथः केसरी (च) मृगाधिपः (कथ्यते)।

प्रसंग – उपर्युक्त पद्य में बलराम जी क्रूरता को प्रभुत्व का कारण बतला कर शुत्रहनन रूप कार्य के औचित्य को सिद्ध कर रहे हैं।

अनुवाद – लोग (दया से) अङ्क में मृग को रखने वाले चन्द्रमा को 'मृगलांछन' (मृग के कलङ्कवाला) कहते हैं तथा निर्दयतापूर्वक मृग–समूह को मारने वाले सिंह को 'मृगाधिप' (मृगों का स्वामी) कहत हैं ।।53।।

व्याकरण टिप्पणी –

अधिरोपित	–	अधि + रोप् + क्त।
क्षिप्त	–	क्षिप् + क्त।
मृगाधिपः	–	मृग + अधि + पा + क + सु।
केसरी	–	केसर + इनि + सु।
अङ्काधिरोपितमृगः	–	अङ्कम् अधिरोपितः मृगो येन सः (बहुव्रीहि)।
मृगलांछनः	–	मृगो लांछनं यस्य सः (बहुव्रीहिः)।
निष्ठुरक्षिप्तमृगयथः	–	निष्ठुरं क्षिप्तानि मृगाणां यूथानि येन सः (बहुब्रीहिः)।
मृगाधिपः	–	मृगाणामधिपः (षष्ठी त्तपु.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अप्रस्तुतप्रशंसा।

चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति।। 54।।

अन्वय – चतुर्थोपायसाध्ये रिपौ सान्त्वं तु अपक्रिया। कः प्राज्ञः स्वेद्यम् आमज्वरम् अम्भसा परिषिंचति।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलराम जी शत्रु के लिए उचित दण्डनोति की परिपालना के औचित्य का कथन करते है।

अनुवाद – दण्ड के द्वारा वश में करने योग्य शत्रु के साथ साम (शान्ति) का व्यवहार हानिकारक होता है, क्योंकि पसीना लाने योग्य ज्वर को कौन विद्वान् (चतुर चिकित्सक आदि) पानी से सींचता (पानी छिड़क कर शान्त करता) है? अर्थात् कोई नहीं। ।। 54।।

व्याकरण टिप्पणी –

साध्ये	–	साध् + यत् + ङि।
अपक्रिया	–	अप + कृ + क + टाप्।
स्वेद्यं	–	स्विद् + ण्यत्।
प्राज्ञः	–	प्रज्ञा + अण्।
परिषिंचति	–	परि + सिंच् + तिप् (लट्)।
अम्भसा	–	अम्भः + टा।
चतुर्थोपायसाध्ये	–	चतुर्थश्चासावुपायः (कर्मधा.) तेन साध्ये (तृ. त्तु.)।
अपक्रिया	–	अपकरोतीति (उपपद.)।
आमज्वरं	–	आमश्चासौ ज्वरस्तं (कर्म वा.)।

प्राज्ञः – प्रकर्षेण जानातीति (उपपद.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – दृष्टान्त।

सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपकाः।
प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः।। 55।।

अन्वय – सहसा प्रतप्तस्य सर्पिषः तोयबिन्दवः इव सकोपस्य तस्य सामवादाः प्रत्युत दीपकाः।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम जी कुद्ध शत्रु के प्रति सामवचनों के विपरिणाम को घी तथा जलबिन्दु के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं।

अनुवाद – क्राधयुक्त उस शिशुपाल के प्रति साम (शान्तिपूर्ण) वचन कहना उलटे उसके कोध को बढ़ाने वाले हो जायेंगे, जिस प्रकार तपे हुए घी में छोड़ी गयी जल की बूंदे घी को उद्दीप्त करने वाली होती है।

व्याकरण टिप्पणी –

वादाः – वद् + घञ् + जस्।
दीपकाः – दीप् + ण्वुल् + जस्।
प्रतप्तस्य – प्र + तप् + क्त + ङस्।
सामवादाः – सामप्रमुखा वादाः (मध्यम पद लोपी त्तपुरुष)।
सकोपस्य – कोपेन सहितस्तस्य (प्रादि त्तपुरुष)।
प्रतप्तस्य – प्रकृष्टं तप्तः तस्य (प्रादि त्तपुरुष)।
तोयबिन्दवः – तोयानां बिन्दवः (षष्ठी त्तपुरुष)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा, उत्प्रक्षा।

गुणानामायथातथ्यादर्थं विप्लावयन्ति ये।
अमात्यव्यञ्जना राज्ञां दूष्यास्ते शत्रुसंज्ञिताः।। 56।।

अन्वय – ये गुणानां अयथातथ्यात् अर्थं विप्लावयन्ति ने शत्रुसंहिताः अमात्यव्यंजनाः राज्ञां दूष्याः।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी कृष्ण को छद्म मंत्रियों से बचने की बात बताकर उद्धव के भावी मन्तव्य के प्रति जागरूक रहने का संदेश देते हैं।

अनुवाद – (ऐसा मेरे कहने का कदाचित् उद्धव खण्डन करें, इस आशय से उनकी ओर लक्ष्य करते हुए बलरामजी कहते हैं–) गुणों (संधि–विग्रहादि कार्यो) के यथायोग्य न करने से जो लोग राजकार्य को बिगाड़ते हैं, कपट मंत्रीवेश धारण किये हुए परन्तु वास्तव में शत्रुकृत्य हैं। उनका त्याग कर देना चाहिए। (अथवा ..... बिगाड़ते हैं, कपट से मंत्री बनकर दोनो पक्ष से वेतन लेते हैं, अत एव शत्रुतुल्य होने से वे दूषित करने योग्य हैं)।

व्याकरण टिप्पणी –

अयथातथ्यात – न + यथातथा + ष्यञ् + ङसि।
विप्लावयन्ति – वि + प्लु + णिच् + झि (लट्)।
व्यञजनाः – व्यज् + ल्युट् + जस्।
संज्ञिताः – सम् + ज्ञा + क्त + जस्।
दूष्याः – दूष् + यत् + जस्।
अयथातथ्यात – न यथातथम् (नञ्) तस्य भावस्तमात्।
अमात्यव्यंजनाः – अमात्यानां व्यंजनं येषान्ते (बहुव्रीहिः)।
शत्रुसंज्ञिताः – शत्रुरिति संज्ञा संजाता येषान्ते (बहुब्रीहिः) अथवा शत्रव इति स्जानीते (उपपद.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – व्याजोक्ति।

स्वशक्त्युपचये केचित्परस्य व्यसनेऽपरे।
यानमाहुस्तदासीनं त्वामुत्थापयति द्वयम्।। 57।।

अन्वय – केचित् स्वशक्त्युपचये अपरे परस्य व्यसने यानम् आहः। द्वयम् आसीनं त्वाम् उत्थापयति।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम जी शत्रु पर आक्रमण के लिए उचित देशकाल परिस्थिति का निरूपण कर रहे हैं।

अनुवाद – कोई राजनीतिज्ञ अपने प्रभुदण्डलक्षण शक्ति के बढ़े रहने पर शत्रु पर चढ़ाई करना उचित कहते हैं, तथा कोई राजनीतिज्ञ शत्रु को विपत्ति में पड़ने पर उस पर चढ़ाई करना उचित कहते हैं, वे दोनों ही (अपनी शक्ति की वृद्धि तथा शत्रु की विपत्ति) आलस से बैठे हुए आपको उठा (युद्ध के लिए उत्साहित कर) रहे हैं। इस कारण शिशुपाल पर चढ़ाई करने का यही उपयुक्त अवसर हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

शक्तिः	–	शक् + क्तिन्।
व्यवसने	–	वि + अस् + यु + ङि.।
यानम्	–	या + ल्यूट्।
आसीनम्	–	आस् + क्त + अम्।
स्वशक्त्युपचये	–	स्वशक्तेरुपचयस्तस्मिन् (षष्ठी)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अनुप्रास, दीपक।

लिलङ्.घयिषतो लोकानलङ्घ्यानलघीयसः।
यादवाम्भोनिधीन् रुन्धे वेलेव भवतः क्षमा।। 58।।

अन्वय – लोकान लिलङ्यिषतः अलङ्घ्यान अलीघयः यादवाम्भोनिधीन् भवतः क्षमा वेला इव रून्धे।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम जी कृष्ण की सहिष्णुता नीति को ही विजयाभियान में बाधक निरूपित करते हैं।

अनुवाद – (अब बलरामजी अपनी शक्ति की वृद्धि को बतला रहे हैं –) संसार को लांघने के इच्छुक तथा (स्वयं किसी से) अलंघनीय और बहुत बड़े यादवरूपी समुद्रों को केवल आपकी क्षमा तट के समान रोक रही हैं। (अथवा – अलंघनीय (दूसरे किसी से अजेय) संसार को लांघन के इच्छुक राजाओं को रोक रही है)।।

व्याकरण टिप्पणी –

लिलङ्घ्यिषतः	–	लड.घ् + णिच् + सन् + शतृ + शस्।
अलङ्घ्यान्	–	न + लड.घ् + यत् + शस्।
अलघीयसः	–	न + लघु + ईयसुन् + शस्।
रुन्धे	–	रुध् + त (लट्)।
अलङ्घ्यान्	–	न लङ्घ्या ये तान् (नञ्बहुब्रीहिः)।
अलघीयसः	–	न लघीयस इति (नञ्)।
यादवाम्भोनिधीन्	–	यादवा एवाम्भोनिधयस्तान् (कर्मधारय)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा, रूपक।

विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम् ।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धभोंग इवात्मनि ।। 59।।

अन्वय – समीक्ष्योक्ते आत्मनि बुद्धेः भोग एवं फलभाजि त्वयि साक्षिमात्रे सेनायाः विजयः अपदिश्यताम्।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी यानार्थ श्रीकृष्ण की नैमित्तिकता की कामना करते हुए विजयरूपी लक्ष्य की प्राप्ति की निश्चित्ता व्यक्त कर रहे है।

अनुवाद – फलभोक्ता (विजय का लाभ पाने वाले) साक्षिमात्र आप में सेना की विजय उस प्रकार प्रयुक्त हो, जिस प्रकार साङ्ख्योक्त फलभोक्ता साक्षिमात्र आत्मा में बुद्धि भोग प्रयुक्त होता हैं।

भावार्थ – जिस प्रकार साङ्ख्य के मत में संसार युक्तिरूप बुद्धिसम्बन्धी भोग फलभोक्ता उदासीन आत्मा का कहा जाता हैं, अर्थात् यद्यपि बुद्धि ही बद्ध होती हैं, मुक्त होती हैं, सब कुछ अनुभव करती हैं, तथापि पुरुष बद्ध हुआ, मुक्त हुआ आत्मा को सुख हो रहा हैं, आत्मा को दुःख हो रहा हैं – इस प्रकार बुद्धि का भोग दृष्टमात्र आत्मा का कहा जाता हैं। उसी प्रकार आप केवल बुद्ध में उपस्थित होकर केवल देखते रहें, सेना ही शत्रुओं को मारेंगी, विजय करेगी और स्वामी होने के कारण आपको उसका फल प्राप्त होगा। श्रीकृष्ण भगवान ने शत्रुओं को मारा। उन पर विजय प्राप्त की, ऐसा कहा जायेगा। आपको केवल वहाँ उपस्थित रहने की आवश्यकता है, कार्य तो सब सेना ही करेगी।।

व्याकरण टिप्पणी –

फलभाजि	–	फल + भज् + क्विप् + डि.।
उक्ते	–	वच् + क्त + डि.।
साक्षिमात्रे	–	साक्षि + मात्रच् + डि.।
अपदिश्यतां	–	अप + दिश् + तिप् (लोट्)
बुद्धेः	–	बुध् + क्तिन + ड.स्
भोग	–	भुज् + घञ् + सु।
साक्षिमात्रे	–	मात्रं साक्षी तस्मिन् (अव्ययीभावः)।
फलभाजि	–	फलं भजते इति फलभाक् तस्मिन् (उपपद.)।
समीक्ष्योक्ते	–	समीक्ष्यमिति उक्तिर्यस्य सः समीक्ष्योक्तिःस्मिन् (बहुब्रीहिः)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

हते हिडिम्बरिपुणा राज्ञि द्वैमातुरे युधि।
चिरस्य मित्रव्यसनी सुदमो दमघोषजः।। 60।।

अन्वय – हिडिम्बरिपुणा राज्ञि द्वैमातुरे युधि हते चिरस्य मित्रव्यसनी दमघोषजः सुदमः।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम यानकाल के शास्त्रसम्मत औचित्य के पक्ष में शत्रु की संकटग्रस्त स्थिति का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं –

अनुवाद – (अब चढ़ाई के योग्य शिशुपाल का व्यसन कहते हैं–) भीम के द्वारा युद्ध में जरासन्ध के मारे जाने पर सदा मित्र की मृत्यु से दुःखी शिशुपाल को सुखपूर्वक जीता जा सकता हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

हते	–	हन् + क्त + डि.।
राज्ञि	–	राजन् + डि. ।

द्वैमातुरे – द्वि + मातृ + अण् + ङि।
व्यसनी – व्यसन + इनि + सु।
दमघोषजः – दमघोष + जन् + ड।
हिडिम्बरिपुणा – हिडिम्बस्य रिपुस्तेन (षष्ठी तत्पुरुष)।
द्वैमातुर – द्वयोर्मात्रोरपत्यं पुमान् तस्मिन् (उपपद समास)।
मित्रव्यसनी – मित्रस्य व्यसनम् अस्यास्तीति (उपपद समास)।
सुदमः – सुखेन दम्यते (उपपद समास)।
दमघोषजः – दमघोषात् जन्म यस्य (उपपद समास)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – यमक, अनुप्रास।

नीतिरापदि यद्गम्यः परस्तन्मानिनो ह्रिये।
विधुर्विधुन्तुदस्येव पूर्णस्तस्योत्सवाय सः।। 61।।

अन्वय – आपदि परः गम्यः इति यत् नीतिः मानिनः ह्रिये (भवति) विधुन्तुदस्य विधु इव तस्य पूर्णः सः उत्सवाय (एव भवति)।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी संकटग्रस्त शत्रु पर आक्रमण के संदर्भ में स्वाभिमानी मनुष्य की पक्षता का प्रतिपादन कर रहे हैं।

अनुवाद – आपत्ति में फंसे हुए शत्रु पर चढ़ाई करनी चाहिए, यह जो नीति है, वह मानों पुरुष के लिए लज्जाजनक हैं, पूर्ण चन्द्रमा पर जिस प्रकार राहु आक्रमण करता हैं, उसी प्रकार समृद्धि से पूर्ण शत्रु पर आक्रमण करना मानी पुरुष के हर्ष के लिए होता हैं।।

व्याकरण टिप्पणी –

नीतिः – णीञ् + क्तिन् + सु।
आपदि – आङ्. + पद् + क्विप् + डि.।
गम्यः – गम् + यत् + सु।
मानिनः – मान + इनि + डस्।
विधुन्तुदस्य – विधु + तुद् + खश् + ड.स्।
विधुन्तुदस्य – विधुं तुदतीति तस्य (उपपद)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

अन्यदुच्छृंङ्खलं सत्वमन्यच्छास्त्रनियन्त्रितम्।
सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः।। 62।।

अन्वय – उच्छृंङ्खलं सत्त्वम् अन्यत्, शास्त्रनियन्त्रितम् अन्यत् हि तेजस्तिमिरयोः सामानाधिकरण्यं कुतः?

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी शारीरिक बल तथा नियंत्रित बल के अन्तर को स्पष्ट कर रहे हैं।

अनुवाद – उच्छृङ्खल (नियंत्रण रहित स्वतंत्र) बल दूसरा हैं, तथा शास्त्र से नियंत्रित बल दूसरा हैं, (दोनों में समानता नहीं लायी जा सकती क्योंकि) प्रकाश तथा अन्धकार का सामानाधिकरण्य (एक साथ स्थिति) कहाँ से हो सकता हैं ? अर्थात् नहीं हो सकता।

व्याकरण टिप्पणी –

सत्वं – सत् + त्वल् + अम्।
शास्त्र – शास् + त्रल् ।

नियन्त्रित – नि + यन्त्र + क्त।

सामानाधिकरण्यं – सामानाधिकरण + ष्यञ् + अ्।

कुतः – किम् + तसिल्।

शास्त्रनियन्त्रितं – शास्त्रैःनिंयन्त्रितम् (तृतीया तत्दु.)।

तेजस्तिमिरयोः – तेजः तिमिरश्च तयोः (द्वन्द्वः) ।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

इन्द्रप्रस्थगमस्तावत् कारि मा सन्तु चेदयः।
आस्माकदन्तिसांनिध्याद्वामनीभूतभूरुहः।। 63 ।।

अन्वय – तावत् इन्द्रप्रस्थगमः मा कारि। चेदयः आस्माकदन्तिसान्निध्याद् वामनीभूतभूरुहः सन्तु।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी अपने पक्ष के द्वारा करणीय कर्तव्य का निर्देश कर रह हैं।

अनुवाद – (अन्त में अपना कर्तव्य–निर्देश करते हैं–) इसलिए आप हस्तिनापुर को मत जाइये, किन्तु चेदिदेश हम लोगों के हाथियों के सान्निध्य से छोटे पेड़ो वाले हो जायें। आप युधिष्ठिर के यहाँ जाने का विचर छोड़कर शिशुपाल पर आक्रमा करने चेदि देश को चलिये, जिससे हमलों की सेना के अनेक हाथियाों के लिए वहाँ की पेड़ों की डालियों को काटने एवं हाथियों के द्वारा तोड़े जाने से चेदि देश के पेड़ वामन– छोटे–छोटे (ठूँठ) हो जायें।।

व्याकरण टिप्पणी –

इन्द्रप्रस्थगमः – इन्द्रप्रस्थस्य गमः (षष्ठी त्तपु.)।

आस्माकदन्तिसान्निध्याद्वामनीभूतभूरुहाः – आस्माकदन्तिसान्निध्यात् + वामनीभूतभूरुहः (हल्सन्धि)।

कोषः तावत् – यावतावत्परिच्छेदे कात्स्न्र्ये मानेऽवधारणे।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – पर्यायोक्ति।

निरूद्धवीवधासारप्रसारा गा इव व्रजम्।
उपरुन्धन्तु दाशार्हाः पुरीं माहिष्मतीं द्विषः।।64।।

अन्वय – निरुद्धवीवधासारप्रसारा दाशार्हाः व्रजं गा इव द्विषः माहिष्मतीं पुरीम् उपरुन्धन्तु।

प्रसंग – उक्त श्लोक में बलरामजी शत्रु की राजधानी को घेर लेने का निर्देश करते हैं।

अनुवाद – भोज्य पदार्थ अन्नादि, मित्रों की सहायता सेना तथा घास–भूसा और ईंधन आदि को रोकने वाले यादव माहिष्मती नाम की शत्रु की नगरी में शत्रुओं को उस प्रकार घेर लें, जिस प्रकार बहंगियों से दूध आदि ढोने वालों के आने जाने को रोकने वाले (गोपाल) व्रज (गोशाला) में गायों को घेरते हैं। इस प्रकार शत्रुओं को घेरने तथा शिशुपाल की माहिष्मती पुरी में खाद्यसामग्री, सहायता करने वाली शत्रुओं की सेना और पशुओ के लिए घास एवं भोजनादि पकाने के लिए ईंधन का बाहर से आने को रोक देने से हम शीघ्र ही उसे जीत लेंगे।

व्याकरण टिप्पणी –

निरूद्ध – नि + रुध् + क्त।

आसार – आड. + सृ + घञ्।

पुरीं – पुर + ङीप् + अम्।

द्विषः – द्विष् + क्विप् + ड.स्।

निरूद्धवीवधासारप्रसाराः – निरूद्धा वीवधासारप्रसारा यैस्ते (बहुव्रीहिः) अथवा निरूद्धौ वीवधसारप्रसारौ यैस्ते (बहुव्रीहिः)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपत्विनः।।
वयं हनाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते।। 65।।

अन्वय – पाण्डवः यजताम् इन्द्रः स्वर्गम् अवतु, इनः तपतुः, वयं द्विषतः, हनाम सर्वः स्वार्थं समीहते।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में बलरामजी अपने कथन का उपसंहार करते हुए अपने लक्ष्यपूर्ति की मंगलकामना अभिव्यक्त कर रहे हैं।

अनुवाद – पाण्डव (युधिष्ठिर) यज्ञ करें, इन्द्र स्वर्ग की रक्षा करें, सूर्य प्रकाशित होवें, तथा हम शत्रुओं का वध करें, क्योंकि सभी स्वार्थसाधना चाहते हैं (या–स्वार्थ साधन करते हैं)।

भावार्थ – जिस प्रकार युधिष्ठिर, इन्द्र तथा सूर्य दूसरे के कार्यसाधन की अपेक्षा न करके अपने–अपने यज्ञादिकार्य में संलग्न है, वैसे ही हम लोग भी शत्रु वध रूपी अपने कार्य में संलग्न होवें और दूसरे (पाण्डव के यज्ञरूप कार्य साधन की अपेक्षा न करें।) अथवा जिस प्रकार इन्द्र तथा सूर्य पाण्डव के यज्ञ की अपेक्षा न करके स्वर्गपालनादि अपने–अपने कार्य–साधन में संलग्न हैं वैसे हम लोग भो पाण्डव के यज्ञ की अपेक्षा न करके शत्रुवध रूप कार्य में संलग्न हो जाय।

व्याकरण टिप्पणी –

द्विषतः – द्विष् + क्विप् + तुक् + शस्।
पाण्डवः – पाण्डु + अण्।
यजताम् – यज् + लोट्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

प्राप्यतां विद्युतां सम्पत्सम्पर्कादर्करोचिषाम्।।
शस्त्रैर्द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः।। 66।।

अन्वय – द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः शस्त्रैः अर्करोचिषां सम्पर्कात् विद्युता सम्पत् प्राप्यताम्।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलराम युद्ध हेतु तैयारी के प्रति अपना स्पष्ट अभिमत प्रकट करते हैं।

अनुवाद – शत्रुओं के सिर काटने से (धारा से) निकलते हुए रक्त से भीगे हुए हम लोगो के हथियार सूर्य किरणों से संसर्ग से बिजली के समान शोभित होवें।

व्याकरण टिप्पणी –

विद्युतां – वि + द्युत् + क्विप् + आम्।
सम्पत् – सम् + पद् + क्विप्।
सम्पर्कात् – सम् + पृच् + ण्वुल् + ङसि।
ऊक्षितैः – उक्ष् + क्त + भिस्।
अर्करोचिषां – अर्कस्य रोचींषि तेषां (तत्पु.)।
द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः – द्विषतां शिरांसि तेषां छेदस्तस्मात् प्रोच्छलत् शोणितं तेन ऊक्षितानि तैः (तत्पु.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – निदर्शना।

इति संरम्भिणो वाणी बलस्यालेख्यदेवताः।
सभाभित्तिप्रतिध्वानैर्भयादन्ववदन्निव ।। 67।।

अन्वय – इति संरम्भिणः बलस्य वाणीः आलेख्यदेवताः सभाभित्तिप्रतिध्वानैः भयात् अन्ववदन् इव।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बलरामजी के कथन की पुष्टि के निमित्तरूप में कवि प्रतिध्वनि द्वारा अनुमोदन की कल्पना व्यक्त कर रहा है।

अनुवाद – (दीवारों में) चित्रित देवों ने भय से इस प्रकार क्षुभित बलरामजी के वचनों का मानों सभा की दीवारों की प्रतिध्वनि से अनुमोदन सा किया।

व्याकरण टिप्पणी –

संरम्भिणः	–	सम् + रम्भ् + इनि + ङस्।
आलेख्य	–	आङ् + लिख् + यत्।
देवताः	–	देवः + तल् + जस्।
प्रतिध्वनिः	–	प्रतिः + ध्वन् + घञ् + भिस्।
अन्ववदत्	–	अनु + वद् + तिप् (लङ्.)
संरम्भिणः	–	संरम्भोऽस्यास्तीति (उपपद)
आलेख्यदेवताः	–	आलेख्यगताः देवताः (मध्यमपदलोपी तत्पुरुष)।
सभाभित्तिप्रतिध्वनै	–	सभायाः भित्तिषु प्रतिध्वानास्तैः (तत्पुरुष)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उत्प्रेक्षा।

निशम्य ताः शेषगवीरभिधातुमधोक्षजः।
शिष्याय वृहतां पत्युः प्रस्तावमदिशद्दृशा।।68।।

अन्वय – ताः शेषगवीः निशम्य अधोक्षजः बृहतां पत्युः शिष्याय अभिधातुं दृशा प्रस्तावम् अदिशत्।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में श्री कृष्ण उद्धव को बोलने का संकेत कर रहे हैं।

अनुवाद – शेष (नाग के अवतार बलरामजी) के उन वचनों को सुनकर श्रीकृष्णजी ने बृहस्पति के शिष्य (उद्धवजी) से नेत्र के संकेत के द्वारा प्रस्ताव रखा अर्थात् संकेत कर कहने के लिए प्रेरित किया।

व्याकरण टिप्पणी –

निशम्य	–	नि + शम् + ल्यप्।
पत्थुः	–	पा + डति + डस्।
शिष्याय	–	शास् + यत् + ङे।
अभिधातुं	–	अभि + धा + तुमुन्।
दृशा	–	दृश् + टा।
अदिशत्	–	दिश् + तिप् (लङ.)
अधोक्षजः	–	अधः कृतम् अक्षणं ज्ञानं येन सः (बहुव्रीहि)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अनुप्रास।

भारतीमाहितभरामथानुद्धतमुद्धवः।।
तथ्यामुतथ्यानुजवज्जगादाग्रे गदाग्रजम्।। 69।।

अन्वय – अथ उद्धव आहितभरां तथ्यां भारतीम् अनुद्धतं गदाग्रजम् अग्रे उतथ्यानुजवद् जगाद।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में श्रीकृष्ण के प्रति उद्धव अपना तथ्यपूर्ण वक्तव्य प्रस्तुत कर रहे हैं।

अनुवाद – इस (भ्रूक्षेप द्वारा श्री कृष्ण भगवान् के बोलने के संकेत करने) के बाद श्रीकृष्ण के आगे बृहस्पति के समान अर्थगौरव (या वचनगौरव) से परिपूर्ण तथा सत्य अर्थात् नीतिशास्त्र के अनुकूल वचन शांति के साथ (अभिमान रहित) उद्धवजी बोले।।

व्याकरण टिप्पणी –

आहित	–	आङ् + धा + क्त (इट्)।
अनुद्धतः	–	न + उत् + हन् + क्त + अम्।
उतथ्यानुजवत्	–	उतथ्यानुज + मतुप्।
अनुज	–	अन + जन् + ड।
जगाद	–	गद् + णल् (लिट्)।
आहितभरां	–	आहितः भरो यस्यान्तां (बहुव्रीहिः)।
अनुद्धतं	–	न उद्धतमिति (नञ्)
गदाग्रजं	–	गदस्य अग्रजं (षष्टी त्तपु.)
उतथ्यानुजवत्	–	उतथ्यस्य अनुजस्तद्वत् (षष्ठी त्तपु.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

सम्प्रत्यसाम्प्रतं वक्तुमुक्ते मुसलपाणिना।
निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम्।। 70।।

अन्वय – मूसलपाणिना उक्ते (सति) वक्तुं सम्प्रति असाम्प्रतम्। लेखेन निर्धारिते अर्थे (यथा) वाचिकं खलु (तथा) उक्त्वा खलु।

प्रसंग – यह श्लोक महाकवि माघ विरचित शिशुपालवधम् महाकाव्य के द्वितीय सर्ग से संकलित किया गया हैं। इस श्लोक में उद्धवजी बलरामजी के वक्तव्य के प्रति व्यंग्य करते हुए अपने वक्तव्य के अनौचित्य को प्रतिपादित करते हैं।

अनुवाद – हाथ में मूसल धारण करने वाले श्री बलरामजी के द्वारा कह चुकने पर मेरा पुनः मौखिक रूप से कुछ नयी बात का प्रतिपादन करना अब उचित नहीं हैं। जिस तरह लिखित रूप में निश्चित किये गये विषय के सम्बन्ध में मौखिक कथन उचित नहीं होता। उसी प्रकार मेरा कथन भी उचित नहीं लगता।

व्याकरण टिप्पणी –

वक्तुम्	–	वच् + तुमुन्।
उक्ते	–	वच् + क्त + ङि.।
निर्धारिते	–	निर + धृ + णिच् + क्त + ङि.।
लेखेन	–	लिख् + घञ् + टा।
उक्त्वा	–	वच् + क्त्वा।
वाचिक	–	वाच् + ठक + अम्।
असाम्प्रतं	–	न साम्प्रतमिति (नञ्.)।
मूसलपाणिना	–	मुसलः पाणौ यस्य तेन (बहुव्रीहिः)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – दृष्टान्त।

तथापि यन्मय्यपि ते गुरुरित्यस्ति गौरवम्।
त्तप्रयोजककतृत्वमुपैति मम जल्पतः।।

अन्वय – तथापि ते मयि अपि गुरुः इति यद् गौरवं त्त् जल्पतः मम प्रयोजकर्तृत्वम् उपैति।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में उद्धव जी अपने प्रति आदरभाव के कारण अपने वक्तव्य का औचित्य सिद्ध करते हैं।

अनुवाद – तथापि (बलरामजी के कहने के बाद कुछ कहना व्यर्थ होने पर भी) मेरे विषय में ये मेरे गुरु (जन–चाचा) हैं, यह जो गौरव हैं, वे बोलते हुए मुझको प्रेरित कर रहा हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

गौरवम्	–	गुरु + अण् + सु।
प्रयोजक	–	प्र + युज् + ण्वुल्।
कतृत्वं	–	कृ + तृच् + त्वल्।
जल्पतः	–	जल्प् + शतृ + ङस्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।
अनन्ता वाड्.मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता।। 72।।

अन्वय – स्वरैः ग्रथितस्य गेयस्य इव कतिपयैः एव वर्णैः (ग्रथितस्य) वाड्.मयस्य विचिता अनन्ता (भवति) अहो!

प्रसंग – उद्धवजी एक ही विषय पर भिन्न प्रस्तुतीकरण में प्रतीयमान शब्द – वैचित्र्य का प्रतिपदन कर रहे हैं।

अनुवाद – मूर्ख लोग छोटा–सा कार्य मात्र प्रारम्भ करते हैं तथा बहुत ज्यादा उतावले हो जाते हैं। दूसरी ओर जो बुद्धिमान होते हैं वे महान् कार्य प्रारम्भ करते हैं तथा हमेशा व्याकुलता से रहित रहते हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

ग्रथितस्य	–	ग्रथ + क्त + ङस्।
वाड.मयस्य	–	वाक् + मयट् + ङ्स् ।
गेयस्य	–	गै + यत् + डस्।
विचित्रता	–	विचित्र + तल्।
अनन्ता	–	न विद्यते अन्तो यस्याः सा (नञ् बहुव्रीहिः)।
कतिपयैरेव	–	कतिपयैः + एव (विसर्ग)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकोर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः।। 73।।

अन्वय – स्वेच्छया प्रकीर्णं बहु अपि कामम् अभिधीयते। अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धः दुरुदाहरः (भवति)

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में उद्धवजी सार्थक बात की दुष्करता को पक्ष रूप में प्रतिपादित कर रहे हैं।

अनुवाद – अपनी इच्छा के अनुसार असङ्गत (नीतिशस्त्र विरुद्ध) वचन बहुत कहा जा सकता हैं, किन्तु कार्यसङ्गति को नहीं छोड़ने वाला संदर्भ (वचन) दुःख से कहा जा सकता है।

व्याकरण टिप्पणी –

प्रकीर्णम्	–	प्र + कृ + क्त।

अभिधीयते	–	अभि + धा + यक् + तिप् (कर्मवा., लट्)।
अनुज्झित	–	न + उत् + हि + क्त।
प्रबन्धः	–	प्र + बन्ध् + अच् + सु।
दुरूदाहर	–	दुः + उत् + आङ् + हृ + खल् + सु।
स्वेच्छया	–	स्वस्य इच्छा स्वेच्छा तया (षष्ट त्तपु.)
अनुज्झितार्थ सम्बन्धः	–	न उज्झितः अर्थसम्बन्धो यस्य सः (बहुव्रीहिः)।
दुरूदाहर	–	दुःखेन उदाहरतीति (उपपद.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – व्याजस्तुति।

म्रदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम्।
प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव।। 74।।

अन्वय – कुशलाः म्रदीयसीम् अपि धनाम् अनल्पगुणकल्पिताम् चित्रां पटीम् इव वाचं प्रसारयन्ति।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में उद्धव वाक्पटु व्यक्ति द्वारा किये जोने वाले वाणो के विस्तार को दृष्टान्त के माध्यम से स्पष्ट कर रहे हैं।

अनुवाद – कुशल (वक्ता, पक्षाः कपड़ा बनने वाला बुनकर) अत्यंत मृदु (सुनने में मधुर, पक्षाः स्पर्श करने में चिकनी तथा कोमल) होने पर भी सघन (अर्थ गौरव से युक्त, पक्षाः वजनदार, गाढ़ा) तथा बहुत से गुणों (आजप्रसाद, माधुर्य या श्लेषादि, पक्षाः सूतों) से बनायी गयी चित्र (रंग–बिरंगी विविध प्रकार की) साड़ी के समान चित्र (गोमूत्रिका– मुरज–कमलादि बन्धों से अनेक प्रकार के शब्द वैचित्र्य से युक्त) वचन को फैलाते (कहते) हैं।

व्याकरण टिप्पणी

म्रदीयसीम्	–	मृद्रु + ईयसुन् + ङीप् + अम्।
कल्पिताम्	–	क्लृप् + क्त + आम्।
अनल्पगुणकल्पिताम्	–	अनल्पैः गुणैः कल्पिता ताम् (तत्पुरुष)।
दुरूदाहर	–	दुःखेन उदाहरतीति (उपपद.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – श्लेष, उपमा।

विशेषविदुषः शास्त्रं यत्त्वोद्ग्राह्यते पुरः।।
हेतुः परिचयस्थैर्ये वक्तुर्गुणनिकैव सा ।। 75।।

अन्वय – विशेषविदुषः तव पुरा यत् शास्त्रम् उद्ग्राह्यते (त्त) वक्तुः परिचयस्थैर्ये गुणनिका। सा हेतुः एव।

प्रसंग – उद्धवजी अपने मन्तव्य की प्रस्तुति को पुनरावृत्ति की भाँति ग्रहण करने का आग्रह करते हैं।

अनुवाद – (अब उद्धव जी अपनी लघुता प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् – की स्तुति कर उन्हें अपने अनुकूल करते हैं) विशेषज्ञ (या विशिष्ट विद्वान्) आपके जो शास्त्र उपस्थित किया जाता हैं, अर्थात् अपने वचन को शास्त्र का आधार बतलाकर शास्त्रज्ञता सूचित किया जाता है, वह वक्ता अर्थात मेरी गुणनिका (पठितचर अर्थात पूर्वपठित शास्त्र की उद्धरणी करना पहले पढ़े हुए शास्त्र को पुनः कहना) अभ्यास की दृढ़ता में कारण हैं अर्थात् शास्त्रविस्मरण न हो जाय इसके लिए है।

व्याकरण टिप्पणी –

विदुषः	–	विद् + क्वसु + ड.स्।

स्थैर्ये – स्थिर् + ष्यञ् + ङि.।
वक्तुः – वच् + तृच् + ङ.स्।
गुणनिका – गुण् + युच् + कन् + टाप् + सु।
विशेषविदुषः – विशेषश्चासौ विद्वान् तस्य (कर्मधा)
परिचयस्थैर्ये – परिचयस्य स्थैर्यं तस्मिन् (षष्ठी त्तपु.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उत्प्रेक्षा।

प्रज्ञोत्साहवतः स्वामी यतेताधातुमात्मनि।
तौ हि मूलमुदेष्यन्त्या जिगीषोरात्मसम्पदः।। 76।।

अन्वय – अतः (प्रभुः) आत्मनि प्रज्ञोत्साहौ आधातुं यतेत। न हि उदेष्यन्त्याः आत्मसम्पदः तौ मूलम्।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में उद्धव बलराम के मत के विरुद्ध अपने मत का प्रतिपादन करते हैं।

अनुवाद – (अब उद्धवजी अपने सिद्धांत को धीरे–धीरे कहना आरम्भ करते हैं) इस कारण (विजयाभिलाषी) राजा को अपने में बुद्धि तथा उत्साह दोनों को रखने का प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि वे दोनो (बुद्धि तथा उत्साह) विजयाभिलाषी राजा के भविष्य में आने वाली आत्मसम्पति (प्रभुशक्ति) की जड़ (प्रधान कारण) हैं।

व्याकरण टिप्पणी –

प्रज्ञा – प्र + ज्ञा + क + टाप्।
आधातुं – आङ् + धा + तमुन्।
आत्मनि – आत्मन् + ङि.।
उदेष्यन्त्याः – उत् + इ + तृट् + शतृ + ङ.ाप् + ङस।
जिगीषोः – जि + सन् + उ + ङ.स्।
सम्पद – सम् + पद् + क्विप् + ङ.स्।
प्रज्ञोत्साहौ – प्रज्ञा च उत्साहश्च (द्वन्द्व)।
जिगीषोः – जेतुमिच्छतीति तस्य (उपपद)।
आत्मसम्पदः – आत्मनः सम्पत् तस्याः (षष्ठी त्तपु.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

सोपधानां धियं धीराः स्थेयसीं खट्वयन्ति ये।।
तत्रानिशं निषण्णास्ते जानते जातु न श्रमम्।। 77।।

अन्वय – ये धीराः सोपधानां स्थेयसीं धियं खट्वयन्ति। तत्र (च) अनिशं निषण्णाः (भवन्ति) ते जातु श्रमं न जानते।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में उद्धवजी राजनीतिज्ञ के लिए बुद्धि की महत्ता तथा उपयोगिता का प्रतिपादन करते हैं।

अनुवाद – जो (बुद्धिमान) लोग युक्ति से युक्त (पक्षा.–तकिये से युक्त) अत्यंत स्थिर नहीं (पक्षा.– मजबूत) बुद्धि को चारपाई (खाट–पलंग) के समान बनाते है, उस पर सर्वदा बैठे हुए (उस बुद्धि पर सर्वदा निर्भर रहते हुये, पक्षा.–चारपाई पर सर्वदा बैठे हुए) वे लोग कभी भी परिश्रम को नहीं पाते अर्थात् कभी भी नहीं थकते।

व्याकरण टिप्पणी –

उपधानं – उप + धा + ल्युट्।

स्थेयसीं – स्थिर् + ईयसुन् + ङीप् + अम्।

खट्वयन्ति – खट्वा + णिच् (लट्)।

निषण्णाः – नि + षद् + क्त + जस्।

जानते – ज्ञा + त (उपमित)

सोपधानां – उपधानेन सहितां (प्रादि त्तपु.)

खट्वयन्ति – खट्वामिव आचरन्ति (उपमित.)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – परिणाम।

स्पृशन्ति शरवत्तीक्ष्णाः स्तोकमन्तर्विशन्ति च।
बहुस्पृशापि स्थूलेन स्थीयते बहिरश्मवत्।। 78।।

अन्वय – तीक्ष्णाः शरवत् स्तोकं स्पृशन्ति, अन्तः च विशन्ति। स्थूलेन बहुस्पृशा अपि अश्मवत् बहिः स्थीयते।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में उद्धव जी सूक्ष्मबुद्धि तथा स्थूलबुद्धि जनों का अन्तर बतला रहे हैं –

अनुवाद – (अब उद्धवजी तीक्ष्ण बुद्धि तथा मन्दबुद्धि पुरुषों का भेद दो श्लोंको से बतलाते हैं) तीक्ष्ण (तीव्र बुद्धिवाले) लोग बाणों के समान बाहर में थोड़ा स्पर्श करते है और (बहुत दूर तक) भीतर घुस जाते हैं तथा बहुत (लम्बे चौड़े स्थान को) स्पर्श करने वाले बड़े पत्थर के समान बाहर में अधिक स्पर्श करने वाला स्थूलबुद्धि व्यक्ति बाहर ही रह जाता है (थोड़ा भी भीतर प्रवेश नहीं करता, अतः विजयार्थी को तीक्ष्णबुद्धि होना अत्यावश्यक है।

व्याकरण टिप्पणी –

शरवत् – शर + मतुप्।

अन्तर्विशन्ति – अन्तः + विशन्ति (विसर्ग)

बहुस्पृशा – बहु + स्पृश् + क्विप् + टा।

स्थीयते – स्था + यक् (भाव) + त (लिट्)।

अश्मवत् – अश्म + मतुप्।

बहुस्पृशा – बहु स्पृशन्तीति (उपपद समास)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः।।79।।

अन्वय – अज्ञाः अल्पम् एवं आरभन्ते कामं व्यग्राः च भवन्ति। कृतधियः महारम्भाः निराकुलाः च तिष्ठन्ति।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में उद्धवजी अकर्मण्य तथा कर्मठ व्यक्ति की कार्य प्रवृत्ति को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत कर रहे है –

अनुवाद – मूर्ख व्यक्ति छोटा सा कार्य आरम्भ करते हैं तथा अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं और (इसके विपरीत) कुशल (निपुण) बुद्धिवाले बड़े–बड़े कार्य आरम्भ करते हैं तथा निराकुल रहते हैं (अतएव पुरुष को बुद्धिमान् होना परमावश्यक है) ।। 79।।

व्याकरण टिप्पणी –

अज्ञाः – न + ज्ञा + क + जस्।

आरभन्ते – आङ् + रम् + झ (लट्)।
कृतधियः – कृत + धी + जस्।
कृतधियः – कृता धीर्येषान्ते (बहुव्रीहिः)
महारम्भाः – महान् आरम्भो येषान्ते (बहुव्रीहि)
निराकुला – निर्गता आकुलेभ्य इति (अव्ययीभाव)

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – स्वभावोक्ति।

उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।
हन्ति नोपशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान्।। 80।।

अन्वय – उपायम् आस्थितस्य अपि प्रमाद्यतः अर्थाः नश्यन्ति। उपशयस्थः अपि शयालुः मृगयुः मृगान् न हन्ति।

प्रसंग –प्रस्तुत श्लोक में कर्मठ व्यक्ति की कार्यप्रवृत्ति में आलस्य की बाधकता का निरूपण कर रहे हैं–

अनुवाद – उपायसे ही कोई करते हुए भी प्रमादी पुरुष के कार्य नष्ट हो जाते (बिगड़ जाते हैं। क्योंकि सोनेवाला शिकारी उपशय (मृगों के मार्ग में स्थित व्याधों के छिपकर रहने का गड्ढा) में रहता हुआ भी मृगों को नहीं मारता है।

भावार्थ – अतएव विजयार्थी को प्रमाद कदापि नहीं करना चाहिये– सदा जागरूक रहना चाहिये, अन्यथा वह समीपस्थ एवं आपद् ग्रस्त शत्रु को भी नहीं जीत सकता। ।। 80।।

व्याकरण टिप्पणी –

आस्थितस्य – आङ् + स्था + क्त + ङस्।
प्रमाद्यतः – प्र + माद् + शतृ + ङस्।
उपशयस्थः – उप + शीङ् + अच् + स्था + क + सु।
शयालुः – शीङ् + आलुच् + सु।
मृगयुः – मृगया + कु।
उपशयस्थः – उपशेरतेऽस्मिन्निति उपशयः (उपपद) तत्रस्थः।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास।

9.3 पारिभाषिक शब्दावली

देहिनः – देह अस्यास्तीति तस्य। उमला को देहि कहा जाता है
जाति – नित्य एक और अनेको में अनुभव को जाति कहते हैं।

उक्रिया – जो वस्तु स्वरूप निरपेक्ष हो वह क्रिया कहलाती है ।
जातवेदसां– जात ,वं वेत्तीति जातवेदा तेषाम्। जो जन्म लेते ही जान लेता है वह जातवेदा है।

मृगाधिप :– मृगाणामधिपः (षष्ठी त्तपु.) जंगली जानवरों के राजा को मृगाधिप कहा जाता है।
शास्त्र – करणीय एवं अकरणीय कर्म के विधायक ग्रन्थ को शास्त्र कहते है ।

9.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध–प्रश्न

1. बलराम के अनुसार पुरुषों का भूषण क्या है?
2. बलराम के मत में क्षमानीतिवालों का जीवन व्यर्थ कैसे है?

3. 'मृगलाञ्छन' एवं 'मृगाधिप' से क्या तात्पर्य है
4. विजयाभियान में बाधक कौन है?
5. शारीरिक बल तथा नियन्त्रित बल में अन्तर बताइये।
6. श्लोक संख्या– 44, 48, 50, 68, 70, 72, 78, 80 का सप्रसंग अनुवाद लिखिये।

बोध–प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 8.3 श्लोक संख्या– 44
2. देखिए 8.3 श्लोक संख्या– 45
3. देखिए 8.3 श्लोक संख्या– 53
4. देखिए 8.3 श्लोक संख्या– 58
5. शारीरिक बल तथा नियन्त्रित बल में अन्तर हेतु देखिये श्लोक सं. – 62
6. देखिए 8.3 में सप्रसंग अनुवाद।

9.5 सारांश

श्रीकृष्ण भगवान् के वचन का समर्थन करते हुए शीघ्रता–अतिशीघ्र शिशुपाल के प्रति अभियान के लिए अपनी सम्मति दी। उसके पश्चात् श्रीकृष्ण भगवान् ने नेत्र का संकेत कर उद्धव जी को अपनी सम्मति देने के लिए कहा। उनका संकेत पाकर उद्धव जी ने तर्कपूर्ण विविध युक्ति युक्त वचनों से बलराम जी के प्रत्येक वचन का खण्डन कर धर्मराज युधिष्ठिर के यहां यक्ष में सम्मिलित होने के लिए कहा। तथा उन्होनें यह भी कहा कि अपने गुप्तचरों द्वारा शिशुपाल के पक्ष के राजाओं में फूट डालना तथा अपने पक्ष के राजाओं को युद्ध के लिए तैयार होकर युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए सूचित कर देना चाहिए। क्योंकि जब युधिष्ठिर आदि पांडव आप (श्रीकृष्ण भगवान्) की अधिक भक्ति एवं पूजा सत्कार करने लगेंगे। तब उसे सहन नही करता हुआ चपल प्रकृति का शिशुपाल आपकी निन्दा करने लगेगा।

9.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास,डॉ. जयकृष्ण खण्डेलवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985.
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास,आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा निकेतन वाराणासी, 1995.
3. शिशुपालवधम्,(व्याख्याकार)हरगोविन्द शास्त्री ,चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय वाराणासी,1978.

इकाई – 10

सभाभवन में श्रीकृष्ण, बलराम एवम् उद्धव की मन्त्रणा से सम्बन्धित वर्णन

(शिशुपालवधम् द्वितीय सर्ग, श्लोक 81 से 118)

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 श्लोक का सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य, छन्द अलंकार आदि

10.4 पारिभाषिक शब्दावली

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.6 सारांश

10.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.1 उद्देश्य

महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं जिनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व से परिचित होने के साथ–साथ प्रस्तुत इकाई के अधोलिखित उद्देश्य हैं –

- (शिक्षार्थी बृहत्त्रयी में परिगणित महाकवि माघ एवं उनके शिशुपालवध से परिचित हो सकेंगें।
- शिक्षार्थी महाकवि माघ की भाषा शैली एवं वर्ण्य विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कृष्ण, बलराम एवं उद्धव की राजनीतिक एवं नैतिक चर्चा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इकाई के माध्यम से 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' का विवेचन एवं काव्य के प्रति रुचि जागृत होगी।

10.2 प्रस्तावना

शिशुपालवध महाकाव्य की कथावस्तु महाभारत से ली गई है। माघ के अभीष्ट देव विष्णु हैं। इनके पितामह सर्वाधिकारी सुप्रभदेव गुर्जर देश के श्रीवर्मलातनामक राजा के प्रधानमंत्री थे। माघ के पिता का नाम दत्तक सर्वाश्रय था। माघ ने जिस कथानक को आधार बनाकर अपने महाकाव्य शिशुपालवध की रचना की, वह कथा महाभारत के सभापर्व (33–45 अध्याय तक) तथा श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित है। पद्मपुराण के 252 वें अध्याय में शिशुपालवध की कथा का उल्लेख है। कवि ने उक्त कथन को अपनी प्रतिभा कल्पना और मौलिक उद्भावना के सहारे संवर्धित और परिवर्तित करके काव्यानुरूप बनाया है। नारद मुनि आकाश मार्ग से द्वारकापुरी में स्थित श्री कृष्ण के घर आते हैं। तब नारद कृष्ण को इन्द्र का संदेश सुनाते हैं कि भगवन् हिरण्यकशिपु और रावण का वध आपने नृसिंहावतार एवं रामावतार के रूप में किया। वहीं रावण अब शिशुपाल के रूप में जगत् को पीड़ित कर रहा हैं। अतः पृथ्वी का भार हल करने के लिए अवतार धारण करने वाले आप उस शिशुपाल को भी यमलोक का अतिथि बनायें। नारद के प्रस्थान करने पर कृष्ण शिशुपाल के प्रति क्रुद्ध हो उठते हैं और सभा भवन में जाकर बलराम और उद्धव से विचार विमर्श करते हैं। इसी का वर्णन शिशुपाल वध के द्वितीय सर्ग में है।

10.3 श्लोक का सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य, छन्द अलंकार आदि

उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते ।। 81।।

अन्वय : द्वादशसु राजसु अपि एकः जिगीषुः आदित्येषु दिनकृत् इव ईहाम् अत्यजन् उदेतुं कल्पते।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक में उद्धव जी राजनीतिशास्त्र में प्रसिद्ध द्वादशराजमण्डल में विजिगीषु के सामर्थ्य का प्रतिपादन कर रहे हैं –

अनुवाद : बारह राजाओं के मध्य में उत्साह को नहीं छोड़ता हुआ विजयार्थी अकेला भी राजा, बारह सूर्यों के मध्य में उत्साह को नहीं छोड़ते हुए दिनकृत् (सूर्य) के समान उदय लेने के लिए समर्थ होता है।

भावार्थ : जिस प्रकार बारह आदित्यों के मध्य में उत्साह (शक्ति) से सम्पन्न दिनकृत् ही उदय होने के लिए समर्थ होता है, क्योंकि वह दिन को करने वाला होने से 'दिनकृत्' कहलाता है, अन्य ग्यारह सूर्य केवल संख्या के लिए हैं, उसी प्रकार बारह प्रकार के राजाओं के मध्य में उत्साह (प्रभुशक्ति) सम्पन्न तथा विजयार्थी एक भी राजा उन्नति करने के लिए समर्थ होता है, अन्य ग्यारह राजा नहीं! अतएव उत्साह अर्थात् प्रभुशक्ति को भी ग्रहण करना आवश्यक है। पहले उद्धवजी ने मन्त्रशक्ति (बुद्धिबल) भी मुख्यता कहकर इस श्लोक में उत्साह शक्ति को रखना भी आवश्यक बतलाया ह। 1. इन्द्र, 2. धाता, 3. भग, 4. पूषा, 5. मित्र, 6. वरुण, 7. अर्यमा, 8. अर्चिः, 9. विवस्वान्, 10. त्वष्टा, 11. सविता और 12. विष्णु ये 12. आदित्य हैं। 1. शत्रु, 2. मित्र, 3. शत्रु का मित्र, 4. मित्र का मित्र, 5. मित्र के मित्र का मित्र, 6. पार्ष्णिग्राह (अपने पीछे सहायता करने के लिए आने वाला), 7. आक्रन्द (शत्रु के पीछे सहायता के लिए आने वाला), 8. पार्ष्णिग्राहासार (सहायता करने के लिए अपने पक्ष में बुलाया हुआ), 9. आक्रन्दासार (सहायता करने के लिए शत्रु के पक्ष में बुलाया हुआ), 10 विजिगीषु (स्वयं जीतने की इच्छा करने वाला), 11. मध्यम और 12 उदासीन– ये 12 राजा हैं। इनमें प्रथम पांच आगे चलने वाले या सामने रहने वाले होते है, पार्ष्णिग्राह आदि चार विजिगीषु के पीछे रहने वाले होते हैं, मध्यम सम्मिलित हुए दोनों पक्षों का वध करने में समर्थ अतएव स्वतन्त्र होता है और उदासीन उनके मण्डल से बाहर रहता ह, यह भी स्वतन्त्र तथा सबसे बली होता हैं।

व्याकरण टिप्पणी :

जिगीषुः	:–	जि + सन् + उ + सु।
आदित्येषु	:–	अदिति + अण् + सुप्।
दिनकृत्	:–	दिन + कृ + क्विप्।
अत्यजन	:–	न + त्यज् + शतृ।
उदेतुं	:–	उत् + आ + इण् + तुमुन्।
जिगीषुः	:–	जेतुमिच्छतीति (उपपद.),
दिनकृत	:–	दिनं करोतीति (उपपद.)।
द्वादशसु	:–	द्वौ च दशच द्वादशतेषु (द्वन्द्व)

छन्द :– अनुष्टुप्।

अलंकार :– उपमा।

बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृतिकञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः।।82।।

अन्वय : बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गघनसंवृतिकंचुकः चारेक्षणः दूतमुखः पार्थिवः कः अपि पुरुषः।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्य 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग से संकलित है। प्रस्तुत श्लोक में उद्धव जी विजयेच्छु राजा की विशेषतायें बतला रहे हैं –

अनुवाद : 'बुद्धि ही जिसका शस्त्र है, प्रकृति ही जिसका अवयव है, अत्यन्त गोपनीयता का भाव ही जिसका चोला है, गुप्तचर ही जिसका नेत्र है, दूत ही जिसका मुँह हैं – ऐसा राजा कोई अलौकिक ही पुरुष होता है।

भावार्थ : जिसकी बुद्धि ही शस्त्र है, वह अर्थात् कोई राजा शस्त्र–प्रयोग से शत्रुवध करता है, पर वह बुद्धि से ही शत्रुवध रूप कार्य को पूरा कर लेता है, क्योंकि शस्त्र–प्रयोग से सिद्धि में संदेह रहता है पर बुद्धि प्रयोग से नहीं। प्रकृति (स्वामी, मंत्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, किला तथा सेना– ये सात अथवा– नागरिक समूह) ही जिसके अंग हैं वह अर्थात् कोई राजा अपने हाथ–पैर आदि अङ्गों से कार्य करता है, पर यह इन प्रकृतियों से कार्य को पूरा कर लेता है, क्योंकि इनके अभाव में राज–सत्ता का ही अभाव हो जाता है। किये गये अत्यन्त गुप्त मंत्र ही जिसके कवच हैं, वह अर्थात् कोई राजा दृढ़ कवच पहन कर आत्मरक्षा करता है, परन्तु यह अपने मंत्र को अत्यन्त गुप्त रखकर ही उसी के द्वारा आत्मरक्षा करता है, अन्यथा मंत्र के भेद होने से राज्यभेद हो सकता है। गुप्तचर ही जिसके नेत्र है, जहां तक नेत्र जाते है वहां तक देखता है, परन्तु यह अपने गुप्तचरों को अपने तथा शत्रु के राष्ट्रों में भेजकर उनके द्वारा सर्वत्र के वृत्तान्त को देखता (मालूम करता) है,

अन्यथा अपने तथा शत्रु के राज्य के वृत्तान्त बहुत कम ज्ञात हो सकेंगें। दूत ही है मुख जिसके वह अर्थात् कोई अपने मुख से कहकर अन्यथा मूक (गूंगे) के समान किसी वाग्व्यवहार को ही नहीं कर सकता ऐसा (इन लक्षणों से युक्त) पुरुष ही राजा (वास्तविक कुशल शासक एवं सर्वप्रिय राजा) होता है। अथवा– जो ऐसा (इन लक्षणों से युक्त) राजा है वहीं (विलक्षण गुण सम्पन्न विरले व्यक्तियों में गणनीय) होता है। अतएव शास्त्रादि प्रयोग की अपेक्षा बुद्धि आदि से काम लेना ही प्रशस्त मार्ग है।

व्याकरण टिप्पणी :–

बुद्धि	:–	बुध् + क्तिन्।
प्रकृति	:–	प्र + कृ + क्तिन्।
संवृत्ति	:–	सम् + वृङ् + क्तिन्।
ईक्षणः	:–	ईक्ष् + ल्युट्।
चारः	:–	चर् + अण्।
पार्थिवः	:–	पृथ्वी + अण्।
बुद्धिशस्त्रः	:–	बुद्धिरेव शस्त्रं यस्य सः (बहुव्रीहि)।
प्रकृत्यङ्ग	:–	प्रकृतय एव अङ्गनि यस्य सः (बहुव्रीहि)।
घनसंवृत्तिकांचुक	:–	घनाः संवृतिः (कर्मधारय) सा एव कञ्चुक यस्य सः (बहुव्रीहि)
चारेक्षणः	:–	चारा एव ईक्षणं यस्य सः (बहुव्रीहि)
दूतमुखः	:–	दूता एवं मुखं यस्य सः (बहुव्रीहि)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : रूपक

तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।
नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः।। 83।।

अन्वय : कालज्ञस्य महीपतेः तेजः क्षमा वा एकान्तं न (भवति) (यथा) रसभावविदः कवेः ओजः प्रसादः वा एकं न (भवति)।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी कालवेत्ता राजा की नीति के दोहरे पक्षों को साहित्यिक उदाहरण द्वारा समझा रहे हैं –

अनुवाद : समयज्ञ राजा को केवल तेज (बल–दण्ड प्रयोग) या क्षमा (मश्दुता) धारण करने का नियम नहीं है, क्योंकि रसभाव के ज्ञाता (शृङ्गारादि रस के विषय को जानने वाले)

कवि के लिए ओजगुण युक्त या प्रसाद गुणयुक्त ही प्रबन्ध की रचना करने का नियम नहीं है।

भावार्थ : गुण से युक्त प्रौढ़ प्रबन्ध रचना या प्रसाद गुणयुक्त सुकुमार प्रबन्ध–रचना करता है, सर्वत्र किसी एक गुण (प्रौढ़ या प्रसाद) का ही आश्रय नहीं करता, उसी प्रकार किस समय में कैसा कार्य करना चाहिये इसको जानने वाले राजा को भी कार्यानुसार तेज (दण्ड–मूल) का या क्षमा (मृदुता) का प्रयोग करना चाहिये, सर्वत्र केवल तेज या क्षमा को ही नही ग्रहण करना चाहिये। ऐसा कहकर उद्धवजी ने बलरामजी के 'दण्ड–साध्य रिपु में सान्त्व प्रयोग करना उसके क्रोध को बढ़ाने वाला होगा' इस वचन का उत्तर दिया है।।

व्याकरण टिप्पणी

कालज्ञस्य	:–	काल + ज्ञा + क + ङस्।
महीपतेः	:–	मही + पा + डति + ङस्।
रसभावविदः	:–	रसभाव + विद् + क्विप् + ङस्।
कालज्ञस्य	:–	कालं जानातीति तस्य (उपपद.)।
महीपतेः	:–	मह्याः पतिस्तस्य (षष्ठी तत्पुरुष)।
रसभावविदः	:–	रसान् भावान् वेत्तीति (उपपद समास)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अंलकार : दृष्टान्त।

कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः।
असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा।। 84।।

अन्वय : परैः कृतापचारः अपि अनाविष्कृतविक्रियः असाध्यः गदः यथा काले प्राप्ते कोपं कुरुते।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी नीतिज्ञ व्यक्ति की असाध्यता को रोग का उदाहरण देकर स्पष्ट कर रहे है।

अनुवाद : 'शत्रुओं के द्वारा अपकार किये जाने पर भी प्रतिक्रिया के प्राकट्य से रहित (नीतिज्ञ पुरुष) असाध्य रोग की तरह समय आने पर क्रोध को प्रकट करता है।

भावार्थ : श्लोक का भाव यह है कि नीतिज्ञ व्यक्ति समय के अनुसार कार्य एवं अकार्य का विचार करता है। असमय पर यदि कोई शत्रु अपमान भी करता है तो वह उसको सहन कर लेता है परन्तु जब शत्रु को दमन करने का उचित समय आता है तब वह क्रोध करता है तथा उसे समूल नष्ट कर देता है।

व्याकरण टिप्पणी

कश्त	:–	कश + क्त,
अपचारः	:–	अप + चर् + घञ् + सु।
अनाविष्कृत	:–	न + आङ् + विस् + कृ + क्त।
विक्रिय	:–	वि + कृ + क + सु।
असाध्यः	:–	न + साध् + यत् + सु।
प्राप्ते	:–	प्र + आप् + क्त + ङि।
कृतापचारः	:–	कृतः अपचारः यस्यः सः (बहुव्रीहि)।
अनाविष्कृतविक्रियः	:–	न आविष्कृता विक्रिया येन सः (बहुव्रीहि)।
असाध्यः	:–	न साध्यः (नञ् तत्पुरूष)।

विशेष : पहले शत्रु के बुराई करने पर भी अपने हार्दिक विरोधों को दबा कर रखने वाला अतएव

असाध्य (परजित नही हो सकने वाला, बुद्धिमान् पुरूष) शत्रु को आपत्ति में पड़ा हुआ देखकर एकाएक आक्रमण करके शत्रु को उस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार रोगी को अपथ्य–सेवन करने पर भी विकार नहीं करने वाला असाध्य बना हुआ रोग रोगी की शक्ति क्षीण होने पर कुपित हो उसे (रोगी को) मार डालता है। ऐसा कहकर उद्धवजी ने बलराम जी के 'थोड़ा सा एकबार अपराध करने वाले शत्रु को भले कोई क्षमाशील क्षमा कर दे, बार–बार अपराध करने वाले शत्रु को कौन क्षमा करेगा? इस कथन का खण्डन किया गया।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : उपमा।

मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते।
प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशयाभ्यन्तरस्थया।। 85।।

अन्वय : मृदुव्यवहितं तेजः अर्थान् भोक्तुं प्रकल्पते। (यथा) आभ्यन्तरस्थया दशया प्रदीपः स्नेहम् आदत्ते।

प्रसंग : यह श्लोक महाकवि माघ विरचित 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग से संकलित किया गया हैं। प्रस्तुत श्लोक में उद्धव जी क्षमायुक्त तेजस्विता की श्रेष्ठता को दीपक के उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं :

अनुवाद : 'कोमलता से ढका हुआ तेज ही राज्यादि विषयों को भोगने के लिए योग्य होता है, जिस प्रकार भीतर विद्यमान वर्तिका के द्वारा ही जलता हुआ दीपक तेल को ग्रहण करने में समर्थ होता है।'

भावार्थ : क्षमा–युक्त (या क्षमा से अन्तर्हित) तेज अर्थात् बल विषयों को भोगने के लिए वैसे समर्थ होता है, जैसे (पात्रस्थ तैलादिक के) भीतर में स्थित बत्ती से दीपक तैलादि को ग्रहण कर लेता है।

व्याकरण टिप्पणी

व्यवहितं	:–	वि + अव + धा + क्त।
भोक्तुं	:–	भुज् + तुमुन्।
आदत्ते	:–	आङ् + दा + त (लट्)।
आभ्यन्तरस्थ्या	:–	आभ्यन्तर + स्था + क + टाप् + टा।
मृदुव्यवहितं	:–	मृदुना व्यवहितं (तश्तीया तत्पुरूष)।
प्रदीपः	:–	प्रज्वलितो दीपः (प्रादि तत्पुरूष)।
आभ्यन्तरस्थया	:–	आभ्यन्तरं स्थिता, तया (द्वितीय तत्पुरूष)

छन्द : अनुष्टुप्।

अंलकार : अथान्तरन्यास।

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।। 86।।

अन्वय : विद्वान् दैष्टिकतां न आलम्बते, न (च) पौरुषे निषीदति। (तु) सत्कविः शब्दार्थौ इव द्वयम् अपेक्षते।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धव जी भाग्य तथा पुरुषार्थ दोनों की एक साथ स्थिति को पुरुषार्थी महापुरुष के लिए अपेक्षित बतला रहे हैं –

अनुवाद : बुद्धिमान् केवल भाग्य का ही अवलम्बन नहीं करता अथवा केवल पुरुषार्थ पर ही निर्भर नहीं करता, किन्तु जिस प्रकार श्रेष्ठ कवि शब्द तथा अर्थ दोनों की अपेक्षा करता हैं, उसी प्रकार विद्वान् भी भाग्य तथा पुरुषार्थ दोनों का अवलम्बन करता है।

व्याकरण टिप्पणी

दैष्टिकतां	:–	दिष्ट् + ठक् + तल् + टाप्।
पौरुषो	:–	पुरुष + अण् + ङि।
शब्दार्थौ	:–	शब्दश्चार्थश्चेति (द्वन्द्व समास)।
सत्कविः	:–	सत्चासौ कविः (कर्मधारय)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : उपमा।

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः।। 87।।

अन्वय : यथा रसस्य स्थायिनः एकस्य अर्थे सञ्चारिणः भावाः प्रवर्तन्ते तथा (एकस्य) नेतुः (अर्थे) भूयांसः महीभुजः (प्रवर्तन्ते)।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक में उद्धव जीतने के इच्छुक के पक्ष की स्वतः प्रबलता का निरूपण करके श्री कृष्ण के नेतृत्व के प्रति अन्य राजा लोगों की पक्षवृत्ति का प्रतिपादन कर रहे हैं –

अनुवाद : जिस प्रकार (श्रृङ्गारादि) रस के (रति आदि) स्थायी भाव के लिए अनेक संचारी (तथा व्यभिचारी आदि) भाव प्रवृत्त (उसके सहायक) होते हैं, उसी प्रकार क्षमाशील, स्थिर (क्षमापूर्वक समय की प्रतीक्षा करते हुए) एक नायक (राजा) के लिए कार्य को घटित करने वाले बहुत–से (ग्यारह राजा) प्रवृत्त (उसके सहायक) होते हैं।

भावार्थ : श्रृङ्गारादि नव रसों के रति आदि नव स्थायीभाव हैं वे संचारी व्यभिचारी से पुष्ट होकर दर्शकादि को श्रृङ्गारादि रस रूप में प्रतीत होने लगते है। अतएव श्रृङ्गारादि रस की सिद्धि के लिए वे सञ्चारी आदि अनेक भाव ही सहायक माने जाते हैं। उसी प्रकार जिगीषु राजा आदि क्षमा धारण कर समय की प्रतीक्षा में स्थिर बैठा रहता है तो अन्य ग्यारह राजा ही उसके कार्य की सिद्धि का संघटन कर उसके सहायक बन जाते हैं। इस प्रकार क्षमा करते हुए भी अवसर की प्रतीक्षा करने वाले जिगीषु राजा के सभी कार्य लोगों की सहायता से अनायास ही सिद्ध होते हैं।

व्याकरण टिप्पणी

स्थायिनः	:–	स्था + युक् + णिनि।
संचारिण	:–	सम् + चर् + णिनि + जस्।
भूयांस	:–	बहु + ईयसुन् + जस्।
नेतुः	:–	नी + तृच् + ङस्।
महीभुजः	:–	महीं भुनक्ति इति तस्य (उपपद समास)

छन्द : अनुष्टुप्।

अंलकार : उपमा।

तन्त्रावापविदा योगैर्मण्डलान्यधितिष्ठता।
सुनिग्रहा नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव शत्रवः।। 88।।

अन्वय : तन्त्रावापविदा योगैः मण्डलानि अधितिष्ठता नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव तन्त्रावापविदा योगैः मण्डलानि अधिष्ठिता नरेन्द्रेण शत्रवः सुनिग्रहाः।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धव जी नीतिशास्त्रानुगत शत्रुनिग्रह का उपाय बतलाते हैं–

अनुवाद : तन्त्र (अपने राष्ट्र का चिन्तन, अपनी शक्ति को उत्पन्न करना) तथा आवाप (दूसरे के राष्ट्र का चिन्तन, दूसरे को शक्ति का अपने में अध्यारोप करना) इन दोनों को जानने वाला तथा योगों (सामादि उपायों या गुप्तचरों) से अपने तथा दूसरों के राष्ट्र को

वंशीभूत करता हुआ राजा सरलता से शत्रुओं का दमन उस प्रकार करता है, जिस प्रकार तन्त्र (गारूडिकादि शास्त्र) तथा आवाप (औषध :– प्रयोग या सरसों आदि फेंक कर सर्प के आकर्षण) को जानने वाला और योगों (देवता आदि के ध्यानों) से मण्डलों (महेन्द्र–वायव्य आदि देवतायतनों) को आक्रान्त करता हुआ सांप को पकड़ने वाला) सांपों को सरलता से वशीभूत कर लेता है।

व्याकरण टिप्पणी

योगैः	:–	युज् + घञ् + भिस्।
अधितिष्ठता	:–	अधि + स्था (तिष्ठ्) + शतृ + टा।
सुनिग्रहाः	:–	सु + नि + ग्रह् + खल् + जस्।
तन्त्रावापविदा	:–	तन्त्रावापौ वेत्तीति तेन (उपपद.)।
रेन्द्रेण	:–	नराणामिन्द्रस्तेन (षष्ठी तत्पु.)।
फणीन्द्रा	:–	फणीनामिन्द्रास्ते (षष्ठी तत्पुरूष)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : श्लेष, उपमा।

करप्रचेयामुत्तुङ्गः प्रभुशक्तिं प्रथीयसीम्।
प्रज्ञाबलबृहन्मूलः फलत्युत्साहपादपः।। 89।।

अन्वय : उत्तुङ्गः प्रज्ञाबलबृहन्मूलः उत्साहपादपः करप्रचेयां प्रथीयसीं प्रभुशक्तिं फलति।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी की आहार्थता का प्रतिपादन करते है –

अनुवाद : श्रेष्ठ (पक्षा. ऊँचा) तथा बुद्धिबल (मन्त्रशक्ति) रूपी लम्बी जड़वाला उत्साहरूपी वृक्ष कर (राजदेय भाग) से बढ़ने वाली (पक्षा. फलकर अधिक नीचे झुकने के कारण, हाथ से तोड़ने योग्य) बहुत बड़ी अर्थात् अत्यधिक प्रभु शक्ति (कोष, चतुरङ्गिणी सेनारूप तेजोविशेष) को फैलाता है।

भावार्थ : जिस प्रकार ऊँचे तथा लम्बी जड़वाले पेड़ में बड़े–बड़े हाथ से तोड़ने योग्य फल लगते है, उसी प्रकार श्रेष्ठ तथा मन्त्रशक्तियुक्त उत्साह होने से कर से बढ़ने वाला राजा का तेजोविशेष होता है। अतएव उत्साह शक्ति के साथ मन्त्रशक्ति का होना परमावश्यक है।

व्याकरण टिप्पणी

प्रचेयाम्	:–	प्र + चि + यत् + टाप् + अम्।
शक्ति	:–	शक् + क्तिन् + अम्।
प्रथीयसीं	:–	पृथु + ईयसुन् + ङीप् + अम्।
प्रज्ञा	:–	प्र + ज्ञा + क + टाप्।
करप्रचेयां	:–	करैः प्रचेयां (तृतीय तत्पु.)।
प्रभुशक्तिं	:–	प्रभोः शक्तिं (षष्ठी तत्पुरूष)।
प्रज्ञाबलबृहन्मूलः	:–	प्रज्ञाबलमेव बृहत् मूलं यस्य सः (बहुव्रीहिः)
उत्साहपादपः	:–	उत्साहः पादप इव (कर्मधा.)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : रूपक।

अनल्पत्वात् प्रधानत्वाद्वंशस्येवेतरे स्वराः।
विजिगीषोर्नृपतयः प्रयान्ति परिवारताम्।। 90।।

अन्वय : अनल्पत्वात् प्रधानत्वात् वंशस्य इतरे स्वरा इव अनल्पत्वात् प्रधानत्वात् विजिगीषोः इतरे नृपतयः परिवारतां प्रयान्ति।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी विजिगीषु के सहायक पक्ष का प्रदिपादन कर रहे हैं –

अनुवाद : प्रज्ञा उत्साह के अधिक होने से तथा मण्डलाभिज्ञ होने से विजयार्थी राजा के, अन्य राजा लोग उस प्रकार परिवारता को पाते हैं (परिवार बनकर उसकी कार्यसिद्धि में उसके सहायक होते हैं) जिस प्रकार अधिक उच्चस्वर तथा मुख्य स्वर होने से दूसरे स्वर अर्थात् वीणा गानादि शब्द बांस (वंशी नामक बाजा) के परिवारत्व को प्राप्त होते हैं (अथवा– षड्ज आदि दूसरे स्वर 'वंश' (या पाठा. 'अंश') नामक तत्कालविहित स्वर–विषेष के परिवारत्व को प्राप्त होते हैं।

व्याकरण टिप्पणी

अनल्पत्वात्	:–	न + अल्प + त्व + ङसि।
प्रधानत्वात्	:–	प्रधान + त्व + ङसि।
विजिगीषः	:–	वि + जि + सन् + उ + ङ्स।
परिवारताम्	:–	परि + वृ + अण् + तल् + अम्।
अनल्पत्वात्	:–	न अल्पत्वं तस्मात् (नञ्)
नृपतयः	:–	नृणां पतयः (षष्ठी तत्पुरुष)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : उपमा।

अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः।
व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः।। 91।।

अन्वय : अनारभमाणस्य अपि विभोः परैः उत्पादिताः अर्थाः विहायसः शब्दा इव गुणतां व्रजन्ति।

पसंग : प्रस्तुत श्लोक में उद्धव निष्क्रिय व्यक्ति की प्रयोजन पूर्ति की असफलता का वर्णन कर रहे हैः

अनुवाद : स्वयं क्रियाशून्य (कुछ नहीं करने वाले) भी सर्वसमर्थ विजिगीषु राजा के, दूसरे (अन्यान्य ग्यारह राजाओं, या गुप्तचरादि) के द्वारा सम्पादित प्रयोजन उस प्रकार गुण बन जाते ह, जिस प्रकार स्वयं कुछ नहीं करने वाले भी व्यापक आकाश के, दूसरे (पटहादि) के द्वारा पैदा किये शब्द गुण बन जाते हैं।

भावार्थ : समर्थ राजा स्वयं निष्क्रिय होकर भी दूसरों से साश्रित कार्य को वैसे अपना गुण बना लेता है, जैसे व्यापक आकाश स्वयं निष्क्रिय होता हुआ भो दूसरे नगाड़े आदि से उत्पन्न शब्द को अपना गुण बना लेता है। 'शब्द आकाश का गुण है' यह तर्क सम्मत सिद्धान्त है। अतः राजा को शक्तिमान् होना आवश्यक है।

व्याकरण टिप्पणी

अनारभमाणस्य	:–	न + आङ् + रभ् + शानच् + ङ्स।
उत्पादिता	:–	उत् + पद् + णिच् + क्त + जस्।
गुणतां	:–	गुण + तल् + अम्।
अनारभमागस्य	:–	न आरभमाणः तस्य (नञ्)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : उपमा।

यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमालायामधिकद्युतिः।
एकार्थतन्तुप्रोतायां नायको नायकायते।। 92।।

अन्वय : एकार्थतन्तुप्रोतायां यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमालायाम् अधिकद्युतिः नायकः नायकायते।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धव जी नेतृत्व करने वाले राजा की स्थिति को माला के उदाहरण से स्पष्ट करते हैं –

अनुवाद : एक प्रयोजनरूपी धागे में ग्रथित तथा यातव्य (जिस पर चढ़ाई की जाय वह शत्रु, पक्षा.– जिसे पकड़ा जाय वह मनियां :– माला का दाना) और पार्ष्णिग्राह (पीछे रहने वाला राजा, पक्षा.– माला में अधिक तेजस्वी, पक्षा.– चमकदार) नायक (विजिगीषु राजा) नायक के समान आचरण करता है अर्थात् 'सुमेरू' (माला के मध्य में स्थित बड़ें दाने) के समान प्रधान होता है।

भावार्थ : पृथ्वी में सर्वाधिक तेजस्वी राजा ही सार्वभौम सम्राट होता है, अत एव तेजो वृद्धि का सर्वदा प्रयत्न करते रहना चाहिये।

व्याकरण टिप्पणी

यातव्य	:–	या + तव्यत्।
पार्ष्णिग्राह	:–	पार्ष्णि + ग्रह् + अण्।
द्युति	:–	द्युत् + क्तिन् + सु।
प्रोतायां	:–	प्र + वेञ् + क्त + टाप् ङि्।
नायकायते	:–	नायक + क्यङ् + त (भावकर्म.)

यातव्यपाष्णिग्राहादिमालायां : यातव्यः पार्ष्णिग्राहस्तादादयष्च तेषां मालास्तस्यां (तत्पु.)। अधिकद्युति :
अधिका द्युतिर्यस्य सः (बहुव्रीहिः)।

एकार्थतन्तुप्रोतायां :– एकश्चासावर्थ एकार्थः (कर्मधा.) स एव तन्तुः, तत्र प्रोतायां (सुप्सुपा.)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : रूपक, उपमा।

षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षो रसायनम्।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च।। 93।।

अन्वय : शक्त्यपेक्षः षाड्गुण्यं रसायनम् उपयुञजीत। एवम् अस्य अङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च वन्ति।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धव जी राजोचित शड्गुणों की, औषधि की भांति अपेक्षा सिद्ध करते हैं –

अनुवाद : शक्ति (प्रभु शक्ति, मन्त्र शक्ति तथा उत्साह शक्ति, पक्षा.– बल :– सामर्थ्य) को चाहने वाला (राजा, पक्ष.–सर्वधारण मनुष्य) को षड्गुण (सन्धि–विग्रहादि शड् छः गुण) रूपी रसायन (पृथ्वी को प्राप्त कराने वाला मार्ग शास्त्रोक्त मार्ग पक्षा.– चन्द्रोदयः स्वर्णसिन्दूरादि रसायन औषध) का सेवन करना चाहिये, इस प्रकार करने से इस (राजा पक्ष.– औषध सेवन करने वाले व्यक्ति) के अङ्ग (स्वामी अमात्यादि सात अङ्ग, पक्षा.– (शरीर के हाथ–पैर आदि अवयव), स्थिर (दूसरे समय के लिये समर्थ, अविचल) तथा बलवान् (शत्रुपीडन में समर्थ) होते हैं।

व्याकरण टिप्पणी

षाड्गुण्यं	:–	षड्गुण + ष्यञ्।
उपयुञ्जीत	:–	उप + युञ्ज् + त + (लिङ्)।
शक्ति	:–	शक् + क्तिन्।
स्थास्नूनि	:–	स्था + ग्स्नु + जस्।
बलवन्ति	:–	बल + मतुप् + जस्।
शक्त्यपेक्षः	:–	शक्तिमपेक्षते इति (उपपद.)।

शक्तेरपेक्षा यस्य सः (बहुव्रीहिः)। षाड्गुण्यं :– षण्णां गुणानां भावः (द्विगु.)।

रसायनं :– रसस्य अयनं (षष्ठी तत्पुरुष)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : रूपक।

स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरङ्गिनाम्।
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसम्पदः।। 94।।

अन्वय : (यथा) अङ्गिनां व्यायामे वृद्धिः (तथा) शमवतां शक्तया। चेत् अयथाबलम् आरम्भः (तर्हि) क्षयसम्पदः निदानं स्थाने।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक में उद्धव शक्ति के समुचित प्रयोग से ही शत्रु के कृत्यों का निदान बतला रहे हैं–

अनुवाद : शक्य विषय में क्षमाशील (शान्त) सप्ताङ्ग वाले राजाओं (पक्षा.– शरीर धारियों) की शक्ति (प्रभुशक्ति, मन्त्र शक्ति तथा उत्साह शक्ति, पक्षा.– अपनी शारीरिक शक्ति) के अनुसार व्यायाम (सन्धि आदि शड्गुण के उपयोग, पक्षा.– दण्ड बैठक आदि कसरत) करने पर (राजशक्ति, पक्षा.– शारीरिक शक्ति की) वृद्धि होती है तथा बल के प्रतिकूल अर्थात् शक्ति से अधिक आरम्भ (किसी कार्य को प्रारम्भ) करना हानि (राजशक्ति के क्षय, पक्षा.– क्षयरोग) का कारण होता है।

व्याकरण टिप्पणी

शमवताम् :– शम् + मतुप् + अम्।

शक्त्या :– शक् + क्तिन् + टा ।

वृद्धि :– वृध् + क्तिन् + सु।

अङ्गिनां :– अङ्ग + इनि + आम्।

निदानं :– नि + दा + ल्युट् + अम्।

सम्पदः :– सम् + पद् + क्विप् + ङस्।

अयथाबलम् :– न यथाबलम् (यथाबलम् :– बलमनतिक्रम्य) – नञ्

अव्ययीभाव क्षयसम्पद :– क्षय एव सम्पत् तस्य (कर्मधारय)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : दृष्टान्त, उपमा।

तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमंस्त मा।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव।। 95।।

अन्वय : तद् उदात्तः स्वरान इव यः एकपदे अरीन् निहन्ति। भवान् तं चेदीन्तम् ईषितारं मा अवमँस्त।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक में उद्धव श्रीकृष्ण के शत्रु हननरूप सामर्थ्य का प्रबल समर्थन करते हैं।

अनुवाद : (उद्धवजी नीतिशास्त्र के अनुसार कहकर अब फलितार्थ कहते हैं) इस कारण आप चेदिपति (शिशुपाल) का अपमान (उसके साथ युद्ध करने का उपक्रम) न करें, जो (शिशुपाल) एकपद (स्थान, या व्यवसाय–उद्योग) में शत्रुओं को उस प्रकार मारता हैं, जिस प्रकार (सुबन्त–तिङन्तरूप) एक पद में उदात्त स्वर को मारता (बाधित) करता हैं।

व्याकरण टिप्पणी

ईशितारम् :– ईष् + तृच् + अम्।

अवमँस्त :– अव + मन् + तिप् (लुड.) ।

एकपदे :– एकं च तत् पदं तस्मिन् (कर्मधारय)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : उपमा।

मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति।
राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम्।। 96।।

अन्वय :असौ चेदिराट् एकः जेतव्यः इति मा वेदि। यत् सः रोगाणां समूहः राजयक्ष्मा इव महीभृतां समूहः।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग से संकलित किया गया हैं। प्रस्तुत लोक में उद्धवजी शिशुपाल की दुर्दमनीयता की राजयक्ष्मा से तुलना कर उसके शीघ्र निदान हेतु निवेदन करते हैं।

अनुवाद : यह चेदिदेश का राजा शिशुपाल अकेला हैं तथा अकेला होने के कारण सरलता से जीता जा सकता हैं, ऐसा मत समझना। क्योंकि वह शिशुपाल रोगों के समूह राजयक्ष्मा–क्षय रोग की भांति राजा लोगों का समूह हैं। वह अकेला नहीं हैं अपितु अन्य भी राजा लोग उसके साथ हैं।

भावार्थ : यह चेदिराज (शिशुपाल) अकेला हैं, ऐसा न समझे, क्योंकि जिस प्रकार यक्ष्मा रोगों का समूह हैं, उसी प्रकार वह राजाओं का समूह हैं। जिस प्रकार यक्ष्मा होने पर अनेक प्रकार के रोग उस रोगी को घेरकार मार डालते हैं, उसी प्रकार शिशुपाल के अनेक (शाल्व, रुक्मी आदि) सहायक होकर शत्रु को मार डालेंगे।

व्याकरण टिप्पणी

जेतव्यः	:–	जि + तव्यत्।
चेदिराट्	:–	चेदि + राजश‘ + क्विप् ।
रोगाणाम्	:–	रुज् + घञ् + आम्।
महीभृताम्	:–	मही + भृ + क्विप् + आम्।
मा वेदि	:–	मा + विद् + तिप् (लुङ्)।
चेदिराट्	:–	चेदिषु राजते इति (उपपद समास)।
महीभृताम्	:–	महीं बिभर्तीति तेषां (उपपद समास)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : उपमा।

सम्पादितफलस्तेन सपक्षः परभेदनः।
कार्मुकेणेव गुणिना बाणः सन्धानमेष्यति।। 97।।

अन्वय : सम्पादितफलः सपक्षः परभेदनः बाणः गुणिना कार्मुकेण इव सम्पादितफलः सपक्षः परभेदनः बाणः गुणिना तेन सन्धानम् एष्यति।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी शिशुपाल के सपक्ष को प्रतिपादित कर रहे हैं।

अनुवाद : पहले (शिशुपाल से) उपकृत (पक्षा. – फलक अर्थात बाणाग्र भाग से युक्त), समान पक्षवाला (पक्षा.–प्रत्यंचायुक्त), शत्रुओं का भेदन (नाश) करने वाला बाणासुर (पक्षा. –बाण) गुणवान् (पक्षा.–प्रत्यंचायुक्त) उस शिशुपाल के साथ धनुष के समान संधि (मेल, पक्षा.–लक्ष्यभेदार्थ धनुष पर स्थिति) को प्राप्त करेगा। पहले शिशुपाल ने बाणासुर को अकृतगजादि देकर उपकृत किया हैं, अतः वह शिशुपाल का पक्षपाती हो गया हैं, ऐसा, शत्रुनाशक बाणासुर गुणी शिशुपाल के साथ वैसे मेल कर लेगा, जैसे फल (लोहे का बना हुआ बाणाग्र भाग) वाला पङ्खसहित, शत्रुनाशक बाण प्रत्यंचायुक्त धनुष पर चढ़ता है। इस कारण शिशुपाल को अकेला मानकर सरलता से पराजित होने वाला मत समझये।

व्याकरण टिप्पणी :–

सम्पादित	:–	सम् + पद् + णिच् + क्त।

परभेदनः :— पर + भिद् + ल्युट् + सु।

गुणिना :— गुण + इनि + टा।

सन्धानम् :— सम् + धा + ल्युट्।

एष्यति :— आ + इण् + लिप् (लृट्)।

सम्पादितफलः:— सम्पादितं फलं यस्य सः (बहुव्रीहिः)।

सपक्षः :— पक्षेण सहितः।

परभेदनः :— परान् भिनत्ति इति (उपपद.)।

परषां भेदनः :— (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : श्लेष, उपमा।

ये चान्ये कालयवनशाल्वरूक्मिद्रुमादयः।
तमः स्वभावास्तेऽप्येनं प्रदोषमनुनायिनः।। 98।।

अन्वय : ये च अन्ये तमः स्वभावाः कालयवनशाल्वरूक्मिद्रुमादयः ते अपि प्रदोषम् एनम् अनुयायिनः।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक में भी उद्धव शिशुपाल के भावी पक्षधर राजाओं का संकेत श्रीकृष्ण से कर देना चाहते हैं।

अनुवाद : कालयवन, शाल्व, रुक्मी, द्रुम आदि जो राजा है; तामसिक प्रकृति वाले वे भी अधिक दोषयुक्त उस शिशुपाल का उस प्रकार अनुगमन करेंगे अर्थात् उसके सहायक होकर, लड़ेगे, जिस प्रकार अन्धकार सायंकाल का अनुगमन करता हैं।

व्याकरण टिप्पणी

प्रदोषम् :— प्र + दुष् + घञ् + अम्।

अनुयायिनः :— अनु + या + णिनि + जस् ।

कालयवनशाल्वरुक्मिद्रुमादयः :—कालयवनश्च शाल्वश्च रुक्मिश्च द्रुमश्च तदादयश्च
(द्वन्द्व समास)

तमः स्वभावाः :— तमः स्वभावो येषान्ते (बहुव्रीहि)।

प्रदोषम् :— प्रकृष्टः दोषो यस्य तम् (बहुव्रीहि)।

अनुयायिनः :— अनु यास्यन्तीति (उपपद समास)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : समासोक्ति, उपमा।

उपजापः कृतस्तेन तानाकोपवतस्त्वयि।
आशु दीपयिताऽल्पोऽपि साग्नीनेधानिवानिलः।। 99।।

अन्वय : तेन कृतः अल्पः अपि उपजापः त्वयि आकोपवतः तान् अनिलः साग्नीन् एधान् इव आशु दीपयिता (भविष्यति)।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी अपने पक्ष के बनाये हुए कृत्रिम मित्रों की गद्दारी का संकेत कर रहे हैं।

अनुवाद : (हम लोगों के साथ संधि किये हुए बाणासुर आदि भी हमारा साथ नहीं देंगे, इस बात को कहते हैं) उस (शिशुपाल) के द्वारा किया गया थोड़ा भी भेद तुम्हारे विषय में पहले से ही क्रुद्ध उन (बाणासुर आदि) को अग्नियुक्त इन्धन को वायु के समान शीघ्र प्रज्वलित कर देगा अर्थात् तुम्हारे विरुद्ध भड़का देगा।

व्याकरण टिप्पणी

कृत	:–	कृ + क्त।
साग्नीन्	:–	अग्निना सहितास्तान्। (प्रादि तत्पुरुष)
आशुदीपयिता	:–	आशु दीपयतीति (उपपद समास)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : उपमा।

बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्भूयांभोधिमभ्येति महानद्या नगापगा।। 100।।

अन्वय : बृहत्सहायः क्षोदीयान् अपि कार्यान्तं गच्छति। नगापगा महानद्या सम्भूय अम्भोधिम् अभ्येति।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक में उद्धवजी प्रबल सहाय पक्ष के कारण शिशुपाल की दुर्जेयता का कथन करते हैं।

अनुवाद : (इन कारणों से सहायक युक्त शिशुपाल को जीतना सरल नहीं हैं, क्योंकि) बड़े–बड़े सहायकों वाला अत्यंत तुच्छ व्यक्ति भी कार्य के अन्त तक (वैसे ही) पहुँच जाता (कार्य को सिद्ध कर लेता) हैं, (जैसे) पहाड़ी नदियां (गड्डा) आदि महानदियों में मिलकर (उनकी सहायता से) समुद्र में पहुँच जाती हैं।

व्याकरण टिप्पणी

क्षोदीयान्	:–	क्षुद्र + ईयसुन् + सु।
सम्भूय	:–	सम् + भू + ल्यप्।
अम्भोधिं	:–	अम्भः + धा+ कि + अम्।
आपगा	:–	आप + गम् + क्विप + टाप्।
अभ्येति	:–	अभि + इण् + तिप् (लट्)।
बृहत्सहायः	:–	बृहत् सहायो यस्य सः (बहुव्रीहिः)।
क्षोदीयान्	:–	अतिशयेन क्षुद्रः।
कार्यान्तं	:–	कार्यस्यान्तं (षष्ठी तत्पु.)
महानद्या	:–	महती चासौ नदी तया (कर्मधा.)
नगापगा	:–	नगात् निस्सृता आपगा (पंचमी तत्पुरुष)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : अर्थान्तन्यास।

तस्य मित्राण्यमित्रास्ते ये च ये चोभये नृपाः।
अभियुक्तं त्वयैनं ते गन्तारस्त्वामतः परे।। 101।।

अन्वय : तस्य ये मित्राणि ये च अमित्रा ते उभये नृपाः त्वया अभियुक्तम् एनं गन्तारः अतः परे त्वां (गन्तारः)।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धव जी कृत्रिम शत्रु मित्र राजाओं की भावी प्रतिक्रिया स्पष्ट कर रहे हैं –

अनुवाद : जो उस (शिशुपाल) के मित्र तथा तुम्हारे शत्रु राजा हैं, वे सभी तुम्हारे चढ़ाई करने पर शिशुपाल का साथ देगें, इनमें भिन्न (तुम्हारे मित्र तथा शिशुपाल के शत्रु राजा) तुम्हारा साथ देगें।

व्याकरण टिप्पणी

नृपाः	:–	नृ + पा + क + जस्।
अभियुक्तं	:–	अभि + युज् + क्त + अम्।

गन्तारः	:–	गम् + झि = रस् (लुट्)।
अमित्राः	:–	न मित्राणीति ते (नञ्)।
अभियुक्तं	:–	युक्तम् अभि (अव्ययीभावः)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : अनुप्रास।

मखविघ्नाय सकलमित्थमुत्थाप्य राजकम्।
हन्त! जातमजातारेः प्रथमेन त्वयाऽरिणा ।। 102।।

अन्वय : इत्थं मखविघ्नाय सकलं राजकम् उत्थाप्य हन्त! अजातारेः त्वया प्रथमेन अरिणा जातम्।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी युधिष्ठिर के यज्ञ में न जाने का परिणाम सूचित कर रहे हैं –

अनुवाद : इस प्रकार (2–101 के अनुसार) सम्पूर्ण राजाओं के समूहों को यज्ञ–विघ्न के लिए क्षुभित कर अजात शत्रु युधिष्ठिर के तुम प्रथम शत्रु हो जाओगे, यह खेद है।

व्याकरण टिप्पणी

उत्थाप्य	:–	उत् + स्थाप् + ल्यप्।
राजकं	:–	राजन् + वुञ्।
जातम्	:–	जन् + क्त।
मखविघ्नाय	:–	मखे विघ्नस्तस्मै (सुप्सुपा.)।
आजातारेः	:–	अजाता अरयो यस्य तस्य (बहुव्रीहिः)।
राजकं	:–	राज्ञां समूहो राजकमिति।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : अनुप्रास।

संभाव्य त्वामतिभरक्षमस्कन्धं स बान्धवः।
सहायमध्वरधुरां धर्मराजो विवक्षते ।। 103।।

अन्वय : त्वाम् अतिभरक्षमस्कन्धं सहायं सम्भाव्य सः बान्धवः धर्मराजः अध्वरधुरां विवक्षते।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी श्रीकृष्ण के प्रति युधिष्ठिर के यजन से सम्बन्धित प्रयोजन को स्पष्ट कर देना चाहते हैं –

अनुवाद : (और धर्मराज युधिष्ठिर के साथ तुम्हें ऐसा करना अनुचित होगा, यह कह रहे हैं–) बन्धु वे युधिष्ठिर (यज्ञ–सम्बन्धी) महान् भार के वहन करने में अत्यन्त समर्थ कन्धे वाले तुमको सहायक समझ कर यज्ञ के भार को वहन करते है अर्थात् तुम्हारे ही भरोसे पर यज्ञ को करना चाहते हैं ।

व्याकरण टिप्पणी

सम्भाव्य	:–	सम् + भू + णिच् + ल्यप्।
बान्धवः	:–	बन्धु + अण्।
अध्वरधुराम्	:–	अध्वर + धुर् + अच् + टाप् + अम्।
विवक्षते	:–	वह् + सन् + त (लट्)।
अतिभरक्षमस्कन्धं	:–	अतिभरस्य क्षमः स्कन्धो यस्य तं (बहुव्रीहि)।
अध्वरधुरां	:–	अध्वरस्य धुरां (षष्ठी तत्पु.)।
धर्मराजः	:–	धर्मस्य राजा (षष्ठी तत्पु.)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : समासोक्ति।

महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानान् रिपूनपि।
सपत्नीः प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः ।। 104।।

अन्वय : महात्मनः भजमानान् रिपून् अपि अनुगृह्णन्ति सिन्धवः सपत्नीः नगनिम्नगाः अब्धिं प्रापयन्ति।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी महापुरुषों के पर हित साधन की दृष्टि से भी युधिष्ठिर के प्रति श्रीकृष्ण की भावी उपकारकता का वर्णन कर रहे हैं।

अनुवाद : (पहले स्वीकार कर पुनः छोड़ने पर दोष होता हैं, किन्तु पहले से ही यज्ञ भार वहन करने का निषेध किये होते तो हमारे ऊपर कोई दोष नहीं आता इस कृषणादि की आशंका का उद्धवजी निवारण करते हैं) महात्मा लोग शरण में आये हुए शत्रुओं पर भी अनुग्रह करते हैं, (यथा–गङ्गा आदि) महानदियाँ सपत्नीरूप पहाड़ी नदियों को (पतिरूप) समुद्र के पास पहुँचा देती हैं।

व्याकरण टिप्पणी

महात्मानः	:–	महत् + आत्मन् + जस्।
भजमानान्	:–	भज् + मुम् + शानच् + शस्।
प्रापयन्ति	:–	प्र + आप् + णिच् + झि (लट्)।
अब्धिं	:–	अप् + धा + कि + अम्।
महात्मानः	:–	महान् आत्मा येषान्ते (बहुव्रीहिः)।
सपत्नीः	:–	समानः पतिर्यासान्ताः (प्रादितत्पु.)।
नगनिम्नगाः	:–	नगानां निम्नगाः (षष्ठी तत्पु.)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : अर्थान्तरन्यास।

चिरादपि बलात्कारो बलिनः सिद्धयेऽरिषु।
छन्दानुवृतिदुःसाध्याः सुहृदो विमनीकृताः।। 105।।

अन्वय : अपि अरिषु बलिनः बलात्कारः चिरात् सिद्धये (भवति) विमनीकृताः सुहृदः छन्दानुवृतिदुःसाध्याः (भवन्ति)।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी शत्रु एवं मित्र के प्रति बल प्रयोग के परिणाम को सूचित कर रहे हैं।

अनुवाद : (इस समय युधिष्ठिर की उपेक्षा करके भी युद्धानन्तर की प्रार्थनादि से उन्हें अनुकूल कर लिया जायेगा, इस पक्ष का निषेध करते हैं–) बलवान् के लिए शत्रु पर विलम्ब से किया गया भी बलप्रयोग सिद्धि के लिए होता हैं, किन्तु (पहले) विमानित मित्रों को उनके अनुकूल व्यवहार द्वारा कठिनाई से सन्तुष्ट किया जा सकता हैं।

व्याकरण टिप्पणी

बलात्कार	:–	बलात् + क‘ + अण्।
बलिनः	:–	बल + इनि + ङस्।
सिद्धये	:–	सिध् + क्तिन् + ङे.।
अनुवृति	:–	अनु + वृ + क्तिन्।
दुःसाध्या	:–	दुस् + साध् + यत् + जस्।
विमनीकृताः	:–	अविमनसो विमनसः सम्पद्यमाना कृता।
छन्दानुवृत्तिदुःसाध्याः	:–	छन्दस्य अनुवृत्या दुःसाध्याः (तत्पु.)।

सुहृदः :– शोभनं हृत् येषान्ते (बहुव्रीहिः)।

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : अनुप्रास।

मन्यसेऽरिवधः श्रेयान् प्रीतये नाकिनामिति।
पुरोडाशभुजामिष्टमिष्टं कर्तुमलन्तराम्।। 106।।

अन्वय : नाकिनां प्रीतये अरिवधः श्रेयान् मन्यसे इति (चेत्) पुरोडाशभुजां इष्टं कर्तुं इष्टम् अलन्तराम्।

प्रसंग : यह पद्य शिशुपालवधम् महाकाव्य के द्वितीय सर्ग से संकलित हैं। प्रस्तुत श्लोक में उद्धव जी इन्द्रादि देवताओं की प्रसन्नता के लिए दोनों कार्यों की आवश्यकता बतलाकर दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध बता रहे हैं।

अनुवाद : स्वर्ग में रहने वाले इन्द्रादि देवताओं की प्रसन्नता के लिए शत्रु के विनाश को श्रेष्ठतर मानते हो, यदि ऐसा हैं तो यज्ञ की हवि का ही भोजन करने वाले उन देवताओं की अभीष्ट पूर्ति के निमित यज्ञ भी पर्याप्त होगा। अथात् यज्ञ से भी वे देवता सन्तुष्ट हो जायेंगे।

भावार्थ : (युधिष्ठिर यज्ञ रूप मित्र कार्य की अपेक्षा नारदोक्त शिशुपालवध रूप देवकार्य पहले करना उचित हैं, इसका निराकरण करते है–) यदि शत्रु (शिशुपाल) का वध करना देवों को प्रसन्न करने के लिए श्रेष्ठ मानते हो तो (यज्ञ सम्बन्धी) हविष्य का भोजन करने वाले देवों का इष्ट यज्ञ करना ही सर्वधा पर्याप्त हैं।

व्याकरण टिप्पणी

श्रेयान् :– श्रि + ईयसुन् + सु।
प्रीतये :– प्रीञ् + क्तिन् + ङे.।
नाकिनां :– नाक + इनि + आम्।
पुरोडाशभुजां :– पुरोडाश + भुज् + क्विप् + आम्।
इष्टं :– यज् + क्त।
कर्तु :– कृ + तुमुन्।
अलन्तराम् :– अलम् + तरप् + आम्।
अरिवधः :– अरीणां वधः (षष्ठी तत्पु.)।
पुरोडाशभुजां :– पुरोडाशं भुंजते तेषाम् (उपपद)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : यमक।

अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुहवति।
शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना।। 107।।

अन्वय : सन्तः मन्त्रजिह्वेषु यत् जुह्वति तत् अमृतं नाम। मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधि वर्णना शोभा एव।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी यज्ञ की महता का प्रतिपादन समुद्र के दृष्टांत द्वारा कर रहे हैं।

अनुवाद : (सर्वदा अमृत का पान करने वाले देवों को यज्ञ के पिष्ट (आटा आदि) के भोजन से क्या प्रयोजन हैं ? इसका समाधान करते हैं) विद्वान् लोग मन्त्र ही हैं जिह्वा जिनकी ऐसी अग्नियों में जो हवन करते हैं, वही अमृत हैं, मन्दराचलरूप मथनी से मथे गये समुद्र (से निकले हुए अमृत का) वर्णन केवल शोभामात्र हैं।

व्याकरण टिप्पणी

सन्तः :– सत् + जस्।

जुहवति :– हु + झि (लट्)। (जुहोत्यादिगणीय)

क्षुब्धः :– क्षुभ् + क्त।

क्षुभित :– क्षुभ् + क्त (इट्)।

अम्भोधि :– अम्भः + धा + कि।

वर्णना :– वृणु + ल्युट् + टाप्।

मन्त्रजिह्वेषु :– मन्त्रा एव जिह्वा येषान्तेषु (बहुव्रीहिः)।

मन्दर क्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना :– मन्दर एव क्षुभितश्चासौ अम्भोयोधिस्तस्य वर्णना (कर्मधा.)

छन्द : अनुष्टुप्।

अलंकार : काव्यलिंग।

सहिष्ये शतमागांसि सूनोस्त इति यत्वया।
प्रतीक्ष्यं तत्प्रतीक्ष्यायै पितृष्वस्रे प्रतिश्रुतम्।।108।।

अन्वय : 'ते सूनोः शतम् आगांसि सहिष्ये' इति यत् त्वया प्रतीक्ष्यायै पितृष्वस्रे प्रतिश्रुतं तत् प्रतीक्ष्यम्।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक में उद्धव श्री कृष्ण को शिशुपाल के अपराधों के बारे में पूर्वकृत प्रतिज्ञा को याद करवा कर नया तर्क उपस्थित कर रहे हैं।

अनुवाद : (तुम्हारे चढ़ाई करने में दूसरी भी बाधा है, उसे कहते हैं) तुमने 'तुम्हारे पुत्र के सौ अपराधों को मैं सहूंगा अर्थात् क्षमा करूंगा ऐसा जो शृतश्रवा नाम की अपनी बुआ के लिए प्रतिवचन (आश्वासन) दिया हैं, पूज्य उसके लिए उस (सौ अपराध) की प्रतीक्षा करनी चाहिये।

व्याकरण टिप्पणी :–

सहिष्ये :– सह. + इड् (ल'ट)।

प्रतीक्ष्यायै :– प्रति. + ईक्ष्. + यत् + टाप् + डे. ।

प्रतिश्रुतं :– प्रति. + श्रु + क्त।

पितृस्वस्त्रे :– पितुः स्वसा तस्यै (षष्ठी तत्पु.)

छंद : अनुष्टुप्।

अलंकार : अनुप्रास।

तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धिः कर्म शान्तं प्रतापवत्।
नोपतापि मनः सोष्म वागेका वाग्मिनः सतः।।109।।

अन्वय : सतः बुद्धिः तीक्ष्णाः अरुन्तुदा न। कर्म प्रतापवत्, शान्तं (च)। मनः सोष्म, उपतापि न। वाग्मिनः वाक् एका।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी सत्पुरुष के कार्यों तथा आचरणों को सूचित कर श्रीकृष्ण को तदनुकूल कार्य व आचरण करने का संकेत करते हैं।

अनुवाद : (उक्त आश्वासन देने पर भी मदोन्मत्त इस शिशुपाल को अविलम्ब मारना ही उचित है, इस पक्ष का निराकरण करते हैं) संतों की बुद्धि तीक्ष्ण होती है, किन्तु मर्मस्थल को पीड़ित करने वाली नहीं होती, कर्म प्रतापयुक्त होता है, किन्तु शांत (सिंहादि के समान हिंसक नहीं) होता हैं। मन कुलशीलादि के अभिमान से युक्त होने से उष्ण होता हैं, किन्तु दूसरे को सन्तप्त करने वाला नहीं होता और उचित बहुत बोलने वाले का वचन एक होता हैं अर्थात् सज्जन पुरुष जो एक बार कह देते हैं, उसका अन्त तक पालन करते हैं।

व्याकरण टिप्पणी :–

अरुन्तुदा :– अरुष् + तुद् + खच् + टाप्।

बुद्धिः	:–	बुध् + क्तिन् + सु।
प्रतापवत्	:–	प्रताप + मतुप्।
उपतापि	:–	उप + तप् + णिनि + सु।
वाग्मिनः	:–	वाच् + ग्मिनि + ङस।

छंद : अनुष्टुप्।

अलंकार : दीपक।

स्वयंकृतप्रसादस्य तस्याह्नो भानुमानिव।
समयावधिमप्राप्य नान्तायालं भवानपि।। 110।।

अन्वय : स्वयङ्कृतप्रसादस्य अह्नः भानुमान् इव (स्वयंकृतप्रसादस्य) तस्य अन्ताय समयावधिम् अप्राप्य भवान् अपि अलम् न।

प्रसंग : यह श्लोक माघ विरचित शिशुपालवध महाकाव्य के द्वितीय सर्ग से संकलित हैं। प्रस्तुत श्लोक में उद्धवजी समय आने पर ही कार्य का होना सूचित करके श्रीकृष्ण को शिशुपालवध के समय की प्रतीक्षा का आदेश करते हैं।

अनुवाद : अपने आप प्रकाशित होने वाले दिन के अंत के लिए जिस प्रकार सूर्य समय से पूर्व समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार स्वयमेव अनुगृहीत उस शत्रु शिशुपाल के अंत के लिए आप श्री कृष्ण भी काल की गति के पूरे हुये बिना समर्थ नहीं हो सकते। समय आने पर ही वह मृत्यु को प्राप्त होगा, उससे पूर्व नहीं।

व्याकरण टिप्पणी :–

स्वयंकृत	:–	स्वयम् + कृ + क्त।
भानुमान्	:–	भानु + मतुप्।
अवधिं	:–	अव + धा + कि + अम्।
अप्राप्य	:–	न + प्र + आप् + ल्यप्।
स्वयंकृतप्रसादस्य	:–	स्वयं कृतः प्रसादी यस्य सः (बहुव्रीहिः)।
समयावधिं	:–	समयस्य अवधिम् (षष्ठी तत्पु.)
अप्राप्य	:–	न प्राप्य (नञ्)

छंद :अनुष्टुप्।

अलंकार : उपमा।

कृत्वा कृत्यविदस्तीर्थेष्वन्तःप्रणिधयः पदम्।
विदाङ्कुर्वन्तु महतस्तलं विद्विषदम्भसः ।।111।।

अन्वय : तीर्थेषु अन्तः पदं कृत्वा कृत्यविदः प्रणिधयः विद्विषदम्भसः महतः तलं विदाङ्कुर्वन्तु।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी श्रीकृष्ण से गुप्तचरों द्वारा शिशुपाल की समस्त जानकारी गहराई से लेने का निवेदन करते हैं।

अनुवाद : (इन कारणों से शिशुपाल चढ़ाई करने योग्य नहीं है; तथापि उपेक्षणीय भी नहीं हैं, अतः वर्तमान में उपस्थित कर्तव्य को कह रहे हैं) कार्यज्ञ (पक्षा. – नीतिज्ञ) गुप्तचर लोग (मंत्र आदि अठारह) तीर्थो में (पक्षा. – सीढ़ियों पर) निवासकर (पक्षा. – प्रवेषकर) बड़े (पक्षा. – गम्भीर) 'शत्रु रूपी पानी के तल (बलादि प्रमाण–स्वरूप, पक्षा. – गम्भीर्य) को मालूम करें।

व्याकरण टिप्पणी :–

कृत्वा	:–	कृ + कत्वा।
कृत्यविदः	:–	कृत्य + विद् + क्विप् + जस्।
प्रणिधयः	:–	प्र + नि + धा + कि + जस्।

विदाङ्कुर्वन्तु	:–	विद् + आम् + कृ + झि (लोट्)।
महतः	:–	महत् + ङस्।
कृत्यविदः	:–	कृत्यं विदन्तीति (उपपद.)
प्रणिधयः	:–	प्रणिधीयन्ते इति (उपपद.)
विद्विषदम्भसः	:–	विद्विषदेवाम्भस्तस्य (कर्मधाः)

छंद : अनुष्टुप्।

अलंकार : रूपक।

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृतिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा। 112।।

अन्वय : अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृतिः सन्निबन्धना अपस्पशा राजनीतिः अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृतिः
सन्निबन्धना अपस्पशा शब्दविद्या इव नो भाति।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक में उद्धव व्याकरण शास्त्र से राजनीति की तुलना करते हुए गुप्तचरों के महत्त्व का वर्णन कर रहे हैं।

अनुवाद : जहाँ नीतिशास्त्र प्रतिकूल एक पैर भी रखने (आगे बढ़ने) का विधान नहीं हैं ऐसी (साधारण भृत्य से लेकर श्रेष्ठतम अमात्य तक के लिए नियत) सुन्दर जीविका (वेतन) वाली, (तथा कार्य की समाप्ति होने पर) उचित पारितोषिक (देने का नियम बतलाने) वाली राजनीति गुप्तचरों (की नियुक्ति) के बिना उसी प्रकार नहीं शोभा देती हैं, जिस प्रकार सूत्र (पाणिनि–प्रणित सूत्रों) के अविरुद्ध पद (कृदन्त, तद्धितान्त, समस्त आदि पद) तथा न्यास (काशिका वृत्ति का व्याख्यान ग्रंथ) हैं जिसमें ऐसी सुन्दर वृति (काशिकासूत्रों के व्याख्यानात्मक ग्रंथ) वाली तथा श्रेष्ठ निबन्धन (पतंजलि मुनिप्रणीत महाभाष्य ग्रन्थवाली) भी शब्दविद्या (व्याकरणशास्त्र) स्पष (व्याकरण के प्रयोजन को निर्दिष्ट करने वाला महाभाष्य का पस्पशा नामक प्रथम आह्निक) के बिना नहीं शोभा देती हैं।

भगवान् पतंजलि ने अष्टाध्यायी सूत्र के स्वरचित महाभाष्य में 'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्' कहकर व्याकरण शास्त्र का प्रयोजन बतलाया है, उसे पस्पश आह्निक कहते हैं। उसके न जानने से लोगों की अनुत्सूत्रपदन्यासः सद्वृत्ति, सन्निबन्धनगुणयुक्त भी व्याकरण के पढ़ने में प्रवृत्ति ही नहीं होती, अतः उसके बिना जिस प्रकार वह व्याकरणषास्त्र शोभित नहीं होता है, उसी प्रकार जिस राजनीति में पग–पग पर नीतिशास्त्रानुकूल ही चलते है, भृत्यादि वर्ग को जीविका यथोचित है तथा कार्य के सिद्ध होने पर कार्यकर्ताओं को उचित भूमि, सोना, चांदी, घोड़ा आदि पारितोषिक रूप में देने की व्यवस्था हैं। इन गुणों से युक्त भी राजनीति गुप्तचरों की नियुक्ति शून्य होने पर नहीं शोभा देती हैं।

व्याकरण टिप्पणी :–

सद्वृतिः	:–	सत् + वृङ् + क्तिन् + सुः।
सन्निबन्धना	:–	सत् + नि + बन्ध् + ल्युट् + टाप्।
राजनीतिः	:–	राज. नी + क्तिन् + सु।
अनुत्सूत्रपदन्यासा	:–	न उत्सूत्रपदन्यासो यस्यां सा (बहुव्रीहिः)
सद्वृत्तिः	:–	सती वृत्तिर्यस्यां सा (बहुव्रीहिः)
सनिनबन्धना	:–	सन्ति निबन्धनानि यस्यां सा (बहुव्रीहिः)
शब्दविद्या	:–	शब्दानां विद्या (षष्ठी तत्पु.)
राजनीतिः	:–	राज्ञां नीतिः (षष्ठी तत्पु.)
अपस्पशा	:–	अविद्यमानः पस्पशो यस्यां सा (बहु.)

छंद : अनुष्टुप्।

अलंकार : श्लेष, पूर्णोपमा।

अज्ञातदोषैर्दोषज्ञैयद्दूष्योभयवेतनैः।
भेद्याः शत्रोरभिव्यक्तशासनैः सामवायिकाः।।113।।

अन्वय : अज्ञातदोषैः दोषज्ञैः अभिव्यक्तषासनैः उभयवेतनैः शत्रोः सामवायिकाः उद्दूष्य भेद्याः।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी गुप्तचरों की कार्यप्रणाली का विवेचन कर रहे हैं ताकि श्रीकृष्ण तदनुसार अपने गुप्तचरों को निर्देशित कर सकें।

अनुवाद : जिनके दोषों को दूसरा नहीं जानता तथा जो दूसरों के दोषों को स्वयं जानते हैं, ऐसे दोनों ओर से वेतन लेने वाले गुप्तचरों द्वारा कपट लेखादि को दिखलाकर शत्रु के मंत्री नौकर आदि समूहों को भेदन करना चाहिए।

भावार्थ : आप ऐसे चतुर गुप्तचरों को शत्रु के यहां नियुक्त करें, जो शत्रुओं के दोषों को जानते हों, किन्तु ये शत्रु पक्ष आपके पक्ष के हैं, ऐसे अनेक दोषों के दूसरा कोई जानता हो, तथा जो आपके यहां से तो वेतन पाते ही हों, किन्तु शत्रु का भी दिखावटी नौकर बनकर शत्रु से भी वेतन ले रहे हों। ऐसे गुप्तचर राजा आदि के द्वारा लिखे गये कपट लेखों को मंत्री आदि से दिखलाकर 'राजा आप लोगों का विश्वास नहीं करता, किन्तु आप लोगो के विरूद्ध षड़यंत्र कर रहा है' इस बात को प्रमाणित करने वाले राजादि लिखित कपट लेखों को प्रकटकर शत्रुओं के समुदाय में रहने वाले मंत्री, सेनापति आदि को फोड़ डालें।

व्याकरण टिप्पणो :–

अज्ञात	:–	न + ज्ञा + क्त।
दोषज्ञैः	:–	दोष + ज्ञा + क + भिस्।
अभिव्यक्त	:–	अभि + व्यज् + क्त।
सामवायिकाः	:–	समवाय + ठक् + जस्।
उद्दूष्य	:–	उत् + दूष् + ल्यप्।
भेद्याः	:–	भिद् + ण्यत् + जस्।
अज्ञातदोषैः	:–	अज्ञाता दोषा येषान्तैः (बहुव्रीहिः)
दोषज्ञाः	:–	दोषान् विदन्तीति तैः (उपपद.)
अभिव्यक्तषासनैः	:–	अभिव्यक्तानि शासनानि यैस्तैः (बहुव्रीहिः)
उभयवेतनै	:–	उभयोर्वेतनं येषान्तैः (बहुव्रीहिः)।

छंद :अनुष्टुप्।

अलंकार : स्वभावोक्ति।

उपेयिवांसि कर्तारः पुरीमाजातशात्रवीम्।
राजन्यकान्युपायज्ञैरेकार्थानि चरैस्तव।।114।।

अन्वय : उपायज्ञैः तव चरैः एकार्थानि राजन्यकानि आजातशात्रवीं पुरीम् उपेयिवांसि कर्तारः।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी गुप्तचरों द्वारा मित्र राजाओं को यज्ञ में भेजने का औचित्य बतला रहे हैं।

अनुवाद : तुम्हारे गुप्तचर, तुम्हारे पक्ष में होकर युद्ध करना ही जिनका एक लक्ष्य है, ऐसे राजाओं को युधिष्ठिर की राजधानी (हस्तिनापुर) में प्राप्त करायेंगे। आपके गुप्तचर युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए हस्तिनापुर में पहुँचने पर 'श्रीकृष्ण भगवान् का पक्ष लेकर युद्ध करना होगा, अतएव आप लोग अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित सेना के साथ चलें,' ऐसा गुप्त रूप से आपके पक्ष वाले राजसमूहों को हस्तिनापुर में उपस्थित करें।

व्याकरण टिप्पणी :–

उपेयिवांसि	:–	उप. इ + क्वसु + जस्।
कर्तारः	:–	कृ + तश्च् + जस्।
आजातशात्रवीं	:–	अजातशत्रु + अण् + ङीप् + अम्।
राजन्यकानि	:–	राजन्य + वुञ् + जस्।

उपायज्ञैः :– उपाय + ज्ञा + भिस्।

चरैः :– चर् + ट + भिस्।

उपायज्ञैः :– उपायं जानन्तीति तैः (उपपद समास)।

एकार्थानि :– एकः अर्थ येषां तानि (बहुव्रीहि)

छंद :अनुष्टुप्।

अलंकार : अनुप्रास।

सविशेषं सुते पाण्डोर्भक्तिं भवति तन्वति।
वैरायितारस्तरलाः स्वयं मत्सरिणः परे।।115।।

अन्वय : पाण्डोः सुते भवति भक्तिं सविषेषं तन्वति तरलाः मत्सरिणः परे स्वयं वैरायितारः (भविष्यन्ति)।

प्रसंग : उद्धवजी इन्द्रप्रस्थ में एकत्रित होने पर युद्ध के भावी अवसर की प्राप्ति का संकेत कर रहे हैं।

अनुवाद : (यज्ञकाल में भी शिशुपाल से) युद्ध करने का अवसर मिल सकता हैं, इसका प्रतिपान करते हैं पाण्डुपुत्र (युधिष्ठिर) के आपके विषय में भक्ति करते रहने पर दूसरे के शुभ में ईष्यालु एवं चंचल शत्रु स्वयं तुम्हारे साथ विरोध करेंगे।

व्याकरण टिप्पणी :–

सुते :– षुङ. + शतृ + क्तु + ङि.।

भक्तिम् :– भज् + क्तिन् + अम्।

भवति :– भवत् + ङि.।

वैरायितारः :– वैर + क्यङ् + झि रस् (लुट्)।

मत्सरिणः :– मत्सर + इनि + जस्।

सविशेषम् :– विषेषेण सहितम् (प्रादि तत्पु.)

मत्सरिणः :– मत्सरोऽस्यास्तीति मत्सरी ते (उपपद समास)

छंद : अनुष्टुप्।

अलंकार : अनुप्रास।

य इहात्मविदो विपक्षमध्ये सहसंवृद्धियुजोऽपि भूभुजः स्युः।
बलिपुष्टकुलादिवान्यपुष्टैः पृथगस्मादचिरेण भाविता तैः।। 116।।

अन्वय : इह विपक्षमध्ये सहसंवृद्धियुजः ये भूभुजः आत्मविदः स्युः तैः अपि बलिपुष्टकुलात् अन्यपुष्टैः इव अचिरेण अस्मत् पृथक् भाविता।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक में उद्धव समयानुसार शत्रपक्षी राजाओं की विपरीत क्रियान्विति का भी संकेत कर देते हैं।

अनुवाद : इस शत्रु के मध्य में, साथ में समृद्धि को प्राप्त किये हुए भी जो अपने स्वरूप को जानने वाले राजा लोग है, वे कांवों के समूह से कोयलों के समूह के समान इस (शिशुपाल) से शीघ्र ही अलग हो जायेंगे।

भावार्थ : जिस प्रकार कोयल के बच्चों को पहले कौवे पालते हैं; किन्तु जब कोयल बड़ी हो जाती है, तब वह कौवों का साथ छोड़कर अपने पक्ष (कोयलों) में मिल जाती है, उसी प्रकार इस समय तुम्हारे पक्ष के जो राजा शिशुपाल के साथ रहकर समृद्धिमान् हो रहे हैं, वे युद्धारम्भ हो जाने पर तत्काल उसको छोड़कर आपका साथ देंगे।

व्याकरण टिप्पणी :–

संवृद्धियुज :– सम् + वृध् + क्तिन् + युज् + क्विप् + जस्।

भूभुजः :– भू + भुज् + क्विप् + जस्।

आत्मविदः :– आत्मन्. विद् + क्विप् + जस्।

पुष्ट :– पुष् + क्त।

भाविताः :– भू + तिप् + (इट्) + डा (ल'ट)।
सहसंवृद्धियुजः :– सह संवृध्या युंजन्तीति (उपपद)।
भूभुजः :– भुवं भुञ्जन्तीति (उपपद.)।
आत्मविदः :– आत्मानं विदन्तीति (उपपद)।
बलिपुष्टकुलात् :– बलिभिः पुष्टास्ते बलिपुष्टास्तेषां कुलं तस्मात्।
अन्यपुष्टैः :– अन्यैः पुष्टास्तैः (तृतीया तत्पु.)

छंद : पुष्पिताग्रा।

अलंकार : उपमा।

सहजचापलदोषसमुद्धतः, चलितदुर्बलपक्षपरिग्रहः।
तव दुरासदवीर्यविभावसौ, शलभतां लभतामसुहृद्गणः।।117।।

अन्वय : सहजचापलदोषसमुद्धत चलितदुर्बलपक्षपरिग्रहः असुह्रद्ग्णः तव दुरासदवीर्यविभावसौ शलभतां लभताम्।

प्रसंग : उक्त श्लोक म उद्धवजी अपने वक्तव्य का उपसंहार करते हुये शत्रुओं के पतन की कामना करते हैं।

अनुवाद : (अब परिणाम को आशीर्वाद रूप में बतलाते हुए उद्धवजी कहते हैं) स्वाभाविक चपलतारूपी दोष से समुद्धत, दुर्बल होने से षिथिल पक्षों को धारण करने (पक्षा. – अपने सहचरों तथा साधनों) वाला शत्रुसमूह तुम्हारे असह्यय पराक्रमरूपी अग्नि में शलभ के समान नष्ट हो जायें।

व्याकरण टिप्पणी :–

समुद्धतः :– सम् + उत् + हन् + क्त + सु।
चलित :– चल् + इट् + क्त।
परिग्रहः :– परि + ग्रह् + क + सु।
शलभतां :– शलभ + तल् + अम्।
लभताम् :– लभ + ते (तातङ्) लोट्।
सहजचापलदोषसमुद्धतः :–सहजं चापलमेव दोषस्तेन समुद्धतः (कर्मधारयमूलक तृतीया तत्पु)।
चलितदुर्बलपक्षपरिग्रहः :– चलितो दुर्बलपक्षाणां परिग्रहो यस्य सः (बहुव्रीहि)

छंद : अनुष्टुप्।

अलंकार : श्लेष, रूपक, यमक।

इति विशकलितार्थामौद्धवी वाचमेनाम्,
अनुगतनयमार्गामर्गलां दुर्नयस्य।
जनितमुदमदस्थादुच्चकैरुच्छ्रितोरः
स्थलनियतनिषण्ण–श्रीश्रुतां शुश्रुवान् सः।।118।।

अन्वय : इति विशकलितार्थम् अनुगतनमयमार्गां, दुर्नयस्य अर्गलां, जनितमुदम्, उच्छ्रितोरः स्थलनियतनिषण्णश्रीश्रुताम् औद्धवीम् एनां वाचं शुश्रुवान् सः उच्चकैः उदद्स्थात्।

प्रसंग : उक्त श्लोक में उद्धवजी वक्तव्य की समाप्ति पर सभा के विसर्जन का वर्णन किया गया हैं।

अनुवाद : वे (श्रीकृष्ण भगवान्) सम्यक् प्रकार से इस तरह विरचित अर्थवाले, राजनीति का अनुगमन करने वाले अर्थात् राजनीति के अनुकूल, (बलरामजी उद्धत वचनरूपी) दुर्नीति के लिए अर्गलारूप (आगल के समान रोकने वाले) तथा हर्षजनक और (श्रीकृष्ण भगवान् के) उन्नत वक्षः स्थल में सर्वदा निवास करने वाली पत्नी रूपिणी लक्ष्मी (अथ च – वक्षः स्थल में सर्वदा निवास करने वाली शोभा) से सुने गये वचन को सुने हुए वे (श्रीकृष्ण भगवान् आसन से) उठ गये।

व्याकरण टिप्पणी :–

औद्धवीं :– उद्धव + अण् + ङीप् + अम्।
अनुगत :– अनु + गम् + क्त।
शुश्रुवान् :– श्रु + क्वसु (लिट्) + सु।

उच्चकैः	:–	उच्चैः + अकच्।
उदस्थात्	:–	उत् + स्था + तिप्।
जनित	:–	जन् + क्त।
उच्छ्रित	:–	उत् + श्रि + क्त।
नियत	:–	नि + यम् + क्त।
निषण्ण	:–	नि + षद् + क्त।
श्रुतां	:–	श्रु + क्त + टाप्।
विशकलितार्था	:–	विशकलितः अर्थो यास्यास्तां (बहुव्रीहिः)
अनुगतनयमार्गां	:–	अनुगतः नयमार्गः यया तां (बहुव्रीहि.)
जनितमुदं	:–	जनितं मुदः तया तां।

उच्छ्रितोरः स्थलनियतानिषण्णश्रुता :– उच्छ्रिते उरः स्थले नियतं निषण्णया श्रिया (तत्पु.)
छंद : मालिनी।
अलंकार : रूपक, अनुप्रास।

10.4 पारिभाषिक शब्दावली

प्रकृति – (स्वामी, मंत्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, किला तथा सेना– ये सात अथवा– नागरिक समूह) ही जिसके अंग हैं वह अर्थात् कोई राजा अपने हाथ–पैर आदि अङ्गों से कार्य करता है, पर यह इन प्रकृतियों से कार्य को पूरा कर लेता है, क्योंकि इनके अभाव में राज–सत्ता का ही अभाव हो जाता है।
असाध्य – (परजित नही हो सकने वाला, बुद्धिमान् पुरूष)
आवाप – तन्त्र (अपने राष्ट्र का चिन्तन, अपनी शक्ति को उत्पन्न करना) तथा आवाप (दूसरे के राष्ट्र का चिन्तन, दूसरे की शक्ति का अपने में अध्यारोप करना)
शक्ति (प्रभु शक्ति, मन्त्र शक्ति तथा उत्साह शक्ति, पक्षा.– बल :– सामर्थ्य)
न्गापगा :– नगात् निस्सृता आपगा (पंचमी तत्पुरुष)

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न :

1. उद्धवजी ने श्रीकृष्ण के सम्मुख किस प्रकार की वाणी को कहा ?
2. दीपक किसके द्वारा रस ग्रहण करता है ?
3. उद्धव के वचनों का सार लिखिए।
4. लोक संख्या 81, 89, 90, 99, 101, 108, 111, 114, 118 का संप्रसग अनुवाद कीजिए।

बोध प्रश्नों के उत्तर।

1. अर्थगाम्भीर्य एवं तर्कपूर्ण वाणी को।
2. दीपक बत्ती के द्वारा रस ग्रहण करता है।
3. देखिए – इकाई
4. देखिए – इकाई – 9.3

10.6 सारांश

सबसे पहले कहते हैं कि बलरामजी द्वारा कहे जाने पर इस समय कुछ बोलना उचित नहीं हैं। जैसे कि लिखित रूप से कार्य का निर्धारण कर देने पर मौखिक रूप से उस विषय के कथन का कोई औचित्य नहीं होता। उद्धवजी अपने कथन में कार्य के प्रति मूर्खों और विद्वानों की प्रवृत्ति किस प्रकार की होती हैं इसका प्रतिपादन करते हैं। वह कहते हैं कि मूर्ख अल्प कार्य ही आरम्भ करते हैं किन्तु अत्यधिक व्यग्र हो जाते हैं किन्तु विद्वान् व्यक्ति महान् कार्य को प्रारम्भ करने वाले होते हैं और उसकी सिद्धि के लिए लम्बे समय तक भी कभी भी व्यग्रता का अनुभव नहीं करते हैं। उद्धव के अनुसार एक विजयेच्छुक राजा को बुद्धिरूपी शस्त्र से युक्त होना चाहिए। प्रकृति रूपी अवयवों से अपना संगठन बनाना चाहिए। उसे गुप्तचर रूपी नेत्रों वाला और दूतरूपी मुख वाला होना चाहिए। उद्धव के अनुसार जैसे रसज्ञ कवि अपनी रचनाओं में न केवल ओज अथवा न केवल प्रसाद गुण की

ही अपेक्षा करता हैं अपितु दोनों की ही अपेक्षाओं को जनता हैं, उसी प्रकार समय को जानने वाला राजा न केवल तेज का ही आश्रय लेता हैं और न केवल क्षमा का ही, अपितु वह दोनों की ही अपेक्षाओं को जानता है, उसी प्रकार समय को जानने वाला राजा न केवल तेज का ही आश्रय लेता हैं और न केवल क्षमा का ही, अपितु वह दोनों का ही अपनी अपेक्षाओं को जानता है, अपनी अपेक्षानुसार हमेशा व हर प्रकार से व्यवहार में लाता है। उद्धवजी कहता है कि एक नीतिज्ञ राजा अवसर की प्रतीक्षा करता है, जब शत्रु के दमन करने का वह उचित समय देखता हैं, तभी शत्रु पर क्रोध करता हैं। जैसे असाध्य रोग समय आने पर कोप करता है। उद्धव क्षमायुक्त तेजस्विता का पक्षपाती है। वह कहता है कि कोमल (मधुर) व्यवहार से युक्त तेजस्वी ही अर्थों का भोग करता हैं शिशुपाल के वध के विषय में उसकी स्पष्ट मान्यता है कि वह सरलता से जीता नहीं जा सकता है क्योंकि वह अकेला नहीं है, वह तो रोगों का समूह क्षयरोग के समान राजाओं का समूह है अन्त में वह कहता है कि अभी शिशुपाल के विनाष का समय नहीं आया है। इसलिए उचित समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। समय आने पर वह स्वयं विनाष के लिए आगे हो जायेगा। संक्षेप में यही उद्धव के वचनों का सार है।

10.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास,डॉ. जयकृष्ण खण्डेलवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985.
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास,आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा निकेतन वाराणासी, 1995.
3. शिशुपालवधम्,(व्याख्याकार)हरगोविन्द शास्त्री ,चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय वाराणासी,1978.

इकाई – 11

महाकवि बिल्हण विरचित विक्रमाङ्कदेवचरितम् ऐतिहासिक महाकाव्य की विशेषताओं का मूल्याङ्कन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 महाकवि बिल्हणः परिचय

- 11.2.1 जन्म–स्थान
- 11.2.2 स्थितिकाल
- 11.2.3 बिल्हण की रचनाएँ (1) कर्ण सुन्दरी, (2) चौरपञ्चाशिका (3) विक्रमांकदेवचरितम्

11.3 विक्रमांकदेवचरितम् की ऐतिहासिकता

11.4 विक्रमांकदेवचरित (प्रथम सर्ग) के आधार पर बिल्हण की काव्य–शैली का विवेचन।

- 11.4.1 भाषा–शैली
- 11.4.2 अलंकार–योजना
- 11.4.3 रस–योजना

11.5 विक्रमांकदेवचरितम् (प्रथम सर्ग) के वर्ण्य विषयों का वैशिष्ट्य।

11.6 पारिभाषिक शब्दावली

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.8 सारांश

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम सर्ग के आधार पर उनकी काव्य शैली उसकी भाषा, वैदर्भी रीति, अलंकार प्रयोग तथा विक्रमांकदेव–चरितम् के मुख्य रस के विषय तथा ''विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम सर्ग में इनके द्वारा वर्णित महत्त्वपूर्ण वर्ण्यविषयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' की काव्य शैली का परिचय कराना है।

11.1 प्रस्तावना

एम. ए. (उत्तरार्द्ध) संस्कृत के पञ्च प्रश्न पत्र 'गद्य तथा काव्य' के अन्तर्गत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम सर्ग का अध्ययन अपेक्षित है। विक्रमांकदेवचरितम् महाकाव्य कवि बिल्हण की रचना है। बिल्हण मूलतः कश्मीर निवासी थे तथा ऐतिहासिक महाकाव्यों के लेखन में कवि बिल्हण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत इकाई में कवि बिल्हण के जन्म स्थान, समय तथा 'विक्रमांकदेवचरितम्' के ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।

11.2 महाकवि बिल्हण – परिचय

संस्कृत साहित्य में 'विक्रमांकदेवचरितम्' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिल्हण कृत यह महाकाव्य ऐतिहासिक महाकाव्यों की श्रेणी में रखा जाता है यद्यपि संस्कृत साहित्य में तिथि व

घटनाओं के आधार पर नीरस ऐतिहासिक काव्य नहीं मिलते क्योंकि उन पर कल्पना व काव्य का रङ्ग चढ़ा हुआ है अतः गंभीर ऐतिहासिक ग्रन्थों का हमारे यहाँ अभाव ही रहा। अपने आश्रय दाता विक्रमादित्य की प्रशंसा में लिखे गये 'विक्रमाकदेवचरितम्' महाकाव्य का ऐतिहासिक तथ्यों व घटनाओं को दृष्टि से तो महत्त्व है किंतु उनकी विशेष प्रसिद्धि का कारण उनकी काव्य–शैली भी है।

हमारे संस्कृत साहित्य में कवियों ने अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है, परन्तु महाकवि बिल्हण के विषय में ऐसा नहीं है। महाकवि बिल्हण ने 'विक्रमांकदेवचरितम्' के 18 वें सर्ग में अपना परिचय दिया है।

11.2.1 जन्म–स्थान

बिल्हण मूलतः कश्मीरी थे। कश्मीर के प्रमुख नगर प्रवरपुर के समीपवर्ती खोनमुख नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ। कश्मीर के राजा गोपादित्य ने बिल्हण के प्रपितामह मुक्ति–कलश को मध्यपदेश से लाकर अपने यहाँ सम्मान से रखा। बिल्हण के पितामह का नाम राजकलश और पिता का नाम ज्येष्ठ कलश तथा माता का नाम नागदेवी था। इनके पिता व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान् थे, उन्होंने पातञ्जल महाभाष्य की किसी लोकप्रिय टीका का प्रणयन किया था जो अत्याधिक लोकप्रिय थी। बिल्हण के बड़े भाई का नाम इष्टराम तथा छोटे भाई का नाम आनन्द था। बिल्हण की शिक्षा–दीक्षा कश्मीर में ही हुई। कश्मीर की प्रशंसा करते हुए बिल्हण कहते हैं कि केसर तथा कविता कश्मीर को छोड़कर अन्यत्र पैदा नहीं होती। जैसे–

यत्र स्त्रीणां मसृणघुसृणालेपनाष्णा कुचश्री–
स्ताः कस्तूरीपरिमलमुचः पट्टिका राप्रवाणाम्।
नौपृष्ठस्थाः शिशिरसमये ते वितस्ता–जलान्तः
स्नानावासाः प्रचुरमपि च स्वर्गसौख्यं दिशन्ति।।

बिल्हण कश्मीर में विधिवत् शिक्षा ग्रहण करने के बाद मथुरा गये वहाँ पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित करने के उपरान्त वृन्दावन, तत्पश्चात् कान्यकुब्ज, प्रयाग होते हुए वाराणसी पहुँचे। डाहलाधिपति कर्ण के सभापति गङ्गाधर को पराजित कर अयोध्या, वहाँ से धारानगरी तथा तत्पश्चात् गुजरात पहुँचे। सोमनाथ व रामेश्वरम् होते हुए अन्त में चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ के आश्रय में कल्याण नगर पहुँचे। राजा ने इनका सत्कार किया तथा इन्हें 'विद्यापति' की उपाधि से विभूषित किया।

11.2.2 स्थितिकाल

बिल्हण ने स्वयं अपने जन्म तथा कश्मीर छोड़ने आदि की तिथियों का वर्णन किया है। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में चर्चा की है कि बिल्हण के कश्मीर छोड़ने के समय कश्मीर का शासक कलश था तथा कलश के पुत्र हर्षदेव के कश्मीर की गद्दी पर बैठने के समय तक बिल्हण जीवित थे।

कश्मीर के राजा कलश का समय 1062 से 1089 ई. तक है। बूहलर महोदय ने बिल्हण के कश्मीर छोड़े जाने का समय 1062 ई. से 1065 ई. के बीच सिद्ध किया है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' की रचना 1085 ई. के लगभग की है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' की रचना 1085 ई. के भी कुछ बाद में हुई होगी। क्योंकि बिल्हण ने जयसिंह के साथ विक्रमांक के जिस युद्ध का वर्णन किया है, वह 1085 ई. व उसके बाद हुआ है अतः विक्रमांकदेवचरित में वर्णित इस युद्ध से प्रतोत होता है कि इसग्रन्थ की रचना युद्ध के भी एक दो वर्षो बाद हुई होगी क्योंकि बिल्हण हर्षदेव (1089 ई.) के समय तक जीवित थे अतः बिल्हण का जन्म ग्यारहवीं शतीं के द्वितीय या तृतीय दशाब्द तथा 'विक्रमांकदेवचरितम्' का रचना काल ग्यारहवीं शतीं का उत्तरार्ध रहा होगा।

11.2.3 बिल्हण की रचनाएँ

बिल्हण की कृतियाँ – बिल्हण की जिन रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है वे इस प्रकार है–

1. **कर्णसुन्दरी नाटिका** – इस नाटिका में गुजरात के राजा कर्णदेव की विद्याधर कन्या के साथ कल्पित प्रणय कथा का वर्णन है। यह चार अंकों की नाटिका है। इसकी रचना कवि ने अणहिलपट्टण के राजा के आश्रय में रहकर की होगी। कवित्त्व की दृष्टि से यह रचना कालिदास से प्रभावित लगती है। काव्यमाला संस्कृतसीरीज बम्बई से इसका प्रकाशन हुआ है।

2. **चौरपञ्चाशिका** – यह 50 पद्यों की रचना है तथा इसका रचयिता चौर कवि को माना गया है। जयदेव ने इसकी प्रशंसा 'यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः' कहकर की है। ऐसा कहा जाता है कि किसी राजकन्या को पढ़ाते–पढ़ाते बिल्हण उसे अपना हृदय दे बैठे, जब राजा को इस बात का पता चला तो उन्होंने बिल्हण को मृत्युदण्ड दे दिया।

   वध्यस्थल पर जाते समय उन्होंने पचास पद्यों में अपनी प्रणयकालीन स्मृतियों का वर्णन किया, इससे द्रवित होकर राजा ने बिल्हण को क्षमा कर दिया तथा उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करना भी स्वीकार कर लिया। इस काव्य में स्थान–स्थान पर पुनरुक्ति दोष, भावों का पिष्ट–पेषण, भाषा की शिथिलता यह सिद्ध करता है कि यह बिल्हण जसे प्रतिभा सम्पन्न कवि की रचना नहीं हो सकती। अधिकांश विद्वानों ने इस घटना को कल्पित बताया है तथा इस को बिल्हण की रचना मानने से भी इंकार करते हैं।

3. **विक्रमांकदेवचरितम्** – यह 18 सर्गों का महाकाव्य है। इसमें बिल्हण ने अपने आश्रयदाता कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ (1076–1127 ई.) के चरित का वर्णन किया है। देवताओं की स्तुति, सत्काव्य प्रशंसा तथा खलनिंदा के बाद बिल्हण चालुक्य वंश के आदि पुरुष की दैवी उत्पत्ति का उल्लेख करते हैं। इस महाकाव्य के 17 सर्गों में राजा विक्रमांकदेव का वर्णन है तथा अंतिम 18 वें सर्ग मे कवि ने अपनी जन्मभूमि, वंशपरम्परा, देशाटन आदि का वर्णन किया है।

   इस प्रकार बिल्हण ने एक नाटक, एक गीतिकाव्य तथा एक महाकाव्य की रचना की। शिवस्तुति तथा रामकाव्य इनकी दो अन्य रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु यह अनुपलब्ध है।

11.3 विक्रमांकदेवचरितम् की ऐतिहासिकता

बिल्हण का महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। संस्कृत में बहुत कम कवियों ने ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर काव्यों की रचना की है। बिल्हण ने इस महाकाव्य में अपने आश्रय द्वारा चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य की जन्म स्थान से सम्बन्ध रखने वाली सभी घटनाओं तथा परिस्थितियों का उल्लेख किया है। इन घटनाओं में कहीं–कहीं असत्य एवं कल्पनाओं का पुट भी है, परन्तु महाकाव्य का मूल आधार ऐतिहासिक है। शिव की कृपा से चालुक्यवंशी राजा आहवमल्ल (1040–1061) के तीन पुत्र सोमेश्वर, विक्रमादित्य तथा जयसिंह उत्पन्न हुए। आहवमल्ल विक्रमादित्य को युवराज बनाना चाहते हैं, परन्तु विक्रमादित्य मना कर देते हैं तथा विजय यात्रा पर चल पड़ते हैं। किन्तु अपने पिता द्वारा जलसमाधि लेकर प्राण त्याग देने का समाचार सुनकर वापिस लौट आते है।

इसके अनन्तर राजगद्दी के लिए भाइयों में होने वाले संघर्ष का वर्णन है। विक्रमादित्य चोलदेश के राजा को परास्त कर सिंहासनारूढ़ होता है तथा चोल राजकुमारी से विवाह कर लेता है। अपने छोटे भाई जयसिंह के उपद्रव करने पर उसका दमन करना तथा तत्पश्चात् उसे क्षमा कर देने का वर्णन है। चोलों के साथ पुनः युद्ध करके विक्रमांक काञ्ची नगरी पर अधिकार कर लेता है। इस प्रकार सत्रह सर्गो में विक्रमांक के चरित्र का तथा अंतिम 18वें सर्ग में स्वयं कवि के जन्मस्थान, शिक्षादीक्षा, वंश परिचय तथा देशाटन का वर्णन है।

इतिहास की दृष्टि से विक्रमांकदेव चरित में कुछ ऐसी घटनाओं के उल्लेख ह जो काल्पनिक है। राजा आहवमल्ल व विक्रमांकदेव को सच्चरित्र तथा अन्य राजाओं को दुश्चरित्र कहा गया है अतः काव्य में वास्तविक चित्रण का अभाव है, कहीं–कहीं अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन भी है। विक्रमांक को एक आदर्श नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि ने चित्रण किया है कि भगवान शंकर से प्रेरित होकर विक्रमांक ने अपने भाई सोमेश्वर से युद्ध किया। जबकि ऐतिहासिक तथ्य यह है कि विक्रमांक ने अपने भाई सोमेश्वर के विरूद्ध षड्यन्त्र किया था जिसका भेद खुल जाने पर सोमेश्वर ने उसे राज्य से निकाल दिया था। विक्रमांक द्वारा चोलों को पराजित करने की बात भी काल्पनिक है जबकि इतिहास के अनुसार चोलों की वास्तविक पराजय नहीं हुई थी, काञ्ची पर उनका अधिकार अन्त तक बना रहा। बिल्हण ने ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना के रंग देकर चित्रित किया है। तत्कालीन घटनाओं के चित्र कवि की ऐतिहासिक बुद्धि का परिचय भी देते हैं तथा महाकाव्य की आवश्यकताओं के अनुरूप उन्होंने आदर्शनायक की परिकल्पना व ऐतिहासिक कथानक की योजना भी की है।

11.4 'विक्रमांकदेवचरितम्' के आधार पर कवि बिल्हण की काव्य–शैली –

कवि बिल्हण ऐतिहासिक घटनाओं व तथ्यों का निर्वाह चाहे सम्यक् रूपेण न कर पाये हों परन्तु एक कवि के रूप में वह अप्रतिम प्रतिभा के धनी हैं। अपने चरित नायक विक्रमांक के वर्णन में उनके द्वारा किये गए अतिशयोक्तिपूर्ण प्रयोग तथा उनकी वर्णन शैली को देखकर लगता है कि वह संस्कृत के उद्भट विद्वान् हैं जिन्हें संस्कृत भाषा तथा वैदर्भी रीति पर पूण अधिकार है अपनी इसी विशेषता का उल्लेख करते हुए कवि बिल्हण स्वयं कहते हैं –

सहस्त्रशः सन्तु विशारदानां वैदर्भलीलानिधयः प्रबन्धाः।
तथापि वैचित्र्यरहस्यलुब्धाः श्रद्धां विधास्यन्ति सचेतसोऽत्र।। विक्रमांक।।

1/4

"विशिष्ट कवियों के वैदर्भी रीति से युक्त सहस्त्रों प्रबन्ध काव्य हों तथापि काव्य वैचित्र्य के रहस्य के प्रेमी सहृदय इसी काव्य में श्रद्धा करेगें।"

वैदर्भी रीति के विषय में कवि लिखते हैं कि यह रीति श्रवणों (कानों) के लिए बिना बादल के अमृत रूपी वर्षा है, वाग्विलास को जन्म देने वाली है, पदों को निश्चित रूप से सौभाग्य प्राप्त कराने वाली है। इस रीति में रचना करना अत्यन्त कुशल कवियों का काम है। (विक्रम. 1/9)

प्रो. कीथ के शब्दों में "बिल्हण कवि के रूप में अधिक सन्तोष जनक हैं। वे वैदर्भी शैली का अनुसरण करते हैं तथा बड़े समासों का वर्णन करते हैं। उनकी भाषा साधारणतया सरल और स्पष्ट है। वे अनुप्रास या शब्दश्लेष के प्रयोग में अत्यधिक रुचि नहीं करते।"

बिल्हण के काव्य में पदविन्यास का सुन्दर सामाञ्जस्य है काव्य–शैली में सरलता, अकृत्रिमता एवं गतिमयता के दर्शन होते है। उनके काव्य में ओज व माधुर्य दोनों गुणों का यत्र–तत्र प्रयोग है। शब्द व अथ का समान गुम्फ और उनकी प्रवाहपूर्ण शैली के कारण अर्थ को समझने में कहीं भी कठिनाई नहीं होती। कवि ने अपनी 'कर्णसुन्दरी नाटिका' में 'सद्यो यः पथि कालिदासवचसाम्' कहकर यह इंगित किया है कि वह कालिदास के अनुगामी कवि हैं। कालिदास की वैदर्भी रीति का तथा प्रासादिकता का उन पर पूर्ण प्रभाव है तथा परवर्ती कवियों में माघ का प्रभाव भी उन पर दिखायी देता है।

बिल्हण के काव्य में यत्र–तत्र अलंकारों के सुन्दर प्रयोग दिखायी देते हैं। अलंकारों में कृत्रिमता नहीं वरन् स्वाभाविकता है। बिल्हण के काव्य में अलंकारों की श्रमसाध्य अभिव्यक्ति नहीं है वरन् भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए वह अलंकारों का आश्रय लेते हैं। बिल्हण के काव्य में श्लेष अलंकार के भी दुरूह प्रयोग न होकर अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से श्लेष का प्रयोग किया गया है। बिल्हण ने उपमाओं व उत्प्रेक्षाओं के सहज, सुन्दर प्रयोग किये हैं।

बिल्हण का अर्थान्तरन्यास के प्रति भी अनुराग है तथा रूपक, काव्यलिङ्ग, दीपक, व्यतिरेक, प्रतिवस्तूपमा आदि अनेक अलंकारों के यथास्थान प्रयोग किये हैं। बिल्हण के काव्य में अलंकारों के सहज व स्वाभाविक प्रयोग किये गये हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार कविता कामिनी को बोझिल नहीं बनाते अपितु सुन्दरता व मनोहरता प्रदान करते हैं।

बिल्हण की 'कर्णसुन्दरी नाटिका', 'चौरपञ्चाशिका' गीतिकाव्य तथा 'विक्रमांकदेवचरित' महाकाव्य तीनों कृतियों पर कालिदास का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। अनेक समीक्षकों ने माना है कि बिल्हण के विक्रमांकदेव चरित पर स्पष्ट रूप से कालिदास के रघुवंश का प्रभाव है, उनके बहुत से वर्णनों पर कालिदास की स्पष्ट छाप है। विक्रमांकदेव चरित में विक्रमादित्य के शैशव को पढ़कर रघुवंश के तृतीय सर्ग में वर्णित रघु के शैशव का स्मरण तथा विक्रमादित्य के स्वयंवर का वर्णन पढ़कर इन्दुमतो स्वयंवर का स्मरण करा देता है। इसके पश्चात् ऋतुओं के वर्णन, वन विहार, जल क्रीड़ा और मधुपान आदि का वर्णन महाकाव्यों के नियमों की उपेक्षा है, फिर भी कवि की कल्पनाओं में सहजता व सरसता का पुट है।

रचना वैविध्य तथा काव्य–शैली की दृष्टि से बिल्हण की कविता काव्य निकष पर खरी उतरती है। बिल्हण की कविता में सरलता, सहजता, संगीतात्मकता, रसानुकूल वर्ण योजना, शब्द व अर्थ का सामञजस्य तथा वैदर्भी रीति की सरसता तथा माधुर्य व प्रसाद गुण की महक सभी कुछ देखने को मिल जायेगा। अतः **श्रीकांत पाण्डेय** ने कवि बिल्हण के विषय में कहा है कि "भाषा और शैली की स्निग्धता तथा रस की अभिव्यक्ति में वह यदि कवि कुलगुरु कालिदास का अनुसरण करता है तो व्युत्पत्ति के अपार वैभव तथा अलोक सामान्य कल्पनाओं की क्रीड़ा में भारवि, माघ और रत्नाकर के सफल उत्तराधिकार को भी प्रस्तुत करने में सक्षम रहा है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि वैदर्भी रीति की सरसता तथा वक्रोक्ति की विचित्रता के कारण बिल्हण कालिदास के बाद संस्कृत के श्रेष्ठ कवियों में से हैं।

11.4.1 भाषा–शैली

बिल्हण संस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान् हैं जिनका भाषा पर पूर्ण अधिकार है। भाषा उनके भावों का अनुवर्तन करती प्रतीत होती है। वह अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए सहज, सरल, माधुर्यपूर्ण भाषा का प्रयोग करते हैं। बिल्हण ऐसे समय में हुए जब कवियों में पाण्डित्य प्रदर्शन की होड़ लगी थी तथा काव्य में यमक व श्लेष के दुरूह प्रयोगों के द्वारा कविता बोझिल हो गयी थी, ऐसे समय में बिल्हण सहज, सरस काव्य धारा को प्रवाहित करते हैं। पूर्ववर्ती कवियों की परम्परा को देखते हुए कहीं–कहीं श्लेष व यमक के प्रयोग दृष्टिगत होते हैं परन्तु विरल हैं। प्रौढ़ि–प्रकर्ष के कारण कहीं–कहीं भाषा परम्परा का अतिक्रमण अवश्य करती है, परन्तु उनके वे प्रयोग श्लाघ्य व क्षम्य हैं–

प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीतिव्यतिक्रमः श्लाध्यतमः पदानाम्।
अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि वन्द्यानि कान्ताकुचमण्डलानि।। विक्रमांक 1/15

कवि बिल्हण वैदर्भी रीति के प्रयोक्ता है। वैदर्भी रीति के सफल प्रयोग करने वाले कवियों को उन्होंने सौभाग्यशाली माना है। उनकी शैली में सरसता, प्रसन्नता और प्रवाहमयता विद्यमान है।

अनभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य सरस्वतीविभ्रमजन्मभूमिः।
वैदर्भरीतिः कृतिनामुदेति सौभाग्यलाभप्रतिभूः पदानाम्। विक्रमांक 1/9

शब्द व अर्थ के सुन्दर समन्वय से युक्त वैदर्भी के प्रयोग बिल्हण के महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' में स्थान–स्थान पर हुए हैं। उदाहरणार्थ–

कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य
दोषे प्रयत्नः सुमहान् खलानाम्।
निरीक्षते केलिवनं प्रविश्य
क्रमेलकः कण्टकजालमेव।। विक्रमांक 1/29

इस प्रकार बिल्हण अमृत वर्षा करने वाली तथा कानों के लिए आनन्ददायिनी वैदभी रीति के प्रशंसक ही नहीं उसके प्रयोक्ता भी हैं। महाकाव्य में उनकी शैली की उदात्तता व प्रौढ़ता के अनेकानेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

11.4.2 अलंकार योजना –

बिल्हण उस युग के कवि है जब काव्य में अलंकारों व शौढ़ि को विशेष महत्त्व दिया जाता था। अतः बिल्हण ने भी काव्य की ग्राह्यता और वैचित्र्य प्रौढ़ि के कारण ही (प्रौढ़ि प्रकर्षेण पुराणरीति––––––) बताया है। बिल्हण ने शब्दालंकार व अर्थालंकार दोनों के प्रयोग किये हैं जो कि स्वाभाविक हैं। उनकी कविता अलंकारों के बोझ से बोझिल नहीं है। उन्होंने वर्ण्य विषय की मार्मिक अभिव्यञजना के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है अतः उनके अलंकार साधन रूप में वर्णित है। उनके काव्य में यमक, कुरज, सर्वतोभद्र आदि चित्रालंकारों के प्रयोग नहीं है। यमक के श्रमसाध्य प्रयोग से वे बचकर चले है। अतः डॉ. **हरिदत्त शास्त्री** बिल्हण की अलंकार योजना के विषय में लिखते है कि "प्रयत्न साध्य यमक की संयोजना का जिसके मोह से कालिदास भी (रघुवंश नवम सर्ग में) नहीं बच पाये हैं, बिल्हण की कविता में अभाव है। वे श्लेष का प्रयोग प्रायः अन्य अलंकारों के साथ अत्यन्त स्वाभाविक रूप से करते है जिससे काव्य में दुरूहता का प्रवेश नहीं होती है।" यमक के स्वाभाविक प्रयोग के साथ–साथ उन्होंने काव्यलिङ्ग व परिवृत्ति अलंकारों का प्रयोग सुन्दरता से किया है–

ध्रुवं रणे यस्य जयामृतेन क्षीणः क्षमाभर्तुरभूत्कृपाणः।
एका गृहीता यदनेन धारा धारासहस्रंयशसोऽवकीर्णम्।। विक्रमांक 1/96

कवि अलंकारों के प्रयोग में विलक्षण है, 'विक्रमांकदेवचरितम्' का प्रारम्भ ही इस बात का परिचायक है–

भुजप्रभादण्ड इवोर्ध्वगामी स पातु वो कंसरिपोः कृपाणः।
यः पाञ्चजन्यप्रतिबिम्बभङ्ग्या धाराम्भसः फेनमिव व्यनक्ति।। विक्रमांक 1/1

कवि ने अनेकशः अपनी बात को समझाने के लिए उदाहरणों व दृष्टान्तों के सुन्दर प्रयोग किये हैं।

दृष्टान्त का सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है–

कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य दोषे प्रयत्नः सुमहान् खलानाम्।
निरीक्षते केलिवनं प्रविश्य क्रमेलकः कण्टकजालमेव।। विक्रमांक 1/29

इसके अतिरिक्त बिल्हण ने उपमा, उत्प्रेक्षा, निदर्शना, काव्यलिङ्ग, दीपक, एकावली, प्रतिवस्तूपमा आदि अनेकानेक अलंकारों के प्रयोग किये है।

बिल्हण की उपमायें व उत्प्रेक्षायें बहुत सुन्दर है। उन्होंने मूर्त वस्तु के लिए मूर्त उपमानों का प्रयोग ही नहीं किया वरन् मूर्त वस्तु के लिए अमूर्त उपमानों की योजना भी की है। वे ऐसे अप्रस्तुतों का चयन करते हैं जो प्रस्तुत के गुणों से पूर्णतः मेल खाते हैं, यही कारण है कि बिल्हण द्वारा प्रयुक्त अलंकार काव्य सौन्दर्य को और अधिक पुष्ट करने में समर्थ है तथा सहृदय सामाजिकों को भी आनन्द प्रदान करने वाले है। अतः अलंकारों के चमत्कार–पूर्ण प्रयोग करते हुए बिल्हण ने स्वयं के काव्य को सहृदय सामाजिकों के समक्ष परीक्षा हेतु प्रस्तुत किया है। श्लेष अनुप्राणित रूपक का प्रयोग देखिये–

उल्लेखलीलाघटनापटूनां
सचेतसां वैकटिकोपमानाम्।
विचारशाणोपलपट्टिकासु
मत्सूक्तिरत्नान्यतिथीभवन्तु।। विक्रमांक 1/19

इस पकार कवि ने अनेक अलंकारों के नानाविध प्रयोग किये हैं तथा उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार सहज व स्वाभाविक हैं। ये अलंकार कविताकामिनी के सौन्दर्य के वर्धक हैं। कवि

अपनी काव्य सर्जना के विषय में पूर्णतः आश्वस्त है अतः वह विद्वत् समुदाय में अपने काव्य को निकष पर रखने के लिए तैयार है।

11.4.3 रस योजना –

'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है अतः उसका अङ्गी रस वीर रस है। वीररस की प्रधानता के कारण उनकी वैदर्भी रीति गौड़ी की ओर झुकी हुई प्रतीत होती है। 'विक्रमांकदेवचरित' के प्रारम्भ में पहला ही श्लोक विष्णु की कृपाण से पाठकों की रक्षा के लिए किया गया है–

भुजप्रभादण्ड इवोर्ध्वगामी
स पातु वः कंसरिपोः कृपाणः।
यः पाञ्जन्यप्रतिबिम्बभङ्ग्या
धाराम्भसः फेनमिव व्यनक्ति।। विक्रमांक 1/1

इस प्रकार कवि ने महाकाव्य का प्रारम्भ ही अन्य महाकवियों से सर्वथा भिन्न किया है। चालुक्य वंश की परम्परा को वह सीधे ब्रह्मा से जोड़ते हैं। संसार में जब अधर्म का प्रभाव बढ़ गया तो इन्द्र स्वयं ब्रह्मा के पास गये। हम इन्द्र की प्रार्थना से प्रसन्न होकर सन्ध्योपासना में लीन अपने चुल्लू में लिये हुए संकल्प के जल में दृष्टि डाली और उससे चालुक्य वंश का प्रवर्तक वीर उत्पन्न हुआ–

हेमाचलस्येव कृतः शिलाभिरुदारजाम्बूनदचारुदेहः।
अथाविरासीत् सुभटस्त्रिलोकत्राणप्रवीणश्चुलुकाद् विधातुः। विक्रमांक 1/55

इस प्रकार चालुक्यवंशी राजाओं के वर्णन में वीर पुरुष के उद्भव में उत्साह की सृष्टि बार–बार हुई है। चालुक्यवंशी राजाओं की कृपाण का चित्र देखिये–

यत्पार्थिवैः शत्रुकठोरकण्ठपीठास्थिनिर्लोठनकुण्ठधारः।
निन्ये कृपाणः पटुतां तदीयं कपालशाणोपलपट्टिकासु। विक्रमांक 1/61

इस प्रकार वीर–रस का यथास्थान औचित्य के अनुसार प्रयोग हुआ है। अङ्ग रूप में अन्य रस भी यथा स्थान प्रयुक्त हुए हैं। श्रृंगार रस का, वात्सल्य रस का तथा युद्ध वर्णन में बीभत्स रस का भी प्रयोग हुआ है। चतुर्थ सर्ग में राजा आहवमल्लदेव की मृत्यु पर करुण रस की सुन्दर व्यञजना हुई है।

ए.बी.कीथ ने इस विषय में कहा है– "आहवमल्ल की मृत्यु का चित्रण सर्वसम्मति से उनकी अत्युत्कृष्ट रचना है, स्वाभाविक कारुण्य का यह एक सुन्दर वर्णन है और इसमें मरणासन्न नरेश की महत्ता और धैर्य का प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रण किया गया है।"

इसी प्रकार श्रृंगार के दृश्य भी हमें यत्र तत्र देखने को मिल जायेंगे। संभोग श्रृंगार का एक दृश्य देखिये–

जघान पादेन सखीं सहेलमाकृष्य हारं मुहुरामुमोच।
सा दर्शने कुन्तलपार्थिवस्य न कारिता किं मकरध्वजेन।।

इस प्रकार बिल्हण एक महान् कवि हैं। महाकाव्य की सारी विशेषतायें 'विक्रमांकदेवचरितम्' में विद्यमान हैं। बिल्हण का यह काव्य रसों व भावों की सुन्दर व मार्मिक अभिव्यक्ति है। जो पाठक वक्रोक्ति के साथ–साथ रस ध्वनि से परिचित हैं वही इनके काव्य को समझ सकता है। बिल्हण कहते हैं –

रसध्वनेरध्वनि ये चरन्ति संक्रान्तवक्रोक्तिरहस्यमुद्राः।
तेऽस्मत्प्रबन्धानवधारयन्तु कुर्वन्तु शेषाः शुकवाक्यपाठम्।। विक्रमांक 1/22

बिल्हण का काव्य समस्त महाकाव्य के गुणों से परिपूर्ण है। एक महाकवि की समस्त विशेषतायें उनमें विद्यमान है। यदि कोई उनके काव्य में दोष निकालता है तो कवि के शब्दों में यही कहा जा सकता है–

न दुर्जनानामिह कोऽपि दोषस्तेषां स्वभावो हि गुणासहिष्णुः।
द्वेष्यैव केषामपि चन्द्रखण्डविपाण्डुरा पुण्ड्रकशर्करापि।। विक्रमांक 1/20

11.5 विक्रमांकदेवचरितम् (प्रथम सर्ग) के वर्ण्य–विषयों का वैशिष्ट्य –

आपके पाठ्यक्रम में 'विक्रमांकदेवचरितम्' का प्रथम सर्ग है। अतः प्रथम सर्ग के आधार पर इसकी समीक्षा करें तो 'विक्रमांकदेवचरित' के प्रथम सर्ग में 118 श्लोक हैं। प्रथम से 8 श्लोकों में मंगलाचरण के रूप में विष्णु, शिव, पार्वती, राधा रूपा लक्ष्मी, सरस्वती व गणेश की स्तुति की गयी है।

मंगलाचरण के अनन्तर कवि ने वैदर्भी रीति की प्रशंसा की है वैदर्भी का प्रयोक्ता कवि बिल्हण वैदर्भी रीति को मेघविहीन हुई अमृत की वर्षा के समान सुख देने वाली, शारदा के नाना विध विभ्रम व विलास की जन्मभूमि तथा भाषागत विविध शब्दों की सुगमता व कर्णमधुरता प्राप्त कराने वाली मानता है। इसके बाद उन्होंने कवीश्वरों को प्रणाम किया है जिनके मुख से स्वयं वीणापाणि देवी सरस्वती काव्य पदावली का अनुरणन करती हैं। काव्यार्थ को चुराने वाले अनेक काव्यचोरों के विद्यमान होते हुए भी कवि कवीश्वरों की कोई हानि नहीं होती समुद्र से अनेक रत्न निकालने के बाद भी समुद्र रत्नाकर ही कहलाता है।

कवियों की वैदर्भी रीति से युक्त रचनाओं को सहृदय पाठक ही समझ सकते हैं। प्राचीन परम्परा का अतिक्रमण कर नवीन की साधना एक पतिभाशाली कवि ही कर सकता है। लक्षण ग्रन्थों के आधार पर अपनी रचना की प्रशंसा करते हुए, कवि ने अपनी रचनाओं को समालोचकों के परीक्षार्थ प्रस्तुत किया है। कवि को यह भय है कि उनकी वक्रोक्ति से पूर्ण, रस ध्वनि व अलंकारों से सुसज्जित कविता को समझने वाले लोग कम ही हैं।

कवियों व काव्यार्थ को समझने वाले सहृदयों के वर्णन के पश्चात् कवि बिल्हण ने राजाओं को सावधान किया कि वे कवियों को नाराज न करें। वाल्मीकि के कारण ही दशरथ पुत्र राम यशस्वी हो गये तथा रावण जैसे विद्वान् को भी अपयश प्राप्त हुआ। अतः राजाओं के द्वारा कवियों को कभी भी अपमानित नहीं किया जाना चाहिये। सत्काव्य में भी दुर्जन कमियाँ निकालने का प्रयत्न करते हैं इसके लिए कवि ने सुन्दर दृष्टान्त दिया है कि ऊँट केलिवन में भी जाकर काँटों को ढूंढंता है।

इस प्रकार, कवि व कविता की 29 श्लोकों में प्रशंसा के बाद कवि ने यह वर्णन किया है कि उनके इस काव्य में चालुक्य वंशी राजाओं का वर्णन है। सृष्टि उत्पत्ति कर्त्ता ब्रह्मा इन्द्र के मध्य वार्तालाप दिखाया गया है। भूलोक पर धर्म विरोधियों के समूल नाश के लिए इन्द्र ब्रह्मा से प्रार्थना करते हैं तथा ब्रह्मा संध्या करने के लिए जल स भरे चुल्लू से चालुक्य वंश की उत्पत्ति करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा से उत्पन्न उस मानस पुत्र ने असुरों के विनाश का संकल्प लिया इस प्रकार चालुक्य वंश का आदि पुरुष हारीत नाम का पुरुष हुआ। तदनन्तर चालुक्य वंशी राजाओं द्वारा शत्रुओं के विनाश व अपने वैभव विस्तार का वर्णन किया गया है। चालुक्य वंशी राजाओं ने अयोध्या पर अधिकार किया, उसके बाद दक्षिण दिशा की ओर बड़े। इसी वंश में श्री तैलप प्रतापी राजा हुये, इन्होंने राष्ट्रकूट नामक क्षत्रियों का समूल नाश कर दिया। इस प्रकार राजा तैलप के वीरतापूर्ण कृत्यों का वर्णन किया गया है। तैलप के पश्चात् सत्याश्रय राजा का वर्णन है। सत्याश्रय राजा अत्यधिक वीर व शत्रुओं का विनाशक था।

उसके बाद जयसिंहदेव सिंहासन पर आसीन हुए। जयसिंह देव सूर्य के समान प्रतिष्ठा को प्राप्त था। जयसिंह देव से ही त्रैलोक्यमल्ल उपनाम वाला आहवमल्लदेव नाम का राजा हुआ। इस आहवमल्ल देव ने परमार वंश के राजा भोज की धारा नगरी को भी जीत लिया। इसके बाद आहवमल्ल की वीरता, उसकी कीर्ति, उसके वैभव तथा उसके सत्कर्मो के कारण प्रजा पूर्ववर्ती चालुक्य राजाओं को भूल गयी। उन्होंने डाहलनरेश कर्ण नामक राजा को भी हत कर दिया। इस प्रकार राजा आहवमल्ल ने समुद्र तक सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपना अधिकार कर लिया। इसने द्रविड़ देश को तथा 'काञ्ची' नगरी को भी अपने आधीन कर लिया। इस

प्रकार प्रथम सर्ग में आहवमल्ल राजा की वीरता पराक्रम तथा सभी राजाओं को जीतकर अपने अधीन करने का वर्णन है।

इस प्रकार प्रथम सर्ग में कवि ने मंगलाचरण के बाद कवियों की प्रशंसा, वैदर्भी रीति की प्रशंसा, चालुक्यवंश की उत्पत्ति तथा अन्य राजाओं के वर्णन के साथ अंत में 'विक्रमांकदेव' के पिता 'आहवमल्ल' की वीरता व उनकी दिग्विजय का विस्तार से वर्णन किया है।

11.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.	आहवमल्ल	–	चालुक्यवंशी राजा (विक्रमांकदेव के पिता)
2.	प्रौढ़िप्रकर्ष	–	शब्दार्थ की अत्यधिक उन्नति।
3.	अनभ्रवृष्टि	–	बिना बादलों की वर्षा।
4.	वैदर्भी रीति	–	काव्य में तीन रीतियाँ प्रचलित है वैदर्भी, गौड़ी एवं पाञ्चाली। वैदर्भी रीति मधुर व सुकुमार होती है।
5.	विचारशाणोपल	–	विचार रूपी शाण के पत्थर पर। शाण एक प्रकार का पत्थर है जिस पर सोने को परखा जाता है।
6.	कंसरिपोः	–	कंस के शत्रु (भगवान् कृष्ण)
7.	वक्रोक्ति	–	वक्रोक्ति एक प्रकार की शैली वैचित्र्यमार्ग के आधार पर साहित्य शास्त्र के छः सम्प्रदायों में से एक सम्प्रदाय आचार्य कुन्तक इसके प्रतिष्ठापक आचार्य।
8.	मकरध्वज	–	कामदेव (मकर है पताका में जिसके)
9.	ऐतिहासिक	–	इतिहास अर्थात् वास्तविक तथ्यों व घटनाओं के आधार पर महाकाव्य लिखा जाने वाल महाकाव्य।
10.	चिकुरनिकरः	–	बालों का गुच्छा, बालों का समूह।

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

प्र.1 बिल्हण का जन्म कहाँ हुआ?
प्र.2 बिल्हण का क्या समय है?
प्र.3 बिल्हण की कृतियों के नाम लिखिये–
प्र.4 'विक्रमांकदेवचरितम्' का मुख्य रस है?

निम्न प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिये–

प्र.1 'विक्रमांकदेवचरितम्' की ऐतिहासिकता पर एक लेख लिख ?
प्र.2 कवि बिल्हण की काव्य–शैली पर लेख लिखिये ?
प्र.3 बिल्हण के जन्म स्थान व स्थितिकाल के विषय में लेख लिखें ?
प्र.4 'विक्रमांकदेवचरितम्' (प्रथमसर्ग) के वर्ण्य विषय पर लेख लिखें ।
प्र.5 निम्न विषयों पर टिप्पणी लिखिये–
1. 'विक्रमांकदेवचरितम्' की अलंकार योजना
2. 'विक्रमांकदेवचरितम्' में रस
3. 'विक्रमांकदेवचरितम्' की भाषा–शैली

बोध प्रश्नों के उत्तर

उ.1 कश्मीर के प्रमुख नगर प्रवरपुर के समीपवर्ती खोनमुख नामक ग्राम में।
उ.2 ग्यारहवीं शती के द्वितीय या तृतीय दशाब्द में।
उ.3 बिल्हण की तीन कृतियाँ उपलब्ध होती है।
1. कर्णसुन्दरी नाटिका
2. चौरपञ्चाशिका
3. विक्रमांकदेवचरितम्

उ.4 विक्रमांकदेवचरितम् का मुख्य रस वीर रस है।

निम्न प्रश्नों के उत्तर

उ.1 देखिये भाग संख्या 11.3

उ.2 देखिये भाग संख्या 11.4
उ.3 देखिये भाग संख्या 11.2, 11.2.1, 11.2.2
उ.4 देखिये भाग संख्या 11.5
उ.5 उत्तर देखिये 11.4.2
उत्तर देखिये 11.4.3
उत्तर देखिये 11.4.1

11.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने 'विक्रमांकदेवचरितम्' के लेखक कवि बिल्हण के समय, जन्म स्थान तथा उनके द्वारा लिखित कृतियों का परिचय प्राप्त किया। कवि बिल्हण ने ऐतिहासिक महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरित' में चालुक्य वंशी राजा आहवमल्लदेव व उनके पुत्र तथा स्वयं के आश्रयदाता कवि विक्रमांकदेव का वर्णन किया है। 'विक्रमांकदेवचरित' हालांकि ऐतिहासिक महाकाव्य है किंतु कवि ने अपनी कल्पना से इस काव्य को साहित्यिकता प्रदान की है। कवि बिल्हण इतिहासकार कम व कवि रूप में ही अधिक सन्तोष जनक हैं।
कवि ने वैदर्भी रीति की अत्यधिक प्रशंसा की है। वैदर्भी के प्रयोग में कवि सिद्धहस्त है। 'विक्रमांकदेवचरित' में कवि ने मुख्य रूप से वीर रस का प्रयोग किया है। अलंकारों में दृष्टान्त, उपमा, रूपक व उत्प्रेक्षाओं के सुन्दर प्रयोग देखने को मिलेंगे। प्रथम सर्ग में उपजाति छंद का प्रयोग किया गया है। सहज, सरल, प्रवाहपूर्ण भाषा व और वैदर्भी के सुन्दरतम प्रयोगों के द्वारा कवि सहृदय पाठकों को आकर्षित करने में सफल रहा है। काव्य की सुकुमार शलाका के द्वारा इतिहास की कठोरशिला को भेदने के प्रयास में बिल्हण सिद्धहस्त कवि हैं –

न मौक्तिकच्छिद्रकरी शलाका
प्रगल्भते कर्मणि टङ्किकायाः। विक्रम. 1/16

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विक्रमांकदेवचरितम्, विश्वनाथशास्त्रीभारद्वाज, हिन्दू विश्वविद्यालय साहित्य अनुसंधान समीति, बनारस,1965.
2. विक्रमांकदेवचरितम्, श्रीकान्तपाण्डेय, साहित्यभडार, मेरठ, 2006.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए.बी.कीथ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999.
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1995.
5. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – रामजी उपाध्याय, राम नारायण बेनीमाधव, इलाहाबाद, 1982.
6. संस्कृत–काव्यकार, हरिदत्त शास्त्री,साहित्य भण्डार, मेरठ, 1970.
7. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा – डॉ. केशवराव मुसलगांवकर, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, बनारस,1969.

इकाई – 12

देवस्तुति एवं प्रभातवर्णन
(विक्रमांकदेवचरितम्, प्रथम सर्ग, श्लोक 1 से 35)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 महाकवि बिल्हणकृत विक्रमांकदेवचरितम् महाकाव्य के 1 से 35 श्लोकों का सप्रसंग अनुवाद, व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी एवं काव्यगत वैशिष्ट्य

12.3 पारिभाषिक शब्दावली

12.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.5 सारांश

12.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.0 उद्देश्य

'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य इतिहास की पृष्ठभूमि पर आधारित है तथा इस इकाई में 1 से 35 श्लोकों के अनुवाद के द्वारा आप कवि बिल्हण की भाषा, काव्य–शैली, छंद– अलंकार आदि विशेषताओं के विषय मे जान सकेंगें। इस इकाई का उद्देश्य कवि की लेखन प्रतिभा तथा महाकाव्य के मूल अंश (1 से 35 तक) श्लोकों के अनुवाद के द्वारा काव्य की विषयवस्तु का भी परिचय प्राप्त करवाना है।

12.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 11 में 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य और उसके रचनाकार कवि बिल्हण के विषय में जाना। 'विक्रमांकदेवचरितम्' का प्रथम सर्ग आपके पाठ्यक्रम एम.ए. (उत्तरार्द्ध) पंचम प्रश्न पत्र 'गद्य तथा काव्य' में रखा गया है। ऐतिहासिक महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' की ऐतिहासिकता व काव्य शैली के विषय में आपने परिचय प्राप्त किया। प्रस्तुत इकाई में बिल्हणकृत महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम सर्ग के एक से पैंतीस श्लोकों के सप्रसंग अनुवाद भावार्थ तथा व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी के द्वारा आप महाकाव्य की विषयवस्तु के बारे में जान सकेंगें।

12.2 'विक्रमांकदेवचरितम्' के 1 से 35 श्लोकों का सप्रसंग अनुवाद

व्याख्या

भुजप्रभादण्ड इवोर्ध्वगामी स पातु वः कंसरिपोः ड्डपाणः।
यः पाञ्चजन्यप्रतिबिम्बभङ्ग्या धाराम्भसः फेनमिव व्यनक्ति।।1।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – हमारे यहाँ कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व मंगलाचरण की प्रथा है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रारम्भ में कवि ने उसी परम्परा का निर्वाह करते हुए भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की है–

अन्वय – यः पाञ्चजन्यप्रतिबिम्बभङ्ग्या धाराम्भसः फेनम् – व्यनक्ति इव, सः कंसरिपोः ऊर्ध्वगामी भुजप्रभादण्डः इव कृपाणः वः पातु।

अर्थ – जो पाञ्चजन्य (शंख) के प्रतिबिम्ब के बहाने जल के प्रवाह के समान तलवार की धार के फेन को प्रकट करती है वह कंस के शत्रु श्री कृष्ण की भुजा की दण्डाकार ऊर्ध्वगामी प्रभा के समान तलवार आप लोगों की रक्षा करें।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. भुजप्रभादण्डः – भुजयोः प्रभायाः दण्डः (ष.तत्पु.)
2. ऊर्ध्वगामी – उर्ध्वं गच्छति। (ऊर्ध्व+गम्+णिनि)
3. कंसरिपोः – कंसस्य रिपोः (ष. तत्पु.)
4. पाञ्चजन्यप्रतिबिम्बभङ्ग्या – पाञ्चजन्यस्य प्रतिबिम्बस्य भङ्ग्या (ष.त.)
5. धाराम्भसः – धारायाः अम्भः तस्य (कर्मधारय)
6. व्यनक्ति – वि+अञ्ज् (लट्लकार प्र.ए.व.)

अलंकार – यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

कृपाण के ऊर्ध्वप्रसारण में भुजप्रभादण्डः की सम्भावना तथा कृपाण में पाञ्चजन्य शंख के प्रतिबिम्ब के कारण फेन की सम्भावना।

रस – कृष्ण की तलवार आप लोगों की रक्षा करे से वीर रस ध्वनित हो रहा है।

छंद – इसमें उपजाति छन्द है। इन्द्रवज्रा (स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः) तथा उपेन्द्रवज्रा (उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ) दोनों को मिलाकर उपजाति छंद बनता है– 'अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।' इकाई 12,13 व 14 के सभी श्लोकों में उपजाति छंद है।

व्याख्या

श्रीधाम्नि दुग्धोदधिपुण्डरीके यश्चञ्चरीकद्युतिमातनोति।
नीलोत्पलश्यामलदेहकान्तिः स वोऽस्तु भूत्यै भगवान्मुकुन्दः।।2।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – मंगलाचरण के क्रम में कवि बिल्हण ने इस श्लोक में भगवान विष्णु से सबके कल्याण की कामना की है।

अन्वय – यः श्रीधाम्नि दुग्धोदधिपुण्डरीके चञ्चरीकद्युतिम् आतनोति सः नीलोत्पल श्यामल –देहकान्तिः भगवान् मुकुन्दः वः भूत्यै अस्तु।

अर्थ – जो लक्ष्मी के निवास स्थान क्षीरसागर रूपी श्वेत कमल में भंवरे की शोभा को धारण करते हैं, वे नीले कमल के समान श्यामल शरीर की शोभा वाले भगवान् विष्णु आप सब के कल्याण के लिए हो।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. श्रीधाम्नि – श्रियः धाम्नि (ष.तत्पु.)
2. दुग्धोदधिपुण्डरीके – दुग्धस्य उदधिः (ष.त.) सः एव पुण्डरीकं तस्मिन् (कर्मधारय)
3. चञ्चरीकद्युतिम् – चञ्चरीकस्य द्युतिम् (ष.त.)
4. नीलोत्पलश्यामलदेहकान्तिः – नीलं च तत् उत्पलं (कर्म.) नीलोत्पलम् तदिव श्यामला देहकान्तिः यस्य सः (बहुब्रीहि)

अलंकार – रूपक, उपमा व निदर्शना अलंकार है।

छंद – उपजाति

व्याख्या

वक्षःस्थली रक्षतु सा जगन्ति जगत्प्रसूतेर्गरुडध्वजस्य।
श्रियोऽङ्गरागेण विभाव्यते या सौभाग्यहेम्नः कषपट्टिकेव।।3।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – मंगलाचरण के लिए प्रस्तुत इस श्लोक में भगवान् विष्णु की प्रार्थना की गयी है

अन्वय – या श्रियः अङ्गरागेण सौभाग्यहेम्नः कषपट्टिका इव विभाव्यते, सा जगत्प्रसूतेः गरुडध्वजस्य वक्षः स्थली जगन्ति रक्षतु।

अर्थ – जो लक्ष्मी के अङ्गराग के कारण सौभाग्य रूपी सोने की कसौटी के समान प्रतीत हो रहा है, वह संसार के उत्पन्न करने वाले भगवान गरुडध्वज (विष्णु) का वक्षः स्थल संसार की रक्षा करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. वक्षःस्थली – वक्षसः स्थली (ष.त.)
2. जगत्प्रसूतेः – जगतां प्रसूतिः यस्मात् सः तस्य (ष.त.)
3. गरुडध्वजस्यः – गरुडः ध्वजे यस्य तस्य (बहुब्रीहि)
4. अङ्गरागेण – अङ्गलग्नः रागः अङ्गरागः तेन (मध्यमपदलोपी)
5. सौभाग्यहेम्नः – सौभाग्यं एव हेम तस्य (कर्मधारय)
6. कषपट्टिका – कषाय पट्टिका (ष.त.)

विशेष – 'सौभाग्यहेम्नः' में रूपक अलंकार तथा 'कषपट्टिकेव' में उत्प्रेक्षालंकार है। छंद उपजाति है।

व्याख्या

एक–स्तनस्तुङ्गतरः परस्य वार्तामिव प्रष्टुमगान्मुखाग्रम्।
यस्याः प्रियार्द्धस्थितिमुद्वहन्त्याः सा पातु वः पर्वतराजपुत्री।।4।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – मंगलाचरण के क्रम में ही इस श्लोक में कवि ने शिव व पार्वती के अर्द्धनारीश्वर रूप की स्तुति की है।

अन्वय – प्रियार्धस्थितिम् उद्वहन्त्याः यस्याः एकः तुङ्गतरः स्तनः परस्य वार्ताम् प्रष्टुम् इव मुखाग्रम् अगात्। सा पर्वतराजपुत्री वः पातु।

अर्थ – अपने प्रियतम के अर्द्धभाग में स्थित रहने वाली जिस पार्वती का एक ऊँचा उठा हुआ स्तन अपने साथी दूसरे स्तन की कुशल क्षेम पूँछने के लिए मानों ऊपर उठकर मुखतक पहुँच गया है ऐसी पार्वती आप लोगों की रक्षा करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. तुङ्गतरः – तुङ्ग+तरप्।
2. प्रष्टुम् – प्रच्छ + तुमुन्।
3. मुखाग्रम् – मुखस्य अग्रम् (ष.तत्पु.)
4. प्रियार्धस्थितम् – प्रियायाः अर्धभागेस्थितम् (मध्यमपदलोपी) प्रिया के अर्धभाग में स्थित (अर्धनारीश्वर के रूप में)
5. उद्वहन्त्याः – उद्+वह्+शतृ+ङीप् (षष्ठी.ए.व.)
6. पर्वतराजपुत्री – पर्वतानाम् राजा पर्वतराजः (ष.त.) तस्य पुत्री।

विशेष – इस श्लोक में उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग है तथा शृंगार रस है।

व्याख्या

सान्द्रां मुदं यच्छतु नन्दको वः सोल्लासलक्ष्मीप्रतिबिम्बगर्भः।
कुर्वन्नजस्रं यमुनाप्रवाह–सलीलराधा–स्मरणं मुरारेः।।5।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भगवान् विष्णु का ही आराध्य रूप में स्मरण किया गया है तथा उनके नन्दक नामक खड्ग से सभी को आनन्द प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।

अन्वय – मुरारेः सोल्लासलक्ष्मीप्रतिबिम्बगर्भः नन्दकः यमुनाप्रवाहसलीलराधास्मरणं अजस्रं कुर्वन् वः सान्द्रां मुदं यच्छतु।

अर्थ – भगवान् विष्णु का उल्लासयुक्त लक्ष्मी का प्रतिबिम्ब है जिसके गर्भ में ऐसा नंदक नामक खड्ग यमुना के प्रवाह में क्रीडा करती राधा का निरन्तर स्मरण कराता हुआ आप लोगों को अतिशय हर्ष प्रदान करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. सोल्लासलक्ष्मीप्रतिबिम्बगर्भः – उल्लासेन सहिता सोल्लासा, सोल्लासा लक्ष्मी इति (कर्मधारय)
   तस्याः प्रतिबिम्बः गर्भे यस्य सः (बहुब्रीहि)
2. यमुनाप्रवाहसलीलराधास्मरणं – यमुनायाः प्रवाहे (ष.त.) लीलाभिः सहिता सलीला। सलीला
   राधा (कर्म.) तस्याः स्मरणं (ष.त.) स्मृ + ल्युट्।
3. मुरारेः – मुरस्य अरिः (ष.त.) तस्य।
4. कुर्वन् – कृ + शतृ

विशेष – भगवान् विष्णु के लोहे के खड्ग में कालिन्दी (यमुना) का आरोप और लक्ष्मी के प्रतिबिम्ब में राधा की उत्प्रेक्षा करने से रूपक से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा की अत्यन्त सुन्दर संभावना है।

व्याख्या

पार्श्वस्थपृथ्वीधरराजकन्या–प्रकोपविस्फूर्जितकातरस्य।
नमोऽस्तु ते मातरिति प्रणामाः शिवस्य सन्ध्याविषया जयन्ति।।6।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में मंगलाचरण के रूप में शिवजी की उपासना है तथा शिवजी द्वारा किये गये सन्ध्याकालीन प्रणाम को निपुणता के साथ कवि ने चित्रित किया है।

अन्वय – पार्श्वस्थपृथ्वीधरराजकन्याप्रकोपविस्फूर्जितकातरस्य शिवस्य हे मात! ते नमः इति सन्ध्या विषयाः प्रणामाः जयन्ति।

अर्थ – संध्याकाल में उपासना में लीन शिवजी के पास में स्थित पर्वतराज पुत्री पार्वती के क्रोध के आविर्भाव से भयभीत शिवजी ने 'हे मात! तुम्हें नमस्कार है' इस प्रकार के संध्या विषयक प्रणाम सर्वोत्कृष्ट हैं।

अर्थात् संध्या की उपासना में लीन शिवजी ने पार्वती के मन में उठे ईर्ष्या भाव को 'मातः' के सम्बोधन के द्वारा दूर कर दिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. पार्श्वस्थपृथ्वीधरराजकन्याप्रकोपविस्फूर्जितकातरस्य – पार्श्वे तिष्ठति इति पार्श्वस्था (उपपद तत्पु.) पृथ्व्याः धरः इति पृथ्वीधरः। तस्य राजा तस्य कन्या। तस्याः प्रकोपस्य विस्फूर्जितेन कातरस्य। प्र+कुप्+घञ्। वि+स्फूर्ज्+क्त।
2. सन्ध्याविषयाः – सन्ध्या एव विषयः येषाम् ते (बहुब्रीहि)

विशेष – यहाँ भ्रांतिमान् अलंकार है।

व्याख्या

वचांसि वाचस्पति–मत्सरेण साराणि लब्धुं ग्रहमण्डलीव।
मुक्ताक्षसूत्रत्वमुपैति यस्याः सा सप्रसादास्तु सरस्वती वः।।7।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक ने कवि ने वाणी की देवी सरस्वती की वन्दना की है।

अन्वय – ग्रहमण्डली वाचस्पतिमत्सरेण साराणि वचांसि लब्धुं यस्याः मुक्ताक्षसूत्रत्वम् इव उपैति। सा सरस्वती वः सप्रसादा अस्तु।

अर्थ – (बृहस्पति से भिन्न अन्य) ग्रहों की मण्डली बृहस्पति से ईर्ष्या के कारण, उत्कृष्ट वाणी को प्राप्त करने के लिए जिसकी मौक्तिक माला के रूप को प्राप्त हो जाता है, वह सरस्वती आप सभी पर प्रसन्न हों।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. ग्रहमण्डली – ग्रहाणाम् मण्डली (ष. तत्पु.)
2. वाचस्पतिमत्सरेण – वाचस्पतये मत्सरेण (च.तत्पु.)
3. लब्धुं – लभ्+तुमुन्।
4. मुक्ताक्षसूत्रत्वम् – मुक्ता एव अक्षाः (कर्मधारय) तेषाम् सूत्रत्वम्
5. सप्रसादा – प्रसादेन सह वर्तमाना (बहुब्रीहि)

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

अशेषविघ्नप्रतिषेधदक्ष–मन्त्राक्षतानामिव दिङ्मुखेषु।
विक्षेपलीला करशीकराणां करोतु वः प्रीतिमिभाननस्य।।8।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में कवि बिल्हण ने विघ्न विनाशक गणेश की वन्दना की है। बिल्हण ने प्रारम्भ के 8 श्लोकों में विष्णु, कृष्ण, शिव, सरस्वती तथा गणेश सभी स्तुति की है।

अन्वय – इभाननस्य अशेषविघ्नप्रतिषेधदक्षमन्त्राक्षतानाम् इव करशीकराणां दिङ्मुखेषु विक्षेपलीला वः प्रीतिं करोतु।

अर्थ – हाथी के मुख के समान मुख वाले गणेश जी के सब विघ्नों के निराकरण में कुशल मंत्र से अभिमन्त्रित चावलों के समान सूंड के द्वारा जलकणों की समस्त दिशाओं में बिखरने की क्रीड़ा आप सब को आनन्द प्रदान करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. इभाननस्य – इभस्य आननं इव आननं यस्य तस्य (बहुब्रीहि)
2. अशेषविघ्नप्रतिषेधदक्षमन्त्राक्षतानाम्–न शेषः अशेषः (नञ् तत्पु.) अशेषाः विघ्नाः (कर्मधारय) तेषा प्रतिषेधे दक्षाणाम् मंत्रपूताः अक्षताः तेषाम्। विघ्नः = वि+हन्+क्त।
3. दिङ्मुखेषु – दिशां मुखेषु (ष.त.)
4. विक्षेपलीला – विक्षेपः एव लीला (कर्मधारय)
5. करशीकराणां – करस्थाः शीकराः (मध्यमपदलोपी)

विशेष – उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

अनभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य सरस्वतीविभ्रमजन्म–भूमिः।
वैदर्भरीतिः कृतिनामुदेति सौभाग्यलाभप्रतिभूः पदानाम्।।9।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग –प्रस्तुत श्लोक में कवि ने वैदर्भी रीति की प्रशंसा की है। कवि वैदर्भी का प्रयोक्ता है तथा संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवियों वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि ने वैदर्भी रीति में ही काव्य रचना की है।

अन्वय – श्रवणामृतस्य अनभ्रवृष्टिः सरस्वती विभ्रमजन्मभूमिः पदानाम् सौभाग्यलाभप्रतिभूः वदर्भरीतिः कृतिनाम् उदेति।

अर्थ – कानों के लिए मेघरहित अमृत की वर्षा के समान, सरस्वती के विलासों की जन्म भूमि तथा पदों को सुगमता व सौन्दर्य प्राप्त कराने वाली कविता की वैदर्भी रचना कुछ पुण्यात्मा कवियों में ही उदित होती है अर्थात् वैदर्भी रीति में रचना करना सबके बस की बात नहीं है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. अनभ्रवृष्टिः – अनभ्रा वृष्टिः (कर्मधारय)
2. श्रवणामृतस्य – श्रवणयोः अमृतस्य (ष.त.)
3. सरस्वतीविभ्रमजन्मभूमिः – सरस्वत्याः विभ्रमाणाम् जन्मभूमिः (ष.त.)
4. सौभाग्यलाभप्रतिभूः – सौभागस्य लाभस्थ प्रतिभूः।
   सुभग + ष्यञ् = सौभाग्य। लभ् +घञ् = लाभः।
   वैदर्भी रीति के वर्णन में उल्लेख अलंकार का प्रयोग है।

व्याख्या

जयन्ति ते पञ्चमनाद–मित्र–चित्रोक्तिसन्दर्भविभूषणेषु।
सरस्वती यद्वदनेषु नित्यमाभाति वीणामिव वादयन्ती।।10।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में कवि बिल्हण ने उन सिद्ध कवीश्वरों को प्रणाम किया है, सरस्वती जिन कवियों के मुख में स्वयं निवास करती है।

अन्वय – पंचमनाद–मित्र–चित्रोक्ति–संदर्भ विभूषणेषु यद्वदनेषु सरस्वती नित्यं वीणां वादयन्ती इव आभाति ते जयन्ति।

अर्थ – वे कवीश्वर धन्य हैं जिनके कोयल के शब्द के समान कर्णेन्द्रिय को सुख देने वाले, रस अलंकार आदि से युक्त, चमत्कार पैदा करने वाली उक्तियों से अथवा कविता समूहों से विभूषित मुखों में सरस्वती अपनी वीणा बचाती हुई सुशोभित होती ह।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. पंचमनादमित्र–चित्रोक्तिसंदर्भविभूषणेषु–पञ्चमः च असौ नादः (कर्म.) तस्य मित्रम् (ष. त.)। चित्रा उक्तिः (कर्म.) चित्रोक्ति पूर्णाः संदर्भाः (मध्यमपदलोपी) सः एव विभूषणेषु तेषु (बहुब्रीहि), पञ्चमनादः = संगीत के सात स्वरों में से एक स्वर है जिसका गान कोयल की तरह होता है (पिका गायन्ति पञ्चमम्)।
2. वादयन्ती – वद् + णिच्+शतृ+ङीप्।
3. कवियों की वाणी में स्वयं वीणा की झन्कार की सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः!।
यदस्य दत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति।।11।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – इस श्लोक में कवि ने कहा है कि महान् कवियों के काव्यार्थ की चोरी करने वाले काव्यचौरों से अपने काव्य को बचाया जाना चाहिये।

अन्वय – हे कवीन्द्राः। साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत् यत् अस्य लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः दैत्या इव प्रगुणीभवन्ति।

अर्थ – हे कविवरों। साहित्य रूपी समुद्र के मन्थन करने से अर्थात् चिरकाल तक अभ्यास करने से उत्पन्न एवं कान के लिए अमृत तुल्य इस काव्यार्थ की रक्षा करनी चाहिये क्योंकि इस काव्यधन रूपी अमृत की चोरी करने के लिए राक्षसों के समान चौर बहुत बढ़ गये हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं–साहित्य एवं पाथोनिधिः (कर्म.) सहितस्य भावं साहित्यं, सहित+ष्यञ्। नि+धा+कि=निधिः। तस्य मन्थनात् उत्थं। मन्थ+ल्युट् = मन्थन।
2. कर्णामृतं – कर्णयोः अमृतं (ष.त.)
3. कवीन्द्राः – कविषु इन्द्राः (स.त.)
4. काव्यार्थचौराः – काव्यमेव अर्थः काव्यार्थः, तस्य चौराः (ष.त.)
5. प्रगुणीभवन्ति – प्रगुण+च्वि=प्रगुणी
6. काव्यार्थचौरों की दैत्यों से तुलना करने पर उपमा अलंकार है।

व्याख्या

गृह्णन्तु सर्वे यदि वा यथेष्टं नास्ति क्षतिः कापि कवीश्वराणाम्।
रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमर्त्यैरद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः।।12।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – इस श्लोक में कवि ने साहित्य की तुलना समुद्र से की है तथा समुद्र से रत्न निकाल लेने के बाद भी वह रत्नाकर ही कहलाता है अतः काव्य से यथेच्छ चौरी करने पर श्रेष्ठ कवियों की कोई हानि नहीं होती।

अन्वय – यदि वा सर्वे यथेष्टं गृह्णन्तु। कवीश्वराणां का अपि क्षतिः न अस्ति। अमर्त्यैः बहुषु रत्नेषु लुप्तेषु अद्य अपि सिन्धुः रत्नाकरः एव।

अर्थ – काव्यार्थ चौरों के विषय में कवि कहते हैं कि यदि चौर काव्य रूपी द्रव्य की चोरी यथेच्छ करते रहे, उससे श्रेष्ठ कवियों की कोई हानि नहीं होती। देवताओं के द्वारा समुद्र से अनेक रत्न निकाल लिये जाने पर भी समुद्र अभी भी रत्नाकर कहा जाता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. यथेष्टं – इष्टं अनतिक्रम्य (अव्ययीभाव)
2. कवीश्वराणां – कविषु ईश्वराणां (स.त.)
3. रत्नानाम् आकरः (ष.त.) 'रत्नाकरो जलनिधिः' इत्यमरः।
4. यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

व्याख्या

सहस्रशः सन्तु विशारदानां वैदग्धलीलानिधयः प्रबन्धाः।
तथापि वैचित्र्यरहस्यलुब्धाः श्रद्धां विधास्यन्ति सचेतसोऽत्र।।13।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – बिल्हण कवि अपने महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि अनेकानेक वैदर्भी रीति से युक्त कवियों की रचनायें विद्यमान है, परन्तु काव्य के सहृदय पाठक मेरी इस रचना का सम्मान अवश्य करेंगें।

अन्वय – विशारदानां वैदर्भलीलानिधयः सहस्रशः प्रबन्धाः सन्तु, तथापि वैचित्र्य रहस्य लुब्धा सचेतसः अत्र श्रद्धां विधास्यन्ति।

अर्थ – यद्यपि काव्य निर्माण में दक्ष कवियों के वैदर्भी रीति के असंख्य काव्य विद्यमान हैं परन्तु रस, ध्वनि, अलंकार आदि से उत्पन्न विचित्रता के मर्म को जानने वाले सहृदय मेरे इस 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य में श्रद्धा अवश्य करेंगें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. वैदर्भलीलानिधयः – वैदर्भलीलायाः निधयः (ष.त.)
2. वैचित्र्यरहस्यलुब्धा – वैचित्र्यं एव रहस्यं (कर्म.) तत्र लुब्धाः (स.त.)
3. सचेतसः – चेतसा सहितः (बहुब्रीहि)
4. बिल्हण ने वैदर्भी रीति तथा वक्रोक्तिपूर्ण वैचित्र्य मार्ग के अवलम्बन की बात कही है। इसमें व्यतिरेक व काव्यलिङ्ग अलंकार है।

व्याख्या

कुण्ठत्वमायाति गुणः कवीनां साहित्यविद्याश्रमवर्जितेषु।
कुर्यादनार्द्रेषु किमङ्गनानां केशेषु कृष्णागुरुधूपवासः।।14।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – इस श्लोक में कवि ने कहा है कि साहित्य विद्या में अभ्यास करने वाले पाठक ही सही काव्य का आकलन कर पाते है।

अन्वय – कवीनां गुणाः साहित्यविद्याश्रमवर्जितेषु कुण्ठत्वम् आयाति। अङ्गनानाम् अनार्द्रेषु केशेषु कृष्णागुरुधूपवासः किं कुर्यात्।

अर्थ – साहित्यविद्या (काव्यशास्त्र) में परिश्रम से रहित व्यक्तियों पर कवियों का गुण कुण्ठित हो जाता है अर्थात् अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। सुन्दर स्त्रियों के सूखे बालों में काले अगुरू की धूप की सुगन्ध क्या कर सकती है?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. कुण्ठत्वम् – कुण्ठाया भावः। कुण्ठ्+त्व (प्रत्यय)
2. साहित्यविद्याश्रमवर्जितेषु – साहित्यस्य विद्या (ष.त.) तस्याम् यः श्रमः तेन वर्जितेषु (तत्पुरूष)
3. कृष्णागुरुधूपवासः – कृष्णः च असौ अगुरुः (कर्म.) तस्य धूपेन वासः (तत्पुरुष)
4. अनार्द्रेषु – न आर्द्राः अनार्द्राः तेषु (नञ् तत्पु.)
5. यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

व्याख्या

प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीति–व्यतिक्रमः श्लाध्यतमः पदानाम्।
अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि वन्द्यानि कान्ताकुचमण्डलानि।।15।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बिल्हण यह बताना चाहते हैं कि कुछ विशेष अवस्थाओं में कवि यदि पुरानी परिपाटी का अतिक्रमण कर नवीन का प्रतिपादन करना चाहता है तो वह ठीक ही है।

अन्वय – पदानां प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीतिव्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि कान्ताकुचमण्डलानि वन्द्यानि भवन्ति।

अर्थ – कवि यदि प्रौढ़ि प्रकर्ष से अर्थात् गुण अलंकारादि की विशिष्ट चमत्कृति के प्राबल्य से प्राचीन कवियों की परम्परा का उल्लंघन करता है ता अत्यन्त श्लाध्य है। अत्यधिक ऊँचाई के कारण चौली को फाड़े देने वाले स्त्रियों के स्तनमण्डल प्रशंसनीय होते हैं। अर्थात् शब्दों के प्रयोग में उत्कर्षता आ जाना कवि के लिए प्रशंसा का विषय है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. प्रौढ़िप्रकर्षेण – प्रौढेः प्रकर्षेण (ष.त.)
2. श्लाघ्यतमः – श्लाघ्य + तमप्
3. अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि – अत्युन्नतया स्फोटितानि कञ्चुकानि यैः तानि (बहुब्रीहि)
4. कान्ताकुचमण्डलानि – कान्तायाः कुचमण्डलानि (तत्पुरुष)
5. प्रस्तुतश्लोक में अनुप्रास, दृष्टान्त तथा अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

व्याख्या

व्युत्पत्तिरावर्जितकोविदाऽपि न रञ्जनाय क्रमते जडानाम्।
न मौक्तिकच्छिद्रकरी शलाका प्रगल्भते कर्मणि टङ्किकायाः।।16।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – कवि बिल्हण इस श्लोक में कहते हैं कि व्युत्पत्ति पूर्ण विशिष्ट रचना विद्वानों का तो मनोरंजन करने में समर्थ है किंतु वह मूर्ख व जड़ व्यक्तियों को आनन्द नहीं दे सकती।

अन्वय – आवर्जितकोविदाः अपि व्युत्पत्तिः जडानाम् रञ्जनाय न क्रमते। मौक्तिकच्छिद्रकरी शलाकाटङ्किकायाः कर्मणि न प्रगल्भते।

अर्थ – विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट करने वाली भी व्युत्पत्ति (लोक शास्त्र का व्यापक ज्ञान) मूर्ख व्यक्तियों के मनोरंजन के लिए समर्थ नहीं होती। मोती में छेद करने वाली सुई (पाषाणभेदन कार्य करने में) टांकी के काम में सक्षम नहीं होती।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. व्युत्पत्ति – विशिष्टा उत्पत्तिः। वि, उत्+पत्+क्तिन
2. आवर्जितकोविदा – आवर्जिताः कोविदाः यया सा (बहुब्रीहि)
3. मौक्तिकछिद्रकरी – छिद्रं करोति इति छिद्रकरी, मौक्तिकेषु छिद्रकरी (तत्पुरूष)
4. रञ्जनाय – रञ्ज्+ल्युट्।
5. बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

व्याख्या

कथासु ये लब्धरसाः कवीनां त नानुरज्यन्ति कथान्तरेषु।
न ग्रन्थिपर्णप्रणयाश्चरन्ति कस्तूरिकागन्धमृगास्तृणेषु।।17।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – कवि बिल्हण संसार में कवियों द्वारा लिखित रसमयी कथाओं की उपादेयता व विशिष्टता के विषय में बताते हैं।

अन्वय – ये कवीनां कथासु लब्धरसाः ते कथान्तरेषु न अनुरज्यन्ति। ग्रन्थिपर्णप्रणयाः कस्तूरिकागन्धमृगाः तृणेषु न चरन्ति।

अर्थ – जो (पाठक) कवियों की कथाओं में रस प्राप्त कर चुके होते हैं उन्हें अन्य कथाओं में आनन्द प्राप्त नहीं होता। दूर्वा नामक घास के प्रेमी कस्तूरी मृग अन्य घास को नहीं खाते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. लब्धरसाः – लब्धः रसः यैः ते (बहुब्रीहि)
2. कथान्तरेषु – अन्या कथा इति कथान्तरं तेषु।
3. ग्रन्थिपर्णप्रणयाः – ग्रन्थि पर्णे प्रणय येषाम् ते (बहुब्रीहि)
4. कस्तूरिकागन्धमृगाः – कस्तूरिकायाः गन्धः अस्ति येषान्ते च ते मृगाश्च (बहुब्रीहि)
5. यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

व्याख्या

जडेषु जातप्रतिभाभिमानाः खलाः कवीन्द्रोक्तिषु के वराकाः?।
प्राप्ताग्निनिर्वापणगर्वमम्बु रत्नांकुरज्योतिषि किं करोति?।।18।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्यं 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – श्रेष्ठ महाकवियों की रचनाओं की आलोचना करके दुष्ट अभिमानी जन कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। प्रस्तुत श्लोक में कवि ने इन्हीं भावों का वर्णन किया है–

अन्वय – जडेषु जातप्रतिभाभिमाना वराकाः खला कवीन्द्रोक्तिषु के। प्राप्ताग्निनिर्वापणगर्भम् अम्बुरत्नाङ्कुरज्योतिषि किं करोति।

अर्थ – मूर्ख व्यक्तियों के सामने अपनी प्रतिभा का अभिमान करने वाले बेचारे दुष्ट महाकवियों की उक्तियों की (श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं के सामने) क्या गणना? आग को बुझाने का गर्व प्राप्त करने वाला जल रत्न के अंकुरों की ज्योति का क्या कर सकता है?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. जातप्रतिभाभिमानाः – जातः प्रतिभायाः अभिमानः येषां ते (बहु.)।
2. कवीन्द्रोक्तिषु – कवीन्द्राणां उक्तिषु (ष.त.)।
3. प्राप्ताग्निनिर्वापणगर्वम् – प्राप्तः अग्नेः निर्वापणात् गर्वः येन तत् निर्+वा +णिच्+ल्युट् = निर्वापणं।
4. रत्नांकुरज्योतिषि – रत्नांकुराणाम् ज्योतिषि (ष.त.)।
5. यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

व्याख्या

उल्लेखलीला–घटनापटूनां सचेतसां वैकटिकोपमानाम्।
विचारशाणोपलपट्टिकासु मत्सूक्तिरत्नान्यतिथीभवन्तु।।19।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – कवि अपनी काव्य रचना को सहृदय आलोचकों की परीक्षा हेतु प्रस्तुत करता है क्योंकि दुष्टों का काम तो दूसरों की श्रेष्ठ रचनाओं में भी कमियाँ निकालना होता है।

अन्वय – मत्सूक्तिरत्नानि उल्लेखलीला घटनापटूनाम् वैकटिकोपमानाम् सचेतसाम् विचारशाणोपलपट्टिकासु अतिथीभवन्तु।

अर्थ – सान पर चढ़ाकर रत्नों की परीक्षा करने में कुशल जौहरियों के समान, उत्तम काव्य रचना में कुशल सहृदयों की विचार रूपी सान पर मेरे सूक्ति रत्न परीक्षा के लिए उपस्थित हो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. उल्लेखलीलाघटनापटूनाम् – उल्लेखस्य लीला इति उल्लेखलीणा तथा घटनासु पटूनाम् (तत्पुरुष)
2. विचारशाणोपलपट्टिकासु – विचारः एव शाणः। (कर्म.) तस्य उपल पट्टिकासु।
3. मत्सूक्तिरत्नानि – सूक्ति एव रत्नं (कर्म.) मम सूक्तिरत्नानि (ष.त.)
4. अतिथीभवन्तु – न अतिथयः अतिथयः भवन्तु (अतिथि च्वि+लोट्)
5. यहाँ श्लेष व रूपक अलंकार है।

व्याख्या

न दुर्जनानामिह कोऽपि दोषस्तेषां स्वभावो हि गुणासहिष्णुः।
द्वेष्यैव केषामपि चन्द्रखण्ड–विपाण्डुरा पुण्ड्रकशर्कराऽपि।।20।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – दुर्जन श्रेष्ठ कवियों की रचना में दोष निकालते ही है, यह उनका स्वभाव ही होता है कि वह गुणों को सहन नहीं कर पाते।

अन्वय – इह दुर्जनानां कः अपि दोषः न हि, तेषां स्वभावः गुणासहिष्णुः। चन्द्रखण्ड विपाण्डुरा पुण्ड्रक शर्करा अपि केषाम् अपि द्वेष्या एव।

अर्थ – इसमें दुर्जनों का कोई दोष नहीं उनका स्वभाव ही दूसरे के गुणों को सहन न करने वाला होता है। चन्द्रमा के खण्ड के समान सफेद अच्छे गन्ने से तैयार की गई शक्कर भी किसी किसी को पसन्द नहीं आती है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. गुणासहिष्णु – गुणानाम् असहिष्णु (ष.त.) सह् + इष्णुच्
2. चन्द्रखण्डविपाण्डुरा– चन्द्रस्य खण्डः (ष.त.) चन्द्रखण्डः इव विपाण्डुरा (कर्म.)
3. पुण्ड्रकशर्करा – पुण्ड्रकनिर्मित शर्करा (मध्यमपदलोपी)
4. उपर्युक्त श्लोक में दृष्टान्त अलंकार है।

व्याख्या

सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः।।21।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में बिल्हण ने अपनी जन्मभूमि कश्मीर की प्रशंसा की है कि केसर व कविता कश्मीर में ही उत्पन्न होती है।

अन्वय – कविताविलासाः कुङ्कुमकेसराणां नूनं सहोदराः भवन्ति। यत् मया शारदादेशम् अपास्य तेषां प्ररोहः अन्यत्र न दृष्टः।

अर्थ – कविता के विलास निश्चित रूप से कुंकुम के केसरों के सहोदर (सगेभाई) है क्योंकि मेरे द्वारा शारदादेश (कश्मीर) को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी उनके अंकुर नहीं देखे गये।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. कुंकुमकेसराणाम् – कुङ्कुमानां केसराः तेषाम् (ष.त.)

2. कविताविलासाः – कवितायाः विलासाः (ष.त.)

   वि+लस्+घञ्

3. शारदादेशम् – शारदायाः देशम् (ष.त.)

4. दृष्टः = दृश् + क्त

5. प्ररोहः = प्र + रुह् + घञ्

6. नूनं के प्रयोग से उत्प्रेक्षालंकार की सम्भावना है।

व्याख्या

रसध्वनेरध्वनि ये चरन्ति संक्रान्तवक्रोक्तिरहस्यमुद्राः।
तेऽस्मत्प्रबन्धानवधारयन्तु कुर्वन्तु शेषाः शुकवाक्यपाठम्।।22।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – कविता पढ़ने के लिए पाठक का सहृदय होना आवश्यक है। कविता का अधिकारी कौन है इस विषय में बिल्हण कहते हैं कि–

अन्वय – संक्रान्तवक्रोक्ति रहस्यमुद्राः ये रसध्वनेः अध्वनि चरन्ति ते अस्मत्प्रबन्धान् अव धारयन्तु शेषाः शुकवाक्यपाठम् कुर्वन्तु।

अर्थ – जो विचित्र उक्तियों (वक्रोक्ति) के सम्पूर्ण रहस्यों को अच्छी तरह जानने वाले और रसध्वनि के मार्ग पर चलने वाले हैं, वे विद्वान् कवि मेरे काव्य को समझें। इसके अतिरिक्त अन्य कवि तोते की तरह केवल पाठ किया करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. रसध्वनेः – रसगतः ध्वनिः (मध्यमपदलोपी)।
2. संक्रान्तवक्रोक्तिरहस्यमुद्राः – संक्रान्तेन वक्रोक्तेः रहस्येन मुद्रा येषां ते।
3. शुकवाक्यपाठम् – शुकस्य वाक्यम्, तद्वत् पाठम् (ष.त.)।
4. यहाँ लुप्तोपमा अलंकार है।

व्याख्या

अनन्यसामान्यगुणत्वमेव भवत्यनर्थाय महाकवीनाम्।
ज्ञातुं यदेषां सुलभाः सभासु न जल्पमल्पप्रतिभाः क्षमन्ते।।23।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – महाकवियों की अनन्य–सामान्य प्रतिभा ही उनकी प्रसिद्धि में बाधक होती है क्योंकि सामान्य जन उनकी रचनाओं को समझ नहीं पाते।

अन्वय – महाकवीनाम् अनन्यसामान्यगुणत्वम् एव अनर्थाय भवति, यत् सभासु सुलभाः अल्पप्रतिभा एषाम् जल्पं ज्ञातुं न क्षमन्ते।

अर्थ – महाकवियों के विशिष्ट गुण ही उनके लिए अनिष्ट कारक हो जाते है क्योंकि सभाओं में सुलभ कम प्रतिभा के कवि इन महाकवियों की कविता के अर्थ को समझने में असमर्थ होते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. अनन्यसामान्यगुणत्वं – अन्येषु सामान्यं ईदृशं गुणत्वम्। न अन्यसामान्यगुणत्वं।
2. महाकवीनाम् – महान् च असौ कविः (कर्म.) तेषां
3. अल्पप्रतिभाः – अल्पा प्रतिभा येषां ते।
4. व्याजस्तुति अलंकार है।

व्याख्या

अलौकिकोल्लेखसमर्पणेन विदग्धचेतः–कषपट्टिकासु।
परीक्षितं काव्यसुवर्णमेतल्लोकस्य कण्ठाभरणत्वमेतु।।24।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – कवि बिल्हण चाहते हैं कि उनका महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' अपनी सूक्तियों के आधार पर सबका कण्ठहार बने।

अन्वय – विदग्धचेतः कषपट्टिकासु अलौकिकोल्लेखसमर्पणेन परीक्षितम् एतत् काव्यसुवर्णं लोकस्य कण्ठाभरणत्वम् एतु।

अर्थ – विदग्ध (सहृदय) समीक्षकों की चित्त रूपी कसौटी पर कसके (जांचा हुआ) यह काव्य रूपी सुवर्ण लोक के कण्ठ का आभूषण बने। अर्थात् जिस प्रकार शुद्ध सोने से बना हुआ आभूषण गले की शोभा बढ़ाता है, उसी प्रकार विद्वानों का परीक्षित यह मेरा उत्तम काव्य साधारण लोगों के कण्ठ का हार बने।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. अलौकिकोल्लेखसमर्पणेन – न लौकिकः अलौकिकः (नञ् तत्पु.) अलौकिकः असौ उल्लेखः
   (कर्म.) तस्य समर्पणेन।
2. विदग्धचेतः कषपट्टिकासु – कषायपट्टिका इति (च.त.)
   विदग्धानां चेतः इति (ष.त.) विदग्धचेतः एव कषपट्टिका (कर्म.)
3. काव्यसुवर्णम् – काव्यम् एव सुवर्णम् (कर्म.)
4. कण्ठाभरणम् – कण्ठस्य आभरणम्। तस्य भावः।
5. यहाँ श्लेष और रूपक अलंकार है।

व्याख्या

किं चारुचारित्र्यविलासशून्याः कुर्वन्ति भूपाः कविसंग्रहेण?।
किं जातु गुञ्जाफलभूषणानां सुवर्णकारेण वनेचराणाम्?।।25।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – कवि बिल्हण के अनुसार श्रष्ठ राजा ही कवियों व विद्वानों का सम्मान करते है, दुश्चरित्र राजाओं को कवियों की कोई आवश्यकता नहीं होती।

अन्वय – चारुचारित्र्यविलासशून्याः भूपाः कविसंग्रहेण किं कुर्वन्ति? गुञ्जाफलभूषणानां वनेचराणां सुवर्णकारेण जातु किम्?

अर्थ – सुन्दर चरित्र के विलासशून्य राजा लोगों को कवियों के संग्रह से क्या प्रयोजन? गुंजाफल के गहने पहनने वाले जंगली लोगों का स्वर्णकार से क्या प्रयोजन? अर्थात् सच्चरित्र राजा ही कवियों का संग्रह करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. चारुचारित्र्यविलासशून्याः – चारुचारित्र्य (कर्म.) तस्य विलासेन शून्याः (तत्पु.)
2. कविसंग्रहेण – कवीनां संग्रहेण।
3. गुञ्जाफलभूषणानां – गुञ्जाफलानां भूषणानि एव भूषणानि येषां ते (बहुब्रीहि)
4. सुवर्णकारेण – सुवर्णं करोति इति सुवर्णकारः (उपपद समास)
5. वनेचराणाम् – वने चरन्ति इति वनेचराः तेषाम् वनेचराणाम् वनेचर + ट (प्रत्यय)
6. यहाँ दृष्टान्त अलंकार हैं।

व्याख्या

पृथ्वीपतेः सन्ति न यस्य पार्श्वे
कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि।
भूपाः कियन्तो न बभूवुरुर्व्यां
जानाति नामाऽपि न कोऽपि तेषाम्।।26।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – किसी भी राजा की कीर्ति कवियों द्वारा ही फैलती है। कवि अपने काव्य के माध्यम से राजाओं की यशोगाथा को अमर बना देते हैं।

अन्वय – यस्य पृथ्वीपतेः पार्श्वे कवीश्वराः न सन्ति तस्य यशांसि कुतः? उर्व्याम् कियन्तः भूपाः न बभूवुः, तेषां नाम अपि कः अपि न जानाति।

अर्थ – जिस राजा के पास कवीश्वर (महाकवि) नहीं होते उसका यश कैसे? पृथ्वी पर कितने राजा नहीं हुये। परन्तु उन (राजाओं) का आज नाम तक कोई नहीं जानता।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. पृथ्वीपतेः – पृथ्व्याःपतिः। तस्य (ष.त.)
2. कविषु ईश्वराः कवीश्वराः ।
3. यहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार है।

व्याख्या

लङ्कापतेः सङ्कुचितं यशो यद् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्व एवाऽऽदिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः।।27।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – कवियों के कारण ही राजाओं की प्रसिद्धि लोक में फैलती है अतः राजाओं को चाहिये कि वह कवियों को नाराज न करें क्योंकि–

अन्वय – यत् लङ्कापतेः यशः संकुचितं, यत् रघुराज पुत्रः कीर्तिपात्रं सः सर्वः एव आदिकवेः प्रभावः, क्षितीन्द्रैः कवयः न कोपनीयाः।

अर्थ – जो लङ्कापति (रावण) का यश नहीं फैला और जो दशरथ पुत्र राम कीर्ति के पात्र हो गये, यह सब आदिकवि वाल्मीकि के कारण हुआ अतः राजाओं के द्वारा कविगण कभी भी अपमानित नहीं किये जाने चाहिये।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. लंकापतेः – लंकायाः पति तस्य (ष.त.)
2. कीर्तिपात्रं – कीर्तेः पात्रं (ष.त.)
3. रघुराजपुत्रः – रघुराजस्य पुत्रः (ष.त.)
4. क्षितीन्द्रैः – क्षितेः इन्द्राः क्षितीन्द्राः तैः (तत्पु.)
5. कोपनीयाः – कुप् + अनीयर्
6. यहाँ निदर्शना अलंकार है।

व्याख्या

गिरां प्रवृत्तिर्मम नीरसाऽपि मान्या भवित्री नृपतेश्चरित्रैः।
के वा न शुष्कां मृदमभ्रसिन्धु–सम्बन्धिनीं मूर्द्धनि धारयन्ति?।।28।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – इस श्लोक में कवि बिल्हण स्वयं की विनम्रता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि प्रस्तुत 'विक्रमांकदेवचरित' महाकाव्य को विक्रमांकदेव के कारण लोग मस्तक पर धारण करेगें।

अन्वय – मम गिराम् प्रवृत्तिः नीरसा अपि नृपतेः चरित्रैः मान्या भवित्री। के वा अभ्रसिन्धुसम्बन्धिनीम् शुष्काम् मृदम् मूर्धनि न धारयन्ति।

अर्थ – मेरी नीरस भी वाणी विक्रमांकदेवचरित का वर्णन करने के कारण संसार में माननीया होगी। आकाश गंगा से सम्बद्ध होने के कारण शुष्क मिट्टी को कौन सिर पर धारण नहीं करते अर्थात् सभी सिर पर धारण करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. प्रवृत्ति – प्र+वृत्+क्तिन्।
2. भवित्री – भू+तृच्+ङीप्।
3. अभ्रसिन्धुसम्बन्धिनी – अभ्रभवा सिन्धुः तस्याः सम्बंधिनी।
4. यहाँ दृष्टान्त एवं उदात्त अलकार है।

व्याख्या

कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य दोषे प्रयत्नः सुमहान्खलानाम्।
निरीक्षते केलिवनं प्रविश्य क्रमेलकः कण्टक–जालमेव।।29।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – विक्रमांकदेव के उदात्त चरित्र के वर्णन के पश्चात् भी दुर्जनों का स्वभाव होता है कि वह इस महाकाव्य में दोष ही ढूढेंगें।

अन्वय – खलानाम् कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य दोषे सुमहान् प्रयत्नः। क्रमेलकः केलिवनं प्रविश्य कण्टकजालम् एव निरीक्षते।

अर्थ – दुर्जन व्यक्ति अमृत के समान सुभाषितों के आस्वाद को छोड़कर दोष ढूंढने में ही अत्यन्त प्रयत्नशील रहते हैं। ऊँट सुन्दर बाग (केलिवन) में प्रवेश करके भी वहाँ काँटेदार झाड़ियों की खोज में रहता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. कर्णामृतं – कर्णयोः अमृतं (ष.त.)
2. सूक्तिरसं – शोभना उक्ति इति सूक्तिः (कर्म.) तस्या रसम्।
3. विमुच्य – वि+मुच् + ल्यप्
4. केलिवनं – केलये वनम् (तत्पु.), केलिप्रधानं वनं (मध्यमपदलोप)
5. कण्टकजालम् – कण्टकानाम् जालम् (तत्पु.)
6. यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

व्याख्या

एषास्तु चालुक्यनरेन्द्रवंश–समुद्गतानां गुणमौक्तिकानाम्।
मद्भारती–सूत्रनिवेशितानामेकावली कण्ठविभूषणं वः।।30।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – कवि बिल्हण 'विक्रमांकदेवचरितम्' जिस महाकाव्य की रचना करने जा रहे है, वह लोगों के कण्ठ का हार बने कवि ने यही कामना की है।

अन्वय – चालुक्यनरेन्द्रवंशसमुद्गतानाम्, मद्भारतीसूत्र–निवेशितानां गुणमौक्तिकानाम्, एषा एकावली वः कण्ठविभूषणम् अस्तु।

अर्थ – चालुक्य वंश में उत्पन्न राजाओं के गुण रूपी मोतियों की यह एकावली (माला) मेरी कविता डोरी में गूँथी हुई आप सब (पाठकों) के कण्ठ का हार बन। अर्थात् सब सहृदय पाठक इसे पढ़ें।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. चालुक्यनरेन्द्रवंशसमुद्गतानां – चालुक्यवंशेभवाः चालुक्यवंश्याः, नराणां इन्द्राः नरेन्द्राः, तेषां वंशे समुद्गतानां (तत्पु.)
2. गुणमौक्तिकानाम्–गुणाः एव मौक्तिकाः, तेषां (कर्म.)
3. मद्भारतीसूत्रनिवशितानां – मम भारती इति मद्भारती। मद्भारती एव सूत्र (कर्म.) तस्मिन् निवेशितानां। नि+विश्+क्त।
4. कण्ठविभूषणं – कण्ठस्य विभूषणम् (ष.त.)
5. रूपक अलंकार का प्रयोग है (गुणरूपी मोती व भारती रूपी सूत्र)

व्याख्या

लोकेषु सप्तस्वपि विश्रुतोऽसौ सरस्वतीविभ्रमभूः स्वयम्भूः।
चत्वारि काव्यानि चतुर्मुखस्य यस्य प्रसिद्धाः श्रुतयश्चतस्रः।।31।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – कवि बिल्हण ने अपने चरित नायक विक्रमांकदेव का सम्बन्ध ब्रह्मा से माना है। अतः ब्रह्मा के वर्णन से ही वह चालुक्यवंश का वर्णन प्रारम्भ करते हैं।

अन्वय – चतुर्मुखस्य यस्य चत्वारि काव्यानि चतस्रः श्रुतयः प्रसिद्धाः। असौ सरस्वतीविभ्रमभ्रूः स्वयम्भूः सप्तसु अपि लोकेषु प्रसिद्धाः।

अर्थ – जिस चार मुख वाले ब्रह्मा के चार काव्य चार मुखों से निकले हुए चार वेद हैं, ऐसी प्रसिद्धि है। वह सरस्वती के विलास का स्थान स्वयम्भू ब्रह्मा सातों लोकों में प्रसिद्ध है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. सरस्वतीविभ्रमभ्रूः – सरस्वत्याः ये विभ्रमाः तेषां भ्रूः (तत्पु.)
2. स्वयम्भूः – स्वयम् + भू + क्विप्।
3. विश्रुतः – वि+श्रु+क्त।
4. प्रसिद्धाः – प्र + साध् + क्त।
5. चतुर्मुखस्य – चत्वारि मुखानि यस्य सः (बहुव्रीहि)

विशेष – चार वेद – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।
सात लोक – भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्।

व्याख्या

एकस्य सेवातिशयेन शङ्के पङ्केरुहस्यासनतां गतस्य।
आराधितो यः सकलं कुटुम्बं चकार लक्ष्मीपदमम्बुजानाम्।।32।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – ब्रह्मा जी का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि ब्रह्मा ने कमलों को लक्ष्मी का स्थान क्यों बनाया? क्योंकि.....

अन्वय – आसनतां गतस्य एकस्य पङ्केरुहस्य सेवातिशयेन आराधितः यः अम्बुजानाम् सकलम् कुटुम्बम् लक्ष्मीपदम् चकार (इति) शप्रे।

अर्थ – ब्रह्मा का आसन कमल माना जाता है अतः कवि कहते हैं कि किसी एक कमल के, आसन बनकर अत्यधिक सेवा करने से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने सम्पूर्ण कमल जाति को ही लक्ष्मी अर्थात् शोभा का निवास स्थान बना दिया, ऐसा मैं सोचता हूँ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. सेवातिशयेन – सेवायाः अतिशयेन (ष.त.)।
2. पङ्केरुहस्य – पङ्के रोहति इति पङ्केरुह (अलुक् उपपद समास)।
3. यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

ब्रह्मर्षिभिर्ब्रह्ममयीममुष्य सार्द्धं कथां वर्धयतः कदाचित्।
त्रैलोक्यबन्धोः सुरसिन्धुतीरे प्रत्यूषसन्ध्यासमयो बभूव।।33।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में प्राप्त काल का वर्णन कवि द्वारा किया गया है।

अन्वय – कदाचित् सुरसिन्धुतीरे ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं ब्रह्ममयीं कथां वर्धयतः त्रैलोक्यबन्धोः प्रत्यूषसन्ध्यासमयः बभूव।

अर्थ – किसी समय आकाश गंगा के तट पर ब्रह्मर्षियों के साथ पर ब्रह्म सम्बन्धी कथा करते–करते तीनों लोकों के मित्र ब्रह्मा जी का प्रातः कालीन सन्ध्या का समय उपस्थित हो गया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. सुरसिन्धुतीरे – सुराणां सिन्धुः सुरसिन्धुः सुरसिन्धोः तीरे (तत्पु.)
2. त्रैलोक्यबन्धोः – त्रैलोक्यस्य बन्धोः (ष.त.)
   त्रिलोक + ष्यञ् = त्रैलोक्य
3. प्रत्यूषसन्ध्यासमयः – प्रत्यूषे सन्ध्यायाः समयः (तत्पु.)

व्याख्या

मृणालसूत्रं निजवध्भायाः समुत्सुकश्चाटुषु चक्रवाकः।
अन्योन्यविश्लेषणयन्त्रसूत्र–भ्रान्त्येव चञ्चुस्थितमाचकर्ष।।34।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में कवि प्रातःकाल में चकवा व चकवी जिस प्रकार मिलते हैं, वह वर्णन किया है।

अन्वय – निजवल्लभायाः चाटुषु समुत्सुकः चक्रवाकः चञ्चुस्थितम् मृणालसूत्रम् अन्योन्यविश्लेषण यन्त्रसूत्रभ्रान्त्या इव आचकर्ष।

अर्थ – अपनी प्रिया चकवी से रसयुक्त मीठी बातें कहने व सुनने की अभिलाषा से चकवे ने उसकी चोंच में स्थित कमल की नाल (डण्डे) को मानो परस्पर वियोग कराने वाले यन्त्र के सूत्र की भांति खींच लिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. मृणालसूत्रम् – मृणालस्य सूत्रम् (ष. तत्पु.)
2. निजवल्लभायाः – निजा वल्लभा तस्याः (कर्मधारय)
3. चञ्चुस्थितम् – चञ्चौ स्थितम्।
4. अन्योन्यविश्लेषणयन्त्रसूत्रभ्रान्त्या – अन्योन्यस्य विश्लेषणस्य यंत्रसूत्रं तस्य भ्रान्त्या (तत्पुरुष)
5. यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग है।

व्याख्या

आरक्तमर्घार्पणतत्पराणां सिद्धाङ्गनानामिव कुङ्कुमेन।
बिम्बं दधे बिम्बफलप्रतिष्ठां राजीविनीजीवितवल्लभस्य।।35।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक महाकवि बिल्हण विरचित महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रातः कालीन सूर्य का वर्णन करते हुए कवि कहते है कि–

अन्वय – अर्घ्यार्पणतत्पराणां सिद्धाङ्गनानां कुङ्कुमेन इव आरक्तं राजीविनीजीवितवल्लभस्य बिम्बं बिम्बफलप्रतिष्ठां दधे।

अर्थ – अर्घ्य देने में तत्पर सिद्धाङ्गनाओं (सिद्धों की स्त्रियों) के अर्घ्य के केसर से लाल बने हुए कमलिनी के जीवन के स्वामी सूर्य का मण्डल बिम्बफल के समान लाल दिखाई देने लगा।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. अर्घार्पणतत्पराणाम् – अर्घस्य अर्पणे तत्पराणाम् (तत्पु.)
2. सिद्धांगनानाम् – सिद्धजातीनाम् अंगनानां (मध्यमपदलोपी)
3. बिम्बफलप्रतिष्ठां – बिम्बफलस्य प्रतिष्ठां (तत्पु.)
4. राजीविनीजीवितवल्लभस्य – राजीविनीनाम् जीवितस्य वल्लभस्य (ष.त.)
5. यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

12.3 पारिभाषिक शब्दावली

1. धाराम्भसः – 1. तलवार की धार 2. जल का प्रवाह
2. पुण्डरीक – 'पुण्डरीकं सिताम्भोजम्' इत्यमरः। श्वेतकमल
3. चञ्चरीक – भौंरा
4. नन्दकः – 'कौमोदकी गदा खड्गो नन्दकः' इत्याकरः। (नन्दक नामक तलवार)
5. सान्द्रां – अतिशय (घनीभूत)
6. विस्फूर्जित – आविर्भाव
7. इभाननस्य – हाथी के मुख के समान मुख वाले (गणेश जी)
8. करशीकराणाम् – सूंड से करने वाले जल कणों का
9. अमर्त्यैः – देवताओं द्वारा।
10. सचेतसः – सहृदय (काव्य परिपक्व बुद्धि)
11. प्रौढ़िप्रकर्षेण – अर्थगतश्लेषगुण के आधिक्य के कारण या रस, गुण अलंकारादि की चमत्कृति।
12. कोविदाः – विद्वान्
13. व्युत्पत्ति – काव्य रचना के लिए प्रतिभा, उत्पत्ति व अभ्यास तीनों आवश्यक है। लोकशास्त्र है। लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्।
14. वैकटिकोपमानो–विकट कट्टर कोटि के काव्य समीक्षक
15. उल्लेखलीलाघटनापटूनाम् 1. सहृदय के पक्ष में – कविता लेखन रूप क्रीड़ा की रचना में कुशल 2. रत्न को कसौटी पर घिसने की क्रीड़ा में चतुर।
16. पुण्ड्रकशर्करा–गन्ने की चीनी
17. प्ररोहः – अंकुरण, उत्पत्ति
18. एकावलीवंश–बांस का वृक्ष, कहा जाता है इससे मोती निकलते हैं।
19. पङ्गेरुहस्य – कमल की
20. सुरसिन्धुतीरे – स्वर्गगंगा के तट पर
21. चञ्चुस्थितम् – चोंच में स्थित
22. चाटुषु – प्रियवचनों में, (मीठे प्रेमालापों में)
23. राजीविनीजीवितवल्लभस्य – कमलिनी के प्राणवल्लभ (सूर्य)
24. बिम्बमण्डल–गोला, 'बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु' इत्यमरः।
25. बिम्बफलप्रतिष्ठाम् – बिम्बफल की समानता को ;एक प्रकार का लाल रंग का फलद्ध।

12.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

प्र.1 कवि बिल्हण ने चालुक्य वंश की उत्पत्ति मानी है–
(अ) ब्रह्मा से (ब) विष्णु से (स) लक्ष्मी से(द) सरस्वती ( )

प्र.2 इस इकाई के सभी श्लोको में छंद है–
(अ) इन्द्रवज्रा (ब) उपेन्द्रवज्रा (स) उपजाति (द) वसन्ततिलका ( )

प्र.3 कवि बिल्हण ने किसी रीति में काव्य रचना की है–
(अ) गौड़ी (ब) वदर्भी (स) पाञ्चाली (द) आरभटी ( )

प्र.4 कवि ने अपने सूक्ति रत्नों को परीक्षार्थ प्रस्तुत किया है–
(अ) सहृदयों के विचार रूपी सान पर (ब) दुर्जनों के समक्ष
(स) अल्प बुद्धि वाले कवियों के समक्ष (द) आलोचकों के समक्ष ( )

प्र.5 कविता व केसर के लिए प्रसिद्ध है–
(अ) उत्तरभारत (ब) बंगाल (स) कश्मीर (द) हिमाचल प्रदेश ( )

प्र.6 निम्न श्लोकों का सप्रसंग अनुवाद कीजिये–
व्याख्या – 9 (i) व्याख्या – 16 (ii) व्याख्या – 19 (iii)
व्याख्या – 27 (iv) व्याख्या – 29 (v)

बोध–प्रश्नों के उत्तर

उ.1 अ
उ.2 स
उ.3 ब
उ.4 अ
उ.5 स
उ.6 व्याख्या संख्या– 9 देखिये
व्याख्या संख्या – 16 देखिये
व्याख्या संख्या – 19 देखिये
व्याख्या संख्या – 27 देखिये
व्याख्या संख्या – 29 देखिये

12.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने 'विक्रमांकदेवचरितम्' के 35 श्लोकों का प्रसंग संदर्भ सहित अनुवाद तथा व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी तथा उसमें निर्दिष्ट अलंकार के विषय में जाना। प्रस्तुत सम्पूर्ण 35 श्लोकों में छंद उपजाति ही है। कवि बिल्हण ने प्रथम आठ श्लाकों में मंगलाचरण के रूप में अपने आराध्यों की स्तुति की है। तदनन्तर वैदर्भी रीति की प्रशंसा की है क्योंकि कवि स्वयं वैदर्भी का प्रयोक्ता है। महाकवियों को काव्यार्थ को चुराने वाले अनेक दुर्जन हैं अतः उन्होंने कवियों को सावधान किया है। कवि ने रस ध्वनि से परिपूर्ण तथा व्युत्पन्न सहृदय कवियों की रचनाओं की प्रशंसा की है तथा दुर्जनों को धिक्कृत किया है क्योंकि उनका कार्य तो श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं में कमियाँ ढूँढना ही है। कवि बिल्हण अपनी रचना को विद्वत् समाज के समक्ष समालोचना के लिए प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रसंग म उन्होंने कश्मीर (अपने जन्म स्थान) की प्रशंसा भी की है, कविता व केसर कश्मीर को छोड़कर अन्यत्र उत्पन्न नहीं होते।

कवि बिल्हण ने कहा है कि कवि अच्छे राजाओं के राज्य की शोभा होता है तथा कवियों के द्वारा ही राजाओं की कीर्ति सर्वत्र फैलती है। बिल्हण 'विक्रमांकदेव' जैसे राजा का वर्णन करने जा रहे हैं अतः उनके उदात्त चरित के कारण सभी इस काव्य को पढ़ेंगे, उन्होंने अपने चरितनायक के वंश चालुक्य की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी है, इसी क्रम में ब्रह्मा का वर्णन, प्रातः काल का वर्णन तथा सूर्य का वर्णन किया है।

12.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विक्रमांकदेवचरितम्, विश्वनाथशास्त्रीभारद्वाज, हिन्दू विश्वविद्यालय साहित्य अनुसंधान समीति, बनारस,1965.
2. विक्रमांकदेवचरितम्, श्रीकान्तपाण्डेय, साहित्यभंडार, मेरठ, 2006.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए.बी.कीथ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999.
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1995.

इकाई – 13

चालुक्यवंशीय राजाओं का प्रताप वर्णन

(विक्रमांकदेवचरितम, प्रथम सर्ग, श्लोक 36 से 70)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 महाकवि बिल्हण कृत विक्रमांकदेवचरितम् महाकाव्य के 36 से 70 श्लोकों का सप्रसंग अनुवाद,व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी एवं काव्यगत वैशिष्ट्य

13.3 पारिभाषिक शब्दावली

13.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.5 सारांश

13.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य का परिचय कराना है। प्रथम सर्ग में चालुक्य वंश की उत्पत्ति तथा विक्रमांकदेव जैसे चरित नायक के बारे में आप इन श्लोकों के अनुवाद से जान पायेंगें। श्लोकों के अनुवाद के अतिरिक्त इस इकाई का उद्देश्य कवि बिल्हण के काव्य वैशिष्ट्य तथा उनकी वैचित्र्य मार्ग की काव्य परिपाटी तथा व्युत्पन्नता के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। कोई भी कृति कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सहृदय पाठक के सामने रख देती है, इस इकाई में आप कवि बिल्हण की उन सभी विशेषताओं से परिचित हो सकेगें।

13.0 प्रस्तावना

आपके एम.ए. उत्तरार्द्ध पञ्चम पत्र के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में 'विक्रमांकदेवचरितम' का प्रथम सर्ग है जिसमें से 36 से 70 तक श्लोकों की व्याख्या इस इकाई में की जायेगी। आप इस इकाई में इन श्लोकों के प्रसंग संदर्भ सहित अनुवाद, व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी तथा अन्य विशेषताओं के बारे में भी जान सकेंगें।

13.2 विक्रमांकदेवचरितम्' के 36 से 70 श्लाकों का सप्रसंग अनुवाद

व्याख्या

सुधाकरं वार्धकतः क्षपायाः संप्रेक्ष्य मूर्द्धानमिवानमन्तम्।
तद्विप्लवायेव सरोजिनीनां स्मितोन्मुखं पङ्कजवक्त्रमासीत्।।36।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं, वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – कवि ने इस श्लोक में प्रातः काल के वर्णन के क्रम में कमलिनियों के विकसित होने का वर्णन किया है।

अन्वय – क्षपायाः वार्धकतः आनमन्तम् इव सुधाकरं संप्रेक्ष्य सरोजिनीनां पङ्कजवक्त्रं तद्विप्लवाय इव स्मितोन्मुखम् आसीत्।

अर्थ – वृद्धावस्था के कारण रात्रि के झुकते हुए (काँपते हुए) चन्द्रमा के सिर को देखकर कमलिनियों के सुन्दर मुख मानों उस वृद्धावस्था की अवस्था में चन्द्रमा को चिढ़ाने के लिए

मुस्कुराने लगे। अर्थात् प्रातः कालीन अस्त होते चन्द्रमा तथा विकसित होने वाली कमलिनियों की कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षा की है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. सुधाकरं – सुधां करोति इति सुधाकरः (उपपद समास)
2. तद्विप्लवायेव – तस्या विप्लवाय (ष.त.)
3. स्मितोन्मुखं – स्मिताय उन्मुखं (च.त.)
4. पंकजवक्त्रम् – पंकजम् एव वक्त्रम् (कर्मधारय)
5. यहाँ उत्प्रक्षा, रूपक व समासोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

ज्ञात्वा विधातुश्चुलुकात्प्रसूतिं तेजस्विनोऽन्यस्य समस्तजेतुः।
प्राणेश्वरः पङ्कजिनीवधूनां पूर्वाचलं दुर्गमिवारुरोह।।37।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में कवि बिल्हण ने चालुक्य वंशी राजा की उत्पत्ति को प्रातःकालीन सूर्य के उदयाचल पर आरूढ़ होने से की है।

अन्वय – पङ्कजिनीवधूनां प्राणेश्वरः विधातुः चुलुकात् समस्तजेतः अन्यस्य तेजस्विनः प्रसूतिं ज्ञात्वा इव दुर्गम् पूर्वाचलम् आरुरोह।

अर्थ – कमलिनी रूपी वधुओं के प्राणेश्वर सूर्य ब्रह्मा जी के चुल्लू से (चालुक्य वंश का जन्म जानकर) सभी पुरुषों को जीत लेने वाले अन्य तेजस्वी पुरुष की उत्पत्ति जानकर (भगवान सूर्य) उदय पर्वत पर चढ़ गये। अर्थात् जब सूर्य ने देखा कि चालुक्य वंश में तेजस्वी राजा उत्पन्न हुआ है तो वह उदयाचल पर जाकर आरूढ़ हो गया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. समस्तजेतुः – समस्तस्य जेतुः (ष.त.)
2. प्राणेश्वरः – प्राणानां ईश्वरः। (ष.त.)
3. पङ्कजिनीवधूनाम् – पङ्कजिन्य एव वध्वः तासाम् (रूपक) तत्पु.
4. पूर्वाचल – पूर्वस्थम् – अचलं (मध्यमपदलोपी)
5. ज्ञात्वा – ज्ञा+क्त्वा
6. यहॉ उत्प्रेक्षा, रूपक व समासोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

जगाम याङ्गेषु रथाङ्गनाम्नां परस्परादर्शनलेपनत्वम्।
सा चन्द्रिका चन्दनपप्रकान्तिः शीतांशुशाणाफलके ममज्ज।।38।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – बिल्हण ने चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर चाँदनी भी छिप जाती है, इसका बहुत आलंकारिक भाषा में वर्णन किया है–

अन्वय – या रथांङ्गनाम्नां अङ्गेषु परस्परादर्शनलेपनत्वम् जगाम सा चन्दनपङ्ककान्तिः चन्द्रिका शीतांशु शाणाफलके ममज्ज।

अर्थ – रात्रि में चकवा व चकवी बिछुड़ जाते है, ऐसी प्रसिद्धि है। अतः कवि बिल्हण कहते हैं कि जो चांदनी चकवा व चकवी के अंगों को अदृश्य कर देने वाले अर्थात् वे दोनों

परस्पर एक दूसरे को न देख पाये, ऐसा लेप बन गयी, वही चन्दन के रंग वाली चाँदनी चन्द्रमा रूपी शाण (घिसने का पत्थर) में समाहित हो गयी। अर्थात् शाण जिस पर पत्थर घिसा जाता है मानों उस पर घिसने से क्षीण होकर लुप्त हो गयी है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. रथाङ्गनाम्नाम् – रथाङ्गं नाम येषां तेषाम् (बहुब्रीहि)
2. परस्परादर्शनलेपनत्वम् – परस्परस्य यत् अदर्शनम् तस्य लेपनम् (तत्पु.)
3. चन्दनपङ्ककान्तिः – चन्दनपङ्कस्य कान्ति इव कान्ति यस्याः सा (बहु.)
4. शीतांशुशाणफलके – शीतांशु एव शाणाफलकं (कर्मधारय) तस्मिन्
5. ममज्ज – मज्ज, लिट् प्र.ए.व.
6. यहाँ उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा व अनुप्रास आदि अलंकार है।

व्याख्या

सन्ध्यासमाधौ भगवाँस्थितोऽथ शक्रेण बद्धाञ्जलिना प्रणम्य।
विज्ञापितः शेखरपारिजात–द्विरेफनादद्विगुणैर्वचोभिः।।39।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में कवि ने इन्द्र द्वारा ब्रह्मा की स्तुति का वर्णन किया है।

अन्वय – अथ सन्ध्या समाधौ स्थितः भगवान बद्धाञ्जलिना शक्रेण प्रणम्य शेखरपारिजातद्विरेफनादद्विगुणैः वचोभिः विज्ञापितः।

अर्थ – इसके बाद सन्ध्याकाल की समाधि (ध्यान) में स्थित ब्रह्मा को इन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रणाम करके सिर पर स्थित कल्पवृक्ष के फूलों में विद्यमान भौंरों की ध्वनि के कारण दुगुनी ऊँची ध्वनि में निवेदन किया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. बद्धाञ्जलिना – बद्धा अञ्जलिः येन तेन (बहुब्रीहि)
2. शेखरपारिजातद्विरेफनादद्विगुणैः – शेखरे यानि पारिजातानि तत्र स्थितानां भ्रमराणां नादेन द्विगुणैः (तत्पु.स.)
3. सन्ध्यासमाधौ – सन्ध्यायाः समाधौ (ष.त.) सम्+धा+कि
4. विज्ञापित – वि+ज्ञा+णिच्+क्त।
5. यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

आस्ते यदैरावतवारणस्य मदाम्बुसङ्गान्मिलितालिमाला।
साम्राज्यलक्ष्मीजयतोरणाभे दन्तद्वये वन्दनमालिकेव।।40।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण ङ्गत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में इन्द्र का वर्णन करते हुए कवि ने इन्द्र के वैभव व उनके ऐरावत हाथी का वर्णन किया है।

अन्वय – यत् ऐरावतवारणस्य साम्राज्यलक्ष्मीजयतोरणाभे दन्तद्वये मदाम्बुसंगात् मिलिता अलिमाला वन्दनमालिका इव आस्ते।

अर्थ – इन्द्र ब्रह्मा की स्तुति करते हुए कहते हैं कि यह जो (मेरे) ऐरावत नामक हाथी के समस्त, संसार की विजयश्री के तोरण द्वारों की शोभा वाले दोनों दांतों में मदजल के सम्पर्क

से चिपटी हुई भौंरों की पंक्ति (मुख्यद्वारा की शोभा बढ़ाने वाली) वन्दनवार की भाँति सुशोभित है। अर्थात् ऐरावत के दांतों पर भौंरें ऐसे बैठे है जैसे खम्भों पर वन्दनवार बंधी हो।

इस श्लोक से लेकर 43वें श्लोक तक इन चार श्लोकों में अर्थ की पूर्ति हो रही है। अतः इसे कलापक कहते है और कश्मीर में इसे चक्कलक कहते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. ऐरावतवारणस्य – ऐरावताख्यः वारणः तस्य (मध्यमपद लोपी समास)
2. साम्राज्यलक्ष्मी जयतोरणाभे–साम्राज्यलक्ष्म्याः जयः तस्य तोरणयोः आभा इव आभा यस्य तस्मिन् (बहुब्रीहि)।
3. दन्तद्वये – दन्तयोः द्वयम् तस्मिन् (तत्पु.)
4. मदाम्बुसंगात् – मद एव अम्बु (कर्मधारय) तस्य सगांत् (तत्पु.)
5. वन्दनमालिका – वन्दनाय मालिका (तत्पु.)
6. यहाँ उपमा अलंकार है।

व्याख्या

यदातपत्रं मम नेत्रपद्म–सहस्त्रलोलालिकदम्बनीलम्।
कुरंगनाभीतिलकप्रतिष्ठां मुखे समारोहति राजलक्ष्म्याः।।41।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक ड्डति है।

प्रसंग – ब्रह्मा से वार्तालाप करते हुए इन्द्र अपने वैभव को ब्रह्मा का ही प्रसाद मानते हैं तथा आतपत्र का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

अन्वय – यत् मम नेत्रपद्यसहस्रोलोलालिकदम्बनीलम् आतपत्रम् राजलक्ष्म्याः मुखे कुरङ्गनाभीतिलकप्रतिष्ठाम् समारोहति।

अर्थ – जो यह मेरा नेत्र रूपी सहस्त्र कमलों में स्थित चञ्चल पुतलियों के समान चञ्चल भ्रमर समूह की नीलिमा के समान नीले रंग का आतपत्र (छत्र) राज्य लक्ष्मी के मुख पर कस्तूरी के तिलक की शोभा दे रहा है अर्थात् भौंरों से घिरा हुआ मेरा छत्र कस्तूरी के तिलक के समान प्रतीत हो रहा है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. नेत्रपद्यसहस्त्रलोलालिकदम्बनीलम् – नेत्राणि एव पद्मानि नेत्रपद्मानि तेषां सहस्त्रं नेत्रपद्मसहस्त्रं तत्र स्थिताः लोला अलयः, तेषाम् कदम्बेन नीलम् (कर्मधारय, तत्पुरूष)
2. राजलक्ष्म्याः – राज्ञः लक्ष्मी तस्याः (तत्पु.)
3. कुरंगनाभीतिलकप्रतिष्ठाम् – कुरंगस्य नाभी कुरंगनाभी तस्याः यः तिलकः तस्य प्रतिष्ठा, ताम् (तत्पु.)
4. नीले छत्र की कस्तूरी तिलक पर सम्भावना से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

यन्नन्दने कल्पमहीरुहाणां छायासु विश्रम्य रतिश्रमेण।
गायन्ति में शौर्यरसोर्जितानि गीर्वाणसारंगदृशो यशांसि।।42।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति ह।

प्रसंग – इन्द्र अपने सम्पूर्ण वैभव का कारण ब्रह्मा की कृपा ही बताते हैं तथा देवानंगनाओं द्वारा अपने यशोगान का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

अन्वय – यत् गीर्वाणसारंगदृशः नन्दने कल्पमहीरुहाणाम् छायासु रतिश्रमेण विश्रम्य में शौर्यरसोर्जितानि यशांसि गायन्ति। (स त्वपादसेवारजसां प्रभावः)

अर्थ – जो देवांगनाएँ (देवों की मृगनयनियाँ, देवांगनाएँ) नन्दन वन में कल्पवृक्षों की छाया में रतिश्रम (संभोग) की थकान के बाद विश्राम करके शौर्य रस से परिपूर्ण मेरे यशों का गान करती है। (यह सब कुछ आपकी चरणधूलि का प्रभाव है।)

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. कल्पमहीरुहाणाम् – कल्पाश्च ते महीरुहाश्च कल्पमहीरूहाः, तेषाम् (कर्म.)
2. शौर्यरसोर्जितानि – शौर्यस्य रसः शौर्यरसः तेन अर्जितानि (तत्पु.)
3. गीवार्णसारंगस्यदृशः – सारंगाणाम् दृशः इव दृशः यासां ताः, गीर्वाणानां सारंगदृशः गीवार्णसारंग दृशः (बहुब्रीहि)
4. नन्दने – नदि+ल्यु ;अनद्ध
5. सारंगदृशः में उपमा अलंकार है।

व्याख्या

किं वा बहूक्तैः पुरुहूत एष पात्रं महिम्नो यदनङ्कुशस्य।
स्वामिन् स सर्वोऽपि शिरोधृतानां त्वत्पादसेवारजसां प्रभावः।।43।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – इस श्लोक में इन्द्र अपने सम्पूर्ण वैभव का गान करते हुए अन्त में ब्रह्मा जी से कहते हैं कि यह सब आपके चरण रज का ही प्रभाव है।

अन्वय – स्वामिन वा बहूक्तै : किम्। यत् एव पुरुहूत अनङ्कुशस्य महिम्नः पात्रम् (अस्ति) स सर्वः अपि शिरोधृतानां त्वत्पादसेवारजसाम् प्रभावः।

अर्थ – अथवा अधिक कहने से क्या लाभ, यह इन्द्र जो अखंड महिमा का पात्र बना है हे स्वामिन्! वह सभी सिर पर धारण की हुई आपकी चरण सेवा की धूलि का प्रभाव है। अर्थात् आपकी सेवा से ही मैं महानता को प्राप्त हूँ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. शिरोधृतानां – शिरसा धृतानां (ष.त.)
2. बहूक्तै : – बहूनि उक्तानि बहूक्तानि तैः (कर्मधारय)
3. त्वदपादसेवारजसाम् – तव पादौ त्वद्पादौ तयोः सेवा त्वद्पादसेवा तस्याः रजसाम् (तत्पु.)
4. महिम्नः महत्+इमनिच् (षष्ठी)
5. उपर्युक्त श्लोक में ब्रह्मा के प्रति इन्द्र की विनम्रता व भक्तिभाव का प्रदर्शन है।
6. यहाँ अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।

व्याख्या

निवेदितश्चारजनेन नाथ तथा क्षितौ सम्प्रति विप्लवो मे।
मन्ये यथा यज्ञविभागभोगः स्मर्तव्यतामेष्यति निर्जराणाम्।।44।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – इन्द्र अपने वैभव का सम्पूर्ण श्रेय ब्रह्मा को देते है तथा तत्पश्चात् अपने आगमन व चिन्ता का कारण बताते हैं कि –

अन्वय – नाथ! चारजनेन सम्प्रति क्षितौ तथा विप्लवः मे निवेदितः यथा निर्जराणां यज्ञविभागभोगः स्मर्तव्यताम् एष्यति (इति) मन्ये।

अर्थ – हे प्रभु! गुप्तचरों ने इस समय पृथ्वी पर इस प्रकार के उपद्रव की मुझे सूचना दी है जिससे देवताओं के यज्ञ में प्राप्त होने वाले विभागों का भोग स्मरण का विषय बन जायेगा अर्थात् यज्ञ भाग न मिल पाने के कारण देवता भूखे रह जायेंगे तथा पाप कार्य बढ़ने से भविष्य में यज्ञकर्म समाप्त हो जायेगा।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. चारजनेन – चारश्चासौ जनः चारजनः तेन चारजनेन।
2. विप्लवः – वि+प्लु+अप्।
3. यज्ञविभागभोगः – यज्ञेषु ये विभागाः तेषांभोगः (तत्पु.)
4. स्मर्तव्यताम् – स्मर्तुं योग्यं स्मर्तव्यम् (स्मृ+तव्य.)
5. पृथ्वी पर दैत्यों का साम्राज्य तथा देवों की महिमा के पतन के विषय में चिन्ता व्यक्त की है।

व्याख्या

धर्मद्रुहामत्र निवारणाय कार्यस्त्वया कश्चिदवार्यवीर्यः।
रवेरिवांशुप्रसरेण यस्य वंशेन सुस्थाः ककुभः क्रियन्ते।।45।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में इन्द्र ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना की है जिसमें उन्होंने पृथ्वी पर अधर्म के विनाश के लिए किसी महापुरुष की उत्पत्ति की बात की है।

अन्वय – अत्र धर्मद्रुहां निवारणाय त्वया कश्चिद् अवार्यवीर्यः कार्यः। यस्य वंशेन रवे अंशु प्रसरेण इव ककुभः सुस्थाः क्रियन्ते।

अर्थ – इस पृथ्वी पर अधर्मियों का नाश करने के लिए आप किसी अप्रतिहत शक्तिशाली वीर की उत्पत्ति कीजिये। जिसके वंश के द्वारा सूर्य के किरणों के प्रसार के समान दिशायें स्वच्छ हो जायें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. धर्मद्रुहाम् – धर्माय द्रुहयति। तेषाम् (च.त.)
2. अवार्यवीर्य – अवार्यः वीर्य यस्य सः (बहुब्रीहि)
3. निवारणाय – नि+वृ+णिच्+ल्युट् (चतुर्थी)
4. कार्य – कृ+ण्यत्।
5. अंशुप्रसारेण – अंशूनाम् प्रसारः तेन (तत्पु.)
6. सुस्थाः – सु+स्था+क
7. यहाँ अनुप्रास एवं उपमा अलंकार है।

व्याख्या

पुरन्दरेण प्रतिपाद्यमान–मेवं समाकर्ण्य वचो विरञ्चिः।
सन्ध्याम्बुपूर्णे चुलुके मुमोच ध्यानानुबिद्धानि विलोचनानि।।46।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में इन्द्र द्वारा ब्रह्मा से पृथिवी पर अधर्मनाश की बात कहने पर ब्रह्मा ने अपनी समाधि को भंग कर जल को देखा।

अन्वय – विरञ्चिः पुरन्दरेण एवं प्रतिपाद्यमानं वचः समाकर्ण्य सन्ध्याम्बुपूर्णे चुलुके ध्यानानुविद्धानि विलोचनानि मुमोच।

अर्थ – ब्रह्मा ने इन्द्र द्वारा इस प्रकार कहे गये वचनों को सुनकर सन्ध्या सम्बन्धी जल से भरी अंजुली पर अपने ध्यानयुक्त नेत्रों को डाला अर्थात् ध्यानपूर्वक देखा।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. विरञ्चि–ब्रह्मा, विरञ्चिः कमलासनः इत्यमरः।
2. प्रतिपाद्यमानम् – प्रति+पद्+णिच्+यक्+शानच्।
3. समाकर्ण्य – सम.+आ+कर्ण+ल्यप्।
4. संध्याम्बुपूर्णे – सन्ध्यार्थम् अम्बु, तेन पूर्णे (मध्यमदलोपी)
5. ध्यानानुविद्धानि – ध्यानेन अनुविद्धानि (तृ.त.)
6. अनुविद्ध – अनु+व्यध्+क्त ।

व्याख्या

प्रकोष्ठपृष्ठस्फुरदिन्द्रनील–रत्नावलीकप्रणडम्बरेण।
बन्धाय धर्मप्रतिबन्धकानां वहन्सहोत्थानिव नागपाशान्।।47।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – इन्द्र की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने पृथ्वी पर अधर्म के विनाश के लिए जल को देखकर एक प्रतापी वीर की उत्पत्ति करनी चाही। प्रस्तुत श्लोक में इन्हीं भावों का वर्णन है।

अन्वय – प्रकोष्ठपृष्ठस्फुरदिन्द्रनीलरत्नावलीकङ्कणडम्बरेण धर्मप्रतिबन्धकानां बन्धाय सहोत्थान् नागपाशान् इव व हन् (विधातुः चुलुकात् सुभट आविरासीत्)।

अर्थ – अपनी कलाई पर इन्द्रनील मणि रत्नों से जड़े कमल के बहाने धर्मविद्रोही प्राणियों को बांधने के लिए साथ में उत्पन्न होने वाले नागपाशों को मानों वहन करते हुए (विधाता के चुल्लू से एक वीर की उत्पत्ति हुई)।

47 से 55 तक (विधातुः चुलुकात् सुभट आविरासीत्) 5 श्लोकों में अर्थ की पूर्ति हो रही है। अतः यहाँ 'कुलक' का प्रयोग है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. प्रकोष्ठपृष्ठस्फुरदिन्द्रनीलरत्नावलीकङ्कणडम्बरेण – प्रकोष्ठस्य पृष्ठे स्फुरन्तीनां इन्द्रनीलरत्नावलीनां कङ्कणस्य डम्बरेण (तत्पुरुष)।
2. धर्मप्रतिबन्धकानाम् – धर्मस्य प्रतिबन्धकाः धर्मप्रतिबन्धकाः तेषाम् धर्मप्रतिबन्धकानाम् (ष. तत्पु)।
3. नागपाशान् – नागानां पाशान् (ष.त.)।

विशेष – ब्रह्मा के संकल्प से चुल्लू के जल से चालुक्य वंश की उत्पत्ति मानी है। कवि बिल्हण राजा के दैवीय उत्पत्ति सिद्धान्त को मानते हैं। नागपाश की सम्भावना में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

उत्तर्जनीकेन मुहुःकरेण कृताकृतावेक्षणबद्धलक्षः।
रुषा निषेधन्निव चेष्टितानि दिक्पालवर्गस्य निरर्गलानि।।48।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में कवि बिल्हण कहते हैं कि ब्रह्मा के संकल्प से जो चालुक्यवंशी वीर उत्पन्न हुआ, उसकी तर्जनी अंगुली उठी हुई थी, जैसे वह अनुचित कार्यो का निषेध कर रहा हो।

अन्वय – कृताकृतवेक्षणबद्धलक्ष्यः (सः) उत्तर्जनीकेन करेण दिक्पालवर्गस्य निरर्गलानि चेष्टानि रुषा मुहुः निषेधन्निव (कश्चित् सुभटः आविरासीत्)।

अर्थ – उचित व अनुचित कार्यो के निरीक्षण में लगे ध्यान वाला वह ऊपर उठी हुई तर्जनी अंगुली के द्वारा दिक्पालों के निरप्रुश कार्यो का क्रोध के साथ बार–बार निषेध करता हुआ सा (कोई वीर पुरुष उत्पन्न हुआ)।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. उत्तर्जनीकेन – उद्गता तर्जनी यस्मिन् तेन (बहुब्रीहि)।
2. कृताकृतावेक्षणबद्धलक्ष्यः – कृतम् च अकृतम् च कृताकृतम् (द्वन्द्व) तस्य अवेक्षणे बद्ध लक्ष्यं येन सः (बहुब्रीहि)।
3. दिक्पालवर्गस्य – दिशां पालाः दिक्पालाः तेषां वर्गः दिक्पालवर्गः तस्य (तत्पुरूष)।
4. निरर्गलानि – निर्गतानि अर्गलानि इति (तत्पु.)।
5. यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

भोगाय वैपुल्यविशेषभाजं कर्तुं धरित्रीं निजवंशजानाम्।
केयूरसङ्क्रान्तविमानभंग्या भुजोद्धृक्ष्माभृदिवेक्ष्यमाणः।।49।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – चालुक्यवंशी उत्पद्यमान पुरुष का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं –

अन्वय – निजवंशजानां भोगाय धरित्रीं वैपुल्यविशेषभाजं कर्तुं केयूरसङ्क्रान्तविमानभङ्ग्या भुजोद्धृतक्ष्माभृत् इव ईक्ष्यमाणः (विधातुः चुलुकादाविरासीत्)।

अर्थ – अपने वंश में उत्पन्न होने वाले पुरुषों के उपभोग के लिए पृथ्वी को ओर अधिक विशाल बनाने के लिए, बाजूबन्दों में प्रतिबिम्बित विमानों क बहाने, भुजाओं के द्वारा पहाड़ों को ऊपर उठाये हुए था, ऐसा दिखायी देने वाला (वीर ब्रह्मा की अंजलि से उत्पन्न हुआ)।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. वैपुल्यविशेषभाजं – विपुलस्य भावः (विपुल+ष्यञ्) वैपुल्यस्य विशेषं भजते तं वैपुल्यविशेषभाजां।
2. केयूरसंक्रान्तविमानभङ्ग्या – केयूरयोः संक्रान्तानाम् विमानानां भङ्ग्या (ष.त.)।
3. भुजोद्धृतक्ष्माभृत् – भुजाभ्यां उद्धृतःक्ष्माभृत् येन सः (बहुब्रीहि)।
4. ईक्ष्यमाण – ईक्ष् + यक् + शानच्।
5. 'मानों भुजाओं से पहाड़ उठाये हुए' यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

अखवंगर्वस्मितदन्तुरेण विराजमानोऽधरपल्लवेन।
समुत्थितः क्षीरविपाण्डुराणि पीत्वेव सद्यो द्विषतां यशांसि।।50।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गये उसी वीर पुरुष के वीरतापूर्ण कार्यों का ही वर्णन है।

अन्वय – अखर्वगर्वस्मितदन्तुरेण अधरपल्लवेन विराजमानं क्षीरविपाण्डुराणि द्विषतां यशांसि सद्यः पीत्वा इव समुत्थितः (विधातुश्चुलुकादाविरासीत्)।

अर्थ – अत्यधिक अभिमान के कारण उत्पन्न मन्दहास से सुन्दर पल्लव रूपी अधरोष्ठ से विराजमान
दूध के समान शत्रुओं क उज्ज्वल यशों को पीकर अभी मानों उठा हुआ (ब्रह्मा की अंजुली से वीर पुरुष उत्पन्न हुआ)।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. अखर्वगर्वस्मितदन्तुरेण – अखर्वश्चासौ गर्वः अखर्वगर्वः तेन यत् स्मितं तेन दन्तुरम् तेन (तत्पुरूष)।
2. अधरपल्लेवन – अधरः एव पल्लवं तेन (कर्मधारय)।
3. क्षीरविपाण्डुराणि – क्षीरं इव विपाण्डुरं तानि (कर्मधारय)।
4. यहाँ उपमा, रूपक व उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

सुवर्णनिर्माणमभेद्यमस्त्रैः स्वभावसिद्धं कवचं दधानः।
जयश्रियः काञ्चनविष्टराभं समुद्वहन्नुन्नतमंसकूटम्।।51।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी वीर पुरूष के उत्पन्न होने का वर्णन है।

अन्वय – अस्त्रैः अभेद्यं सुवर्णनिर्माणं स्वभावसिद्धं कवचं दधानः जयश्रियः काञ्चनविष्टराभम् उन्नतम् अंसकूटं समुद्वहन् (विधातुः चुलुकादाविरासीत्)।

अर्थ – जन्म के समय सोने के बने हुये और अस्त्रों से न कटने वाले ऐसे कवच को धारण करता हुआ तथा विजयश्री के सोने के आसन के समान ऊँचे कन्धे को धारण करता हुआ। (विधाता के चुलुक से ऐसा वोर पुरुष उत्पन्न हुआ)।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. सुवर्णनिर्माणम् – सुवर्णेन निर्माणं यस्य तम् (बहुब्रीहि)।
2. स्वभावसिद्धं – स्वभावात् सिंद्धं (तत्पु.)।
3. काञ्चनविष्टराभं – काञ्चनस्य विष्टरः तस्य आभा इव आभा यस्य तं (बहुब्रीहि)।
4. दधानः – धा+शानच् (प्र.ए.व.)।
5. समुद्वहन् – सम्+उद्+वह्+शतृ (प्र.ए.व.)।
6. यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

स्वःसुन्दरीबन्दिपरिग्रहाय दत्तोऽञ्जलिः सम्प्रति दानवेन्द्रैः।
इति प्रहर्षादमरांगनानां नेत्रोत्पलश्रेणिभिरर्च्यमानः।।52।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी चालुक्य वंशी वीर राजा की उत्पत्ति का वर्णन है।

अन्वय – सम्प्रति दानवेन्द्रैः स्वःसुन्दरीबन्दिपरिग्रहाय अञ्जलिः दत्तः इति प्रहर्षात् अमराङ्गनानां नेत्रोत्पलश्रेणिभिः अर्च्यमानः (विधातुः चुलुकादाविरासीत्)।

अर्थ – उस वीर के उत्पन्न हो जाने पर इस समय दानवेन्द्रों (राक्षसों के राजाओं) ने स्वर्ग की सुन्दर स्त्रियों को ग्रहण करना छोड़ दिया, इस हर्ष के कारण देवाङ्गनाओं के नेत्र रूपी कमलों के समूह के द्वारा अर्चित होता हुआ, (वह वीर पुरुष ब्रह्मा की अंजुली से उत्पन्न हुआ)।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. स्वः सुन्दरीबन्दिपरिग्रहाय – स्वः सुन्दरीणाम् बन्दिपरिग्रहाय (तत्पुरुष)।
2. दानवन्द्रैः – दानवानाम् इन्द्राः तैः (ष.त.)।
3. अमराङ्गनानां – अमराणाम् अंगनाः तासां (तत्प.)।
4. नेत्रोत्पलश्रेणिभिः – नेत्राणि उत्पलानि इव (कर्मधारय) तेषां श्रेणिभिः (तत्पु.)।
5. अर्च्यमानः – ऊर्च् + यक् + शानच्।
6. यहाँ रूपक व उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

व्याख्या

अपि स्वयं पङ्कजविष्टरेण देवेन दृष्टश्चिरमुत्सुकेन।
वाञ्छाधिकप्रस्तुतवस्तुसिद्धि–सविस्मयस्मेरमुखाम्बुजेन।।53।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी उसी वीर पुरुष का वर्णन है।

अन्वय – वाञ्छाधिकप्रस्तुतवस्तुसिद्धिसविस्मयस्मेरमुखाम्बुजेन उत्सुकेन पङ्कजविष्टरेण देवेन अपि स्वयं चिरं दृष्टः (सुभट विधातुः चुलुकादाविरासीत्)।

अर्थ – अपनी अभिलाषा या आकांक्षा से अधिक प्रभावशाली वस्तु अर्थात् राजा की उत्पत्ति के कारण विस्मय और मुस्कुराहट वाले मुखकमल को धारण करन वाले उत्सुक कमल के आसन पर विराजमान ब्रह्मा ने स्वयं उसे चिरकाल तक देखा। (ऐसा विधाता की अंजुली से वीर पुरुष उत्पन्न हुआ)।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. पङ्कजविष्टरेण – पङ्कज विष्टरः यस्य तेन (बहुब्रीहि)।
2. वाञ्छाधिक प्रस्तुतवस्तुसिद्धिसविस्मयस्मेरभुखाम्बुजेन – वाञ्छायाः अधिका, प्रस्तुतस्य वस्तुनः सिद्धिः तया सविस्मयं स्मेरं मुखं एव अम्बुजं यस्य तेन (बहुब्रीहि)।
3. दृष्टः – दृश्+क्त।
4. यहाँ अनुप्रास व रूपक अलंकार है।

व्याख्या

कषोपले पौरुषकाञ्चनस्य पप्रे यशः–पाण्डुसरोरुहाणाम्।
व्यापारयन्दृष्टिमतिप्रहृष्टा–मवाप्तपाणिप्रणये कृपाणे।।54।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी उसी वीर पुरुष की उत्पत्ति का वर्णन है।

अन्वय – पौरुषकाञ्चनस्य कषोपले यशः पाण्डुसरोरुहाणाम् पप्रे अवाप्तपाणिप्रणये कृपाणे अतिप्रहृष्टां दृष्टिं व्यापारयन् (सुभटः विधातुः चुलुकादाविरासीद्)।

अर्थ – पुरुषार्थ रूपी सोने की काली कसौटी रूप तथा यशरूपी श्वेत कमलों को उत्पन्न करने वाले कीचड़ में हाथ के प्रणय को प्राप्त करने वाली तलवार के प्रति अत्यन्त प्रसन्नता युक्त दृष्टि से देखता हुआ (वह वीर ब्रह्मा की अंजलि से उत्पन्न हुआ)।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. पौरुषकाञ्चनस्य – पौरुषमेव काञ्चनं तस्य (तत्पु.)।
2. कषोपले – कषस्य उपलः कषोपलः तस्मिन् (तत्पु.)।
3. यशः पाण्डुसरोरूहाणाम् – यशः एव पाण्डुसरोरूहं तेषां। (कर्मधारय)।
4. अवाप्तपाणिप्रणये – अवाप्तः पाणेः प्रणयः येन तस्मिन् (बहुब्रीहि)।
5. यहाँ रूपक अलंकार है।

व्याख्या

हेमाचलस्येव कृतः शिलाभिरुदारजाम्बूनदचारुदेहः।
अथाऽऽविरासीत्सुभटस्त्रिलोक–त्राणप्रवीणश्चुलुकाद्विधातुः।।55।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में ब्रह्मा के चुल्लू से उत्पन्न उस वीर पुरुष का वर्णन करते हुए अंत में कहते है।

अन्वय – हेमाचलस्य शिलाभिः कृतः इव उदारजाम्बूनदचारुदेहः त्रिलोकत्राणप्रवीणः सुभटः विधातुः चुलुकात् आविरासीत्।

अर्थ – सुमेरु पर्वत के पाषाणों से रचा गया सुन्दर सोने की देह वाला तीनों लोकों की रक्षा करने में समर्थ वीर विधाता के चुल्लू से प्रकट हुआ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. हेमाचलस्य – हेम्नः अचल तस्य। (ष.त.)
2. उदारजाम्बूनदचारुदेहः – उदारं जाम्बू नदं (कर्मधारय) उदारजाम्बूनदं तद्वत् चारुः देहः यस्य सः (तत्पु.)।
3. सुभटः – शोभनः भटः (कर्मधारय)।
4. त्रिलोकत्राणप्रवीणः – त्रिलोकस्य त्राणम् त्रिलोकत्राणम् तस्मिन् प्रवीणः (तत्पु.)।
5. इसमें पाषाण खण्डों के समान उस वीर पुरुष की देह दृढ़ व शरीर स्वर्ण के समान कान्तिमान था। यहाँ उपमा व उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

प्रस्थाप्य शक्रं धृतिमान्भवेति हर्षाश्रुपारिप्लवदृक्सहस्रम्।
स शासनात्पङ्करुहासनस्य मरुद्विपक्षक्षयदीक्षितोऽभूत्।।56।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – ब्रह्मा के चुल्लू से उत्पन्न होने के पश्चात् उस वीर पुरुष ने क्या किया? इसका वर्णन प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

अन्वय – सः हर्षाश्रुपारिप्लदृक्सहस्रं शक्रं धृतिमान् भव इति प्रस्थाप्य पङ्करुहासनस्य शासनात् मरुद्विपक्षक्षयदीक्षितः अभूत्।

अर्थ – वह वीर पुरूष हर्ष से उत्पन्न आँसुओं से पूर्ण तथा चञ्चल एक हजार नेत्रों वाले इन्द्र को धैर्य धारण करो' इस प्रकार कहकर विदा करके ब्रह्मा जी के आदेश से देवताओं के शत्रुओं (दैत्यों) के विनाश के कार्य में लग गया।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. हर्षाश्रुपारिप्लवदृक्सहस्रं – हर्षाश्रुभिः पारिप्लवं दृक्सहस्रम् यस्य तम् (बहुब्रीहि)।
2. पङ्केरुहासनस्य – पङ्के रुहं आसनं यस्य तस्य (बहुब्रीहि)।
3. मरुद्विपक्षक्षयदीक्षितं – मरुतां विपक्षाणाम् क्षये दीक्षितः (तत्पु.)।
4. धृतिमान् – धृतिरस्यास्तीति, धृति+मतुप्।
5. यहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार है।

व्याख्या

क्षमाभृत्कुलानामुपरिप्रतिष्ठामवाप्य रत्नाकरभोगयोग्यः।
क्रमेण तस्मादुदियाय वंशः शौरेः पदाद्गाङ्ग इव प्रवाहः।।57।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – ब्रह्मा के प्रताप से उत्पन्न चालुक्यवंशी वोर पुरुष के वीरतापूर्ण कार्यो तथा उसके वंश के प्रवाह का कवित्वपूर्ण वर्णन करते हुए कवि कहते है–

अन्वय – तस्मात् क्रमेण क्षमाभृत्कुलानाम् उपरि प्रतिष्ठाम् अवाप्य रत्नाकर भोगयोग्य वंश शौरेः पदात् गाङ्ग प्रवाह इव उदियाय।

अर्थ – सभी राजाओं के मध्य सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठा को प्राप्त करके नाना प्रकार के रत्नों का उपभोग करने वाला राजवंश उसी प्रकार उत्पन्न हुआ जिस प्रकार विष्णु के चरण से पर्वतों के समूहों के ऊपर स्थिति प्राप्त करके समुद्र के उपभोग के योग्य गंगा का प्रवाह वृद्धि को प्राप्त होता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. क्षमाभृतकुलानामुपरि – क्ष्मां बिभर्तीति क्षमाभृत् क्ष्माभृतां कुलानाम् उपरि (ष.त.)।
2. रत्नाकरभोगयोग्यः – रत्नाकरस्य भोगाय योग्यः (तत्पु.)।
3. अवाप्य – अव+आप्+क्त्वा।
4. शौरे – शूरस्य गोत्रापत्यं पुमान् शौरिः शूर + इञ्।
5. गाङ्ग – गंगाया अयम् गङ्गा+अण्।
6. यहाँ श्लेष व उपमा अलंकार है।

व्याख्या

विपक्षवीराद्भुतकीर्तिहारी हारीत इत्यादिपुमान्स यत्र।
मानव्यनामा च बभूव मानी मानव्ययं यः कृतवानरीणाम्।।58।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – चालुक्यवंशी वीर पुरुष की उत्पत्ति के आलंकारिक वर्णन को करने के पश्चात् प्रस्तुत श्लोक में कवि ने चालुक्यवंशी राजाओं के आदिपुरुष का उल्लेख किया है।

अन्वय – यत्र विपक्षाद्भुतकीर्तिहारी हारीतः इति आदिपुमान् बभूव। यः अरीणां मानव्ययं कृतवान् सः मानी मानव्यनामा च बभूव।

अर्थ – जहाँ विपक्षी राजाओं की अद्भुत कीर्ति का हरण करने वाला 'हारीत' नाम वाला आदि पुरुष हुआ तथा शत्रुओं के अभिमान को तोड़ने वाला स्वाभिमानी मानव्यनाम का राजा भी हुआ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. विपक्षाद्भुतकीर्तिहारी – कीर्तिं हरति इति कीर्तिहारी। अद्भुत रूपेण कीर्तिहारी (मध्यमपदलोपी) विपक्षवीराणां अद्भुत् कीर्तिहारी।
2. मानव्यनामा – मानव्यः नाम यस्य सः (बहुब्रीहि)।
3. मानव्ययं – मानस्य व्ययं (तत्पु.)।
4. 'कीर्तिहारी हारीत' यहाँ यमक अलंकार है।

व्याख्या

मीलद्विलासालकपल्लवानि विशीर्णपत्रावलिमण्डनानि।
मुखानि वैरिप्रमदाजनस्य यद्भूपतीनां जगदुः प्रतापम्।।59।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में कवि बिल्हण चालुक्य वंश के राजाओं के प्रताप का वर्णन कर रहें हैं तथा शत्रुओं की स्त्रियों के अलंकारविहीन मुख राजा के प्रताप को ही बता रहे हैं।

अन्वय – मीलद्विलासालकपल्लवानि विशीर्णपत्रावलिमण्डनानि वैरिप्रमदाजनस्य मुखानि यद्भूपतीनां प्रतापं जगदुः।

अर्थ – शत्रु राजाओं की स्त्रियों के विलास से रहित घुंघराले केश तथा खण्डित पत्रावली रूप मण्डनों से युक्त मुख चालुक्य वंशी राजाओं के प्रताप को कह रहे थे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. मीलद्विलासालकपल्लवानि – मीलन्ति विलासार्धम् अलकपल्लवानि येषु तानि (बहुब्रीहि)।
2. वैरिप्रमदाजनस्य – वैरिणाम् प्रमदाजनस्य (ष.त.)।
3. विशीर्णपत्रावलिमण्डनानि – विशीर्णानि पत्रावलीनामा मण्डनानि येषु तानि (बहुब्रीहि)।
4. यहाँ रूपक एवं अतिशयोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

उत्खातविश्वोत्कटकण्टकानां यत्रोदितानां पृथिवीपतीनाम्।
क्रीडागृहप्राङ्गणलीलयैव बभ्राम कीर्तिर्भुवनत्रयेऽपि।।60।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – चालुक्य वंशी राजाओं के वीरतापूर्ण कार्यो की प्रसिद्धि तीनों लोकों में व्याप्त हो गयी, इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

अन्वय – यत्र उदितानाम् उत्खातविश्वोत्कटकण्टकानां पृथ्वीपतीनां कीर्तिः क्रीडागृहप्रांगणलीलया इव भुवनत्रये अपि बभ्राम।

अर्थ – जिस चालुक्य वंश में उत्पन्न हुए राजाओं ने विश्व के बड़े–बड़े शक्तिशाली शत्रु रूपी कण्टकों को उखाड़कर फैंक दिया था उन राजाओं की कीर्ति क्रीडागृह के प्रांगण सी लीला के साथ तीनों लोकों में घूम रही थी अर्थात् उन चालुक्यवंशी राजाओं की कीर्ति तीनों लोकों में इस प्रकार घूम रही थी जैसे घर के खेलने वाले आंगन में घूम रही हो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. उत्खातविश्वोत्कटकण्टकानां – उत्खाताः विश्वस्य उत्कटाः कण्टकाः यै तेषाम् (बहुब्रीहि), उत्+खन्+क्त्।
2. पृथ्वीपतीनां –पृथिव्याः पतयः, तेषाम्। (ष. तत्पु.)।
3. क्रीडागृहप्रांगणलीलया–क्रीडायां गृहस्य प्रांगणे लीलया।
4. भुवनत्रये – भुवनानां त्रयम् भुवनत्रयम्, तस्मिन् (तत्पु.)।
5. चालुक्यवंशी राजाओं की कीर्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। इसमें अतिशयोक्ति, रूपक व उपमा अलंकार का प्रयोग है।

व्याख्या

यत्पार्थिवैः शत्रुकठोरकण्ठ–पीठास्थिनिर्लोठन–कुण्ठधारः।
निन्ये कृपाणः पटुतां तदीय–कपालशाणोपलपट्टिकासु।।61।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी बिल्हण कवि ने चालुक्य वंशी राजाओं के पराक्रम का वर्णन किया है।

अन्वय – यत्पार्थिवैः शत्रुकठोरकण्ठपीठस्थिनिर्लोठनकुण्ठधारः कृपाणः तदीय कपालशाणोपलपट्टिकासु पटुतां निन्ये।

अर्थ – जिस चालुक्यवंश के राजाओं ने शत्रु के कण्ठ की कठोर हड्डियों को काटने से कुण्ठित हो गयी तलवार, को उन शत्रुओं के कपाल रूपी शाण के पत्थर की पट्टिका पर तेज कर लिया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. शत्रुकठोरकण्ठपीठास्थिनिर्लोठन कुण्ठधारः – शत्रूणाम् कठोरेषु कण्ठपीठानाम् अस्थिषु निर्लोठनेन कुण्ठा धारा यस्य सः (बहुब्रीहि)।
2. तदीय कपाल शालोपलपट्टिकासु – तदीयानि कपालानि एव शाणोपलपट्टिका तासु (तत्पु.)।
3. पार्थिवः – पृथिव्याः अपत्यम् पृथिवी + अण्।
4. निन्ये – नी + लिट् (प्र.पु.ए.व.)।
5. प्रस्तुत श्लोक में अतिशयोक्ति व रूपक अलंकार का प्रयोग है।

व्याख्या

निरादरश्चन्द्रशिखामणौ यः प्रीतेऽपि लोकत्रितयैकवीरः।
क्षिपन्कृपाणं दशमेऽपि मूर्ध्नि स्वयं धृतः क्ष्माधरराजपुत्र्या।।62।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक म रावण का वर्णन है परन्तु इस व अगले (63वें) श्लोक का अर्थ एक साथ करने पर पूरा भाव समझ आयेगा। जहाँ दो श्लोकों का एक साथ अर्थ बैठाना हो वह 'युग्मक' कहा जाता है।

अन्वय – यः लोकत्रितयैकवीरः चन्द्रशिखामणौ प्रीते अपि निरादरः दशमे मूर्ध्नि अपि कृपाणं क्षिपन्
क्ष्माधरराजपुत्र्या स्वयं धृतः।

अर्थ – तीनों लोकों के अद्वितीय वीर, रावण ने शंकर के प्रसन्न होने पर भी उनके प्रति निरादर का भाव रखने वाले अपने दशवें सिर पर तलवार चलाते हुए पर्वतराज पुत्री पार्वत्री ने उन्हें स्वयं रोका था।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. चन्द्रशिखामणौ – चन्द्रः शिखामणिः यस्य सः तस्मिन् (बहुब्रीहि)।
2. लोकत्रितयैकवीरः – लोकानां त्रितये एकवीरः (तत्पु.)।
3. क्ष्माधरराजपुत्र्या – क्ष्माधरराजस्य पुत्र्या (ष.तत्पु.)।
4. निरादरः – निर्गतः आदरः यस्य सः (बहुब्रीहि)।
5. क्षिपन् – क्षिप् + शतृ।
6. काव्यलिंग अलंकार है।

व्याख्या

प्रसाध्य तं रावणमध्युवास यां मैथिलीशः कुलराजधानीम्।
ते क्षत्रियास्तामवदातकीर्तिं पुरीमयोध्यां विदधुर्निवासम्।।63।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – कवि बिल्हण ने इससे पूर्व रावण की वीरता का वर्णन किया है, ऐसे पराक्रमी रावण को जीतने वाले राम की जन्मभूमि अयोध्या को चालुक्य वंशी राजाओं ने अपना निवास स्थान बनाया।

अन्वय – तम् रावणम् प्रसाध्य मैथिलीशः याम् कुलराजधानीम् अध्युवास ते क्षत्रियाः अवदातकीर्तिम् ताम् निवासम् विदधुः।

अर्थ – उस रावण को जीतकर सीतापति राम ने जिस कुल (रघुकुल) की राजधानी में निवास किया था, उसी उज्ज्वल कीर्ति वाली अयोध्या नगरी में उन चालुक्यवंशी राजाओं ने निवास किया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. मैथिलीशः – मैथिल्याः ईशः (ष.त.)।
2. कुलराजधानी – कुलस्य राजधानी (ष.त.)।
3. अवदातकीर्तिम् – अवदाता कीर्तिः यस्याः ताम् (बहुब्रीहि)।
4. प्रसाध्य – प्र+साध्+ल्यप्।
5. निवास – नि+वस्+घञ्।
6. काव्यलिङ्ग अलंकार है।

व्याख्या

जिगीषवः केऽपि विजित्य विश्वं विलासदीक्षारसिकाः क्रमेण।
चक्रुः पदं नागरखण्डचुम्बि–पूगद्रुमायां दिशि दक्षिणस्याम्।।64।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – चालुक्यवंशी राजाओं ने अयोध्या को अपना निवास स्थान बनाया। वे लोग उत्तर से दक्षिण दिशा कैसे पहुँचे इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

अन्वय – जिगीषवः के अपि विश्वं विजित्य क्रमेण विलासदीक्षारसिकाः नागरखण्डचुम्बिपूगद्रुमायां दक्षिणस्याम् दिशि पदं चक्रुः।

अर्थ – चालुक्यवंशीय राजाओं में विजय की इच्छा रखने वाले कुछ राजा सम्पूर्ण विश्व को जीत कर क्रमशः विलासिता के रस में पड़कर पान की बेलों से सुशोभित सुपारी के पेड़ों वाली दक्षिण दिशा को अपना स्थान बनाया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. जिगीषवः – जेतुमिच्छवः जिगीषवः, जि+सन्+उ।
2. विजित्य – वि+जि+क्त्वा (ल्यप्)।
3. विलासदीक्षारसिकाः – विलासस्य दीक्षा विलासदीक्षा तस्या, रसिकाः (तत्पु.)।
4. नागरखण्डचुम्बिपूगद्रुमायां– नागरखण्डान् चुम्बन्ति तादृशानां पूगानाम् द्रुमाः यत्र तस्याम् (बहुब्रीहि)।
5. यहाँ काव्यलिङ्ग व समासोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

तदुद्भवैर्भूपतिभिः सलीलं चोलीरहः साक्षिणि दक्षिणाब्धेः।
करीन्द्रदन्ताङ्कुरलेखनीभिरलेखि कूले विजय–प्रशस्तिः।।65।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – चालुक्यवंशी राजाओं के द्वारा दिग्विजय करते हुए दक्षिण दिशाा में पहुँच कर उन्होंने क्या किया? इसका कवि वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

अन्वय – तदुद्भवैः भूपतिभिः चोलीरहः साक्षिणि दक्षिणाब्धेः कूले करीन्द्रदन्ताङ्कुरलेखनीभिः विजयप्रशस्तिः सलीलम् अलेखि।

अर्थ – उस चालुक्य वंश में उत्पन्न राजाओं ने चोल देश की नारियों की एकान्त में की गयी काम–क्रीड़ाओं के साक्षी दक्षिण सागर के तट पर हाथियों के दांतों के नोक रूपी कलमों (लेखनी) के द्वारा विजय गाथा को लीला के साथ लिखा।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. तदुद्भवैः – तस्माद् उद्भवः तेषाम् तैः (तत्पु.)।
2. भूपतिभिः – भुवः पतयः भूपतयः तैः (तत्पु.)।
3. चोलीरहः साक्षिणि – चोलीनाम् रहसः साक्षिणी (तत्पु.)।
4. दक्षिणाब्धेः – दक्षिणः च असौ अब्धिः तस्य (कर्मधारय)।
5. करीन्द्रदन्तांकुरलेखिनीभिः – करीणाम् इन्द्राः करीन्द्राः तेषां दन्तानाम् अग्ररा: करीन्द्रदन्ताग्ररा: एव लेखिन्य (कर्मधारय) ताभिः।
6. विजयप्रशस्तिः – विजयस्य प्रशस्तिः।
7. करीन्द्र.....यहाँ रूपक अलंकार है।

व्याख्या

द्वीपक्षमापालपरम्पराणां दोर्विक्रमादुत्खननोन्मुखास्ते।
विष्णोः प्रतिष्ठेति विभीषणस्य राज्ये परं सङ्कुचिता बभूवुः।।66।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – चालुक्यवंशीय राजाओं ने अपने पराक्रम से अनेक द्वीपों पर विजय प्राप्त की उसका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि–

अन्वय – दोर्विक्रमात् द्वीपक्षमापालपरम्पराणां उत्खननोन्मुखाः ते विभीषणस्य राज्ये विष्णोः प्रतिष्ठा इति परं सप्रुचिताः बभूवुः।

अर्थ – अपनी भुजाओं के पराक्रम से द्वीपों के राजाओं के समूहों को उखाड़कर फेंक देने में प्रवृत्त वें चालुक्यवंशी राजा विभीषण के राज्य में यह विष्णु (राम) के द्वारा प्रतिष्ठित है ऐसा सोचकर संकुचित हो गये। अर्थात् विभीषण रामभक्त है यह जानकर उन्होंने विभीषण पर आक्रमण नहीं किया अन्य सभी द्वीपों को जीत लिया।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. दोर्विक्रमात् – दोष्णाम् विक्रमात् (ष.त.)।
2. द्वीपक्षमापालपरम्पराणाम् – द्वीपानां क्षमापालाः तेषाम् परम्पराः तासाम् (तत्पु.)।
3. उत्खननोन्मुखाः – उत्खनने उन्मुखा (सप्त.त.)।
4. संकुचिताः – सम्+कुच्+क्त ।
5. काव्यलिङ्ग अलंकार है।

व्याख्या

द्वीपेषु कर्पूरपरागपाण्डु–ष्वास्वाद्य लीलापरिवर्तनानि।
भ्रान्त्या तुषाराद्रितटे लुठन्तः शीतेन खिन्नास्तुरगाः यदीयाः।।67।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – चालुक्यवंशी राजाओं ने अपने पराक्रम से सभी द्वीपों पर अधिकार करते हुए हिमालय पर्वत तक के राजाओं पर आक्रमण किया।

अन्वय – यदीयाः तुरगाः कर्पूरपरागपाण्डुषु द्वीपेषु लीलापरिवर्तनानि आस्वाद्य तुषाराद्रि तटे भ्रान्त्या लुठन्तः शीतेन खिन्नाः।

अर्थ – जिन चालुक्यवंशीय राजाओं के घोड़े कर्पूर के चूर्ण से सफेद वर्ण के द्वीपों में (विजयप्राप्ति के बाद) आनन्द से लोट पोट करने के बाद हिमालय पर्वत की तलहटी में भ्रान्ति से लोटते हुए शीत से दुःखी हो गये।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. कर्पूरपरागपाण्डुषु – कर्पूरस्य परागवत् पाण्डुषु (तत्पु.)।
2. आसाद्य – आ+सद्+ल्यप्।
3. लीलापरिवर्तनानि – लीलया परिवर्तनानि (तृ.तत्पु.)। परि+वृत्+ल्युट्
4. तुषाराद्रितटे – तुषाराणाम् अदिः तुषाराद्रिः तस्य तटे (तत्पु.)।
5. लुठन्तः – लुठ्+शतृ (प्र. पु.ए.व.)।
6. खिन्नाः – खिद् + क्त । प्रथमा बहुवचन
7. यहाँ भ्रांतिमान् अलंकार है।

व्याख्या

श्रीतैलपो नाम नृपः प्रतापी क्रमेण तद्वंशविशेषकोऽभूत्।
क्षणेन यः शोणितपङ्कशेषं संख्ये द्विषां वीररसञ्चकार।।68।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – चालुक्यवंश के राजाओं का वर्णन करते हुए कवि बिल्हण 'तैलप' नाम के राजा का वर्णन करते है कि–

अन्वय – क्रमेण तद्वंशविशेषकः श्रीतैलपः नाम प्रतापी नृपः अभूत्। संख्ये क्षणेन द्विषां वीररसं शोणितपङ्कशेषं चकार।

अर्थ – शनैः शनैः वंश के क्रम से चालुक्य वंश के तिलक 'श्री तैलप' नाम के प्रतापी राजा हुये। जिन्होंने युद्ध में थोड़े ही समय में शत्रुओं के वीररस को रक्त के कीचड़ में शेष कर दिया अर्थात् युद्ध भूमि को शत्रुओं के खून से भर दिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. तद्वंशविशेषकः – तस्य वंशस्य विशेषकः (ष.त.)।
2. शोणितपप्रशेषम् – शोणितम् एव पंकः (कर्मधारय)। सः शेषः यस्य तादृशम् (बहुब्रीहि)
3. वीररसः – वीरश्चासौ रसः (कर्मधारय)।
4. प्रस्तुत श्लोक में श्लेष, रूपक व काव्यलिङ्ग अलंकार है।

व्याख्या

विश्वम्भराकण्टकराष्ट्रकूट–समूलनिर्मूलनकोविदस्य।
सुखेन यस्यान्तिकमाजगाम चालुक्यचन्द्रस्य नरेन्द्रलक्ष्मीः।।69।।

संदर्भ–प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – चालुक्यवंश के पराक्रमी राजाओं में 'श्री तैलप' नामक राजा हुआ। उसके पराक्रम का वर्णन करते हुए कवि बिल्हण कहत हैं कि–

अन्वय – विश्वम्भराकण्टकराष्ट्रकूटसमूलनिर्मूलनकोविदस्य यस्य चालुक्यचन्द्रस्य अन्तिकम् नरेन्द्रलक्ष्मीः सुखेन आजगाम।

अर्थ – पृथ्वी पर कण्टक रूप राष्ट्रकूट (राठौर वंश के) राजाओं को समूल नष्ट करने में निपुण, चालुक्य वंश में चन्द्रमा के समान (श्री तैलप) के पास राजलक्ष्मी सुखपूर्वक स्वयं आ गयी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. विश्वम्भराकण्टक राष्ट्रकूटसमूलनिर्मूलनकोविदस्य विश्वं विभर्ति इति विश्वम्भरः (उपपद समास) कण्टकाः राष्ट्रकूटाः इति (कर्मधारय) विश्वम्भरायाः कण्टकराष्ट्रकूटानाम् समूलम् निर्मूलने कोविदस्य। निर्+मूल+ल्युट्।
2. चालुक्यचन्दस्य – चालुक्यवंशीयः चन्द्रः तस्य (मध्यमपदलोपी)।
3. नरेन्द्रलक्ष्मीः – नरेन्द्राणाम् लक्ष्मीः (ष.त.)।

व्याख्या

शौर्योष्मणा स्विन्नकरस्य यस्य संख्येषु खड्गः प्रतिपक्षकालः।
पुरन्दरप्रेरितपुष्पवृष्टि–परागसङ्गान्निबिडत्वमाप।।70।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम अंक से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य ही नहीं वैचित्र्य मार्ग के उपासक कवि की साहित्यिक कृति है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में चालुक्य वंशी राजा 'श्री तैलप' के पराक्रम का वर्णन है।

अन्वय – संख्येषु शौर्योष्मणा स्विन्नकरस्य यस्य प्रतिपक्षकालः खड्गः पुरन्दरप्रेरितपुष्पवृष्टिपराग– सङ्गात् निविडत्वम् आप।

अर्थ – युद्धों में पराक्रम रूपी पसीने से गीले हाथ वाले जिस तैलप के शत्रुओं का काल रूप खड्ग, इन्द्र के द्वारा की गयी। पुष्पवृष्टि के पराग के सम्पर्क से ओर अधिक दृढ़ हो गया। अर्थात् तैलप के तलवार चालन को देखकर इन्द्र प्रसन्न होकर पुष्प वर्षा करता था।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. शौर्योष्मणा – शौर्यस्य उष्मणा (ष.त.), शूर+ष्यञ्।
2. स्विन्नकरस्य – स्विन्नः करः यस्य सः तस्य (बहुब्रीहि) स्विद्+क्त स्विन्न।
3. प्रतिपक्षकालः – प्रतिपक्षाणां कालः (तत्पु.)।
4. पुरन्दरप्ररितपुष्पवृष्टिपरागसङ्गात्–पुरन्दरेण प्रेरितायाः पुष्पवृष्टेः परागाणाम् संगात् (तत्पु.)।
5. इन्द्र के पुष्प वर्षण से पराग कणों द्वारा ओर अधिक दृढ़ता की सम्भावना के कारण 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है।

13.3 पारिभाषिक शब्दावली

1.	वार्धकतः	–	वृद्धावस्था के कारण।
2.	आनमन्तम्	–	झुकते हुए (कांपते हुए)।
3.	रथाङ्गनाम्नाम्	–	चकवा चकवी नाम के पक्षी के। "चक्रं रथाङ्गं" इत्यमरः।
4.	चन्दनपङ्ककान्तिः	–	चन्दनपप्र (लेप) के समान कांन्ति वाली।
5.	शक्रेण	–	इन्द्र के द्वारा।
6.	द्विरेफ	–	भौंरा "द्विरेफपुष्पलिङ्भृङ्गषट्पदभ्रमरादयः" इत्यमरः।
7.	पुरुहूतः	–	इन्द्र "वृद्धश्रवाः सुनाशीरः पुरूहूतः पुरन्दरः" इत्यमरः।
8.	प्रकोष्ठ	–	कलाई
9.	धर्मप्रतिबन्धकानां	–	धर्म के बाधकों को।
10.	नागपाशान्	–	नाग के बन्धन (पुराणों में युद्धों में अनेक वीरों के नागपाशों के बन्धन को दिखाया है।
11.	दिक्पालवर्गस्य	–	दिक्पालों के समूह की (दसों दिशाओं के इन्द्रादि दस दिक्पाल माने गये है।)
12.	उत्तर्जनीकेन	–	ऊपर उठी तर्जनी अगुंली वाले। अंगूठे व मध्यमा के बीच की अंगुली तर्जनी कहलाती है।
13.	वैपुल्यविशेषभाजां	–	अधिक विस्तार वाली।
14.	केयूर	–	बाजूबन्द (आभूषण)।
15.	क्ष्माभृत्	–	पर्वत
16.	अखर्वगर्वस्मितदन्तुरेण	–	अत्यधिक अभिमान से उत्पन्न होने वाले स्मित के द्वारा सुन्दर।
17.	स्मेर	–	मन्द हास्य (मुस्कुराहट)।
18.	पङ्कजविष्टरेण	–	पंङ्कज है आसन जिसका, ब्रह्मा के द्वारा
19.	पाण्डुसरोरुहं	–	श्वेत कमल।
20.	जाम्बूनदम्	–	सुवर्ण।
21.	शौरः	–	विष्णु के (शूर के वंशज भगवान कृष्ण, विष्णु)।
22.	अवदातकीर्तिम्	–	उज्ज्वल कीर्ति को।

23. नागरखण्डाः – पान की बेलें।
24. चोलीरहः – चोल देश की नारियों की एकान्त क्रीड़ायें।
25. संख्ये – युद्ध में।
26. निविडत्वम् – दृढ़ता, घनीभूतता।
27. प्रतिपक्षकाल : – शत्रुओं के लिए काल के समान (तलवार का विशेषण)।
28. स्विन्नकरस्य – पसीने से युक्त हाथों वाले का।

13.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न –

प्र.1 चालुक्य वंश में तेजस्वी व्यक्ति की उत्पत्ति से छिपकर उदयाचल दुर्ग पर चढ़ गया?
(अ) चन्दमा (ब) सूर्य (स) नक्षत्रगण (द) ब्रह्मा ( )

प्र.2 'सा चन्द्रिका चन्दनपङ्ककान्तिः शीतांशुशाणाफलके ममज्ज' इस पंक्ति में अलंकार है–
(अ) उपमा व अनुप्रास (ब) अपहनुति व अनुप्रास
(स) अनुप्रास व रूपक (द) अनुप्रास व काव्यलिङ्ग ( )

प्र.3 इन्द्र का सम्पूर्ण वैभव किसके चरणों की सेवा धूलि का प्रभाव है?
(अ) ब्रह्मा (ब) ऐरावत हाथी
(स) स्वयं इन्द्र का पराक्रम (द) गुरु का प्रसाद ( )

प्र.4 चालुक्य वंश के आदि पुरुष का नाम है–
(अ) विक्रमांकदेव (ब) श्री तैलप
(स) मानव्य (द) हारीत ( )

प्र.5 निम्न श्लोकों का सप्रसंग अनुवाद कीजिये–
(i) श्लोक 38 (ii) श्लोक 42 (iii) श्लोक 48
(iv) श्लोक 55 (v) श्लोक 60 (vi) श्लोक 61
(vii) श्लोक 64 (viii) श्लोक 70

बोध प्रश्नों के उत्तर

उ.1 स

उ.2 ब

उ.3 अ

उ.4 द

उ.5 (i) देखिये श्लोक संख्या 38
(ii) देखिये श्लोक संख्या 42
(iii) देखिये श्लोक संख्या 48
(iv) देखिये श्लोक संख्या 55
(v) देखिये श्लोक संख्या 60
(vi) देखिये श्लोक संख्या 61
(vii) देखिये श्लोक संख्या 64
(viii) देखिये श्लोक संख्या 70

13.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम सर्ग के 36 से 70 श्लोकों तक का सप्रसंग अनुवाद व व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी के आधार पर कवि बिल्हण कृत महाकाव्य की कथा व बिल्हण की काव्यशैली के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। इकाई 11 में प्रथम सर्ग के 1 से 35 श्लोकों तक के अनुवाद के उसी क्रम में आगे की कथा से परिचित हो सके है। इसमें कवि बिल्हण ने प्रातःकाल का बहुत ही आलंकारिक वर्णन किया है तत्पश्चात् समाधि में स्थिति ब्रह्मा से इन्द्र ने प्रार्थना की है कि पृथ्वी पर राक्षसों का अत्याचार बढ़ रहा है अतः आप ऐसे प्रतापी वीर को उत्पन्न करें जो पृथ्वी पर बढ़ रहे अन्याय को समाप्त कर सके। इन्द्र ने ब्रह्मा की स्तुति में जो अपने वैभव का गुणगान किया है, उस सभी के पीछे ब्रह्मा का ही प्रभाव बताया है।

इन्द्र की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने अपने अजुंलि से चालुक्य वंश के आदि पुरुष को उत्पन्न किया। कवि ने बहुत सुन्दर उत्प्रेक्षाओं के द्वारा उस आदि पुरुष के वीरता व पराक्रम का वर्णन किया है। इसी चालुक्य वंश में हारीत व मानव्य नाम के प्रतापी राजा भी उत्पन्न हुए। चालुक्यवंशी राजाओं की दिग्विजयों का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि इन्होंने अयोध्या नगरी को भी अपना निवास स्थान बताया था। अयोध्या से ये प्रतापी राजा दक्षिण दिशा की ओर बढ़ गये तथा लंका को छोड़ सभी द्वीपों पर इन्होंने अधिकार कर लिया। इन्होंने हिमालय पर्वत तक अपना अधिकार कर लिया। इन्होंने हिमालय पर्वत तक अपना अधिकार कर लिया। चालुक्य वंश में ही श्री तैलप भी प्रतापी राजा हुआ। युद्धों में उसके तलवार के कौशल से प्रसन्न इन्द्र ने भी उस पर पुष्प वर्षा की थी।

इस प्रकार बिल्हण ने उपमाओं व उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से चालुक्यवंशी राजाओं की वीरता व पराक्रम का आलंकारिक व अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है अतः हम कह सकते है कि बिल्हण इतिहासकार कम व एक सहृदय कवि अधिक हैं।

13.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विक्रमांकदेवचरितम्, विश्वनाथशास्त्रीभारद्वाज, हिन्दू विश्वविद्यालय साहित्य अनुसंधान समीति, बनारस,1965.
2. विक्रमांकदेवचरितम्, श्रीकान्तपाण्डेय, साहित्यभंडार, मेरठ, 2006.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए.बी.कीथ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999.
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1995.

इकाई – 14

चालुक्यवंशीय राजाओं का प्रताप वर्णन
(विक्रमांकदेवचरितम्, प्रथम सर्ग, श्लोक 71 से 106)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 विक्रमांकदेवचरितम् महाकाव्य के 71 से 106 श्लोकों का सप्रसंग अनुवाद, व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी एवं काव्यगत वैशिष्ट्य

14.3 पारिभाषिक शब्दावली

14.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.5 सारांश

14.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.0 उद्देश्य

'बिल्हणकृत विक्रमांकदेवचरितम्' के 71 से 106 श्लोकों का क्रमशः अनुवाद पढ़कर विक्रमांकदेवचरितम् की कथावस्तु चालुक्यवंशी राजाओं की उत्पत्ति तथा उनके पराक्रमपूर्ण कार्यो के बारे में तो जानेंगे साथ ही बिल्हण की काव्यशैली, उनकी उत्प्रेक्षाओं की छटा से भी परिचित हो सकेंगे। वैचित्र्य मार्ग के अनुगामी बिल्हण की शैली, उनकी वैदर्भी रीति के सुन्दरतम प्रयोगों से भी आप लोग अवगत हो सकेगे। व्याकरणात्मक टिप्पणियों के द्वारा आप संस्कृत भाषा तथा उसके शब्द भंडार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य बिल्हण के 'विक्रमांकदेव' चरित नायक का परिचय तथा उनकी आलंकारिक शैली का अध्ययन कर आनन्दानुभूति करवाना है। इस प्रकार कवि बिल्हण श्रेय व प्रेय दोनों मागो के उपासक हैं। यही उनके काव्य का मुख्य ध्येय भी है।

14.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में 'विक्रमांकदेवचरितम्' प्रथम सर्ग के 71 से लेकर 106 श्लोकों तक की सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी दी जायेगी तथा उनके काव्यगत वैशिष्ट्य छंद, अलंकार आदि के विषय में बताया जायेगा। इस इकाई में आप विक्रमांकदेवचरित की क्रमशः सम्पूर्ण कथावस्तु से परिचित हो सकेगें।

14.2 व्याख्या

71. व्याख्या

यस्याञ्जनश्यामलखड्गपट्ट–जातानि जाने धवलत्वमापुः।
अरातिनारीशरकाण्डपाण्डु–गण्डस्थलीनिर्लुठनाद्यशांसि।।71।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – चालुक्य वंश में उत्पन्न राजाओं में श्री तैलप बहुत ही पराक्रमी सम्राट् हुये। कवि श्री तैलप के पराक्रम से फैले हुए उनके यश का वर्णन करता है कि–

अन्वय – यस्य अञ्जनश्यामलखड्गपट्टजातानि यशांसि
अरातिनारीशरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलीनिर्लुठ– नात् धवलत्वम् आपुः (इति) जाने।

अर्थ – जिस राजा तैलप की काजल के समान काली तलवार रूपी पट्टी से समुत्पन्न यश, शत्रु की स्त्रियों के सरकंडे के समान उज्ज्वल कपोलों पर लौटने के कारण उज्ज्वलता को प्राप्त हो गया, ऐसा मैं मानता हूँ। अर्थात् राजा तैलप की तलवार चलाने का उज्ज्वल यश सर्वत्र फैल गया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. अञ्जनश्यामलखड्गपट्टजातानि – अञ्जनवत् श्यामलात् खड्गपट्टात् जातानि (तत्पु.)।
2. अरातिनारीशरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलीर्निर्लुठनात्–अरातीनां नार्यः अरातिनार्यः तासां शरकाण्डवत् पांड्व्यः एव गण्डस्थल्यः तासु निर्लुठनात् (तत्पु.)
3. धवलत्वम् धवलस्य भावः ;धवल + त्वद्ध
4. काले रंग की खड्ग से शुभ्र यश की उत्पत्ति–हेतु के विरुद्ध कार्य उत्पन्न होने से विषम अलंकार है।
5. उत्प्रेक्षा व अतिशयोक्ति अलंकार भी है।

व्याख्या

स्फूर्जद्यशोहंसविलासपात्रं निस्त्रिंशनीलोत्पलमुत्प्रभं यः।
उत्तंसहेतोरिव वीरलक्ष्म्याः संग्रामलीलासरसश्चकर्ष।।72।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी राजा तैलप के द्वारा युद्ध में तलवार खींचने का वर्णन है।

अन्वयः – यः संग्रामलीलासरसः उत्प्रभं स्फूर्जद्यशोहंसविलासपात्रं निस्त्रिंशनीलोत्पलम् वीरलक्ष्म्याः उत्तंसहेतोरिव चकर्ष।

अर्थ – जो तैलप राजा अपने संग्राम रूपी लीला सरोवर से, उज्ज्वल कांति वाले तथा सर्वत्र व्याप्त अपनी कीर्ति रूपी हंस के विलास पात्र, उस खड्ग, रूपी नीलकमल को वीर लक्ष्मी के कर्णफूल बनाने के लिए म्यान से बाहर निकाला करते थे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. संग्रामलीलासरसः – संग्राम एव लीलासरः तस्मात् (तत्पु.)
2. स्फूर्जद्यशोहंसविलासपात्रम् – स्फूर्जत् यश एव हसः – स्फूर्जद्यसोहंस (कर्मधारय) तस्य विलासस्य पात्रम् (ष.त.) (स्फूर्ज्+शतृ)
3. निस्त्रिंशनीलोत्पलम् – नीलम् च तत् उत्पलम् (कर्मधारय) निस्त्रिंश एव नीलोत्पलम् (कर्मधारय)
4. उत्प्रभं = उद्गता प्रभा यस्य तत् (बहुब्रीहि)
5. उत्तंसहेतोः – उत्तंसस्य हेतोः (ष.त.)
6. वीरलक्ष्म्याः – वीराणां लक्ष्मी, तस्याः वीरलक्ष्म्याः (ष.त.)
7. यश पर हंस व खड्ग पर नीलकमल के आरोप से रूपक अलंकार तथा तलवार खींचने में कर्णाभरण की सम्भावना से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

विधाय सैन्यं युधि साक्षिमात्रं दासीकृतायाः प्रतिपक्षलक्ष्म्याः।
यः प्रातिभाव्यार्थमिवाजुहाव महाभुजः शत्रुनरेन्द्रकीर्तिम्।।73।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – राजा तैलप के पराक्रम का ही प्रसंग चल रहा है अतः कवि ने तैलप के द्वारा शत्रुओं की कीर्ति व लक्ष्मी के अपहरण का पराक्रम पूर्ण वर्णन किया है।

अन्वय – महाभुजः यः युधि सैन्यम् साक्षिमात्रम् विधाय दासीकृतायाः प्रतिपक्षलक्ष्म्याः प्रातिभाव्यार्थम् इव शत्रुनरेन्द्रकीर्तिम् आजुहाव।

अर्थ – महान् भुजाओं वाले जिस तैलप ने युद्ध में सेना को केवल साक्षी बनाकर, दासी बनायी हुई शत्रुओं की राजलक्ष्मी को मानो जमानत के लिए शत्रु राजाओं की कीर्ति को पास बुला लिया।

अर्थात् राजा तैलप ने शत्रुओं को लक्ष्मी व कीर्ति दोनों को अपने अधीन कर लिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. महाभुजः – महान्तौ भुजौ यस्य यः (बहुब्रीहि)

2. साक्षिमात्रम् – साक्षिन् + मात्रच्
3. प्रतिपक्षलक्ष्म्याः – प्रतिपक्षाणां लक्ष्म्याः (तत्पु.)
4. शत्रुनरेन्द्रकीर्तिम् – शत्रुनरेन्द्राणां कीर्तिम् (ष.त.)
5. आजुहाव – आ+हु+लिट् (प्र.ए.व.)
6. उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

चालुक्यवंशामलमौक्तिकश्रीः सत्याश्रयोऽभूदथ भूमिपालः।
खड्गेन यस्य भ्रुकुटिक्रुधेव द्विषां कपालान्यपि चूर्णितानि।।74।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – तैलप चालुक्य वंश का महान् प्रतापी सम्राट था उसके बाद सत्याश्रय नामक राजा हुआ। कवि ने उसी का वर्णन किया है।

अन्वय – अथ चालुक्यवंशामलमौक्तिकश्रीः सत्याश्रयः भूमिपालः अभूत्। यस्य भ्रुकुटिक्रुधा इव खड्गेन द्विषां कपालानि अपि चूर्णितानि।

अर्थ – इसके बाद अर्थात् चालुक्यवंश में तैलप के पश्चात् स्वच्छ मोती जैसी कान्ति वाले सत्याश्रय नाम के राजा हुए, जिसके भ्रुकुटि गत क्रोध की करालता के समान तलवार ने शत्रुओं की खोपड़ियां को चूर–चूर कर दिया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. चालुक्यवंशामलमौक्तिकश्रीः – चालुक्यवंशे अमला मौक्तिकानां श्रीः इव श्रीः यस्य सः (बहुब्रीहि)।
2. भूमिपालः – भूमिं पालयति इति (उपपद)
3. भ्रुकुटिक्रुधा – भ्रुकुटेः क्रुधा।
4. उपमा अलंकार है।

व्याख्या

यस्येषवः संयुगयामिनीषु प्रोतप्रतिक्ष्मापतिमौलिरत्नाः।
गृहीतदीपा इव विन्दते स्म खड्गान्धकारे रिपुचक्रवालम्।।75।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – चालुक्य वंशी राजा सत्याश्रय का वर्णन करते हुए कवि बिल्हण कहते हैं कि युद्धभूमि में उनके बाण शत्रुओं को ढूँढते रहते थे।

अन्वय – संयुगयामिनीषु यस्य प्रोतप्रतिक्ष्मापतिमौलिरत्नाः इषवः गृहीतदीपाः इव खड्गान्धकारे रिपुचक्रवालम् विन्दते स्म।

अर्थ – युद्ध रूपी रात्रियों में जिस ;सत्याश्रय के बाण शत्रु राजाओं के मस्तक की मणियों से नथे (पिरोये) गये, मानों दीपक हाथ में लिए हुए तलवार रूपी अन्धकार में शत्रुओं के समुदाय को ढूंढते रहते थे।

भावार्थ यह है कि सत्याश्रय के बाण युद्ध में शत्रुओं की मस्तक की मणियों को बींध देते थे तथा उन मणियों के प्रकाश में ही वह शत्रु को पहचान लेते थे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. संयुगयामिनीषु – संयुगा एव यामिन्यः संयुगयामिन्यः तासु (तत्पु.)
2. प्रोतप्रतिक्ष्मापतिमौलिरत्नाः – प्रोतानि प्रतिक्ष्मापतीनाम् मौलिरत्नानि यैः तै. (बहुब्रीहि)
3. गृहीतदीपा – गृहीताः दीपाः यैः ते (बहुब्रीहि)
4. खड्गान्धकारे – खड्ग एव अन्धकारः, तस्मिन् (तत्पु.)
5. रिपुचक्रवालम् – रिपूणाम् चक्रवालम् (तत्पु.)
6. यहाँ रूपक व उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग है।

व्याख्या

अवन्ध्यपातानि रणाङ्गणेषु सलीलमाकृष्टधनुर्गुणस्य।
यस्यानमत्कोटितया व्यराजदस्त्राणि चुम्बन्निव चापदण्डः।।76।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी कवि ने सत्याश्रय राजा के बाण चलाने के कौशल का वर्णन किया है।

अन्वयः – रणाङ्गणेषु सलीलम् आकृष्टधनुर्गुणस्य यस्य चापदण्डः आनमत् कोटितया अवन्ध्यपातानि अस्त्राणि चुम्बन् इव व्यराजत्।

अर्थ – युद्ध रूपी आंगन में अनायास धनुष की डोरी को खींचने वाले उसका (सत्याश्रय राजा का)
धनुष दोनों सिरों के झुक जाने के कारण, ठीक निशाने वाले अस्त्रों को मानों चुम्बन करता हुआ शोभित होता था। अर्थात् सत्याश्रय के बाणों की युद्ध भूमि में सफल प्रहार होता था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. रणाङ्गणेषु – रणानाम् अङ्गणेषु (ष.त.)
2. सलीलम् – लीलया सह वर्तमानम (बहुब्रीहि)
3. आकृष्टधनुर्गुणस्य – आकृष्ट : धनुषः गुणः येन यस्य (बहुब्रीहि)
4. चापदण्डः – चापस्य दण्ड : (ष. त.)
5. आमनत्कोटितया – आनमन्त्यौ कोटि यस्य तस्य (बहुब्रीहि) तस्य भावः तया (तल् प्रत्यय)
6. अवन्ध्यपातानि – न वन्ध्यानि (नञ् तत्पु.) अवन्ध्यानि पातानि येषां तानि (बहुब्रीहि)
7. उत्प्रेक्षा व समासोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

भूभृत्सहस्रार्पितदेहरन्ध्रैः 'क्रौञ्चाचलच्छिद्रविशारदानाम्।
सेहे न गर्वः पृथुसाहसस्य यस्येषुभिर्भार्गवमार्गणानाम्।।77।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – कवि बिल्हण ने सत्याश्रय राजा के बाण प्रहार का ही वर्णन किया है।

अन्वय – पृथुसाहसस्य यस्य भूभृत्सहस्रार्पितदहरन्ध्रैः इषुभिः क्रौञ्चाचलच्छिद्र विशारदानां भार्गवमार्गाणानाम् गर्वः न सेहे।

अर्थ – महान् साहस वाले सत्याश्राय के हजारों राजाओं के शरीर में छेद करने वाले बाणों ने कौञ्च पर्वत में छेद करने में कुशल परशुराम के बाणों के गर्व को सहन नहीं किया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. पृथुसाहसस्य – पृथुः साहसः यस्य तस्य (बहुब्रीहि)
2. भूभृतसहस्रार्पितदेहरन्ध्रैः – भूभृत् सहस्रेषु अर्पितानि देहरन्ध्राणि यैः तैः (बहुब्रीहि)
3. क्रौञ्चाचलच्छिद्रविशारदानाम् – क्रौञ्चाचलस्य छिद्रे विशारदानां (तत्पु.)
4. भार्गवमार्गणानाम् – भार्गवस्य मार्गणा भार्गवमार्गणः तेषाम् (तत्पु.)
5. यहाँ श्लेष व अतिशयोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

दृप्तारिदेहे समरोपमर्द–सूत्रावशेषस्थितहारदाम्नि।
यज्ञोपवीतभ्रमतो बभूव यस्य प्रहर्तुः क्षणमन्तरायः।।78।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के पथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – चालुक्य वंश के सत्याश्रय राजा पराक्रम का ही प्रसंग चल रहा है। कवि सत्याश्रय द्वारा युद्ध भूमि में शत्रुओं पर किये गये प्रहारों का वर्णन करता हुआ कहता है कि

अन्वय – प्रहर्तुः यस्य समरोपमर्दसूत्रावशेषस्थितहारदाम्नि दृप्तारिदेहे यज्ञोपवीतभ्रमतः क्षणम् अन्तरायः बभूव।

अर्थ – शत्रुओं पर प्रहार करने वाले उस सत्याश्रय राजा के युद्ध में संघर्ष से गले के हार के टूट जाने के कारण शेष स्थित उस हार का धागा, घमण्डी उस शत्रु के शरीर पर यज्ञोपवीत का भ्रम हो जाने से क्षण भर के लिए विघ्न रूप हो जाता था।

भावार्थ यह है कि सत्याश्रय राजा यज्ञोपवीत धारण करने वाले ब्राह्मणों पर प्रहार नहीं करता था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. प्रहर्तुः – प्र+हृ+शतृ (ष.ए.व.)
2. समरोपमर्दसूत्रावशेषस्थितहारदाम्नि–समरे उपमर्दात् सूत्रावशेषं स्थितं हारस्य दाम यस्मिन् तस्मिन् (बहुब्रीहि)
3. दृप्तारिदेहे – दृप्तश्चासौ अरिः दृप्तारिः तस्य देहेः तस्मिन् (कर्मधारय, तत्पु.)
4. यज्ञोपवीतभ्रमतः – यज्ञोपवीतस्य भ्रमतः (तत्पु.) भ्रम + तसिल् (पंचमी अर्थ में)
5. यहाँ भ्रांतिमान् व काव्यलिङ्ग अलंकार है।

व्याख्या

प्राप्तस्ततः श्रीजयसिंहदेवश्चालुक्यसिंहासनमण्डनत्वम्।
यस्य व्यराजन्त गजाहवेषु मुक्ताफलानीव महायशांसि।।79।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – सत्याश्रय राजा के बाद चालुक्य वंश में जयसिंह देव राजा हुए। अतः कवि राजा जयसिंह देव की कीर्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं।

अन्वय – ततः गजाहवेषु यस्य महायशांसि मुक्ताफलानि इव व्यराजन्त श्रीजयसिंहदेव चालुक्यसिंहासनमण्डनत्वम् प्राप्तः।

अर्थ – सत्याश्रय के पश्चात् गज युद्धों में जिसके महान् यश रूप मुक्ताफलों के समान सुशोभित होते थे, ऐसे श्री जयसिंह देव ने चालुक्य वंश सिंहासन को सुशोभित किया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. चालुक्यसिंहासनमण्डनत्वम् चालुक्यानाम् सिंहासनम्, तस्य मण्डनत्वम् (ष.तत्पु.)
2. महायशांसि – महन्ति यशांसि (कर्म.)
3. गजाहवेषु – गजानाम् आहवेषु
4. मुक्ताफलानि – मुक्तानां फलानि (ष.त.)
5. यहाँ उपमा अलंकार का प्रयोग है।

व्याख्या

यस्य प्रतापेन कदर्थ्यमानाः प्रत्यर्थिभूपालमहामहिष्यः।
अन्वस्मरंश्चन्दनपङ्किलानि प्रियाङ्कपालीपरिवर्तनानि।।80।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – चालुक्य वंश में उत्पन्न जयसिंह देव के पराक्रम तथा प्रचण्डता का वर्णन कवि ने इस श्लोक में प्रस्तुत किया है।

अन्वय – यस्य प्रतापेन कदर्थ्यमानाः प्रत्यर्थिभूपालमहामहिष्यः चन्दनपङ्किलानि प्रियाङ्कपालीपरिवर्तनानि अन्वस्मरन्।

अर्थ – जिस (जयसिंह देव) के प्रताप से पीड़ित हुई शत्रु राजाओं की रानियाँ चन्दन के पप्र (लेप) से युक्त अपने प्रिय की गोद में करवटें लेने का स्मरण करती थी। अभिप्राय यह है कि जयसिंह देव ने अपने प्रचण्ड प्रताप से शत्रुओं को नष्ट कर दिया था, अब शत्रु राजाओं की रानियाँ उनका स्मरण मात्र करती थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. कदर्थ्यमानाः – कदर्थ् + यक्+शानच् (प्र.ब.व.)
2. प्रत्यर्थिभूपालमहामहिष्यः – प्रत्यर्थिनः ये भूपालाः तेषां महामहिष्यः (तत्पु.)
3. चन्दनपङ्किलानि – चन्दनैः पप्रिलानि (तृ. तत्पु.) पप्र+इलच्
4. प्रियाङ्कपालीपरिवर्तनानि – प्रियाणाम् अंकपालीषु परिवर्तमानानि तानि (तत्पु.)
5. अन्वस्मरन् – अनु + स्मृ + लङ् (प्र.ब.व.)
6. यहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार है।

व्याख्या

प्रतापभानौ भजति प्रतिष्ठां यस्य प्रभातेष्विव संयुगेषु।
सूर्योपलानामिव पार्थिवानां केषां न तापः प्रकटीबभूव।।82।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – कवि बिल्हण चालुक्यवंश का वर्णन करते हुए राजा जयसिंह के प्रताप का कवित्वमय वर्णन करते है–

अन्वय – प्रभातेषु इव संयुगेषु यस्य प्रतापभानौ प्रतिष्ठां भजति सूर्योपलानाम् इव केषां पार्थिवानां तापः न प्रकटीबभूव।

अर्थ – प्रातः काल के समान युद्धों में जिसके सूर्य के समान प्रताप की प्रतिष्ठा (राजपक्ष में सम्मान तथा सूर्यपक्ष में स्थिति) प्राप्त करने पर सूर्यमणियों के समान किन राजाओं का ताप (राजपक्ष में दुःख और मणिपक्ष मे ऊष्मा) प्रकट नहीं हुआ।

अर्थात् राजा जयसिंह के प्रताप बढ़ने के कारण शत्रु राजाओं का संताप बढ़ता गया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. प्रतापभानौ – प्रतापः एव भानुः (कर्मधारय) तस्मिन्।
2. सूर्योपलानाम् – सूर्यस्य उपलाः सूर्योपलाः तेषाम् (तत्पु.)
3. प्रकटीबभूव – अपकटः प्रकटः बभूव इति प्रकट+च्वि, भू+लिट् (प्र.पु.ए.व.)
4. यहाँ श्लेषमूलक उपमा तथा वक्रोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

यात्रासु यस्य ध्वजिनीभरेण दोलायमाना सकला धरित्री।
आर्द्रव्रणाधिष्ठितपृष्ठपीठमकर्मठं कूर्मपतिं चकार।82।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में राजा जयसिंह की वीरता का वर्णन करते हुए कवि बिल्हण ने उनकी सैन्य यात्राओं का वर्णन किया है तथा उनकी सैन्य यात्रा से सम्पूर्ण पृथिवी हिलने लगती थी।

अन्वय – यस्य यात्रासु ध्वजिनीभरेण दोलायमाना सकला धरित्री आर्द्रव्रणाधिष्ठितपृष्ठपीठं कूर्मपतिं अकर्मठं चकार।

अर्थ – जिस राजा जयसिंह की विजय यात्राओं में सेना के भार से हिलती हुई (डगमगाती हुई) समग्र पृथिवी ने (रगड़ से उत्पन्न) ताजें घावों से भरी पीठवाले कच्छपराज को भी अपने कर्म करने में अकुशल बना दिया। पौराणिक मान्यता के अनुसार कच्छपराज ने पृथिवी को अपनी पीठ पर धारण किया हुआ है, पृथिवी के हिलने के कारण कच्छपराज की पीठ पर घाव हो गये अतः वह अपने कर्म करने में असमर्थ से हो गये।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. ध्वजिनीभरेण – ध्वजिन्याः भरः तेन 'तत्पु.)
2. दोलायमाना – दोला+क्यच् + शानच्।
3. आर्द्रव्रणाधिष्ठितपृष्ठपीठम् – आर्द्रव्रणेन अधिष्ठितं पृष्ठपीठं यस्य तम् (बहुब्रीहि)
4. कूर्मपतिम् – कूर्माणाम् पतिम् (तत्पु.)
5. यहाँ काव्यलिंङ्ग एवं अतिशयोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

किरीटमाणिक्यमरीचिवीचि–प्रच्छादिता यस्य विपक्षभूपाः।।
चिताग्निभीत्या समराङ्गणेषु न संगृहीताः सहसा शिवाभिः।।83।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – चालुक्यवंशी सम्राट् जयसिंहदेव पराक्रमी थे तथा जो भी इनका विरोध करता था, वह मृत्यु को प्राप्त होता था।

अन्वय – यस्य किरीटमाणिक्यमरीचिवीचि प्रच्छादिताः विपक्षभ्पाः समराङ्गणेषु शिवाभिः चिताग्निभीत्या सहसा न संगृहीताः।

अर्थ – जिस राजा जयसिंहदेव के मुकुट में लगे हुए मणियों की किरणों की लहरों से आच्छादित जिस राजा के विपक्षी राजाओं के शवों को युद्ध भूमि में सियारियों के द्वारा चिता की अग्नि समझ कर भय के कारण एकाएक ग्रहण नहीं किया गया। अर्थात् शत्रु राजाओं के मृत शव लोमड़ियों द्वारा खाये जाते थे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी

1. समराङ्गणेषु – समरस्य अङ्गणानि, तेषु (तत्पु.)
2. किरीटमाणिक्यमरीचिवीचिप्रच्छादिताः–किरीटस्य माणिक्यानां मरीचीनां वीचिभिः प्रच्छादिताः (तत्पु)
3. विपक्षभूपाः – विपक्षाञ्च ते भूपाः (कर्मधारय)
4. चिताग्निभीत्या – चितायाः अग्नेः भीत्या (ष.त.)
5. संगृहीताः सम् + ग्रह् + क्त
6. यहाँ माणिक्य की किरणों में चिताग्नि के भ्रम के कारण भ्रांतिमान् अलंकार है।

व्याख्या

यात्रासु दिक्पालपुरीं विलुण्ठ्य न दिग्गजान्कवलमग्रहीद्यः।
पलायितास्ते जयसिन्धुराणां गन्धेन सप्तछदबान्धवेन।।84।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी कवि बिल्हण ने जयसिंह देव की विजय यात्राओं का वर्णन किया हैं।

अन्वय – यः यात्रासु दिक्पालपुरीं विलुण्ठ्य दिग्गजान् केवलं न आसीत्। ते जयसिन्धुराणां सप्तच्छदबान्धवेन गन्धेन पलायिताः।

अर्थ – वह (राजा जयसिंहदेव) विजययात्राओं में दिक्पालों की पुरियों (नगरियों) को लूटने के पश्चात् केवल दिग्गजों को नहीं ले सका था क्योंकि वह विजयी हाथियों की सप्तच्छद की सी गंध सूंघने के पश्चात् भाग गये थे। अर्थात् विजय यात्राओं के दौरान राजा जयसिंहदेव ने दिक्पालों का सब कुछ लूट लिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. दिक्पालपुरीं – दिक्पालानां पुरीतां (ष.त.)
2. विलुण्ठ्य – वि+लुण्ठ् + क्त्वा (ल्यप्)
3. दिग्गजान् – दिशां गजाः दिग्गजाः तान् (तत्पु.)
4. जयसिन्धुराणां – जय प्रधानाः सिन्धुराः तेषाम् मध्यमपदलोपी समास।
5. सप्तच्छदबान्धवेन – सप्तच्छदस्य बान्धवः सप्तच्छबांधव तन, सप्तच्छदबान्धवेन (तत्पु.) सप्तच्छद एक वृक्ष है, इसे सप्तपर्ण भी कहते हैं। इसकी एक टहनी पर सात पत्ते होते हैं।
6. अतिशयोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

अपारवीरव्रतपारगस्य पराङ्मुखा एव सदा विपक्षाः।
अधिज्यचापस्य रणेषु यस्य यशः परं सम्मुखमाजगाम।।85।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – कवि बिल्हण चालुक्य वंशी प्रतापी वीर जयसिंह देव का ही वर्णन कर रहे हैं, उसके सामने बड़े से बड़े शत्रु नहीं टिक पाते थे।

अन्वय – अपारवीरव्रतपारगस्य अधिज्यचापस्य यस्य रणेषु विपक्षा सदा पराङ्मुखा एव परं यशः सम्मुखम् आजगाम।

अर्थ – वीरों के अपार व्रतों में पारङ्गत तथा डोरी (प्रत्यञ्चा) जिस पर चढ़ी हुई है ऐसे धनुष को धारण करने वाले राजा जयसिंह देव के युद्धों में शत्रु सदा ही पराङ्मुख (पीठ दिखाकर भाग जाने वाले) होते थे तथा कीर्ति हमेशा सम्मुख होती थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. अपारवीरव्रतपारगस्य – वीराणां व्रतम् वीरव्रतम्, अपारञ्च तद् वीरव्रतम्, अपारवीरव्रतम् तस्य पारगः तस्य अपारवीरव्रतपारगस्य (कर्मधारय, तत्पुरूष)।
2. अधिज्यचापस्य – अधिज्यः चापः यस्य तस्य (बहुब्रीहि)।
3. काव्यलिङ्ग अलंकार।

व्याख्या

यशोवतंसं नगरं सुराणां कुर्वन्नगर्वः समरोत्सवेषु।
न्यस्तां स्वहस्तेन पुरन्दरस्य यः पारिजातस्रजमाससाद।।86।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में भी कवि बिल्हण जयसिंह देव के पराक्रम का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि वह युद्धों में विजय प्राप्त कर कोर्ति प्राप्त करता था–

अन्वय – समरोत्सवेषु अगर्वः यः सुराणाम् नगरम् यशोवतंसम् कुर्वन् पुरन्दरस्य स्वहस्तेन न्यस्ताम् पारिजातस्रजम् आससाद।

अर्थ – युद्धरूपी उत्सवों में गर्व से रहित उस राजा जयसिंह देव ने देवताओं के लोक को अपने यश से विभूषित करते हुए इन्द्र के स्वंय हाथ से अर्पित की गई पारिजात के पुष्पों की माला को प्राप्त किया। भावार्थ यह है कि जयसिंह देव का यश स्वर्ग लोक तक व्याप्त हो गया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. समरोत्सवेषु – समराः एव उत्सवाः (कर्मधाररय्) तेषु
2. अगर्वः – अविद्यमान् गर्वः यस्य सः (बहुब्रीहि)
3. यशोवतंसम् – यशः अ वतंसः यस्य तत् (बहुब्रीहि)
4. स्वहस्तेन – स्वस्य हस्तः स्वहस्तः तेन (तत्पु.)
5. पारिजातस्रजम् – पारिजातानां स्रजम् (तत्पु.)
6. आससाद – आ + सद् + लिट् (प्र.ए.व.)
7. यहाँ रूपक व अतिशयोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

तस्मादभूदाहवमल्लदेवस्त्रैलोक्यमल्लापरनामधेयः।
यन्मण्डलाग्रं न मुमोच लक्ष्मीर्धाराजलोत्था जलमानुषीव।।87।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – चालुक्य वंश में जयसिंहदेव के पश्चात् आहवमल्ल नाम का राजा हुआ। यह आहवमल्ल ही विक्रमामदेव के पिता थे तथा बहुत पराक्रमी थे। इसके पश्चात् सम्पूर्ण प्रथम सर्ग में आहवमल्ल के प्रताप व पराक्रम का ही वर्णन है।

अन्वय – तस्मात् त्रैलोक्यमल्लापरनामधेयः आहवमल्लदेवः अभूत् यन्मण्डलाग्रम धाराजलोत्था लक्ष्मीः जलमानुषी इव न मुमोच।

अर्थ – उस जयसिंह देव से 'त्रैलोक्यमल' इस दूसरे नाम वाला 'आहवमध्देव' हुआ, जिसकी तलवार की धारा के जल से उत्पन्ना विजय लक्ष्मी उसे उसी प्रकार नहीं छोड़ती थी, जिस प्रकार जल मानुषी अपने गोलाकार निवास स्थान के अग्रभाग को नहीं छोड़ती।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. त्रैलोक्यमल्लापरनामधेयः – त्रैलोक्यमल्लः इति अपरं नामधेयं यस्य सः (बहुब्रीहि)
2. मण्डलाग्रम् – मण्डलस्य अग्रम् (ष.त.)
3. धाराजलोत्था – धारा – जल धारा व तलवार की धार दो अर्थ है अतः समास कृपाण के अर्थ में– धारा एवं जलम् तस्मात् उत्था (कर्मधारय, पं. तत्पु.) जलपक्ष में – धारायाः जलम्, तस्मात् उत्था (तत्पु.)
4. विजयलक्ष्मी की तुलना जलमानुषी से करने के कारण श्लेष मूलक उपमा अलंकार है।

व्याख्या

आख्यायिकासीम्नि कथाद्भुतेषु यः सर्गबन्धे दशरूपके च।
पवित्रचारित्रतया कवीन्द्रैरारोपितो राम इव द्वितीयः।।88।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – कवि बिल्हण चालुक्यवंशी राजा आहवमल्ल देव के चरित्र की पवित्रता का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अन्वय – यः कवीन्द्रैः आख्यायिकासीम्नि कथाद्भुतेषु सर्गबन्धे दशरूपके च पवित्रचारित्रतया द्वितीय रामः इव आरोपितः।

अर्थ – जो आहवमल्ल देव श्रेष्ठ कवियों के द्वारा आख्यायिका, अद्भुत कथाओं, महाकाव्य और दक्ष प्रकार के रूपकों में पवित्र चरित्र के कारण राम के समान चित्रित किया गया था। भावार्थ यह है कि जिस प्रकार राम के पवित्र चरित्र को कवियों ने विविध विधाओं में चित्रित किया है उसी प्रकार आहवमल्ल देव के चरित्र को भी चित्रित किया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. आख्यायिकासीम्नि – आख्यायिकायाः सीम्नि (ष.त.)
   इतिहास पर आधारित कथा– हर्षचरित
2. कथाद्भुतेषु – कथासु अद्भुतम् तेषु (स.त.)
   कल्पित कथा– कादम्बरी
3. सर्गबन्ध – सर्गानाम् बन्धः यत्र तेषु (बहुब्रीहि)
   सर्गबन्धो महाकाव्यम् लक्षण ग्रन्थों में सर्गबन्ध महाकाव्य कहा जाता है।
4. दशरूपके – दशानां रूपकानां लक्षणानि यत्र तत्र (बहुब्रीहि) नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिमः, व्यायोग, समवकार, वीथी, अप्र और ईहामृग (रूपक के दस भेद हैं)
5. पवित्रचारित्रतया – पवित्रं चरित्रं यस्य (बहुब्रीहि)
   तस्य भावः तया (पवित्र चरित्र+तल्)
6. कवीन्द्रैः – कवीनाम् इन्द्रैः (प.त.)
7. यहाँ उपमा अलंकार है।

व्याख्या

भूपेषु कूपेष्विव रिक्त–भावं कृत्वा प्रपापालिकयेव यस्य।
वीरश्रिया कीर्तिसुधारसस्य दिशां मुखानि प्रणयीकृतानि।।89।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' एतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – राजा आहवमध देव एक प्रसिद्ध राजा था तथा उनकी कीर्ति का विस्तार सर्वत्र था, इसी का वर्णन करते हुए कवि बिल्हण कहते हैं कि–

अन्वय – यस्य प्रपापालिकया इव वीरश्रिया कूपेषु इव भूपेषु रिक्त भावं कृत्वा दिशां मुखानि कीर्ति
सुधा रसस्य प्रणयीकृतानि।

अर्थ – प्रपापालिका (प्याऊ पर जल पिलाने वाली स्त्री) जिस प्रकार कुओं में से जल निकालकर कुओं को जलविहीन करके पथिकों को उस जल का प्रणयी बना देती है, उसी प्रकार राजा आहवमल्लदेव की वीर श्री राजाओं को कान्ति विहीन करके सभी दिशाओं में अपने राजा का यश फैलाकर उन्हें उसका प्रणयी बना दिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. प्रपापालिकया – प्रपायाः पालिका प्रपापालिका तया (तत्पु.)
2. रिक्तभावम् – रिक्तस्य भावः तम् (तत्पु.)
3. कीर्तिसुधारसस्य – कीर्ति सुधारसः इव कीर्तिसुधारसः तस्य (तत्पु.)
4. प्रणयी कृतानि प्रणय+च्वि, कृ+क्त
5. यहाँ उपमा अलंकार है।

व्याख्या

कौक्षेयकः क्ष्मातिलकस्य यस्य पीत्वातिमात्रं द्विषतां प्रतापम्।
आलोड्य वाष्पाम्बुभिराचचाम चोलीकपोलस्थलचन्दनानि।।90।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – श्री आहवमल्लदेव चालुक्यवंशी महान् पराक्रमी सम्राट हुए। चौलदेश में उनके महान् पराक्रम व यश का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

अन्वय – क्ष्मातिलकस्य यस्य कौक्षेयकः द्विषतां प्रतापं अतिमात्रं पीत्वा
चोलीकपोलस्थलचन्दनानि वाष्पाम्बुभिः आलोड्य आचचाम।

अर्थ – पृथिवी के आभूषण रूप जिस आहवमल्लदेव राजा के खड्ग ने शत्रुओं के प्रताप को
अत्यधिक मात्रा में पी लेने के पश्चात् चोल देश की नारियों के कपोलों पर लगे हुए चन्दनों को अश्रुजलों में घोलकर आचमन कर लिया। अर्थात् शत्रुओं के विनाश के बाद उनकी स्त्रियों के रोने का वर्णन है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. क्ष्मातिलकस्य – क्ष्मायाः तिलकः तस्य (ष.तत्पु.)
2. कौक्षेयकः – कुक्षौ भवः कौक्षेयकः
3. वाष्पाम्बभिः – वाष्पस्य अम्बूनि वाष्पाम्बूनि तैः (तत्पु.)
4. चौलीकपोलस्थलचन्दनानि – चोलीनां कपोलस्थलानि, तेषु चन्दनानि, चौलीकपोलस्थलचन्दनानि तानि (तत्पु.)
5. इसमें राजा आहवमल्लदेव की चोल देश पर विजय की प्रतीति होती है।
6. यहाँ उत्प्रेक्षा व समासोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

दीप्रप्रतापानलसन्निधानाद् बिभ्रत्पिपासामिव यत्कृपाणः।
प्रभारपृथ्वीपतिकीर्तिधारां धारामुदारां कवलीचकार।।।91।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – राजा आहवमल्ल देव पराक्रमी सम्राट् थे, उन्होंने चोलदेश को जीतने के बाद भोज की
धारा नगरी को भी जीत लिया, इस विषय का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया–

अन्वय – यत्कृपाणः दीप्रप्रतापानलसन्निधानात् पिपासां बिभ्रद् इव प्रभारपृथ्वीपतिकीर्तिधारां उदारां धारां कवलीचकार।

अर्थ – जिस (राजा आहवमल्लदेव) की कृपाण ने प्रज्वलित प्रताप रूपी अग्नि के पास में रहने के कारण प्यास को धारण करती हुई के समान परमार वंश के राजाओं की कीर्ति को धारा रूप महान् धारा नगरी को एक कौर बनाया। भावार्थ यह है कि परमार राजाओं को जीतकर धारा नगरी को अपने आधीन कर लिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. दीप्रप्रतापानलसंनिधानाद् – प्रतापः एव अनलः (कर्मधारय)
   दीप्रः, प्रतापः अनलः तस्य संनिधानात् – (प.त.)सम् + नि + धा + ल्युट् (संनिधान)
2. पिपासाम् – पातुम् इच्छा पिपासा ताम्।
3. बिभ्रद् – भृ + शतृ (प्र.ए.व.)
4. प्रभारपृथ्वीपतिकीर्तिधाराम्–प्रभारस्य पृथ्वीपतयः तेषां कीर्तिधाराम् (तत्पु.)
5. कवलीचकार–कवल+च्वि+कृ+लिट् (प्र.ए.ब.)
6. कीर्तिधारा व 'धारा नगरी' में यमक अलंकार है। अतिशयोक्ति अलंकार भी है।

व्याख्या

अगाधपानीयनिमग्नभूरि–भूभृत्कुटुम्बोऽपि यदीयखड्गः।
भाग्यक्षयान्मालवभर्तुरासीदेकां न धारां परिहर्तुमीशः।।92।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – धारानगरी परमार राजाओं की नगरी थी। चालुक्य वंशीय आहवमल्ल देव ने धारा नगरी को अपने आधीन कर लिया, उसी धारा नगरी का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि–

अन्वय – अगाधपानीयनिमग्न भूरिभूभृत्कुटुम्बः अपि यदीयखड्गः भाग्यक्षयात् मालवभर्तुः एकां धारां परिहर्तुम् ईशः न आसीत्।

अर्थ – अगाध जलरूपी अत्यन्त तीक्ष्य जल की धारा में अनेकों पर्वतों के समूह रूप राजाओं के कुटुम्ब को डुबा देने वाली जिसकी तलवार मालव नरेश (राजाभोज के दुर्भाग्य से एक मात्र धारा (1. जलधारा, 2. धारा नगरी) को छोड़ने में समर्थ नहीं थी।

भाव यह है कि आहवमल्ल देव ने दिग्विजय करते हुए अन्य राजाओं को जीतते हुए राजा भोज की धारा नगरी को भी जीत लिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. अगाधपानीयनिमग्नभूरिभूभृत्कुटुम्बः – अगाधपानीये निमग्नः भूरिभूभृता कुटुम्बो यस्य सः (बहुब्रीहि)
2. यदीयखड्गः – यदीयः खड्गः (कर्मधारय)
3. भाग्यक्षयात् – भाग्यस्य क्षयात् (ष.त.)
4. मालवभर्तुः – मालवानाम–भर्ता, तस्य (तत्पु.)
5. परिहर्तुम – परि+हृ+तुमुन्।
6. इस श्लोक में सभी शब्द द्वयर्थक है एक समुद्र पक्ष में तथा दूसरा राजा के पक्ष में। यथा–

1.	अगाध –	समुद्र पक्ष	–	अत्यन्त गहरा
		खड्गपक्ष	–	अत्यन्त तीक्ष्ण
2.	पानीय –	समुद्रपक्ष	–	जल
		खड्गपक्ष	–	तलवार की धार
3.	निमग्न–	समुद्रपक्ष	–	डूबा हुआ

		खड्गपक्ष	–	नष्ट
4.	भूभृत–	समुद्रपक्ष	–	1. पर्वत
		खड्गपक्ष	–	2. राजा

7. अतः श्लेष, रूपक व विशेषोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

निःशेषनिर्वासितराजहंसः खड्गेन बालाम्बुदमेचकेन।
भोजक्षमाभृद्भुजपञ्जरेऽपि यः कीर्तिहंसीं विरसीचकार।।93।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – राजा आहवमल्ल देव ने अत्यन्त पराक्रमी परमारवंशीय राजा भोज को भी जीतकर अपने अधीन कर लिया तथा उन्हें अपने यश से विहीन कर दिया। इसका वर्णन कवि ने किया है–

अन्वय – बालाम्बुदमेचकेन खड्गेन निःशेषनिर्वासित राजहंसः यः भोजक्षमाभृद्भुजपञ्जरे अपि कीर्तिहंसीं विरसीचकार।

अर्थ – नवीन मेघ के समान कृष्ण वर्ण की तलवार से समस्त राजा रूपी राजहंसों को भगा दिया था। उस आहमल्ल देव ने भोजराजा के भुजारूपी पिंजरे में सुरक्षित कीर्तिरूपी हंसी को विरक्त बना दिया।

अर्थात् मेघों को देखकर जिस प्रकार हंस पंक्षी मानसरोवर चले जाते है, उसी प्रकार राजा आहवमल्ल के पराक्रम से परास्त होकर सभी राजा अन्यत्र चले गये।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. बालाम्बुदमेचकेन – बालश्चासौ अम्बुदः तद्वत् मेचकेन (कर्मधारय)
2. निः शेषनिर्वासितराजहंसः – निःशेषेण निर्वासिताः राजहंसाःयेन सः (बहुब्रीहि समास)
3. भोजक्षमाभृद्भुजपञ्जरे – भोजक्ष्माभृतः पिञ्जरे (ष.त.)
4. कीर्तिहंसीम् – कीर्तिः एव हंसी ताम् (कर्मधारय)
5. विरसीचकार – विरस+च्वि+कृ+लिट् (प्र.ए.व.)
6. यहाँ श्लेष, उपमा व रूपक अलंकार है।

व्याख्या

भोजक्षमापालविमुक्तधारा–निपातमात्रेण रणेषु यस्य।
कल्पान्तकालानलचण्डमूर्तिश्चित्रं प्रकोपाग्निरवाप शान्तिम्।।94।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – आहवमल्ल देव के पराक्रम से भोजराज भी परास्त हो गये। राजा आहवमल्ल ने उनकी समस्त कीर्ति का हरण कर लिया। धारा नगरी का पतन हो गया, उसका वर्णन करते हुए कवि कहते है–

अन्वय – रणेषु कल्पान्तकालानलचण्डमूर्ति यस्य प्रकापाग्निः भोजक्षमापालविमुक्तधारानिपात–मात्रेण शान्तिमवाप इति चित्रम्।

अर्थ – युद्ध में प्रलय काल की अग्नि की भाँति भयंकर रूप वाली जिस आहवमल्ल देव की क्रोधाग्नि राजा भोज की नगरी 'धारा' के आत्मसमर्पण मात्र से शांत हो गयी यह अद्भुत बात है।

अर्थात् राजा आहमल्लदेव का क्रोध धारा नगरी के अधःपतन से शांत हो गया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. भोजक्षमापालविमुक्तधारानिपातमात्रेण – क्षमां पालयति इति क्षमापालः (उपपद स.) भोजश्चासौ क्षमापालः, तेन विमुक्तायाः धारायाः निपातमात्रम् तेन (कर्मधारय, तत्पु.)
2. कल्पान्तकालानलचण्डमूर्तिः – कल्पान्ते कालानल एव चण्डमूर्तिः यस्य सः (बहुब्रीहि)
3. अवाप – अव् + आप् + लिट् (प्र.ए.व.)

4. उपमा, श्लेष व विरोधाभास अलंकार है।

व्याख्या

यः कोटिहोमानलधूमजालैर्मलीमसीकृत्य दिशां मुखानि।
तत्कीर्तिभिः क्षालयति स्म शश्वदखण्डतारापतिपाण्डुराभिः।।95।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – आहवमल्ल देव के यश व पराक्रम का वर्णन करते हुए कवि बिल्हण उनके द्वारा यज्ञजन्य यश का वर्णन करते हुए कहते है कि–

अन्वय – यः कोटिहोमानलधूमजालैः दिशाम् मुखाग्नि मलीमसीकृत्य अखण्डतारापतिपाण्डुराभिः तत्कीर्तिभिःशश्वत् क्षालयति स्म।

अर्थ – जो राजा आहवमल्ल देव करोड़ों यज्ञ की अग्निओं के धुएं से दिशाओं के मुख को मैलाकर के, पूर्ण चन्द्र मण्डल के समान धवल उन (यज्ञों) के यशों के द्वारा निरन्तर धोता था।

अर्थात् राजा आहवमल्ल द्वारा किये गये यज्ञों का यश समस्त दिशाओं में फैला था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. कोटिहोमानलधूमजालैः – कोटिभ्यः होमानां अनलेभ्यः धूमस्य जालैः (ष.त.)
2. अखण्डतारापतिपाण्डुराभिः – अखण्डश्चासौ तारापतिः अखण्डतारापतिः तद्वत् पाण्डुराः अखण्डतारापतिपाण्डुराः ताभिः (कर्मधारय)।
3. तत्कीर्तिभिः तेषां कीर्तयः तत्कीर्तयः ताभिः (तत्पु.)
4. यहाँ उपमा, अतिशयोक्ति व समासोक्ति अलंकार है।

व्याख्या

ध्रुवं रणे यस्य जयामृतेन क्षीबः क्षमाभर्तुरभूत्कृपाणः।
एका गृहीता यदनेन धारा धारासहस्रं यशोऽवकीर्णम्।।96।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – आहवमल्ल देव के पराक्रम व यश का प्रसंग ही चल रहा है। अतः कवि बिल्हण आहवमल्ल देव के तलवार कौशल का वर्णन करते हुए कहते है कि–

अन्वय – यस्य क्षमाभर्तुः कृपाणः रणे जयामृतेन ध्रुवं क्षीबः अभूत्। यत् अनेन एका धारा गृहीता यशसः धारासहस्रंम् अवकीर्णम्।

अर्थ – जिस राजा आहवमल्ल देव की तलवार विजयरूपी अमृत के द्वारा निश्चय ही मदमस्त हो गयी थी क्योंकि उसने एक धारा को ग्रहण किया तथा यश की सहस्त्र धाराओं को प्रवाहित किया।

अर्थात् आहवमल्ल देव ने अपने तलवार के कौशल से धारा नगरी को अपने अधीन कर निस्सीम यश का विस्तार किया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. जयामृतेन – जयः एव अमृतं तेन (कर्मधारय)
2. क्षमाभर्तुः – क्षमायाः भर्तुः (ष.त.)
3. धारासहस्रम् – धाराणाम् सहस्रम्–धारासहस्रम् (तत्पु.)
4. अवकीर्णम् – अव+कीर्+क्त (न)
5. यहाँ रूपक व श्लेष अलंकार का प्रयोग है।

व्याख्या

शतक्रतोर्मध्यमचक्रवर्ती क्रमादनेकक्रतुदीक्षितोऽपि।
ऐन्द्रात्पदादभ्यधिके पदे यस्तिष्ठन्नाशङ्कास्पदतामयासीत्।।97।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – राजा आहवमल्ल ने अपने पराक्रम से सम्पूर्ण पृथिवी को जीत लिया तथा वह इन्द्र से भी अधिक शक्तिशाली हो गया। कवि बिल्हण कहते हैं कि–

अन्वय – मध्यमचक्रवर्ती क्रमात् अनेकक्रतुदीक्षितः यः ऐन्द्रात् पदात् अभ्यधिके पदे अपि तिष्ठन् शतक्रतोः शङ्कास्पदतां न अयासीत्।

अर्थ – मध्यम लोक अर्थात् मर्त्यलोक का चक्रवर्ती जो राजा आहवमल्लदेव क्रमशः अनेक यज्ञों की दीक्षा से युक्त हो जाने पर भी इन्द्र के पद से बड़े पद पर रहता हुआ भी इन्द्र के लिए शंका का स्थान नहीं बना। अर्थात् इन्द्र से भी बड़े पद पर राज्य करने क बाद इन्द्र के मन में शंका उत्पन्न नहीं हुई क्योंकि इन्द्र की प्रार्थना पर ही ब्रह्मा ने चालुक्य वंश को उत्पन्न किया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. मध्यमचक्रवर्ती – मध्यमस्य चक्रवर्ती (ष.त.)
2. अनेकक्रतुदीक्षितः – अनेकेषुक्रतुषु दीक्षिताः (तत्पु.)
3. ऐन्द्रात् – इन्द्रस्य अयम् ऐन्द्रः तस्मात् (इन्द्र+अण)
4. शतक्रतोः – शतं क्रतवः यस्य सः तस्य (बहुब्रीहि)
5. शङ्कास्पदाम् – शङ्कायाः आस्पदः ताम् (ष.तत्पु.)
6. अयासीत् – या+लुङ् (प्र.पु.ए.व.)
7. तिष्ठन् – स्था + शतृ (प्र.ए.व.)
8. यहाँ विशेषोक्ति व काव्यलिङ्ग अलंकार है।

व्याख्या

चिन्तामणिर्यस्य पुरो वराकस्तथाहि वार्ता जनविश्रुतेयम्।
यत्तत्र सौवर्णतुलाधिरूढे चक्रे स पाषाणतुलाधिरोहम्।।98।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में कवि बिल्हण आहवमल्ल के पराक्रम व प्रसिद्धि की चर्चा करने के पश्चात् उनकी दानशीलता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

अन्वय – यस्य पुरः चिन्तामणिः वराकः तथाहि इयं वार्ता जनविश्रुता यत् तत्र सौवर्णतु–लाधिरूढे (सति) सः पाषाणतुलाधिरोहम् चक्रे।

अर्थ – दानशीलता में उनके सामने चिन्तामणि तुच्छ था। इसलिए उनके सम्बंध में जनता में यह बात प्रसिद्ध थी कि (अपने शरीर के बराबर सोना देने के उद्देश्य से) उसके सोने के बांट वाली तराजू पर आरूढ़ होने पर वह चिन्तामणि पाषाणतुला –पत्थर के बांट वाली तराजू पर आरोहण करता था। राजा अपने शरीर के बराबर स्वर्णदान देने के विषय में प्रसिद्ध था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. जनविश्रुता – जनेषु विश्रुता (तत्पु)
2. सौवर्णतुलाधिरूढे – (कर्मधारय, तत्पु.) सौवर्णी चासौ तुला सौवर्णतुला ताम् अधिरूढः तस्मिन् (कर्म., तत्पु.)
3. सौवर्ण – सुवर्ण+अण्, अधिरूढे – अधि+रुह्+क्त्
4. पाषाणतुलाधिरोहम् – पाषाणस्य तुलायाः अधिरोहम् (तत्पु.)
5. यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

व्याख्या

विधाय रूपं मशकप्रमाणं भयेन कोणे क्वचन स्थितस्य।
कलेरिवोत्सारणकारणेन यो यागधूमैर्भुवनं रुरोध।।99।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – राजा आहवमल्ल अत्यधिक दानशील था यज्ञादि भी करता था उसी के दानशीलता व यज्ञों के विषय में कवि बिल्हण कहते हैं –

अन्वय – यः भयेन मशकप्रमाणं रूपं विधाय क्वचन कोणे स्थितस्य कलेः उत्सारणकारणेन इव यागधूमैः भुवनं रुरोध।

अर्थ – जिस राजा आहवमल्ल देव के भय के कारण मशक (मच्छर) जितना रूप धारण करके किसी कोने में स्थित कलियुग को मानों हटाने के लिए ही यज्ञ के धुएं से पृथिवी को आच्छादित कर लिया।

अर्थात् जिस प्रकार धुएँ से मच्छर भगाया जाता है उसी प्रकार यज्ञ के धुएँ से उसने कलियुग को भगाया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. मशकप्रमाणम् – मशकः प्रमाणम, यस्य सः (बहुब्रीहि)
2. विधाय – वि+धा+क्त्वा (ल्यप्)
3. उत्सारणकारणेन – उत्सारणस्य कारणेन (ष.त.)
4. यागधूमैः – यागानां धूमैः (ष. तत्पु.)
5. यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

स्वाभाविकादुष्णगभस्तिभासः क्षत्रोष्मणो दृष्टिविघातहेतोः।
यस्मिन्परित्रस्त इति क्षितीन्द्रे क्षणं न चिक्षेप कलिः कटाक्षम्।।100।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – राजा आहवमल्ल देव चालुक्य वंश में सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा हुए, उनके पराक्रम, दानशीलता यज्ञों आदि के विषय में चर्चा करता हुआ कवि उनकी तेजस्विता का वर्णन करता है।

अन्वय – कलिः यस्मिन् क्षितीन्द्रे स्वाभाविकात् उष्णगभस्तिभासः क्षत्रोष्मणः दृष्टिविघातहेतोः परित्रस्तः इति क्षणं कटाक्षं न चिक्षेप।

अर्थ – जिस राजा आहवमल्लदेव पर जो सूर्य के समान स्वाभाविक तेज वाला था तथा दृष्टि नाश होने के भय से जिसके क्षत्रिय तेज के सामने कलियुग क्षण भर के लिए भी कटाक्षपात नहीं करता था। अर्थात् कलियुग भी आहवमल्ल देव की तेजस्विता के समक्ष दृष्टिपात नहीं कर पाता था।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. उष्णगर्भस्तिभासः – उष्णाः गभस्तयः यस्य सः उष्णगभस्तिः तस्य भास इव भासो यस्य तस्मात् (बहुब्रीहि)
2. क्षत्रोष्मणः – श्रत्रस्य उष्मणः (ष.त.)
3. दृष्टिविघातहेतोः – दृष्टेः विघातः, तस्य हेतुः तस्मात् (तत्पु.)
4. परित्रस्तः – परि+त्रस्+क्त।
5. चिक्षेप – क्षिप् धातु लिट् लकार (प्र.ए.व.)
6. उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

अन्यायमेकं कृतवान् कृती यश्चालुक्यगोत्रोद्भववत्सलोऽपि।
यत्पूर्वभूपालगुणान्प्रजानां विस्मारयामास निजैश्चरित्रैः।।101।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – आहवमल्ल देव की अनेक विशेषताओं यथा पराक्रम, दानशीलता, यशस्वी कीर्ति आदि का उल्लेख करते हुए कवि बिल्हण अन्त में उनकी उदात्तता का चित्रण करते हैं।

अन्वय – कृती यः एकम् अन्यायम् कृतवान् यत् चालुक्यगोत्रोद्भववत्सलः अपि (सः) निजैः चरित्रः प्रजानाम् पूर्वभूपालगुणान् विस्मारयामास।

अर्थ – पुण्यात्मा, कार्यकुशल राजा आहवमल्लदेव ने चालुक्यवंशी राजाओं में श्रद्धा रहते हुए भी एक अन्याय किया कि उन्होंने अपने उत्कृष्ट चरित्र के द्वारा प्रजाओं के बीच पूर्ववर्ती राजाओं के गुणों को भुलवा दिया अर्थात् राजा आहवमल्ल देव के अत्यन्त गुणी होने के कारण प्रजा अपने पूर्ववर्ती राजाओं को भूल गई।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. कृती – कृतमस्यास्तीति (कृत+इति)
2. चालुक्यगोत्रोद्भववत्सलः – चालुक्यानां गोत्रे उद्भवः येषां तेषु (बहुब्रीहि)
3. पूर्वभूपालगुणान् – पूर्वेषाम् भूपालानां गुणान् (कर्मधारय, तत्पु.)
4. विस्मारयाभास – वि+स्मृ+णिच्+लिट् (प्र.ए.व.)
5. यहाँ विशेषोक्ति व व्याजस्तुति अलंकार है।

व्याख्या

विशीर्णकर्णा कलहेन यस्य पृथ्वीभुजङ्गस्य निरर्गलेन।
सङ्गच्छतेऽद्यापि न डाहलश्रीः कर्पूरताटङ्कनिभैर्यशोभिः।।102।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – पस्तुत श्लोक में राजा आहवमल्लदेव के पराक्रम का वर्णन करते हुए कवि आहवमल्लदेव के डाहल देश को जीतने के प्रसंग का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

अन्वय – पृथ्वीभुजङ्गस्य यस्य निरर्गलेन कलहेन विशीर्णकर्णा डाहलश्रीः कर्पूरताटङ्कनिभैः यशोभिः अद्यापि न संगच्छते।

अर्थ – पृथ्वी के पति जिस राजा आहवमल्लदेव के अबाध युद्ध के द्वारा नष्ट हुए कर्णवाली, डाहल देश की राजलक्ष्मी कपूर के बने या कपूर जैसे श्वेत कर्णाभूषण के समान यशों से अभी तक युक्त नहीं हो पा रही है। भावार्थ यह है कि डाहल देश के राजा कर्ण को मारकर उसे सदा सर्वदा के लिए यश से रहित कर दिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. पृथ्वीभुजङ्गस्य – पृथव्याः भुजङ्गः तस्य (तत्पु.)
2. निरर्गलेन – निष्क्रान्तोऽर्गलाभ्य इति निरर्गलः तेन (तत्पु.)
3. विशीर्णकर्णा – विशीर्णः कर्णः यस्याः सा (बहुब्रीहि)
4. डाहलश्रीः – डाहलस्य श्रीः डाहलश्रीः (तत्पु.)
5. कपूरताटङ्कनिभैः – कर्पूरवत् यत् ताटप्रं तस्य निभैः (तत्पु.)
6. राजा कर्ण के हत होने पर डाहलभूमि कीर्तिविहीन हो गयी अतः 'काव्यलिंग' अलंकार है। कर्ण राजा कर्ण तथा डाहलपृथिवी रूपी नायिका के 'कान' कटने से वह कर्णाभूषण नहीं पहन सकती यहाँ श्लेष आधारित रूपक अलंकार है।

व्याख्या

कर्णे विशीर्णे कलहेन यस्य पृथ्वीभुजङ्गस्य निरर्गलेन।
कीर्तिः समाश्लिष्यति डाहलोर्वीं न दन्ततातङ्कनिभाऽधुनापि।।103।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में राजा आहवमल्लदेव के पराक्रम का वर्णन करते हुए कवि आहवमल्लदेव के डाहल देश को जीतने के प्रसंग का वर्णन करते हुए कहते है कि–

अन्वय – पृथ्वीभुजङ्गस्य यस्य निर्गलेन कलहेन कर्ण विशीर्णे (सति) दन्ततातङ्कनिभाः कीर्ति
अधुना अपि डाहलोर्वीम् न समाश्लिष्यति।
अर्थ – जिस पृथ्वीपति राजा आहवमल्ल देव के अबाध युद्ध के कारण कर्ण के नष्ट हो जाने पर हाथी दांत के दाने ताटङ्क (कर्णाभूषण) के समान शुभ्र कीर्ति अब भी डाहल देश की धरती का आलिङ्गन नहीं कर पा रही।
अर्थात् डाहल देश अपने यश को अभी तक प्राप्त नहीं कर सका।
व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –
1. विशीर्णे – वि+शृ+क्त (स.ए.व.)
2. पृथ्वीभुजंगस्य – भुवैः गच्छाति इति भुजंग पृथ्व्याः भुजंगस्य (ष. तत्पु.)
3. निरर्गलेन – निर्गतम् अर्गलम् यस्य तेन (बहुब्रीहि)
4. डाहलोर्वीम् – डालहदेशस्य उर्वीम् (मध्यम पदलोपी)
5. दन्ततातंकनिभा – दन्तमया ताटप्राः इति दंततातप्राः तेषां निभाः (ष.तत्पु.)
6. यहाँ काव्यलिङ्ग व श्लेष अलंकार है।

व्याख्या

यस्यासिरत्युच्छलता रराज धाराजलेनेव रणेषु धाम्ना।
दृप्तारिमातङ्गसहस्रसङ्ग्रामभ्युक्ष्य गृह्णन्निव वैरिलक्ष्मीम्।।104।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।
प्रसंग – कवि बिल्हण श्री आहवमल्लदेव के पराक्रम व तेजस्विता का वर्णन करते हुए उसकी तलवार के तेज का वर्णन करते हुए कहते है–
अन्वय – यस्य असिः रणेषु अत्युच्छलता धाराजलेन इव धाम्न दृप्तारिमातङ्ग सहस्रसङ्ग्राम् वैरिलक्ष्मीम् अभ्युक्ष्य गृह्णन् इव रराज।
अर्थ – जिस राजा आहवमल्ल देव की तलवार युद्धों में अत्यन्त उछलती हुई धाराजल (1. तलवार की धार, 2. प्रवाह का जल) के समान अपने तेज घमण्डी शत्रु रूपी हजारों चण्डालों के सम्पर्क वाली (शत्रुओं के हजारों हाथियों के सम्पर्क वाली) शत्रुओं की राजलक्ष्मी को छींटें देकर ग्रहण करती हुई सी सुशोभित होती थी।
व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –
1. अत्युच्छलता – अति+उत्+छल्+शतृ (तृ.ए.व.)
2. धाराजलेन – धारायाः जलम् तेन (तत्पु.)
3. दृप्तारिमातङ्ग सहस्रसंगात्–दृप्तानाम् अरि मातगांनाम् सहस्रेण संगः यस्याः ताम् (तत्पु.)
4. गृह्णन् – ग्रह् + शतृ (ए.व.)
5. यहाँ उपमा, श्लेष व उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

यद्वैरिसामन्तनितम्बिनीनामश्रान्तसन्तापकदर्थ्यमाने।
पराङ्मुखं शोषविशङ्कयेव कुचस्थले कुङ्कुमपङ्कमासीत्।।105।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।
प्रसंग – राजा आहवमल्ल देव के पराक्रम का वर्णन करते हुए कवि बिल्हण शत्रु स्त्रियों पर उसके प्रभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–
अन्वय – यद्वैरिसामन्तनितम्बिनीनाम् अश्रान्तसन्तापकदर्थ्यमाने कुचस्थले कुङ्कुमपङ्कम् शोषविशङ्कया इव पराङ्मुखं आसीत्।
अर्थ – जिस राजा आहवमल्ल देव के शत्रु सामन्तों की नारियों ने निरन्तर दुःख से दुर्दशा को प्राप्त, दाह के द्वारा पीड़ित स्तनों पर कहीं सूख न जाये इस आशङ्का से केसर के

पङ्क का लेप उन पर नहीं किया गया था अर्थात् शत्रु राजाओं के मरने के कारण उनकी पत्नियों ने शृंगार नहीं किया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. यद्वैरिसामन्तनितम्बिनीनाम् – यस्य वैरिसामन्तानाम् नितम्बनीनाम् (ष.तत्पु.)
2. अश्रान्तसन्तापकदर्थ्यमाने – अश्रान्तश्चासौ सन्तापः (कर्म.) तेन कदर्थ्यमानः तस्मिन् (तत्पु.)
3. शोषविशङ्कया – शोषस्य विशङ्कःतया (ष. तत्पु.)
4. कुचस्थले – कुचयोः स्थलम्, तस्मिन् (तत्पु.)
5. कुङ्कुमपङ्कम् – कुङ्कुमस्य पङ्कम् (तत्पु.)
6. यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याख्या

एकत्र वासादवसानभाजस्ताम्बूललक्ष्म्या इव संस्मरन्ती।
वक्त्रेषु यद्वैरिविलासिनीनां हासप्रभा तानवमाससाद।।106।।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक कवि बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। 'विक्रमांकदेवचरितम्' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें कवि ने चालुक्य वंश के राजाओं का वर्णन किया।

प्रसंग – राजा आहवमल्लदेव चालुक्य वंश के पराक्रमी सम्राट थे। कवि बिल्हण ने उनका विसतत वर्णन किया है राजा आहवमल्ल के प्रताप से उनके शत्रुओं की पत्नियाँ अत्यन्त दुःखी थी, इसका वर्णन करते हुए कवि कहते है–

अन्वय – यद्वैरिविलासिनीनां वक्त्रेषु हासप्रभा अवसानभाजः ताम्बूललक्ष्म्याः एकत्र वासात् संस्मरन्ती इव तानवम् आससाद।

अर्थ – राजा आहवमल्लदेव के शत्रुओ की स्त्रियों के मुखों में हंसी की शोभा समाप्त हो जाने वाली, पान की शोभा के साथ रहने के कारण, उसको याद करती हुई सी दुर्बलता को प्राप्त हो गयी थी। अर्थात् पतियों की मृत्यु के वियोग के कारण शत्रुस्त्रियों में हंसी व पान खाने की शोभा दोनों ही समाप्त हो गयी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी –

1. यद्वैरिविलासिनीनां – यस्य वैरिणीनां विलासिनीनां (ष.त.)
2. ताम्बूललक्ष्म्याः – ताम्बूलस्य लक्ष्म्या (ष.त.)
3. हासप्रभा – हासस्य प्रभा (ष.त.)
4. संस्मरन्ती – सम् + स्मृ + शतृ + ङीप्।
5. तानवम् – तनु + अण् (तनोः भावः तम्)
6. अवसानभाजः – अवसानं भजते इति अवसानभाक् – अवसान + भज् + क्विप्
7. आससाद – आ + सद् + लिट् (प्र.ए.व.)
8. यहाँ उत्प्रेक्षा व समासोक्ति अलंकार है।

14.3 पारिभाषिक शब्दावली

1. अराति – शत्रु
2. स्फूर्जद्यशोहंसविलासपात्रम् – फैलते हुए यशरूपी हंस के विलास का पात्र
3. निस्त्रिंश – तलवार।
4. उतंसहेतोः – कर्णाभूषण के लिए।
5. प्रतिभाव्यार्थम् – जमानत के लिए।
6. आजुहाव – पास बुला लिया।
7. सलीलम् – अनायास।
8. अवन्ध्यपातानि – सफल प्रहार वाले।
9. भार्गव – भृगु वंश में उत्पन्ना ;परशुरामद्ध
10. मार्गण – बाण
11. गजाहवेषु – गजयुद्धों में (आहव–युद्ध)
12. अन्तराय – विघ्न, बाधा

13. कदर्थ्यमानाः – पीड़ित होती हुई।
14. अप्रपाली – गोद
15. संयुगेषु – युद्धो में
16. ध्वजिनी – सेना (ध्वजिनी वाहिनी सेनापृतनाऽनीकिनी चमूः इत्यमरः)
17. कर्मठ – कर्म करने में कुशल 'कर्मशूरस्तु कर्मठः' इत्यमरः।
18. किरोट – मुकुट
19. शिवाभिः – लोमड़ियों के द्वारा
20. दिग्गजाः – दिशाओं के हाथियों की ;पौराणिक मान्यता हैद्ध कि प्रत्येक दिशा में हाथी रहते हैं, जिन्होंने पृथिवी को सम्भाल रखा है।
21. सिन्धुर – हाथी
22. अधिज्यचापस्य – चढ़ी हुई प्रत्यंचा के धनुष वाले।
23. यशोवतंसम् – यश से अलंकृत।
24. प्रपापालिका – प्याऊ पर पानी पिलाने वाली स्त्री।
25. कौक्षेयकः – तलवार कौक्षेयको, मण्डलाग्र करवालः कृपाणवत् इत्यमरः।
26. मेचकः – काला।
27. कल्पान्त – प्रलयकाल (कल्प–ब्रह्म का एक दिन, जिसमें चारों युगों का एक हजार बार आवर्तन होता है, तथा जिसके अन्त में प्रलय हो जाता है)
28. क्षीणः – मदमत्त
29. शतक्रतोः – इन्द्र के (पौराणिक मान्यता के अनुसार सौ यज्ञ करने वाला व्यक्ति इन्द्र तुल्य हो जाता है।)
30. कृति – पुण्यात्मा, कार्यकुशल।
31. ताटङ्क – विशेष प्रकार का कर्णाभूषण।
32. सन्ताप – दुःख 'सन्तापः सज्वरः समौ' इत्यमरः।
33. तानवम् – दुर्बलता

14.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न –

1. श्री तैलप के पश्चात् चालुक्य वंश में राजा हुए –
   (अ) श्री जयसिंह देव (ब) सत्याश्रय
   (स) आहवमध्देव (द) हारीत ( )
2. राजा सत्याश्रय किस के लिए प्रसिद्ध था –
   (अ) मल्लयुद्ध के लिए (ब) तलवार संचालन में
   (स) बाणों के वर्षण में (द) गज सञ्चालन में ( )
3. कवि बिल्हण ने प्रथम सर्गान्त तक सर्वाधिक वर्णन किया है–
   (अ) श्री आहवमल्लदेव का (ब) सत्याश्रय का
   (स) विक्रमांकदेव का (द) जयसिंह देव का ( )
4. सर्गबन्ध काव्य की विधा का नाम है–
   (अ) आख्यायिका (ब) कथा
   (स) रूपक (द) महाकाव्य ( )
5. 'कौक्षेयकः' शब्द का अर्थ है–
   (अ) तलवार (ब) बाण
   (स) कोषग्रन्थ (द) शत्रुसेना ( )
6. आहवमल्ल देव का दूसरा नाम था–
   (अ) सत्याश्रय (ब) दानशील
   (स) त्रैलोक्यमल (द) क्ष्माभृत् ( )
7. निम्न श्लोकों का प्रसंग अनुवाद कीजिये–
   1 – 76 2 – 80 3 – 82
   4 – 88 5 – 93 6 – 98

बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1 ब
उत्तर 2 स
उत्तर 3 अ
उत्तर 4 द
उत्तर 5 अ
उत्तर 6 स
उत्तर 7 देखिये –

1. व्याख्या सं. 76
2. व्याख्या सं. 80
3. व्याख्या सं. 82
4. व्याख्या सं. 88
5. व्याख्या सं. 93
6. व्याख्या सं. 98

14.5 सारांश

पिछली इकाइयों में (इ.स. 11 एवं 12) आपने विक्रमांक देवचरित के प्रथम अङ्क के 70 श्लोकों का सप्रसंग अनुवाद उसकी व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी तथा अलंकार वैशिष्ट्य के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। प्रस्तुत इकाई सं. 13 में भी उसी क्रम में 71 से 106 श्लोकोंतक का सप्रसंग अनुवाद, व्याकरण अलंकारों के विषय में जाना। छंद प्रथम सर्ग के इन श्लोकों में उपजाति है अतः उसका बार–बार उल्लेख नहीं किया है।

इस इकाई में चालुक्य वंशीय राजा तैलप के पराक्रम का वर्णन है। राजा तैलप के बाद सत्याश्रय का वर्णन है। युद्धभूमि में उनके बाणो के सफल प्रहार का कवि ने अलंकारिक भाषा में वर्णन किया है। सत्याश्रम के पश्चात् राजा जयसिंह देव का वर्णन है, जिसने अपने पराक्रम से लक्ष्मी व यश दोनों को प्राप्त किया। राजा जयसिंहदेव की विजय यात्राओं के पश्चात् राजा आहवमल्ल देव हुये। यह चालुक्य वंश के पराक्रमी, तेजस्वी, ख्यातनामा सम्राट् हुये। इनका कवि ने विस्तृत वर्णन किया है। इन्होंने समस्त दिशाओं में अपने राज्य का विस्तार किया। इन्होंने परमार राजाओं को जीतकर धारा नगरी को अपने अधीन कर लिया। इन्होंने डाहल देश के राजा कर्ण को भी मार गिराया। बिल्हण ने धारानगरी पतन का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है। आहवमध देव की दानशीलता, उदात्तता का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है। कवि ने रूपक, श्लेष, उपमा उत्प्रेक्षा व अतिशयोक्ति अलंकारों का पदे–पदे प्रयोग किया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद कवि बिल्हण की वैचित्र्यपूर्ण काव्य शैली, अलंकारों के सुन्दरतम् प्रयोग, शब्दार्थ का समगुम्फ तथा भावों की प्रवाहपूर्णता सभी विशेषताओं के दर्शन होते हैं। कवि द्वारा चालुक्यवंशी राजाओं का क्रमशः वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है, साथ ही महाकवि होने के कारण साहित्यिक दृष्टि से 'विक्रमांकदेव चरितम्' महाकाव्य का वैशिष्ट्य कहीं अधिक है।

14.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विक्रमांकदेवचरितम्, विश्वनाथशास्त्रीभारद्वाज, हिन्दू विश्वविद्यालय साहित्य अनुसंधान समीति, बनारस,1965.
2. विक्रमांकदेवचरितम्, श्रीकान्तपाण्डेय, साहित्यभंडार, मेरठ, 2006.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए.बी.कीथ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999.
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1995.

इकाई 15

आचार्य पुष्पदत्त प्रणीत शिवमहिम्नः स्तोत्र में शिव का महिमामय वर्णन (श्लोक सं. 1 से 20 की संस्कृत व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 पूर्व प्रसंग
15.3 इकाई सं. 02 से 06 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या
15.4 इकाई सं. 07 से 11 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या
15.5 इकाई सं. 12 से 16 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या
15.6 इकाई सं. 17 से 18 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या
15.7 पारिभाषिक शब्दावली
15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.9 सारांश
15.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.1 उद्देस्य

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा संचालित एम.ए. (उत्तरार्द्ध) संस्कृत के प्रश्नपत्र पंचम की इकाई 15 एवं 16 गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य द्वारा रचित **'शिवमहिम्न स्तोत्र'** से सम्बन्धित हैं इसमें कुल 43 श्लोक हैं। जिनमें से 36 श्लोक मे ही शिव महिमा का गुणगान किया गया है शेष श्लोकों में स्त्रोत पठन का फल बताया गया है।

स्तोत्ररचना का अविरल प्रवाह अनेकविध तरंगों, लहरियों एवं धाराओं में बढ़ता हुआ निखिल विश्व को आप्यायित करती हुई पीड़ा कसक से उपजी आत किन्तु प्रार्थनारूपर वाणी ही स्तोत्र की जन्मस्थली है।

भगवान् शिव की महिमा, अगम्य, अनन्त तथ अनिर्वचनीय है। ब्रह्मा, विष्णु, ऋषि, मुनि भी शिव के बल एवं वीर्य की महिमा को नहीं जानते ह। ऐसे अपार महिमामय, शिव की महिमा का वर्णन उनके अनन्यसेवक, गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य ने स्वमहिमा से भ्रष्ट होकर पुनः उस महिमा की प्राप्ति के लिए किया था।

विद्यार्थियों को स्तोत्रविधा से परिचित कराना ही इस इकाई का मूल प्रयोजन है। इसके अध्ययनोपरान्त आप –

- संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं में से स्तोत्रविधा के स्वरूप को जानेंगे।
- भगवान् शिव के दार्शनिक स्वरूप को समझ पाएंगें।
- शिव महिम्नः स्त्रोत्र का सरल संस्कृत में अनुवाद कर सकेंगे।
- शिव महिम्न स्तोत्र की साहित्यिक विशेषताओं को जानेंगे।
- शिव विषयक विभिन्न उपमानों को जान सकेंगे।
- अपने अन्तःकरण में शिव विषयक भक्ति को उत्पन्न कर सकेंगे।

15.2 प्रस्तावना

स्तोत्र भगवती वाग्देवी की जिव्हा है। समस्त वाङ्मय की अधिष्ठात्री वाग्देवी सरस्वती वाणी के रूप में आविर्भूत होकर इष्टदेव की स्तुति करती हैं।

भारतीय–देव–स्तोत्र साहित्य अपनी विशालता, विविधता एवं विशिष्टता के कारण अत्यन्त उपादेश है। 'स्तूयतेऽनेनेति स्तोत्रम्' स्तु धातु से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्ययान्त होकर यह स्तोत्र पद किसी देवता का छन्दोबद्ध स्वरूप कथन या गुणकीर्तन, प्रशंसात्मकगीत या कविता, स्तुत्यात्मक श्लोक से सम्बन्ध रखता है।

स्तोत्र शब्द का मूल अर्थ है – 'गुणानुवाद'। इसमें न केवल देवता के गुणों और महान् कार्यों का प्रशंसात्मक वर्णन होता है, अपितु उनके प्रति नमस्कार, आशीः, सिद्धान्त कथन भी होता है। स्तोत्र में छः प्रकार की अभिव्यक्तियों अन्तर्निहित होती है – नमस्कार, आशीः, सिद्धान्तकथन, पराक्रम, विभ्ति एवं प्रार्थना।

नमस्कारस्तथाशीश्च सिद्धान्तोक्तिः पराक्रमः।
विभूतिः प्रार्थना चेति षड्विधं स्तोत्रलक्ष्मणम्।।

गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य कृत **'शिवमहिम्नः स्तोत्र'** संस्कृत–स्तोत्र साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। शिव की यश भागीरथी में गन्धर्वराज की पवित्र वाणी ने अवगाहन कर शैव जगत् जो रत्न प्रदान किए हैं वे भक्ति साहित्य की श्रीवृद्धि में सदैव अमूल्य योगदान देते रहेंगे।

15.3 पूर्व प्रसंग

शिवभक्तानां यदि गणना क्रियते तर्हि गन्धर्वराजपुष्पदन्तः तु अग्रगण्यः भवेत् 'शिवमहिम्न स्तोत्रम्' शिवविषयक–साहित्यस्य अत्यन्तविशिष्टं प्रधानं च अंगमस्ति। अस्य रचयिता महान् शिवभक्तः
गन्धर्वराजपुष्पदन्तः आसीत्।

सः प्रतिदिनं शिवाराधनाय कस्यचिद् यज्ञः प्रमदवनात् रम्याणि सुगन्धितानि च पुष्पाणि हरन्नासीत्। तद् ज्ञानाय शिवनिर्माल्यलङ्घनेन मत्पुष्पचौरस्यान्तर्धानादिका सर्वापि शक्ति विनङ्क्ष्यतीत्यभिप्रायेण राज्ञा शिव निर्माल्यं पथि निक्षिप्तम्। तदप्रतिसंधाय च गन्धर्वराजस्तत्र प्रविशन्नेव कुण्ठित शक्तिःबभूव। शिवनिर्माल्यनङ्घनेनैव ममैतादृशं वैक्लव्यमिति प्रणिधानेन विदित्वा सर्वकामदतमेव परमकारुणिंक भगवन्तं तुष्टाव।

का नाम स्तुतिः ? 'स्तवनं स्तुतिः' अथवा 'स्तुतिर्नाम गुणकथनं' भगवद्गुणसंकीर्तनम् एव स्तुतिः। स्तुत्याम् उपास्यदेवस्य गुणानां संकीर्तनेन स्तवनेन च सह धनसम्पत्तिऐश्वर्यादीनां याचना अपि सन्निहिता भवति।

गन्धर्वराजः स्तोत्रस्य प्रारम्भं 'महिम्नः' पदेन कृतवान् अतः 'महिम्नः स्त्रोत्रम्' नाम्ना अपि ख्यातम् स्तोत्रमिदम्। 'शिखरिणी' छन्दसि निबद्धं स्तोत्रमिदम्। शिखरात् भूतले अवतरितायाः भगवतीभागीरथ्याः मंगलमयी स्वरलहर्य्या गुजिंता 'शिखरिणी' भगवती **भागीरथी इव शिवस्य प्रिया।**

15.4 इकाई सं. 2 से 6 तक के श्लोकों की संस्कृत व्याख्या

शिव–महिम्नः स्तोत्रम्

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी,
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधिगृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः।।1।।

अन्वयः – हे हर ते महिम्नः परं पारं अविदुषः स्तुतिः यदि असदृशी (तर्हि) ब्रह्मादीनामपि गिरः त्वयि अवसन्नाः। अथ सर्वः स्वमति परिणामावधि गृणन् अवाच्यः। ममापि स्तोत्रे एणः परिकरः निरपवादः।

शब्दार्थाः – हे हर = सर्वाणि दुःखानि हरनीति हर, ते = तव, महिम्नः = महत्वस्य, परं पारं = अत्यर्थं अवसानं, अविदुषः = अजानतः पुरुषस्य, स्तुतिः, यदि, असदृशो = अननुरुपा, अयोग्या इति भूयात्, तर्हि ब्रह्मादीनाम् सर्वज्ञानां देवानाम् गिरः = वाचः, त्वयि = त्वद्विषये,

अवसन्ना = कुंठिता, निःष्फला भवन्ति। सर्वः समस्तोऽपि जनः स्वमतिपरिणामावधि = स्वबुद्धया यावद्विष्यीकृतं तावद् गृणन् = स्तुवन्, अवाच्यः = अनिन्दनीयः। एवं हे हर! ममापि स्तोत्रे = स्तवे, स्तुतौ, एष परिकरः = प्रारम्भः यत्नः निरपवादः = निर्दोषः अखण्डनीय इत्यर्थः।

व्याख्या – हे हर! भवतः महिम्नः परमावधिम् अजानतः मम स्तुतिः यदि अनुचिता तर्हि आश्चर्यकरंन यतः ब्रह्मादीनां सर्वज्ञानां गुणकथनरूपा वाणी तव स्तवने कुंठिता अयोग्या एव। स्वबुद्धया यावद्विषयीकृतं तावद वाक्सृष्टि साफल्यं कथयन् सर्वोऽपि स्तेता अनुपालम्भनीयः। 'नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिणः' इति न्यायेन शिवविषयकेऽस्मिन् स्तोत्रे मम एषः यत्नः अखण्डः निर्विघ्नः च भूयात्।

विशेष – प्रथमार्धेन स्तुतिनिराकरणव्याजेन सर्वदुरधिगममहिमात्व रूपा स्तुतिः कृता, उत्तरार्धेन स्तुतिसमाधान व्याजेन सर्वा स्तुतिरनुरूपेति महत्कौशलम्।

उत्पतन्तं गरुडं दृष्ट्वा मक्षिकापि स्वशक्त्युत्पतने न लज्जते अतः स्तोता स्तबुद्धयनुसारेण स्यूयते अयं लज्जायाः उपहासस्य वा विषयः नास्ति।

शिखरिणी वृत्तमिदम्। लक्षणमिदम् वर्तते – रसैः रुद्रैश्छिन्नाः य–म–न–स–भ लागः शिखरिणी।

स्वमतिपरिणामावधिः = स्वमतिः तस्याः परिणामः परिपाकः स चावधिः सीमा मर्यादा यत्र स स्वमतिपरिणामावधिः । क्रियाविशेषणम्।

पुनरप्यस्तुत्यत्वेनैव भगवन्तं स्तौति पूर्वोक्तस्य स्वस्य ब्रह्मादिसाम्यमुपपादयन्–

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो –
रतद्व्यावृत्त्या चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः।।2।।

अन्वयः – तव महिमा वाङ्मनसयोः पन्थानं अतीत, यं श्रुतिरपि अतद्व्यावृत्त्या चकितम् अभिधत्ते स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः। तु अर्वाचीने पदे कस्य मनः न पतति कस्य न वचः (पतति)

शब्दार्थाः – तव महिमा वाङ्मनसयोः पन्थानं = विषयं, अतीतः = अतिक्रान्तः यं = तव महिमानं, श्रुतिरपि = वेदोऽपि, चकितं अभिधत्ते = भीतभीतवद ब्रूते, स = महिमा, कस्य स्तोतव्यः = केन स्तोतुं शक्यते, कतिविधगुणः = किंयतो वा गुणाः। कस्य विषयः = निर्धर्मकत्वात् न कस्यापि विषयः अतएवा विषयत्वान्न स्तुत्यर्ह इत्यर्थः। स्मृतिपुराणोक्तरूपं सर्वोऽपि जानति इति अर्वाचीने प्रलयसृष्टिस्थितिमुख्यतया पदे = स्थाने कस्य मनो वाचो न प्रसरति।

व्याख्या – हे हर ! तव महिमा सगुणः निर्गुणश्च अनन्तत्वात् निर्धर्मकत्वाच्च वाङ्मनसयोः विषयत्वमतिक्रान्तः तथा च श्रुतिः ''यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह''। एते च किल वाङ्मनसे सर्वार्थविषयिताभ्यामति तव महिमानं अवधारयितुं न शक्यते। न च प्रत्यक्षेण अनुमानेन गृह्यते। यं श्रुतिरप्यपौरुसेय्यपि वेदवाणी चकितं भीतं च नेति नेति च कथयन् तात्पर्येण प्रतिपादयति। स इत्थं भूतो महिमा केन स्तोतुं शक्यते ? न केनापि स्तोतुं शक्य इत्यर्थः। तस्य भगवतः किंयतो गुणा ते परिज्ञातुं न शक्यन्ते। अनन्तत्वाद् एव न स्तुत्यर्ह इत्यर्थः। निर्धर्मकत्वात् न कस्यापि विषयः अतएव अविषयत्वान्न स्तुत्यर्ह इत्यर्थः 'ते परमार्थस्वरूपपज्ञानं कस्यापि नास्तीति।' भक्तानुग्रहार्थ लीलया गहीते वृषभपिनाकपार्वत्यादिशिष्टे नवीने रूपे कस्य विदुषो मनो न पतति, कस्य वाचो नाविशति। अपितु सर्वस्यापि मनो वाक् च विशतीत्यर्थः। अतः भवतः महिम्नः स्तोत्रमिदम् अहं रचितुमोऽस्मि।

टिप्पणयः – वाङ्मनसयो = वाक् च मनश्च वाङमनसे तयोः वाङ्मनसयोः कतिविधगुणः = कतिविधाः प्रकाराः गुणाः यस्यासौ कतिविधिगुणः।

इदानीं माहात्मयस्य स्तोतुमशक्यत्वेऽपि स्तुवयो यो दोषःतं परिहर्तुमाह

मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवत –
स्तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ।।3।।

अन्वयः – ब्रह्मन् ! मधुस्फीता परममृतं वाचः निर्मितवतः सुरगुरोः अपि वाक् किं तव विस्मयपदम्। हे पुरमथन! मम बुद्धिः तु भवतः गुणकथनपुण्येन एतां वाणीं पुनामि इति अस्मिन् अर्थे व्यवसिता।

शब्दार्थाः – मधुस्फीता = माधुर्यादि शब्दगुणालंकारविशिष्टेन मधुराः, परममृतं = निरतिशय अमृतवत् अत्यास्वाद्यम् एतेनार्थगतमाधुर्ययुक्तम् वाचः = गिरः, निर्मितवतः = निःश्वासवदनायासेनाविर्भावितः, सुरगुरोः = बृहस्पतेः, अपि वाक् = वाणी, किं तव = भवतः, विस्मयपदं = आश्चर्यस्थानं, भवति। हे पुरमथन = त्रिपुरारि ! भवतः = तव, गुणकथनपुण्येन, एतां वाणीं, पुनामि = निष्कलुषां करोमि इति अभिप्रायेण अस्मिन् अर्थे = स्तुतिरूपे, मम बुद्धिः व्यवसिता = उद्यता।

व्याख्या – हे सर्वव्यापकपरतेश्वर ! सालंकारा, माधुर्यगुणयुक्ता, परमार्थस्वरूपा (उपचाराद्वेदान्त सिद्धान्तनिष्ठाः) गिरः सृष्टवतः सुरगुरोः ब्रह्मणोऽपि वाणी किं तव आश्चर्यस्थानं भवति। अपितु न भवतीत्यर्थः। यत्र हिरण्यगर्भस्य वाण्यपि न चमत्कारकारणं तत्र का वार्ता अस्मदादिवाण्या इत्यर्थः। (यद्येवं, स्तुतिः किमारभ्यते इत्याह) हे त्रिपुरारि! मम मतिः तु तव गुणानां कथनेन आत्मीयां वाणीं पवित्रीकरोमि इति अभिप्रायेण स्तुतौ उद्यता न तु स्तुतिकौशलेन न त्वां रंजयामीत्यभिप्रायेण।

टिप्पणी – परमेश्वरवाचां शब्दार्थगतयोर्निरतिशयमाधुर्ययोरपि मिथस्तारतम्यं मध्वमृतशब्दाभ्यां द्योत्यते। इदानीं शिवस्य सर्वज्ञत्वं सर्वकर्तृत्वं प्रति केचन्मीमांसकादयो विधिं प्रतिपादयन्ति तन्मतनिराकरणाय अनवेद्यप्रमाणेनोपन्यासपरेण श्लोकेन भगवन्तं स्तुवन्नाह –

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः।।4।।

अन्वय – हे वरद ! तव जगदुदयरक्षाप्रलयकृत – त्रयीवस्तु गुणभिन्नासु तिसृषु तनुषु व्यस्तं यत् ऐश्वर्य तत् विहन्तुम् एके जडधियः अभव्यानाम् अस्मिन् रमणीयाम् अरमणीं व्याक्रोशीं विदधत।

शब्दार्थाः – हे वरद = ईप्सितप्रद, जगदुदयरक्षाप्रलयकृत = लोकानां उत्पत्तिः परिपालनं विनाशश्च करोति, त्रयी = वेदानां वस्तु = प्रतिपाद्यं, गुणभिन्नासु = गुणैः सत्वरजतमोभिः पृथग्भूतासु, तिसृषु तनुषु = ब्रह्माविष्णुमहेश्वराख्यासु मूर्तिषु, व्यस्तं = निक्षिप्तं विस्तारितं यत् ऐश्वर्यं तत् = विहन्तुं = निराकर्तुं, इह = मृत्युलोके, एके जडधियः = केचित् मंदबुद्धयः (मीमांसकादयः) व्याक्रोशीं = निन्दां कुर्वते।

व्याख्या – हे अभीप्सितप्रद ! यत् तव ऐश्वर्यं लोकानाम् उत्पत्तिः परिपालनं प्रलयश्च करोति, यत् वेदानां तात्पर्येण प्रतिपाद्यं वस्तु 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति इति श्रुतेः'। सत्त्वरजस्तमोभि पृथग्भूतासु ब्रह्माविष्णुशिवात्मिकासु प्रकटीकृतम् यत् एव ऐश्वर्य तत् निराकर्तुम् अस्मिन् मृत्युलोके केचित् पापिष्टा मंदमतयः पापिष्ठानां मनोरमां परमार्थस्तुं अशुभां निन्दां विदधते।

टिप्पणयः – एके जडधियः – जडधियः इतिवचनेन पूर्णपक्षिणस्तुच्छत्वम् एक इति बहुवचने सिद्धान्तिनामतिमहत्त्वं सूचितम्।

जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्	–	जगतां उदयरक्षाप्रलयश्चेति करोतीति।
अभव्यानां	–	अर्स्मिसंत्रैलोक्येऽपि नास्ति भव्यं भद्रं कल्याणं येषां तेऽभव्यास्तेषां।

रमणीयामरमणीं = अमनोहरेऽपि मनोहरबुद्धिभ्रान्तिभाग्यातिशयात्तेषाम् इत्यर्थः शिखरिणी वृत्तम्।

किमीहः किंकाय स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः।।5।।

लोकसर्जने परमेश्वरस्येच्छा वणनाहीता यदुक्तं –

इच्छया कुरुते देहमिच्छया वितनुर्भवेत्।
कीडते भगवाल्लोके बालमीडनकैरिव।।

तथापि केचन दार्शनिका परमेश्वरविषये कुतर्कान् प्रसार्य विभ्रममुत्पादयन्ति।

अन्वयः– स धाता त्रिभुवनं सृजति। (त्रिभुवनजनने) का ईहा, किं कायः किम् उपायः किम् आधारः, किम् उपादानम् इति च। अतर्क्यैश्वर्ये त्वयि अयं कुतर्कः अनवसरदुःस्थः जगतः मोहाय हतधियः काश्चिन् मुखरयति।

शब्दार्थ– स = ईश्वरः, ब्रह्मरूपेण, त्रिभुवनं = भूःभुवः स्वः लोकान्, सृजजि = जनयति। का ईहा = चेष्टा, व्यापारः : कायः शरीरं कर्तृरूपं, कः उपायः = कः सहकारिकारणं, कः आधारः = अधिकारणं कुत्र स्थित्वा सृजति, किम् उपादानम् = समवायिकारणम्, अतर्क्यैश्वर्ये = अचिंत्यमहिमत्वे, त्वयि = तव विषये इत्थंभूतः कुतर्कः, अनवसरदुःस्थ = दुर्घटं निरवकाशः, जगतः मोहाय = जनस्य भ्रममुत्पादयितुं, हताधियः = मन्दमतीन् कांश्चित् पुरुषान् मुखरयति = वाचालयति। धातृरूपेण सृजाति विष्णुरूपेण पालयति रुद्ररूपेण संहरतीत्युक्तं तद्दर्शयन्नाह–

स परमेश्वरः ब्रह्मरूपेण भूः भुवः स्वः लोकान् जनयति त्रिभुवनजनने का चेष्टा व्यापारः परिस्पन्दः भवति, कर्तृरूपं किम् शरीरं भवति, का सामग्री सहकारिकारणं भवति, कुत्र स्थित्वा सृजति, किम् समवायिकारणं भवति ? हे अचिंत्यमहिमत्वे विचित्रनानाशक्तिमायावशेन सर्वनिर्मातरि सर्वतर्कागोचरे त्वयि कुतर्कावसरः नास्ति। अयं कुतर्कः जनस्य भ्रममुत्पादयितुं कांचित् मंदमतीन् वाचालयति।

टिप्पणयः – सर्वत्र किं शब्द आक्षेपे। इति शब्दः प्रकारर्थः, च शब्दः शङ्कानन्तरसमुच्चयार्थः। उपादानं = समवायिकारणं, कार्य यत्र समवैति तदुपादानकारणं यथा घटस्य मृत्पिंडः, पटस्य तन्तवः। कुलानो हि घटं कुर्वन् स्वशरीरेण, चक्रभ्रमणे चेष्टया सलिलसूत्राद्युपायेन चक्रादावधारे मृदमुपादानभूतां घटकारां करोति एवं जगत्कर्तापि वाच्यः। तथा च कुलालादिवदीश्वर एवेत्यभिप्रायः शिखरिणीवृत्तम् ।काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

15.5 इकाई सं. 7 से 11 तक के श्लोकों की संस्कृत व्याख्या

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता–
मधिष्ठातारं किं भावविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे।।6।।

अन्वयः – अमरवर ! अवयववन्तोऽपि लोकाः किं अजन्मानो, अधिष्ठातारं अनादृत्यं किं भवविधिः भवति, अनीशो वा भुवनजनने कः परिकरः, यतः इमे मन्दाः त्वां प्रति संशेरते।

शब्दार्थाः – अमरवर! = सर्वश्रेष्ठदेव ! अवयववन्तोऽपि = सावयवाअपि, लोकाः = भूभवः स्वः प्रभृतयः सप्त लोकाः, अजन्मानो = जन्महीनाः किं = नं जन्महीनाः किन्तु जन्या एवं इत्यर्थः। भवनिधिः = सृष्टिः विधानं, जगतां अधिष्ठातारं = चेतनं निमित्तकारणं ईश्वरं, अनादृत्य = अनपेक्ष्य, भवति नैव कर्तारमपेक्षते अनीशो वा = ईश्वरादन्यो वा, यदि वा कुर्याद् तर्हि भुवनजनने = भुवनोत्पादनविधौ, कः परिकरः = का सामग्री यतः = एवं सर्वप्रमाण–सिद्धस्तवं अतस्ते मन्दाः पापिष्ठाः मीमांसकादयः, त्वां प्रति = ईश्वरं प्रति, संशेरते संदेहमुत्पादयन्ति। यतः त्वां प्रति संदेहो नास्ति इत्यर्थः।

व्याख्या – हे सर्वश्रेष्ठदेव ! सर्गस्थितिप्रलयादिकारणाङ्गयुक्ताः अपि भूःभव स्वः प्रभृतयः सप्त लोकाः किं जन्मरहिताः तेन न जन्महीनाः जन्या एवेत्यर्थः। जगतां क्षित्यादीनां उत्पत्तिप्रक्रिया कर्तारं अनपेक्ष्य कि भवति, अपेक्ष्यैव भवतीत्यर्थः। महदैश्वर्यबहिर्भूतः यदि कश्चित् कुर्यात् तदास्य भुवनोत्पादनविधौ का सामग्री अनीश्वरस्य स्वशरीररचनामप्यजानतो विचित्र चतुर्दशभुवनरचनाऽसंभवादीश्वर एव रचनां करोतीत्यर्थः। यतः कारणात् इमे पापिष्ठाः मीमांसकादयः त्वां प्रति संदेहमुत्पादयन्ति। त्वं तु सर्वप्रमाणसिद्ध, त्वां प्रति तु संदेहो नास्तीत्यर्थः।

टिप्पणयः – सष्टिरचना तु ईश्वरस्य स्वाभाविकी प्रवृत्तिः। अतः तत्कर्तृत्वविषये संशयस्य लेशोऽपि नास्तीत्यर्थः। अस्मिन् श्लोके अनुमानप्रमाणेन ईश्वरस्य कर्तृत्वं कथितम्। किं शब्द आक्षेपे। शिखरिणी वृत्तम्। आक्षेपकाव्यलिङ्गश्चालंकारा।।

अस्मिन् श्लोके परमेश्वरप्राप्तयै विभिन्नसम्प्रदायैः। निर्देशिताः विभिन्नाः पन्थानः प्रदर्शिताः। सर्वेषां प्रस्थानानां भगवत्येव तात्पर्य इति वदन् स्तौति –

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।7।।

अन्वयः– त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णम् इति प्रस्थाने प्रभिन्ने अपि इदं परं अरः पथ्यम् इति च रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलानानापथजुषाम् नृणाम् पयसाम् अर्णवः इव त्वम् एकः गम्यः असि।

शब्दार्थाः– त्रयी = वेदविहितो मार्गः, सांख्यं = कपिलप्रणीतं शास्त्रं (पंचविंशतितत्वोपलक्षितं), योगः = पातंजलशास्त्रं, पशुपतिमतं = पाशुपतं नामशास्त्रं, वैष्णवं = विष्णुपूजाविषयकमतं, इति = एवं प्रकारेण एतत्पंच संख्यापरिच्छिन्ने प्रस्थाने = मार्गे, प्रभिन्ने = विभिन्नऽपि, इद्र शिवतत्वं, परं = उत्तम्, अदः = इदमेव, पथ्यम् = ग्राह्यं, सेवनीयं हितकरं च। इति च = एवं मन्यते, रुचीनां वैचित्र्याद् = इच्छानां विविधप्रकाराद्, ऋतुकुटिलनानापथजुषाम् = सरलवक्रविविधपथसेविनाम् मनुष्याणाम्, पयसाम् अर्णवः = जलानां नद्यादीनां च अर्णवः समुद्रः इव, त्वमेव = केवलं त्वमेव, गम्योऽसि = प्राप्यः इति।

व्याख्या – हे देवाधिदेव ! ईश्वरप्राप्त्यै त्रयी साख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवम् एतत्पंचसंख्या परिच्छिन्ने मार्गे विभिन्नेऽपि इदं परम् तत्वं तस्मात् परतरं उत्तमम् अस्ति। अतः तस्मात् सेवनीयमस्ति। यथा ऋजुपथजुषां गङ्गानर्मदादीनां साक्षादेव यथा वा कुटिलपथजुषां यमुनासरय्वादीनां गंगादिप्रवेशद्वारस परम्परया समुद्रः प्राप्यः तथैव वेदान्तवाक्यश्रवणमननादिनिष्ठानां साक्षात्त्वं प्राप्यः अन्येषां त्वन्तःकरणशुद्धितारतम्येन परम्परया त्वमेय प्राप्यः। येन केन वा मार्गेण गच्छवां मानवानां त्वमेव प्राप्यः।

टिप्पणयः – शिखरिणी वृत्तम्। उपमा अलंकार।

त्रयी – त्रयी शब्देन ऋग् यजुः साम इति त्रयो वेदाः
तदुपलक्षिता अष्टादश विद्या अप्यत्र विवक्षिता।
सांख्यशास्त्रं कपिलेन भगवता प्रणीतम्। प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानं सांख्यशास्त्रस्य प्रयोजनम्।

योगः – योगशास्त्रं भगवता प्रणीतम्। तस्य
विजातीयप्रत्ययनिरोधद्वारेण निदिध्यासनसिद्धि प्रयोजनम्।

पशुपतिमतं – पाशपतं शास्त्रं भगवता पशुपतिना पशुपाशविमोक्षणाय विरचितम्।
कार्यरूयो जीवः पशुः करणं पशुपतिरीश्वरः, योगः पशुपतो चित्तसमाधानम्, विधिर्भस्मना त्रिषवणस्नानादि निरुपतिाः। दुखान्तसंज्ञको मोक्षश्चास्य प्रयोजनम्। एवं शैवमन्त्रशास्त्रं सोम सिद्धांतः, शिवसिद्धान्तः पंचार्थसिद्धान्त इत्यादयः अपि पशुपतमतान्तर्गतमेव दष्टव्याः।

वैष्णवं — वैष्णवं केशवनारदात्रिः कृतं केशवपंचरात्रनादपंचरात्रम्। तत्र वासुदेवसंकर्षण– प्रद्युम्नानिरुद्धाश्चत्वारः पदार्था निरूपिताः। भगवान्–वासुदेवः परमेश्वरः सर्वकारणं तस्मादुत्पद्यते संकर्षणाख्यो जीवस्तमात्मनः । प्रद्युम्नस्तस्मादनिरुद्धोऽहंकारः। सर्वे चेते भगवतो वासुदेवस्यैवांशभूतास्तदभिन्ना एवेति। तस्य वासुदेवस्य मनोवाक्कायवृत्तिभिराराधनं कृत्वां कृतकृत्यो भवतीत्यादि च निरुपितम्। एवं वैष्णवमंत्रशास्त्रं परिमितमपि पंचरात्रमध्येऽन्तर्भूतम्।

महोक्षः खट्वांग परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं विदधति च भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति।।8।।

अन्वयः– वरद ! महोक्षः खट्वांग, परशुः अजिनं, भस्म, फणिन्: कपालं च इयत् तव तन्त्रो–पकरणम् सुराः भवद्भू प्रणिहितां ताम् ताम् ऋषिं दधति, हि स्वात्मारामं त्वं विषयमृगतृष्णा न भ्रमयति।

शब्दार्थाः– महोक्षः = वृद्धबलीवर्दः, खट्वागं = दण्डोपरि ब्रह्मकपालं 'कापालिकं प्रसिद्ध' शस्त्रविशेषः, परशुः = कुठारः (आयुध विशेषः), अजिनं = गजचर्म, भस्मं = दग्धं गोमयं विभूतिः वा, फणिनः = सर्पाः, कपालं = मनुष्यशिरोस्थि चेति सप्तकम्, इयद् = एतावदेव, तव = परिपूर्णपरमेश्वरस्य, तन्त्रोपकरणम् = कुटुम्बधारणस्य साधनम्, सुराः = देवाः, भवद् = त्वया, भूप्रणिहितां = भ्रूक्षेपमात्रेण दत्ताम्, ऋद्धिं = सम्पदं, दधति = धारयन्ति। हि = यस्मात् कारणात् स्वात्मारामं = योगिनं, विषयमृगतृष्णा = विषयाः, इन्द्रियार्थाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः, मृगतृष्णा = मरुमरीचिका न भ्रमयति = न वाचालयति।

व्याख्या – हे वरद ! परिपूर्णपरमेश्वरस्य तव कुटुम्बधारणस्य साधनम् वृद्धवृषभः, खटवांग, परशुः, अजिनं, भस्मं, सर्पाः, कपालं, चेति सप्तकम् एतावदेव अस्ति। इन्द्रायस्तु देवाः भवत्सेवया भवतो भ्रूविक्षेपमात्रेण दत्ताम् असाधारणीं सम्पत्तिं धारयन्ति। त्वमतिदरिद्रस्तवद्भक्तास्तु सर्वे त्वत्प्रसादसमृद्धा तर्हि भगवान् स्वयं कस्मान्नो भुङ्क्ते ? आत्मनि चिदानन्दघने स्वरूपे यः रमते तं योगिनं विषयमरुमरीचिका न मोहयति। एतेन भगवतः परमयोगित्व स्वरूपं प्रकटितम्।

टिप्पणयः– विषयमृगतृष्णाः – विषया इन्द्रियार्थाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः त एव मृगतृष्णा जलबुद्धया गृह्यमाणा मरीचिका। यथा मृगतृष्णा रविरश्मिरूपा जलविरुद्धस्वभावापि। भ्रान्त्या जलमयीवाभासते तथा विषया अपि दुःखरुपा भ्रान्तया सुखरुपा आभासन्त इति रूपकार्थः। शिखरिणी वृत्तम्। पूर्वार्द्धः परिकरः उत्तरार्द्धः च काव्यलिंगमलंकारः।

गन्धर्वराजोऽत्र शिवस्य सगुणं स्वरूपं निरूपयति –

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवजिंह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्ठा मुखरता।।9।।

अन्वयः– पुरमथन ! कश्चित् सकलं सर्वं ध्रुवम् तु अध्रुवं गदति परः जगति ध्रौव्याध्रौव्ये व्यस्तविषये गदति समस्तेऽपि एतस्मिन् तैः विस्मितः इव त्वां स्तुवन् न जिह्रेमि खलु, ननु मुखरता
धृष्टा भवति।

शब्दार्थाः– हे त्रिपुरान्तक! कश्चित् = कोऽपि (सांख्यपातंजलमतानुयायी) सकलं सर्वं इद भवं ध्रुवं = नित्यं सदिति गदति = भणति अपरः = अन्यः (सुगतमतानुयायी) इद्र अध्रुवं = क्षणिकं (क्षणभंगुर) गदति = कथयति, परः = तार्किकः समस्तेऽपि एतस्मिन् जगति ध्रौव्याध्रौव्ये = नित्यानित्यत्वै, व्यस्तविषये = भिन्नधर्मवर्तिनी गदति = वदति। तैः = सांख्यबौद्धादिभिः

विस्मित इव = मोहं प्रापित इव त्वां स्तुवन् न जिह्रेमि = न विलज्जे, ननु खलु निश्चितं मुखरता = वाचालता धृष्टा = निर्लज्जा भवति ।

व्याखया – हे त्रिपुरदाहक ! कोऽपि मादृश्सांख्यपातंजलमतानुसारि सर्व जगत् जन्मनिधनरहितं सदिति वदति अन्यः क्षणभंगवादी सुगतमतानुवती। सकलमिदं अध्रुवं क्षणिकं कथयति तदुभयपक्षासहिष्णुश्च तार्किकः समस्तेऽप्येतस्मिन् जगति नित्यानित्यत्वे। भिन्नधर्मवर्तिनी गदति। एवं नाना प्रकारवद्भिः व्याकुल इव अहम् स्तुवन् न लज्जे। हे प्रभु निश्चितं इदं यत् वाचालता निर्लज्जा भवित।

टिप्पणयः– ध्रुवं = जन्मनिधनरहितं सदैव। सांख्यपातंजलमतानुयायी समग्रं जगद् व्यक्तं वदति। नह्यसत उत्पत्तिः संभवति न वा सतो विनाश इत्याविर्भावतिरोभावमात्रमुत्पत्तिविनाश–शब्दाभ्यामभिलक्ष्यते।

अध्रुवं = क्षणिकमिति गदति । क्षणभंगवादी बौद्धमतानुवार्ती सकलमिदमध्रुवं क्षणिकमिति गदति । नहि सतः स्थिरत्वं संभवति। अर्थक्रियाकारित्वमेव सत्त्वम्। तच्च सदर्थस्येक्षणयोगेन न विलम्बेनोत्पद्यते इति एकस्मिन्क्षणे सर्वार्थ क्रियासमाप्तेरुत्तरक्षणेऽसत्त्वमेव।

ध्रौव्याध्रौव्ये– तार्किकः समस्तेऽप्येतस्मिन् जगति नित्यानित्यत्वे गदति। आकाशकालदिगात्ममनः। पृथिव्यादिपरमाणवश्च नित्याः। कार्यद्रव्याणि च अनित्यानि तथा चानित्यानामुत्पत्ति– विनाशयोभिन्नः परमेश्वरो न तु नित्यानामपीत्यर्थः।

शिखरिणी वृत्तम। यमकार्थान्तरन्यासश्यात्र वर्तेते।

प्रस्तुतायां स्तुतौ पुराणप्रसिद्धं ब्रह्मविष्णोरनुग्रहपरं लिंगमेव स्तुवन्नाह –

तवैश्वर्य यत्नाद् यदुपरि विरचिंर्हरिरधः

परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।

ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरु गृणद्भ्यां गिरिश यत्

स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति।।10।।

अन्वयः– गिरिश अनलस्कन्धवपुषः तव ऐश्वर्य यत्नात् परिच्छेत्तुं विरचिंः उपरिः हरिः अधः यातौ अनलम् (जातौ) ततः भक्तिश्रद्धा भरगुरुगृणद्भ्यां ताभ्यां यत् स्वयं तस्थे तव अनुवृत्ति ? किम् न फलति ?

शब्दार्था – हे गिरिश = शंकर, अनलस्कंधवपुषः = ज्योतिपुंजमूर्तेः तवैश्वर्य = स्थूलं रूपं, यत्नाद् परिच्छेत्तुं = महता यत्नेन एतावदिति निश्चेतुं, उपरि = ऊर्ध्वं, विरिचं = ब्रह्मा, अधः = पातालं, हरिः विष्णुः, यातौ = अगच्छताम्, अनलं = नाऽलम् न परिच्छेत्तुं समर्थाविति। ततः = पश्चात्, भक्तिः = भजनं, श्रद्धां = विश्वासः आस्तिक्यबुद्धिं, भरगुरुः = भारेण विनताभ्यां, गृणद्भ्याम् = स्तुतिपराभ्याम्, ताभ्यां = ब्रह्मविष्णुभ्यां यत् स्वयं तस्थे = आत्मानमात्मनैव प्रकटयामास, तव अनुवृत्तिः = तव सेवा किं न फलति = अपितु सर्वमेव फलति इत्यर्थः।

व्याख्या – हे शिवशंकर ! तेजः पुंजमूर्तेः तव स्थूलरूपं इयत्तावधारयितुं यावद्गन्तुं शक्तौ तावद् उपरि ब्रह्मा विष्णुश्च अधस्तात् पातालं गतौ। किन्तु परिच्छेत्तुं असमर्थः अभवताम्। ततः स्वप्रयत्नवैफल्यानन्तरं भक्तिश्रद्धाभारेण विनताभ्याम् स्तुतिपराभ्याम् हरिविरंचिभ्याम् आत्मानं आत्मनैव प्रकटयामास। भवतः शुश्रूषा किं न फलति। अपितु सर्वमेव फलति। त्वत्साक्षारत्कारपर्यन्तं फलं ददातीत्यर्थः।

टिप्पणयः– अनलम् = तव स्थूलं रूपं निश्चेतुं न समर्थौ। यत्र स्थूलरूपमप्यपरिच्छेद्यं तत्र दूरे सूक्ष्मरूपपरिच्छेदसभावना तेन त्वदनुवृत्तिं विना हरिविरंच्योः प्रसिद्धमहाप्रभायोरपि त्वं न विज्ञेयः तत्र का वार्ता अन्येषामिति।

भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां = भक्तिः अत्र कायिकी सेवा, श्रद्धास्तिक्य बुद्धिः (मानसी सेवा) तयोर्भरोऽतिशयस्तेन गुरु श्रेष्ठं निरतिशयं सेवा तथा गृणद्भ्यां स्तुवद्भ्यां वाचिकी सेवां कुर्वद्भ्याम्।

शिखरिणीवृत्तम्। यमकमाक्षेपश्चालंकारा।

15.6 इकाई सं. 12 से 16 तक के श्लोकों की संस्कृत व्याख्या

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद् बाहूनभृत–रणकण्छूपरवशान्।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भ्योरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्।।11।।

अन्वयः– त्रिपुरहर ! दशास्यः अयत्नात् अवैरव्यतिकरं त्रिभुवनं आपाद्य यद् रणकण्डूपरवशान् बाहून् अभृत्, इदम् शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणोम्भोरुहबलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम्।

शब्दार्थाः– हे त्रिपुरान्तक शिव ! दशास्यः = रावणः, अयत्नात् = अनायासेन त्रिभुवनं = त्रिलोकं, अवैरिव्यतिकरं = शत्रुसम्पर्करहितं, आसाद्य = संपाद्य (कृत्वा) रणकण्डूपरवशान् = संग्रामव्यग्रान् बाहून् अभृत = (विंशाति संख्याकान्) बाहून् धृतवान् यत् तदिदं = एतद्भुजाधारणम् शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुबलेः = शिरांस्येव पद्मानि तेषां श्रेणी पंक्तिः तथा रचिता निर्मिता चरणोभ्योरुहयोः पादमद्मयोः बलिः पूजा यस्यां सा तथोक्ता तस्याः अतः प्रभो स्थिराया = निश्चलाया तव भक्तेः विस्फूर्जितम् = प्रभावोऽयं वक्तुं न शक्यते।

व्याख्या – रावणेन हि नवभिर्निजशिरोभिः स्वहस्तकृतैः शंभोरुपहारः कृतः इति पुराणप्रसिद्धम्। रावणस्य शिवभक्तिविषयंक इदं आख्याम् आधारीकृत्य शिवं स्तुवन्नाह – हे त्रिपरहर! रावणः प्रयासं विना लोकत्रयम् शत्रुत्वरहितं विधाय संग्रामव्यग्रान् विंशतिसंख्याकान् भुजः धारयामास। ''रणकण्डु रणेनैव निवर्तते।'' शिरांसि एव पद्मानि अर्थाद्रावणस्य तेषां श्रेणी पंक्तिस्तया रचितः कल्पितश्चरणाम्भोरुहयोः पादपद्योः बलिरुपहारो यस्यां सा तया हे प्रभो तव निश्चिलायाः सेवायाः प्रभावोऽयम्। शिखरिणीवृत्तम्। काव्यलिंगम् रूपकमलङ्कारश्यात्र।

विशेषः–

त्रिपुर –ततो मयस्तपसा चक्रे धीरः पुराण्यथ
कांचनं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम्
विद्युन्माल्यायसं चैव त्रिविधं दुर्गमुत्तमम् **(शिवमहापुराणम् रुद्र सं. 2**
स्वर्गे व्योम्नि च भूमौ क्रमाज्सेयानि तानि वै।। युद्धखण्ड 5 अ.1/57–58)

प्रस्तुतायां स्तुतौ ईशतिरस्कारफलं निरूपयन् स्तौति –

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पाजालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः।।12।।

अन्वयः– त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं त्वदधिवसतौ कैलासेऽपि बलात् विक्रमयतः अमुष्य प्रतिष्ठा त्वयि सचलिताङ्गुष्ठशिरसि पातालेऽपि अलभ्या ध्रुवम् उपचितः खलः मुह्यति।

शब्दार्थाः– त्वत्सेवासमधिगतसारं = भवदाराधनेन समधिगतं बलं, भुजवनं = विंशतिसंख्याकं भुजवृन्दं, त्वदधिवसतो = तव निवासस्थानभूते, कैलासे = कैलासनामके पर्वते, अपि, बलात्, दर्पात् विक्रमयतः अतिशौर्येण व्यापारयतः अमुष्य = रावणस्य प्रतिष्ठा = स्थितिः, त्वयि = भवति, अलसचलिताङ्गुष्ठाशिरसि = अलसेन = न प्रत्यत्नेन चलितम् = अधः कृतं, पादाङ्गुष्ठस्य शिरसि पातनेन पाताले = रसातले अपि प्रतिष्ठा = स्थितिः, अलभ्या = दुर्लभा आसीत् = अभवत् ध्रुवम् = निश्चयेन उपचितः = सम्पन्नः, खलः = दुर्जनः, मुह्यति = मोहं गच्छति।

व्याख्या – तव सेवया प्राप्तं बलं विंशतिसंख्यांक भुजवृन्दं तव निवासस्थानभूति स्फटिकगिरौ दर्पात् तदुत्पाटनार्थं पराक्रम प्रकटयतः रावणस्य स्थितिः अलसेन चलितः पादाङ्गुष्ठस्य शिरसि पातनेन रसातलेऽपि दुर्लभा अभवत्। (त्वत्प्रसादेनैव बलमासाद्य त्वदृहमुत्पाटयतीत्यहो

कृतघ्नता मौढ्यं चेतयभिप्रायः) अहो निश्चितमिदम् धनवैभवादिभिः सम्पन्नतां गतः कृतघ्नः कृतं विस्मरति। स्वोपचयहेतुमपि न गणयतीत्यर्थः।

टिप्पणय –पुराणप्रसिद्धं रावणस्य गर्वितं चरित्रम् अत्र सूचितम् ''भगवत्प्रसादादासाहितबलेन रावणेन स्वबलपरीक्षार्थ भगवन्त्रिवासस्यापि कैलासस्योत्पाटनमारब्धम्। ततश्च पार्वत्या भीत्या प्रार्थितो भगवान्कैलासस्याधेगमनार्थमङगुष्ठाग्रमात्रं शनैर्व्यापारयामास। तावन्मात्रेणैव क्षीणबलो रावणः पातालं प्रविवेश। पुनश्च भगवता करूणया समुद्धतः।''

शिखरिणीवृत्तम्। अर्थान्तरन्यासः अलंकारः।

इदानां बाणासुरानुग्राहिणं भगवन्त स्तुवन्नाह –

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती –
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्तवय्यवनतिः।।13।।

अन्वयः– वरद! परिजनविधेयस्त्रिभुवनः बाणः सुत्राम्णः परमोच्चैः अति ऋद्धिं यद् अधश्चक्रे तत् त्वच्चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् चित्रं न, त्वयि शिरसः अवनतिः कस्य अपि उन्नत्यै न भवति।

शब्दार्थाः– परिजनविधेयः = किंकरीकृंतत्रैलोक्य; बाणः = बाणासुरः, सुत्राम्णः = इन्द्रस्य, परमोच्चैरपि = अत्यन्तमहतीम् अपि ऋद्धिं = सम्पदं (सुरेन्द्रत्वं) अधश्चके = न्यक्कृतवान् (जितवान्) तत् = सर्वमापि सामर्थ्य वैभवंच, त्वच्चरणयोः = भवत्पादयोः वरिवसितरि = शुश्रूषके तस्मिन् = बाणे, चित्रं नं = आश्चर्यकरं नास्ति। त्वयि विषये शिरसे या अवनतिः = नमस्क्रिया, सा सर्वस्य लोकस्य उन्नत्यै = कल्याणाय न भवति अपितु सर्वोन्नत्यै भवतीत्यर्थः।

व्याख्या – किंकरीकृतः त्रैलोक्यः बलिपुत्रः बाणासुरः देवेन्द्रस्य अतिशयमहनीयमपि सुस्थिराम् ऐश्वर्यराज्यादिकं यत् न्यक्कृतवान् तत् सर्वमपि सामर्थ्य वैभवंच भगवत्पादयोः शुश्रुषके एव स तथा उच्चैः सती यदधश्चक्रे तदन्यत्र चित्रमपि तस्मिन्बाणे न आश्चर्यकर। वस्तुतः त्वयि विषयै शिरसो या नमस्क्रिया सा कस्य उन्नत्यै न भवति अर्थात् सर्वामेवोन्नतिं मोक्षपर्यन्तां जनयितुं समर्था भवत्येवेत्यर्थः।

टिप्पणयः – बलिपुत्रो बाणासुरोऽपि परमशिवभक्तोऽसीत्। शिवभक्त्या सर्वेषां कल्याणं भवतीति स्तुतिकारस्याशशः। अवनतिरप्युन्नतिहेतुरित्यतिशयोक्ति संकीर्णोऽर्थान्तरन्यासः।

विशेषः –

बाणासुरः– शिवस्थानं जगामाशु धृत्वां धैर्य महामनाः।
गत्वा तत्र प्रभुं नत्वा रुरोदातीव विह्वलः।।
गतगर्वव्रजो बाणः प्रेमाकुलितमानसः।
संस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैः संनयन्नुतितास्तथा।।
रुदं प्रसादयमास शूलिनं चन्द्रशेरम्।
बाणासुरो महाभक्तो विस्मृतात्मगतिर्नतः।।
ततो नृत्यं महत्कृत्वा भगवान्भक्तवत्सलः।
उवाच बाणं संहृष्टो नृत्यगीतप्रियो हरः।।
बाण तात बलेः पुत्रः संतुष्टो नर्तनेन ते।
वरं गृहाणण दैत्येन्द्र यत्ते मनसि वर्तते।।
इत्युक्त्वा बलिपुत्रस्तु विरराम शरासुरः।
प्रेमप्रफुल्लितांगश्च प्रणम्य स महेश्वरम्।।
इति श्रुत्वा स्वभक्तस्य बाणस्य भगवान्भवः (शिवमहापुराणम् रूद्र सं. 2
सर्वं लभिष्यसीत्युक्तवा तवैवातंरधीयत।। युद्धखण्ड 5 अ. 5/4–32)

साम्प्रतं कालकूटविषायहरणप्रतिपादनद्वारेण भगवत स्तुवन्नाह –

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयकिचदेवासुरकृपा–
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः।
सं कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिः।।14।।

अन्वयः– त्रिनयन ! अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपाविधेयस्य, विषं संहृतवतः तव कण्ठे कल्माषः स श्रियम् न करुते न, अहो, भुवनत्रयमङ्गव्यसनिनः विकारोऽपि श्लाध्यः।

शब्दार्थाः– हे त्रिनयन ! अकाण्डे = असमये, ब्रह्माण्डक्षय = महाप्रलयो, (विषोर्मिवेगात्संभावितः) चकिताः = भीताः, देवाऽसुरा = इन्द्रबलिप्रभृतयः, कृपा = दया, विधेयस्य = संपादकस्य, विषं = गरलं, संहृतवतः = पीतवतः तव कण्ठे यः कल्भाषः = कृष्णपाण्डुरोवर्णः, स (कलिमा) श्रियम् = शोभां, न कुरुते न = अपितु कुरुते एव, अहो = आश्चर्यम्, भुवनस्य = लोकस्य, भयं = त्रासः, भंग = नाशः व्यसनिनः = क्रियमाणस्य, विकारः = दूषणमपि श्लाध्यः = प्रशंसितव्यम् भवति।

व्याख्या – हे त्रिनयन ! असमये विषोर्मिवेगात्संभावितः महाप्रलयात् भीताः इन्द्रबलिप्रभृतिषु देवाऽसुरेषु दयां सम्पादकस्य समुद्रमन्थनोत्थं कालकूटाख्यं गरलं पीतवतः तव कण्ठे कालिमा वर्तते सा तव कण्ठे किम् शोभां न करुते अपितु करुते एवेत्यर्थः। आश्चर्यमिदम् यत् सर्वमन्यद् जगदुपकृतिकृतं दूषणमपि भूषणमेवेत्यर्थः।

इदानीं कामनिग्रहपरां स्तुवन्नाह –

असिद्धार्था नव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः।।15।।

अन्वयः– ईश ! जगति नित्यं जयिनः यस्य विशिखाः सदेवासुरनरे क्वचिदपि असिद्धार्था नैव निवर्तन्ते स स्मरः त्वां इतरसुरसाधारणं पश्यन् स्मर्तव्यात्मा अभूत्। हि वशिषु परिभवः पथ्यः न।

शब्दार्थाः– जगति = त्रैलोक्ये, नित्यं जयिनं = सर्वदाजयशीलस्य, यस्य = स्मरस्य, विशिखाः = बाणाः सदेवासुरनरे = देवासुर नरादिसहिते = (स्वर्ग्यमर्त्यपाताले अपि), क्वचिदपि = कदाचिद् अपि, असिद्धार्था = अकृतकार्या, नैव, निवर्तन्ते = न जायन्ते, स = एतादृशपौरुषवानपि स्मरः = कामदेवः, त्वाम् = भगवन्तं महादेवम्, इतरसुरसाधारणम् = अन्यदेवतुल्यं, पश्यन् = अवगच्छन् स्मर्तव्यात्मा = स्मरणीयोभूतः (अशरीरोऽभूत्) हि = यस्मात्, वशिषु = जितेन्द्रियेषु, परिभवः = तिरस्कारः, पथ्यो = सुखकारी न भवति।

व्याख्या – हे ईश ! नित्यं जयशीलस्य यस्य स्मरस्य बाणाः अस्मिन् (स्वर्ग्यमर्त्यपाताले) कदाचिदपि निःफला न जायन्ते नित्यं कृतकार्या भवन्ति। एतादृशपौरुषवान् अपि स्मरः अन्यदेवतातुल्यं त्वां अवगच्छन् स्मरणीय आत्मा नष्टशरीरः अभवत् (यथा अन्ये देवा मया जय्यास्तथाऽयमपीति) जितन्द्रियेषु तिरस्कारः सुखकारी न भवति स्वनाशायैव भवति इति। किं पुनः परमवशिनाम् वरे परमेश्वारै त्वयि इत्यर्थः।

टिप्पणयः – शिवने स्वतृतीयनेत्रवह्नि ना कामो भस्मसात् कृत तेन शिवस्य जितेन्द्रियत्वमेव सूचितम्। सदेवासुरनरे – देवाश्चासुराश्च नराश्च तैः सह वर्तते सदेवासुरनराः तस्मिन् महतामनादरः सदा अहितकरः भवति।

शिखरिणी वृत्तम्, परिकरोऽर्थान्तरन्यासश्चालङ्कारौ।

15.7इकाई सं. 17 से 18 तक के श्लोकों की संस्कृत व्याख्या

अतिबलवान् कश्चित्राक्षसः संध्यासमये जगदिदं क्षपयितुमुद्यतः तन्निवारणार्थं तस्मिन् काले भगवान् तांडवं करोति। सम्प्रति तांडवबद्धां स्तुतिं कुर्वन्नाह –

मही पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोभ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।।16।।

अन्वयः– मही पादाघातात् सहसा संशयपदं व्रजति विष्णोः पदंम भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् भ्राम्यद् अनिभृतजटाताडिततटा द्यौः मुहुः दौस्थ्यं याति त्वं जगद्रक्षायै नटसि ननु विभुता वामैव।

शब्दार्थाः– मही = पृथ्वी, पादाघातात् = पादताडनात्, सहसा = शीघ्रं संशयपदं = संकटं, व्रजति = गच्छति विष्णोः पदं = आकाशं, भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् = भुजरूपपरिघैः = अर्गलया, रुग्णाः = पीड़िताः, ग्रहगणम् = नक्षत्राणां समूहाः, भ्राम्यद् = इतस्ततः चरंतः, भवति, अनिभृतजटाताडिततटा = अनिभृतं = बारं–बारं जटाभिः = सटाभिः, ताडितः प्रान्तभागाः द्यौः = स्वर्गलोकमपि, मुहुः = पुनः, दौःस्थम् = विचलितमस्थिरं वा याति = गच्छति। एवं प्रकारण त्वं = भवान्, जगद् = लोक, रक्षायै = त्राणाय, नटसि = ताण्डवनृत्यं करोषि, ननु = निश्चयं, विभुता = परममहत्ता, प्रभुता, वामा = प्रतिकूला एव भवति।

व्याख्या – हे ईश ! त्वं तु जगतां रक्षायै ताण्डवनृत्यं करोषि जगन्ति तव ताण्डवनृत्येन संशयितानि भवन्ति। यथा तव चरणप्रहारत् झटिति मही संकटापन्नां पदं व्रजति। अन्तरिक्षं भुजरूपरिघैः पीडिताः नक्षत्राणां समूहा यत्र तत्र तथा संशयपदं व्रजति। असंवृताभिः जटाभिः ताडितं तटं यस्या सा तथा मुहुः विचलितमस्थिरं गच्छति स्वलोकः एवं च क्रमेण त्रयाणां लोकानामपि संशयः दर्शितः। अहो ननु विभुता प्रतिकूलस्वभावा भवति एव।

टिप्पणयः – नटराजशिवस्य ताण्डवनृत्यं लोकरक्षणाय आसीदिति पौराणिकाख्यानमत्र प्राप्तये।

भ्राम्यद्भुजपरिघरुपग्रहगणं = भुजा एव परिघाः (अतिसुवृत्तपीवरदृढीदीर्घत्वात्तैर्भ्राम्यद्भिः भुजरूपपरिघैः रुग्णाः पीड़िता ग्रहगणा = नक्षत्रसमूहा यत्र तत्तथा।)

अनिभृतजटाताडिततटा = अनिभृताभिः जटाभिः ताडितं तटं यस्याः सा तयोक्ताः

शिखरिणीवृत्तम्। रूपकानुप्रासोत्प्रेक्षलंकाराः।

पूर्वमगस्त्यमुनिना हस्तमात्रीकृतो जलनिधिः। तेन परमेश्वरेण देवैः पुनरभ्यर्चितेन भगवता गंगाजलैः पूरितः। तत्प्रतिबद्धां स्तुतिं कर्तुमाह–

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघु दृष्टः शिरसि ते।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि–
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः।।17।।

अन्वयः–वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः वारां यः प्रवाहः ते शिरसि पृषतलघुदृष्टः तेन जलधिवलयं द्वीपाकारं कृतम् इति अनेन एव तव धृतमहिमदिव्यं वपुः उन्नेयम्।

शब्दार्था – वियद्व्यापी = व्योमव्याप्तं, तारागणगुणित तारागणैः नक्षत्रवृन्देन, गुणिता = वर्धिता, फेनोद्गम रुचिः फेनोद्गमशोभासम्पन्नाः, वारां = जलानां यंः प्रवाहः वेगः, ते = तव, शिरसि = जटामुकुटे, पृषतलघु = लघु जलबिन्दु इव दष्टः = आलोकितः, तेन प्रवाहेण जलधिवलयम् = समुद्रं वलयमिव जगद् द्वीपाकारं = भुवनं द्वीपसदृशं, कृतं = विहितम् इति अनेन धृतमहिमदिव्यं = महिम्नाभिर्दिव्यं रूपं धृतमिति महिमयुक्त वं तव वपुः–शरीरं, उन्नेयम् = ज्ञातव्यम्।

व्याख्या – नभसि व्याप्यमानः नक्षत्रगणेन स्वान्तःपातिना शुभ्रत्वादिगुणसजातीयवाद् वर्धिता फेनोद्गमशोभाः सम्पन्नाद् जलानां यः प्रवाहः तव जटामुकुटे लघुजलकण इव आलोकितः तेन प्रवाहेण समुद्रं वलयमिव भुवनं द्वीपसदृशम् विहितम्। इति अनेन दिव्यं सदानन्दात्मको वपुः सर्वदेवनियन्तृ तव शरीरं सर्वेभ्यो महत्तरं ज्ञातव्यम्।

टिप्पणयः – वियद्व्यापी = वियद्व्याप्नोति इति तारागणगणितफेनोद्गमरुचिः = ताराणां गणाः तैः गुणिताः फेनोद्गमरुचि यस्य स तथोक्तः। जलधिवलयं = जलधि वलयः यस्य स तथोक्तः द्वीप = जलमध्यस्थितो भूखण्डः द्वीपः

पृषतलघुदृष्टः = पृषताद् बिन्दोरपि लघुरल्पतरः पृषतलघुः स इव दष्टः तथा च यो जलराशिस्तव शिरसि बिन्दोरपि अल्पो दृष्टः स एव कियान्मंदाकिनी वियद्व्याप्यास्ते। कियान्भागीरथीति गङ्गेति च प्रसिद्धो भूलोके सप्तसमुद्रानापूर्यास्ते। कियांस्तु भोगवतीति संज्ञाया पातालमभिव्याप्यास्ते इत्यनेन एवं दिव्यवपुषो महत्त्वमनुमीयते।

सम्प्रति त्रिपुरदहनाडम्बरविषयां स्तुतिमाह –

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरग्रेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि –
र्विधेयैः कीडन्तयो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः।।18।।

अन्वयः– क्षोणी रथः शतधूतिः यन्ता, अगेन्द्रा अथ रथाङ्गे चन्द्रार्कौ, रथचरणपाणिः शरः इति त्रिपुरस्तृणं दिधक्षोः ते अयं आडम्बरविधिः कः विधेयैः कीडन्त्यः प्रभुधियः परतन्त्राः न खलु।

शब्दार्थाः – क्षोणी = पृथ्वी, रयः = स्यन्दनम्, शतधृतिः = ब्रह्मा, यन्ता = सारथिः अगेन्द्रः = पर्वतश्रेष्ठ मेरुः, धनुः = कोदण्ड रथांगे = स्यन्दनचक्रे, चन्द्रार्कौ = सोमसूर्यौ रथचरणपाणिः = विष्णुः शरः = बाणः इति त्रिपुरतृणं = त्रिपुरं, तृणमिव = अतीव तुच्छम्, दिधक्षोः = दग्धुमिच्छोः, ते = तव, अयं = पूर्वोक्तः, आडम्बरविधिः = कार्यसमारम्भस्य विधिः, का सामग्री) किमर्थमिति यावत् विधयैः = स्वाधीनैः पदार्थैः क्रीडन्त्यः = खेलन्त्यः, प्रभो = ईश्वरस्य, धियः = बुद्धयः, परतन्त्राः = पराधीनाः, न भवन्ति।

व्याख्या – त्रिभुवनपीच्छामात्रेण संहरतः तवैवं प्रकारेण सामग्रीसंपादनमाडम्बरमात्रमेव प्रतीयते। न हि लौकिका अपि नखच्छेद्ये कुठारं परिगृह्णन्ति अतस्तवात्यल्पे प्रयोजने न महान्प्रयास उचित इति। आडम्बरविधिं दर्शयति – पृथिवी रथरुपेण परिणीता, ब्रह्मासारथिः पर्वतश्रेष्ठो मेरूः कोदण्डं, सोमसूर्यौ द्वे चक्रे, विष्णुः बाणः इति अतीव तुच्छम् त्रिपुरं दग्धुं इच्छोः तव पूर्वोक्तः कार्यसमारम्भ सामग्री किमर्थमिति ? निश्चितं स्वाधीनैः पदार्थैः खेलन्त्यः ईश्वरस्य संकल्पविशेषाः पराधीनाः न भवन्ति, अपितु स्वतन्त्रा एव।

टिप्पणयः– क्रीडायाम् प्रयोजनाद्यपेक्षा नास्ति। तस्माद् विचित्राणि वस्तूनि स्वाधीनतया क्रीडासाधनीकृत्य क्रीडतस्तव सर्वाणि कार्याणि स्वेच्छामात्रेण कर्तु क्षमस्य किंचिदपि अनुचितम् न इत्यर्थः।

अत्र शिखरिणी वृत्तम्। रूपक – अनुप्रासालंकारौ।

हरिः चक्रलाभाय ईश्वरपादयोः कमलसहस्रैः पूजां कृतवानिति प्रबंधां स्तुतिमाह –

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो –
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्।।19।।

अन्वयः– त्रिपुरहर ! हरि ते पादयोः साहस्रं कमलबलिम् आधाय यद् एकोने तस्मिन् निजम् नेत्रकमलम् उदहरत् भक्त्युद्रेकः परिणतिं गतः असौ चक्रवपुषा त्रयाणां जगतां रक्षायै जागर्ति।

शब्दार्थाः– त्रिपुरहर = त्रिपुरान्तक ! हरि = नारायणः, ते = तव, पादयोः = चरणयोः, साहस्रं = सहस्रसंख्यात्मकं, कमलबलिं = कमलपूजां, आधाय = समर्प्य, एकोने = एकेन हीने सति, निजं = आत्मीयं, नेत्रकमलम् = कमलाकांर नयनं, उदहरत् = उत्पाटितवान्, असौ भक्त्युद्रेकः = भक्तेः अत्यन्तप्रकर्षः, चक्रवपुषा = सुदर्शनरूपेण परिणतिम् = परिणामम्। गतः = प्राप्तः त्रयाणां जगताम् = स्वर्गमर्त्यपातालाना, रक्षायै = त्राणाय, जागर्ति = अप्रमत्त तिष्ठति।

व्याख्या – हे त्रिपुरान्तक शिव ! विष्णुः तव चरणयोः सहस्रसंख्यात्मकं कमलानां बलिं समर्प्य तस्मिन् सहस्रकमलबलौ एकेन कमलेन हीने सति (भक्तिपरीक्षार्थं त्वया गोपितेन) नियमभङ्गो ाम भूदिति तत्पूरणार्थ तदा आत्मीयं नेत्रकमलमेव उत्पाटितवान्। असौ भक्तिसेवायाः अत्यन्तप्रकर्षः सुदर्शनचक्ररूपेण गतः। हे त्रिपुरारि त्वं त्रयाणां लोकानां रक्षणाय सदैव सावधान एव वर्तते।

टिप्पणय – प्रस्तुतायां स्तुतौ विष्णोः अतिशयभक्तिः प्रदर्शिा। सुदर्शनचक्रप्राप्तिविषयिका आख्यायिका पुराणप्रसिद्धा। तथा चैवंविधाचिन्त्यमाहात्म्यस्त्वमसीति भावः।

इदानीं मीमांसावादिनः वेदस्य नित्यनां मन्यमापा न कदाचिंदनीदृशं जगदिति प्रतिपाद्य भगवतो जगत् कर्तृत्वं प्रतिपद्यते तन्मतनिराकरणद्वारेण देवं स्तोतुमाह –

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुष, फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्धवा कृतपरिकरः कर्मसु जनः।।20।।

अन्वयः– क्रतौ सुप्ते क्रतुमतां फलयोगे त्वम् जाग्रत् असि, प्रध्वस्तं कर्म पुरुषाराधनम् ऋते क्व फलतिः अतः त्वां क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं संप्रेक्ष्य श्रुतौ बद्धवा जनः कर्मसु कृतपरिकरः भवति।

शब्दार्थाः– क्रतौ = यागेकर्मणि, सुप्ते = ध्वस्ते सति, क्रतुमतां = याजकानाम् फलयोगे = फलसम्पादने, त्वम् = भवान् जाग्रत असि = सफलं यातुं सावधानो असि, प्रध्वस्तं = विनष्टं, कर्म = क्रिया, पुरुषाराधनं = ईश्वरस्य आराधनं, ऋते = विना, क्व फलति = न कुत्रापि फलति इत्यर्थः, अतः = एतस्माद् कारणाद्, जनः = लोकः, त्वां = भवन्तमेव, क्रतुषु = यज्ञेषु, फलदानप्रतिभुवम् = फलदानाय लग्नकमिव, संप्रेक्ष्य = मत्वा, श्रुतौ = वेदे, श्रद्धाम् = संप्रत्ययं विश्वासं, बद्धवां = संस्थाप्य, कर्मसु = यागादिकर्मसु, कृतपरिकरः = कृतप्रयत्नः भवति।

व्याख्या – आशुतरविनाशिस्वभावत्वात् यागादिकर्मणि स्वकारणे सूक्ष्मरूपतां प्राप्ते सति (विनाशे सति) यागादिकर्मकारिणां फलसम्बन्धे त्वं प्रबुद्ध एव वर्तते। सर्ववैदवावहितोऽसि इत्यर्थः।

विनष्टं कर्म चेतनस्य पुरुषस्य फलदातुराधानं विना क्व फलति न क्वापीत्यर्थः। त्वमेव सर्वकर्मफलप्रदाता, अतः त्वां श्रौतस्मार्तकर्मसु फलदानाय लग्नकमिव निश्चित्य श्रुतौ श्रद्धां बद्धवा जनः श्रुतिस्मृतिविहितकर्माधिकारी श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु कृतारम्भो भवति।

टिप्पणयः– शिव एव जगत्पालकोऽस्ति, तस्य कृपया स्वर्गादिलाभो भवति इति मत्वा 'स्वर्गकामोऽश्वमेधेन यजेत्' इत्यादि वेदवाक्येषु श्रद्धां विधाय स्तवनं कर्तव्यमिति।

15.7 पारिभाषिक शब्दावली

स्तोत्र – 'स्तूयतेऽनेनेति स्तोत्रम्' स्तु धातु से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्ययान्त होकर यह स्तोत्र पद किसी देवता का छन्दोबद्ध स्वरूप कथन या गुणकीर्तन, प्रशंसात्मकगीत या कविता, स्तुत्यात्मक श्लोक से सम्बन्ध रखता है।

सांख्य – पच्चीस तत्वों का संख्या विचार कहलाता है।
ध्रौव्याध्रौव्ये– नित्य को ध्रौत्य तथा अनित्य को अध्रौत्य कहते है।
भुवनजय – ये तीन भुवन या लोक कहलाते है (1) द्यु–लोक (2) पृथ्वी लोक (3) अन्तरिक्ष लोक
नट – भगवान शंकर का तांडव किये जाने के कारण ''नट'' कहलाते है
स्वतंत्र – जिसका अपना तंत्र हो वह कर्ता स्वतंत्र ''कहलाता'' है स्वतन्त्रकर्ता

15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

अधोलिखितानां श्लोकानां ससन्दर्भसंस्कृत माध्यमेन व्याख्या करणीया –

1. अतीतः पन्थानं तव च महिमा.....

2. त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं.....
3. महोक्षः खट्वांगं परशुजिनं.....
4. असिद्धार्था नैव क्वचिदपि.....
5. रथः श्रोणी यन्ता शतधृतिः.....

बोधप्रश्नानां उत्तराणि

द्रष्टव्या.....

1. पृ.सं. 270
2. पृ.सं. 273
3. पृ.सं. 274
4. पृ.सं. 279
5. पृ.सं. 281

15.9 सारांश

इस प्रकार हमने जाना कि स्तोत्ररचना का अविरल प्रवाह अनेकविध तरंगों, लहरियों एवं धाराओं में बढ़ता हुआ निखिल विश्व को आप्यायित करती हुई पीड़ा कसक से उपजी आत किन्तु प्रार्थनारूपी वाणी ही स्तोत्र की जन्मस्थली है।भगवान् शिव की महिमा, अगम्य, अनन्त तथ अनिर्वचनीय है। ब्रह्मा, विष्णु, ऋषि, मुनि भी शिव के बल एवं वीर्य की महिमा को नहीं जानते है। ऐसे अपार महिमामय, शिव की महिमा का वर्णन उनके अनन्यसेवक, गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य ने स्वमहिमा से भ्रष्ट होकर पुनः उस महिमा की प्राप्ति के लिए किया था। इस प्रकार इस इकाई में हमने शिव के सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया ।

15.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिवमहिम्नः स्तोत्रम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि० सं०, २०१३.
2. शिवमहिम्नः स्तोत्रम्,मधुसूदन सरस्वती कृत संस्कृतव्याख्या सहित,सम्पा. – पणशीकर वासुदेव शर्मा, निर्णयसागर, 1937.
3. शिवमहिम्नः स्तोत्रम्, सं. रूपनारायण त्रिपाठी, रचना प्रकाशन, जयपुर, 1999.
4. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1986.
5. कल्याण शिवोपासनांक – प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, कोड 586, क्रमांक 67, वर्ष 1993.

इकाई 16

स्तोत्र पाठ का महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 21 से 25 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या
16.3 26 से 30 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या
16.4 31 से 36 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या
16.5 37 से 43 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या
16.6 पारिभाषिक शब्दावली
16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.8 सारांश
16.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

16.0 उद्देश्य

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा संचालित एम.ए. (उत्तरार्द्ध) संस्कृत के प्रश्नपत्र पंचम की इकाई 15 एवं 16 गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य द्वारा रचित **'शिवमहिम्न स्तोत्र'** से सम्बन्धित हैं इसमें कुल 43 श्लोक हैं। जिनमें से 36 श्लोक मे ही शिव महिमा का गुणगान किया गया ह शेष श्लोकों में स्त्रोत पठन का फल बताया गया है।

स्तोत्ररचना का अविरल प्रवाह अनेकविध तरंगों, लहरियों एवं धाराओं में बढ़ता हुआ निखिल विश्व को आप्यायित करती हुई पीड़ा कसक से उपजी आत किन्तु प्रार्थनारूपर वाणी ही स्तोत्र की जन्मस्थली है।

भगवान् शिव की महिमा, अगम्य, अनन्त तथ अनिर्वचनीय है। ब्रह्मा, विष्णु, ऋषि, मुनि भी शिव के बल एवं वीर्य की महिमा को नहीं जानते ह। ऐसे अपार महिमामय, शिव की महिमा का वर्णन उनके अनन्यसेवक, गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य ने स्वमहिमा से भ्रष्ट होकर पुनः उस महिमा की प्राप्ति के लिए किया था।

विद्यार्थियों को स्तोत्रविधा से परिचित कराना ही इस इकाई का मूल प्रयोजन है। इसके अध्ययनोपरान्त आप –

- संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं में से स्तोत्रविधा के स्वरूप को जानेंगे।
- भगवान् शिव के दार्शनिक स्वरूप को समझ पाएंगें।
- शिव महिम्नः स्त्रोत्र का सरल संस्कृत में अनुवाद कर सकेंगे।
- शिव महिम्न स्तोत्र की साहित्यिक विशेषताओं को जानेंगे।
- शिव विषयक विभिन्न उपमानों को जान सकेंगे।
- अपने अन्तःकरण में शिव विषयक भक्ति को उत्पन्न कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

स्तोत्र भगवती वाग्देवी की जिव्हा है। समस्त वाङ्मय की अधिष्ठात्री वाग्देवो सरस्वती वाणी के रूप में आविर्भूत होकर इष्टदेव की स्तुति करती हैं।

भारतीय–देव–स्तोत्र साहित्य अपनी विशालता, विविधता एवं विशिष्टता के कारण अत्यन्त उपादेश है। 'स्तूयतेऽनेनेति स्तोत्रम्' स्तु धातु से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्ययान्त होकर यह स्तोत्र पद किसी देवता का छन्दोबद्ध स्वरूप कथन या गुणकीर्तन, प्रशंसात्मकगीत या कविता, स्तुत्यात्मक श्लोक से सम्बन्ध रखता है।

स्तोत्र शब्द का मूल अर्थ है – 'गुणानुवाद'। इसमें न केवल देवता के गुणों और महान् कार्यों का प्रशंसात्मक वर्णन होता है, अपितु उनके प्रति नमस्कार, आशीः, सिद्धान्त कथन भी होता है। स्तोत्र में छः प्रकार की अभिव्यक्तियों अन्तर्निहित होती है – नमस्कार, आशीः, सिद्धान्तकथन, पराक्रम, विभूति एवं प्रार्थना।

16.2 21 से 25 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यवसिनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः।।21।।

अन्वयः – शरणद। क्रियादक्षः, तनुभृतां अधीशः, दक्षः क्रतुपतिः, ऋषीणां आर्त्विज्यं, सुरगणाः, सदस्याः क्रतुफलविधानव्यवसिनः त्वत्तः, क्रतुभ्रंशः, हि मखाः कर्तुः श्रद्धाविधुरम् अभिचाराय ध्रुवम्।

संस्कृत शब्दार्थाः – हे शरणागतवत्सल! क्रियादक्षः = यज्ञविधौ कुशलः, तनुभृतां = शरीरिणाम्, अधीशः = स्वामी, दक्षः = दक्षो नाम प्रजापतिः, क्रतुपतिः = यजमानः, ऋषीणां = भृगुप्रभृतीनाम्, आर्त्विज्यं = अध्वर्यु आदिरूपता, सुरगणाः = ब्रह्मादयो देवगणाः, सदस्याः = सभ्याः उपद्रष्टारः, क्रतुफलविधानव्यवसिनः = यज्ञस्य फलस्य विधाने उत्सुकात्, त्वत्तः = भवतः सकाशात्, क्रतुभ्रंशः = यागस्य भ्रंशः विनाशः, अभूत् = अभवत्, ध्रुवं = निश्चितं श्रद्धाविधुरं = भक्ति रहितं, मखाः = यज्ञाः, कर्तुः = यजमानस्य, अभिचाराय = विनाशाय एव भवन्ति।

व्याख्या – हे शरणद! यज्ञकर्मणि कुशलः, प्रजापतित्वाद् शरीरिणाम् स्वामी, दक्षो नाम प्रजापतिः यत्र स्वयं यजमानः आसीत्, त्रिकालदर्शिनां वसिष्ठप्रभृतीनाम् ऋषीणाम् अध्वर्य्वादिरूपता आसन्, इन्द्रादयः देवगणाः यत्र सदस्याः आसन्। एतादृश सर्वसामग्री –संपत्तावपि यज्ञफलस्य संपादने उत्सकाद् परमेश्वरादप्रसन्नात् यज्ञस्य भ्रंशः अभवत् (दक्षस्य इच्छितफलप्राप्तिर्न संजाता इति)। निश्चितमिदम् यत् क्रतुफलदातरि परमेश्वरे विषये भक्तिरहितं अनुष्ठिता यज्ञाः यजमानस्य नाशाय एव भवन्ति।

टिप्पणयः –

अत्र दक्षयज्ञविध्वंसविषयकं पौराणिकं आख्यानं सूचितम्। शिखरिणीवृत्तम्। यमकार्थान्तरन्यासः अलंकारः।

सम्प्रति ब्रह्मणो दुहित्रभिलाषकस्य निग्रहसामर्थ्यं ऐश्वर्यं स्तुवन्नाह–

प्रजानाथं नाथ प्रसभमधिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुःष्पाणेः यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं,
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः।।22।।

अन्वयः – नाथ! रोहिद्भूतां स्वां दुहितरं प्रसभं रिरमयिषुम् ऋष्यस्य वपुषा गतम् अभिकं प्रजानाथं त्रसंतं दिवमपि यातं सपत्राकृतं अमुम् अद्यापि ते धनुष्पाणेः मृगव्याधरभसः न त्यजति।

संस्कृत शब्दार्थाः – हे शिव! रोहिद्भूतां = मृगीजातां, स्वां दुहितरं = आत्मीयां सुतां, प्रसभं = हठेनानिच्छन्तीमपि, रिरमयिषुम् = रन्तुमिच्छुगतं, ऋष्यस्य = मृगस्य, वपुषा = शरीरेण, अभिकं = कामुकं, प्रजानाथं = ब्रह्माणम्, त्रसंतं = भीतं चकितं, दिवमपि यातं = स्वर्गं प्राप्तमपि, सपत्राकृतं = पत्रेण सह शरं शरीरे प्रवेश्य, अमुम् = प्रजानाथं, अद्यापि ते = तव, धनुष्पाणेः = कार्मुकभुजस्य, मृगव्याधरभसः = मृगवधिकवेगात्, न त्यजति = न मुञ्चति।

व्याख्या – लज्जया मृगीभूतां आत्मीयां सुताम् मृगशरीरेण बलात् रन्तुमिच्छुंगतम् अत्यर्थं कामुकं भीतभीतं स्वर्गं प्राप्तमपि ब्रह्माणं पत्रयुक्तबाणलक्ष्यं अमुम् प्रजानाथं अद्यापि तव कार्मुकभुजस्य मृगव्याधवेगः न मुञ्चति।

टिप्पणयः –

मृगव्याधरभसः – मृगान्विध्यतीति मृगव्याधः तस्येव रभसः उत्साहातिरेको

मृगव्याधरभसः।

सपत्राकृतम् – पत्रेण सह शरं शरीरे प्रविश्य अतिव्यथां नीतः सपत्राकृतस्तादृशमिवात्मानं मन्यमानम्

पुराणेषु प्रसिद्ध वृत्तान्तमत्र सूचितम् –

ब्रह्मा स्वदुहितरं सन्ध्यामतिरूपिणीमालोक्य कामवशो भूत्वा तां रन्तुमुद्यतः। स चायं पिता भूत्वा मामुपगच्छतीति लज्जया मृगीरूपा बभूव। ततः स तां तथा दृष्ट्वा ब्रह्मापि मृगरूपं दधार। तच्च दृष्ट्वा त्रिजगन्नियन्ता महादेवेनायं प्रजानाथो धर्मप्रवर्तको भूत्वाप्येतादृशं जुगुप्सितमाचरतीति महतापराधेन दण्डनीये मयेति पिनाकमाकृष्य शरः प्रक्षिप्तः। ततः सः ब्रह्मा व्रीड़ितः पीड़ितः सन् मृगशिरोनक्षत्ररूपो बभूव। ततः श्रीरुद्रस्य शरोऽप्यार्द्रानक्षत्र रूपो भूत्वा तस्य पश्चाद्भागे स्थितः। ततश्च आर्द्रामृगशिरसोः सर्वदा संनिहित्वादद्यापि न त्यजति इत्युक्तम्।

शिखरिणी वृत्तम्। रूपक काव्यलिङ्गअनुप्रासाः अलंकाराः।

इदानीं गौरीरूपाभिमर्दन पुरः सरं भगवतः परमयोगित्वं स्तौतुमाह –

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणव–
त्पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना –
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः।।23।।

अन्वयः – पुरमथन स्वलावण्याशंसा दवी धृतधनुषं पुष्पायुधमपि पुरः तृणवत् अह्नाय प्लुष्टं दृष्ट्वा यमनिरतदेहार्धघटनाद् त्वां यदि स्त्रैणं अवैति, वरद! अद्धा युवतयः मुग्धा वत।

संस्कृत शब्दार्थाः – हे त्रिपुरान्तक, स्वलावण्याशंसा = स्वसौंदर्यं कीर्तयंती, देवी = पार्वती, धृतधनुषं = गृहीतचापं, पुष्पायुधं = कामदेवं, पुरः = साक्षाद् एव, तृणवत् = तृणमिव, अह्नाय = शीघ्रं, प्लुष्टं = दग्धं, दृष्ट्वा = विलोक्य, यमनिरत = यमनियमासनादि अष्टाङ्गयोगपरायणेन, देहार्धघटनात् = अर्धशरीरयोजनात् त्वां = भवन्तम्, यदि स्त्रैणं = स्त्रीसक्तं, अवैति = जानाति, अद्धा = निश्चितं, युवतयः = तरुण्यः, मुग्धाः = अतत्वज्ञाः, बत् = आश्चर्यम्।

व्याख्या – हे पुरमथन, हे यमनिरत, आत्मीयसौन्दर्यातिशयेन प्रशंसिता देवी पार्वती गृहीतचापं कामदेवं स्वसमक्षम् शुष्कतृणमिव शीघ्रं दग्धं दृष्ट्वापि यमनियमासनादि अष्टांगयोगपरायणेन महायोगिना शरीरार्धे योजनात् स्त्रीपरवश जानाति तर्हि निश्चितमिदं यत् तरुण्यः अतत्वज्ञाः भवन्त्येव इदम् तु महद् आश्चर्यम्।

टिप्पणयः –

यमनिरत – यमनियमासनादि अष्टाङ्गयोगपरायणः एतेन जितेन्द्रियत्वमुक्तम्, (महायोगीत्वमपि)

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषम् – स्वस्थाः पार्वत्याः यल्लावण्यं सौन्दर्यातिशय तद्विषया आशंसा परमयोगिनमपि श्रीरुद्रमस्याः सौन्दर्यातिशयेन शीकरिष्यामीति या प्रत्याशा तया निमित्तभूतया धृतं धनुर्येनेति तथा तम्। एतेन स्वालवण्यातिशयस्यापि श्रीरुद्रविषयेऽकिंचित्करत्वमुक्तम्। अथ स्वयममङ्गलशीलतया क्रीडन्नपि भक्तानां मङ्गलमेव

ददाति इति वदन् शङ्करम् स्तौति–

श्मशानेष्वाक्रोडा स्मरहर पिशाचाः सहचराः
चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मङ्गलमसि।।24।।

अन्वयः – स्मरहर! श्मशानेषु आक्रीडाः, पिशाचाः सहचराः, चिताभस्मालेपः, नृकरोटीपरिकरः स्रग् अपि, एवम् अखिलम् तव शीलम् अमङ्गलं भवतु नाम, तथापि वरद! स्मर्तृणां परमं मङ्गलं असि।

संस्कृत शब्दार्थाः – हे मदनान्तक! श्मशानेषु = पितृकाननेषु, आक्रीड़ाः = विहरणं, पिशाचाः = भूतप्रेतादयः, सहचरः = सहवासिनः, चिताभस्म = मृतशरीरं दहनार्थोपचिताः काष्ठनिचयाः चिता तत्र भवं भसितं, लेपः = अनुलपनं, नृकरोटीपरिकरः = नृकपालसमूहः, स्रग् = माला, अपि = च, एवं अखिलम् = अनेन प्रकारेण, अखिलं शरीरं शीलम् = स्वभावः, अमंगलं = अशुभम् भवतु नाम तथापि वरद! तव स्मर्तृणां = स्मरणकर्तृणां, परमं मंगलं = उत्कृष्टं मङ्गलमसि।

व्याख्या – हे स्मरहर! हे वरद! तव अखिलमपि शीलं एवम् प्रकारेण अमङ्गल्यं भवतु नाम यथा त्वं श्मशानेषु विहरणं केलिं करोषि, भूतप्रेतादयः तव सहयोगिनः सन्ति, मृतशरीरदाहस्थं भस्म तव अङ्गरागसाधनमस्ति, मनुष्यशिरोस्थिसमूहः तव माला अस्ति। अनेन प्रकारेण स्वयममङ्गलशीलोऽपि तव स्मरणकर्तृणां त्वं निरतिशयं कल्याणमेव करोषि।

तेन अमङ्गलशीलोऽयं रुद्रो न मङ्गलकायैः सेवनीय इति भ्रमं परिहृत्य मनोवाक्कायप्रणिधानैः सर्वदा सर्वैः सेवनीयः।

इदानीं भगवतः परमतत्वनिरूपणद्वारेण स्तुवन्नाह–

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरूतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान्।।25।।

अन्वयः – आत्तमरुतः, प्रहृष्यत्रोमाणः, प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः यमिनः प्रत्यक्चित्ते मनः सविधम् अवधाय यद् आलोक्य अमृतमये ह्रदे निमज्य इव आह्लादं दधति तत् किमपि अन्तस्तत्त्वं भवान् किल।

संस्कृत शब्दाथाः – आत्ता = गृहीता, मरुतः = प्राणादिवायवः, प्रहृष्यत्रोमाणः = पुलकितानि रोमाणि, प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः = हर्षाश्रुभिः परिप्लुतादृष्टिः यमिनः = जितेन्द्रिययोगिनः, प्रत्यक्चित्ते = परमात्मनि, मनः = स्वान्तम्, सविधम् = विधियुक्तं, विधाय = कृत्वा, यत् = सच्चिदानन्द रूपं अप्रत्यक्षगोचरं परमात्मरूपं, आलोक्य = दृष्ट्वा, अमृतमये ह्रदे = सुधासम्पूरिते, ह्रदे = जलाशये, निमज्य = निमज्जनं कृत्वा, इव = यथा, आह्लादं = परमसुखमानन्दञ्च, दधति = धारयन्ति, तत् किमपि = पूर्ववद् अनिर्वचनीयं, अन्तस्तत्वं = परमात्मतत्वरूपम्, भवान् = त्वम् असि किल

व्याख्या – शास्त्रोपदिष्टमार्गेणैव कृतप्राणायामाः, प्रकर्षेण पुलकिताङ्गाः आनन्दाश्रुपूर्णनेत्राः शमादिसाधनसम्पन्नाः जितेन्द्रिययोगिनः परमात्मनि मनः कृत्वा सत्यज्ञानानन्तानन्दात्मकं वस्तु आलोक्य अन्तराह्लादं बाह्यसुखविलक्षणं निरतिशयसुखं दधति। यथा कोऽपि अमृतमये ह्रदे निमज्यय सुखिनः भवति यस्य खलु लेशमात्रमपि स्पृष्ट्वा सकलसंतापोपशमेन सुखिनः भवति। तत् अन्तस्तत्वं हे वरद! हे स्मरहर! निश्चप्रचम् भवान् एव असि।

टिप्पणयः –

ह्रदे इव अमृतमये	–	यद्यपि ब्रह्मानन्दस्य सर्वातिशायिनो न कोऽपि दृष्टान्तोऽस्ति तथापीषत्साम्येनापि लोकानां बुद्धिदाढ़र्यायैवमुक्तम्।
प्रत्यक्	–	चक्षुरादीन्द्रियद्वारा वहिर्विषयप्रवृत्तिप्रतिकूलतया अन्तर्मुखतयैवाञ्चतीति प्रत्यक्।
सविधम्	–	सविधमित्यनेन यमनियमादि साधनानि सूच्यन्ते।
आत्तमरुतः	–	इत्यनेन चतुर्थः कुम्भकः।
प्रत्यक्	–	विषयेभ्यः इन्द्रियाणां निवर्तनरूपः प्रत्याहारः प्रत्यक्पदेन सूचितः।
चित्त	–	इत्यनेन हृदयाम्बुजारण्यदेशसम्बन्धात्समूहावलम्बनाख्या।
अवधाय	–	धारणोक्ता अवधाय इत्यनेन ध्यानसमाधी।

16.3 26 से 30 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या

इदानीं अष्टमूर्तिद्वारेण भगवंतं स्तुवन्नाह–

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि।।26।।

अन्वयः – त्वम् अर्कः त्वम् सोमः त्वम् पवनः त्वम् हुतवहः, त्वम् आपः, त्वम् व्योम, त्वमु धरणि त्वम् आत्मा च असि इति परिणता त्वयि एवं परिच्छन्नां गिरं बिभ्रति, इह तु यत् त्वं न भवसि वय तत् तत्त्वं न विद्मः।

संस्कृत शब्दार्थाः – त्वम् अर्कः = त्वम् सूर्योऽसि, त्वं सोमः = चन्द्रः, पवनः = वायु, हुतवहः = अग्निः, आपः = जलं, व्योम = आकाशः, त्वम् उ धरणिः = उ अपि, धरणि = पृथ्वी, आत्मा = जीवस्वरूपो यजमानः त्वम् असि इति, परिणताः = परिपक्वबुद्धयः, एवं परिच्छिन्नां = परिमितां, गिरम् = वाचम्, विभ्रति = धारयति, इह = अस्मिन् लोके, यः = चराचरात्मकरूपः, त्वं न भवसि = त्वं नासि, वयं = लौकिकज्ञाः जनाः, तत् तत्वम् = अनिर्वचनीयमज्ञेयं रहस्यं न विद्मः = न जानीमः।

व्याख्या – हे त्रिपुरारि त्वम् सूर्यः, त्वम् चन्द्र, त्वम् वायुः, त्वम् अग्निः त्वम् जलं, त्वम् आकाशः, त्वम् पृथ्वी, त्वम् च क्षेत्रज्ञो यजमानरूपः असि इत्येवं परिपक्वबुद्धयः जना त्वयि विषये इमां परिमितां वाणीं धारयन्ति। वस्तुतः त्वमद्वितीय असि। अस्मिन् लोके यः चराचरात्मकरूपः यद्वस्तु त्वं न भवसि। वयं लौकिकज्ञाः स्थूलबुद्धिवन्तः जनाः तत् तत्त्वं न जानीमः।

टिप्पणयः – अत्र सर्वत्र त्वं शब्दो वाक्यालंकारार्थः। 'उ' शब्दोऽवधारणे। च शब्दः समुच्चये। इति शब्दो समाप्तौ।

एते चाष्टौ श्रीरुद्रमूर्तित्वेनागमप्रसिद्धाः। एतदष्टमूर्तित्वं चान्यत्राप्युक्तम् 'क्षितिहुतवहक्षेत्रज्ञाभ्यः– प्रभञ्जनचन्द्रमस्तपनवियदित्यष्टौ मूर्तीर्नमो भव विभ्रते' इति।

तेन सर्वात्मकमपि त्वामत्रिमात्रमूर्तिं वदन्तीत्यर्थः।

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरून्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्।।27।।

अन्वयः – शरणद! त्रयीं, तिस्रः वृत्तीः, त्रिभुवनम्, अथ त्रीन् अपि सुरान् त्रिभिः अकाराद्यैः वर्णैः तीर्णविकृति अभिदधत् अणुभिः ध्वनिभिः अवरुन्धानम् ते तुरीयं धाम ओम् इति पदम् व्यस्तं समस्तं त्वाम् गृणाति।

संस्कृत शब्दार्थाः – शरणद! त्रयी = वेदत्रयीं, तिस्रवृत्तीः = जाग्रत्सुषुप्तिस्वप्नाख्याः अन्तःकरणस्यावस्थाः, त्रिभुवनं = स्वगमृत्युपातालम्, त्रीन् अपिसुरान् = ब्रह्मविष्णुरुद्रादीन्, त्रिभिः अकाराद्यैः वर्णैः = अकारउकारमकारैस्त्रिभिर्वर्णैः तीर्णविकृतिम् = निर्विकारं, अभिदधत् = स्तुवन्, अणुभिः = सूक्ष्माभिः ध्वनिभिः, अवरुन्धानम् = स्वीकुर्वाणं, ते = भवतः, तुरीयं धाम = चतुर्थ्यां अवस्थां, ओम् इति = प्रणवाक्षरस्वरूपमोमिति पदम्, समस्तम् = समष्टिरूपम्, व्यस्तं = व्यष्टिरूपम्, त्वां गृणाति = स्तौति।

व्याख्या – हे भक्तानां शरणद! आर्ताभयप्रद! ओमिति पदं त्वां सर्वात्मनम् अद्वितीयं अवयवशक्त्या समुदायशक्त्या च प्रतिपादयति स्तौति। समुदायशक्तिः अकारोकारमकाराख्यपदत्रयकर्मधारयसमासनिष्पन्नम्। अवयवशक्तिः अकार–उकार मकाराख्यस्ततन्त्रपदत्रयात्मकमित्यर्थः त्वां कीदृशम् समस्तं सर्वात्मकं तथा व्यस्तमाध्यात्माधिदैवादिभेदेन भिन्नतया प्रतीयमानम्।

वेदत्रयीं, त्रिसंख्याकाः वृत्तयः, त्रैलोक्यं, तदनन्तरं त्रीन् सुरान्, अकारमकारोकाराद्यैः त्रिभिः वर्णैः सूक्ष्माभिः ध्वनिभिः व्याप्तं निर्विकार ते चतुर्थ्यां अवस्थां स्तुवम् ओमिति पदम् त्वां सर्वात्मनं अद्वितीयं अवयवम् प्रतिपादयति।

हे आर्तायप्रद! वेदत्रयीं, त्रिसंख्याकाः वृत्तयः, त्रैलोक्यं, ब्रह्माविष्णुमहेशादिदेवाान्, अकारमकारोकाराद्यैः त्रिभिः वर्णैः सूक्ष्माभिः नादैः व्याप्तं निर्विकारं ते चतुर्थ्यां अवस्थां अभिधावृत्तया प्रतिपादयत् ओमिति पदम् त्वां सर्वात्मनम् अद्वितीयं अवयवशक्त्या समुदायशक्त्या च प्रतिपादयति स्तौति च इत्यर्थः।

टिप्पणयः –

समस्तं	–	समुदायशक्तिःअकारोकारमकाराख्यपदत्रयकर्मधारय– समासनिष्पन्नम्।
व्यस्तं	–	अवयवशक्तिः अकार–उकार–मकाराख्यस्वतन्त्रपदत्रयात्मभित्यर्थः।
त्वां संदर्भे	–	समस्तं सर्वात्मनम्।
व्यस्तं	–	अध्यात्माधिदेवादिभेदेन भिन्नतया प्रतीयमानम्।
तिस्रो वृत्तयः	–	जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्याख्या अन्तः करणस्थावस्थाः एतच्च विश्वतैजसप्राज्ञानामप्युपलक्षणम्।
त्रिभुवनं	–	भूर्भुवःस्वः एतदपि विराट् हिरण्यगर्भव्याकृतानामुपलक्षणम्।
त्रयसुराः	–	ब्रह्माविष्णुमहेशाख्याः देवाः एतच्च सृष्टिस्थितिप्रलयानामप्युपलक्षणम्
तुरीयं धाम	–	चतुरीयं एव तुरीयं

हृदयात्कंठपर्यन्तजाग्रदवस्थायाः व्याप्तिः, कंठात्तालुपर्यन्तं स्वप्नावस्थायाः व्याप्तिः, ताल्लुनः ललाटपर्यन्तं सुषुप्तावस्थायाः व्याप्तिः ललाटाच्च कुंडलिनी व्याप्य शिवतत्वपर्यंत चतुर्थ्यावस्था व्याप्तिः। "शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्त" इत्यादि श्रुतिः तस्मात् सर्वं द्वितीयशून्यं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म प्रणववाक्यार्थ इति सिद्धम्।

शिखरिणीवृत्तम्, अनुप्रासपरिकारपर्यायालंकाराः।

सर्व साधारणनि प्रसिद्धानि भगवद्वाचकानि पदानि जपार्थत्वेन अष्टकद्वारेण वदन् स्तौति–

भवः शर्वो रूद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां–
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्यै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते।।28।।

अन्वयः – भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः अथ उग्र सह महान् तथा भीम ईशान इति यद् इदम् अभिधानाष्टकम् अमुष्मिन् प्रत्येकं देवः श्रुतिः अपि प्रविचरति प्रियाय अस्मै भवते धाम्ने प्रणिहित नमस्योऽस्मि।

शब्दार्थाः – भवः = भवत्यस्माद् विश्वमिति भवः, शर्वः = शम्भु, रुद्रः = रूद्र, पशुपतिः = प्रमथानां पतिः, उग्रः = कोपनशीलः, महान् = महादेवः, भीमेशानो = भोमः ईशानश्चः, इति = एवं प्रकारेण, यत् = सुविख्यातम्, अभिधानाष्टकम् = अष्टौ नामावलिः, अमुष्मिन् = अस्मिन्, प्रत्येकं एकमेकं नाम, देवः = महेश्वरः, श्रुतिः = वेदवचनमपि प्रविचरति = वर्तते इति, प्रियाय = प्रियसम्पादकाय, अस्मै = प्रकाश रूपाय, भवते = नामाष्टकाय, प्रणिहितनमस्याऽस्मि = कृतनमस्कारोऽस्मि।

संस्कृत व्याख्या – हे त्रिपुरारि भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः उग्रः महादेवः भीमः ईशानश्च एवं प्रकारेण यत् सुविख्यातम् अभिधानाष्टकम् अस्ति अस्मिन् प्रत्येकं देवः पूज्यः महेश्वरः वेदवचनमपि। प्रकर्षेण बोधकतया विचरति। प्रियसम्पादकाय प्रकाशरूपाय नामाष्टकाय अहम् नमस्करोमि।

टिप्पणयः – अपि शब्दात्स्मृतिपुराणागमादिकमपि।

यद्वा अमुष्मिन् नामाष्टके देवानां ब्रह्मादीनामपि श्रुतिः श्रवणेन्द्रियं प्रविचरति। देवा अपि त्वन्नाम श्रवणोत्सुकाः किं पुनरन्यः इत्यर्थः।

यस्य च नाममात्रमपि सर्वपुरुषार्थप्रदं स पुनः स्वयं कीदृश इति भक्त्युद्रेकेण प्रणमति।

धाम्ने – सर्वेषां शरणभूताय चिद्रूपायेति वा।
प्रविहितनमस्योऽसि – प्रकर्षेण वाङ्मनः कायव्यापारातिशयेन निहिता नमस्या नमस्क्रिया येन स तथा।

स्कन्दपुराणे अष्टमूर्तिशिवस्य स्वरूपं इत्थम् वर्णितम् अत्र–

नमस्ते भगवन्रुद्रभास्करामिततेजसे। नमो भवाय रुद्राय रसायाम्बुमयाय ते।।
शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः । ईशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शायनमोनमः।।
पशूनां पतये चाऽपि पावकायाऽतितेजसे। भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः।।
महादेवाय सोमाय अमृताय नमोऽस्तु ते। उग्राय यजमानाय नमस्ते कर्मयोगिने।।

अस्मिन् स्तोत्रे स्तुतिकारण रुद्रं सूर्यरूपेण, भवं जलरूपेण, शर्वं क्षितिरूपेण, ईशं वायुरूपेण पशुपतिं अग्निरूपेण, भीमं आकाशरूपेण महादेवं चन्द्ररूपेण उग्रं च यजमानरूपेण स्तुतवान्।

इदामीं भगवतः प्रकटरूपतां प्रतिपादयन्नाह–

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो।
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो।
नमः स्वस्मै ते तदिदमतिसर्वाय च नमः।।29।।

अन्वयः – प्रियदव! नेदिष्ठाय नमः दविष्ठाय च नमः, स्मरहर! क्षोदिष्ठाय नमः महिष्ठाय च नमः, त्रिनयन! वर्षिष्ठाय नमः यविष्ठाय च नमः, ते सर्वस्मै नमः तद् इदम् च अतिसर्वाय नमः।

शब्दार्थाः – प्रियदव = अभीष्टनिर्जनवन विहार, नेदिष्ठाय = अत्यन्तनिकट वर्तिने नमः, दविष्ठाय = अत्यन्तदूरवर्तिने नमः, क्षोदिष्ठाय = क्षुद्रतराय नमः, महिष्ठाय = महत्तराय नमः, वर्षिष्ठाय = वृद्धतराय नमः, यविष्ठाय = युवतराय नमः, ते = तव, सर्वस्मै = सर्वव्यापक रूपाय, नमः, अतिसर्वाय = श्रेष्ठतमाय च नमः।

संस्कृत व्याख्या – हे वानवासप्रिय! अत्यन्तनिकटवर्तिने अत्यन्त दूरवर्तिने च नमोनमः हे मदनान्तक! परमाणुरूपाय अत्यन्तसूक्ष्मरूपाय, पर्वतादिमहद्रूपाय च तुभ्यं नमः। हे त्रिलोचन! वृद्धतराय युवतराय च तुभ्यं नमः। एवं तत्परोक्षमपरोक्षमित्यनेन प्रकारेणानिर्वाच्यं अतिसर्वः तस्मै नमः। स्वरूपाय साकल्यरूपाय च तुभ्यं नमो नमः।

टिप्पणयः – प्रस्तुतायां स्तुतौ अत्यन्तविरुद्ध स्वभावास्वाल्पबुद्धिभिः कथमपि स्वरूपनिर्णयासंभवात्सर्वदा नमस्कार एवं करणीय इति प्रदर्शनाय नमस्कार शब्दावृत्तिः।

तथा च श्रुतिः – 'दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च' 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' 'त्वं स्त्री त्वं च पुमानसि त्व कुमार उत वा कुमारी' 'त्वं जीर्णो दण्डेनाच्चासि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखम्'।

इदानीं त्रिगुणप्रवर्तनक्रियायां स्तुवन्नाह –

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः।
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।।
जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः।
प्रमहसिपदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः।।30।।

अन्वयः – विश्वोत्पत्तौ बहुलरजसे भवाय नमोनमः, तत्संहारे प्रबलतमसे हराय नमो नमः जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः।

संस्कृत शब्दार्थाः – विश्वोत्पत्तौ = जगत्सृष्टिकर्तव्यतायां, बहुलरजसे = तमः सत्वाभ्यां अधिकं रजो गुणाय, भवाय = भवत्यस्माज्जगदिति भव ब्रह्ममूर्ति तस्मै, तुभ्यं नमो नमः, तत्संहारे = जगत्नाशाय, प्रबलतमसे = सत्वरजोभ्यामनभिभूतम् अधिकतमोगुणाय, हराय = हरतीति हरो रुद्रमूर्ति तस्मै नमो नमः, जनसुखकृते = जनसुखकराय, सत्वोद्रिक्तौ = सत्वस्य

रजस्तमोभ्यामाधिक्ये सति सत्वगुणस्थितवते मृडाय = विष्णुरूपाय जगत्पालकाय नमः, प्रमहसि = प्रकृष्टं, माययानभिभूतं = प्रकृष्टे तेजसि, निस्त्रैगुण्ये = त्रिगुणरहिताय, शिवाय = महेश्वराय नमः।

संस्कृत व्याख्या – रजोगुण उत्पत्ति हेतुः, तमो गुणो नाशहेतुः, सत्वोगुणो रक्षा हेतुः। ईश्वरो यदा उत्पत्तिः करोति तदा रजोगुणस्वरूपो भवति। यदा नाशयति तदा तमोगुण युक्तो भवति, यदा हितं करोति तदा सत्वगुणयुक्तः सम्पद्यते।

विश्वोत्पत्तौ अधिकरजोगुणाय नमो नमः। जगदुत्पत्तौ 'भवत्यस्माद् जगदिति' व्युत्पत्ति अनुसारेण भव शब्देन नमस्कारः कृतः। जगत्नाशकर्त्रे अधिकतमोगुणाय नमो नमः 'हरतीति हरः' इति व्युत्पत्त्या हर शब्देन नमस्कारः कृतः। सत्वोत्पत्तौ जगत्पालनगुणोद्रेके सति जन सुखकराय नमो नमः। 'मृडयति सुखयति मृडो विष्णु' इत्यनेन 'मृड' शब्देन नमस्कारः कृतः।

प्रकृष्टतेजोमये सर्वोच्चस्थाने त्रिगुणरहितताय महेश्वराय सातिशयभक्त्या नमस्कारः। निस्त्रैगुण्ये गुणत्रयमतिक्रांते पदे शिवाय नमः। तदाकर्तुः प्रवृत्तिर्नास्ति। तदा सर्वगुणस्याभावप्रदस्य निस्त्रैगुण्यं भवति। ततः केवलं मंगलरूपत्वाद् तदुचितेन शिव शब्देन नमस्कारः कृतः।

टिप्पणयः –

नमो नमः – भक्त्यतिशयेन वीप्सायां इति पुनरूक्तिः।
प्रमहसि – प्रकृष्टं माययानभिभूतं सर्वोत्तमप्रकाशरूपत्रिगुणशून्य मोक्षनिमित्तं इत्यर्थः। शिवस्य निस्त्रैगुण्यमङ्गलस्वरूपाय 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' इति श्रुतेः।

अत्र परमात्मास्वरूपस्य शिवस्य सृष्टिसंहारपालकादिरूपाणां स्तुतिप्रप्यिते।

श्लोकेऽस्मिन् हरिणीवृत्तम। लक्षणं यथा–

नसमरसलागः षड्वेदैर्हरिणीमता
यमकानुप्रासकाव्यलिंगालंकाराः।

16.4 31 से 36 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या

इदानीं अभिमतार्थसिद्धौ सत्यां आत्मीयमौत्सुक्यं परिहन्नाह–

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्।।31।।

अन्वयः – कृशपरिणति, क्लेशवश्यं च इदं चेतः क्व, गणसीमोल्लंघिनी तव शश्वद् ऋद्धिः च क्व, इति चकितं माम् अमन्दीकृत्य ते चरणयोः वाक्यपुष्पोहारं भक्तिः आधात्।

संस्कृत शब्दार्थाः – कृशपरिणति = अल्पविषयम्, क्लेशवश्यं = रागद्वेषादिक्लेशेन वश्यम्, इदं चेतः = ममेदं मनः, क्व = कुत्र, गुणसीमोल्लंघिनी = गुणमर्यादातिकान्ता, तव शश्वद् भीतं (आश्चर्यचकितं) माम् = स्तोतारम्, अमन्दीकृत्य = मन्दममन्दं कृत्यमितिशंकारहितं विधाय ते चरणयोः = तव पादयोः, वाक्यपुष्पोपहारं = वाक्यानि एव पुष्पाणां कुसुमानामुपहारस्तम्, भक्तिः आधात् = भक्तिभावेन समर्पयत्।

व्याख्या – हे वरद! अल्पविषयगोचरम्, रागद्वेषादिक्लेश संस्पृक्तं क्व मम मनः क्व च गुणमर्यादातिक्रान्ता तव च नित्या विभूतिः? (इत्यत्यन्तासंभावना मम भय हेतुः) किन्तु तव भक्तिः अनेन कारेण भीतं मां स्तोतारम् शंकारहितं विधाय तव पादयोः मद् वाक्यपुष्पोहारं अर्पितवती।

टिप्पणयः –

वाक्यपुष्पोपहारम् – वाक्यानि एव पुष्पाणि तैरुपहारः पूजार्थमञ्जलिः तम् इति।
भीतं अमन्दीकृत्य – स्तुतेनिवर्तमानं माम् बलात्स्तुतौ प्रवर्त्येत्यर्थः।
कृशपरिणतिः – कृशा अल्पा परिणतिः परिपाको यस्य तत्तथा।

क्लेशवश्यं – क्लेशानामविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशानां वश्यमायतम् क्लेशेन अतिप्रयत्नेन वश्यमिति वा तेन त्वदगुणवर्णनेऽत्यन्तायोग्यमित्यर्थः।

गुणसीमोल्लंघिनी – गुणानां संख्यापरिणामयोरियत्ता। तामुल्लंघयितुं शीलं स्वभावो यस्याः सा मालिनीवृत्तम्। लक्षणमिदम् वर्तते न–न–म–य–युतेयं मालिनी भोगिलोकैः

साम्प्रतं स्तुतिकारः आत्मीया अतिशयभक्ति भावाः प्रदर्शयन् स्तौति–

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।32।।

अन्वयः – हे ईश! असितगिरिसमं कज्जलं स्यात्, सिन्धुपात्रं, सुरतरुवरशाखा लेखनी, उर्वी पत्रम्, शारदा गृहीत्वा यदि सर्वकालं लिखति तदपि तव गुणानाम् पारं न याति।

संस्कृत शब्दार्थाः – हे ईश! असितगिरिसमं = कृष्णांजनपर्वततुल्यं, कज्जलं = मसि, यदि स्यात्, सिन्धु = समुद्रमेव, पात्रं = मसीपात्रम् स्यात्, ऊर्वी = पृथिवी, पत्रम् = लेखनार्थम् पत्रं यदि भवेत्, सुरतरुवर शाखा = कल्पतरुश्रेष्ठ शाखा, लेखनी चेद भवेत्, एतत् सर्वम्, गृहीत्वा = संगृह्य, शारदा = वाग्देवी सरस्वती यदि सर्वकालं = सदैव, लिखति तदपि = एवं कृतेऽपि, पारं = तव गुणानां पारं, न याति = न प्राप्नोति।

व्याख्या – हे ईश! तव गुणाः तु निःसीमा। कोऽपि तव गुणानां वर्णनम् कर्तुम् न शक्नोति। कृष्णाञ्जनपर्वततल्यं यदि कज्जलं स्यात् समुद्रमेव मसीपात्रं भवेत् कल्पतरोः श्रेष्ठा शाखा यदि लेखनी भवेत् पृथ्वी यदि लेखनार्थं पत्रम् स्यात् एतत् सर्वम् संग्रह्य यदि स्वयं वाग्देवी निरन्तरं सर्वदेव लिखति तदपि तव गुणानां पारं अन्तं न प्राप्नोति।

टिप्पणयः –

मालिनीवृत्तम्। उपमारूपकोत्प्रेक्षा अलंकाराः।

साम्प्रतं स्तुतिकारः स्वपरिचयं श्लोकरूपेण प्रस्तौति–

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले–
र्प्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार।।33।।

अन्वयः – सकलगणवरिष्ठः, पुष्पदन्ताभिधानो, असुरसुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः प्रथितगुणमहिम्नः निर्गुणस्य ईश्वरस्य अलघुवृतैः एतत स्तोत्रं चकार।

संस्कृत शब्दार्थाः – सकलगणवरिष्ठः = समस्तप्रमथादि गणेणु सर्वश्रेष्ठः, पुष्पदन्ताभिधानः = 'पुष्पदन्त' इति नामकः असुरसुरमुनीन्द्रैः = बाणादयः दैत्यैः, इन्द्रादयः देवैः, वसिष्ठादयः मुनिभिः, अचितस्य, पूजितस्य, इन्दुमौलेः = चन्द्रशेखरस्य, प्रथितगुणमहिम्नः = गुणैःख्यातमहिम्नः, निर्गुणस्य = गुणातीस्य, ईश्वरस्य = महेश्वरस्य, अलघुवृत्तैः = श्रेष्ठछन्दसु, एतत्स्तोत्र = शिवमहिम्नः स्तोत्रं, चकार = कृतवान्।

व्याख्या – प्रमथादिगणेषु सर्वश्रेष्ठः पुष्पदन्तः नामकः गन्धर्वराजः दैवदैत्यमुनिभिः पूजितस्य, भगवान्चन्द्रशेखरस्य, दयादयः गुणैः ख्यातमहिम्नः, गुणातीतस्य, महेश्वरस्य, श्रेष्ठ शिखरिणी छन्दसु एतत् 'शिवमहिम्नः स्तोत्रम्' व्यरचत् निर्मितवान्।

इति मालिनीवृत्तम्।

अधुना स्तोता स्तोत्रपाठस्य फलं कथयति–

अहरहनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।

स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च।।34।।

अन्वयः – शुद्धचित्तः यः पुमान् परमभक्त्या अहःअहः धूर्जटेः अनवद्यं एतत् स्तोत्रं पठति सः शिवलोके रुद्रतुल्यः भवति तथा अत्र प्रचुरतरधनं आयुः कीर्तिमान् च भवति।

संस्कृत शब्दार्थाः – शुद्धचित्तः = रागादिदोषरहितचित्तः, यः पुमान् = जनः परमभक्त्या = अतिशयेन श्रद्धया, अहः अहः = प्रतिदिनं, धूर्जटेः = शिवस्य, अनवद्यं = निर्दोषं, एतत् स्तोत्रम् = स्तवं, पठति = एकाग्रचित्तेन वाचयति, सः = जन, शिवलोके = महादेवलोके, रूद्रतुल्यः = शिवसदृशं, भवति = वर्तते, तथा अत्र = अस्मिन् भूलोके च, सः जनः प्रचुरतरधनम् = अत्यधिकं धनं, दीर्घआयुष्यं, प्रशस्तयशः च आप्नोति।

व्याख्या – रागादिदोषरहितः पावितमनः यः जनः अतिशयेन श्रद्धया सह भगवान्शिवस्य शिवमहिम्नः नाम्नः निष्पापम् स्तोत्रं प्रतिदिनं पठति सः शिवलोके रुद्रतुल्यः भवति अस्मिन् लाके च प्रचुरम् वैभवं दीर्घआयुष्यं प्रशस्ययशः च आप्नोति।

टिप्पणयः – प्रस्तुतायां स्तुतौ स्तोत्रकारेण स्तोत्रस्य पावनता महत्ता च प्रदर्शिता। मालिनीवृत्तम्। अनुप्रासः अलंकारः।

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरो स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।।35।।

अन्वयः – महेशात् अपरः देवः न, महिम्नः अपरः स्तुति न, अघोरात् अपरः मन्त्रः न, गुरोः परं तत्त्वं न अस्ति।

संस्कृत शब्दार्थाः – महेशात् = शिवात्, अपरः = अन्यः, देवः न कोऽपि ईशः नास्ति। महिम्नः = शिवमहिम्नः स्तोत्रात्, अपरः = अन्यः, स्तुतिः = स्तोत्रम् न, अघोर नामकः मन्त्रात् अपरः = अन्यः, मन्त्रः नास्ति, गुरोः = धर्मकर्मोपदेशात्, परः = श्रेष्ठतम्, तत्वं = वस्तु, न = नहि विद्यते।

व्याख्या – शिवः सर्वेषु देवेषु श्रेष्ठः, अन्येषु स्तोत्रेषु शिवमहिम्नः स्तोत्रं श्रेष्ठं अघोरमन्त्रात् श्रेष्ठः न कोऽपि मन्त्रः विद्यते, गुरोः परम् न कोऽपि वस्तु विद्यतेऽस्मिन् लोके।

टिप्पणयः – श्लाकेऽस्मिन् स्तोत्रकारस्य शिवं प्रति भक्तिभावस्य, अतिशय– प्रकाशनमत्र प्राप्यते।

अनुष्टुप् छन्दः लक्षणमिदम्–

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्रलघुपञ्चमम्।
द्विचतुःपादयोः ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।
दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रिया।
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।36।।

अन्वयः –दीक्षा, दानं, तपः, तीर्थं, ज्ञानं, यागादिकाः क्रियाः, महिम्नः स्तवपाठस्य षोडशीम् कलां न अर्हन्ति।

संस्कृत शब्दार्थाः – दीक्षा = पवित्रीकरणसंस्कारविशेषः, दानं, तपः, तीर्थं = तीर्थाटनम्, ज्ञानं = शास्त्रज्ञानं, यागादिकाः क्रियाः = अश्वमेघादयः यागाः, महिम्नः स्तवपाठस्य = महिम्नः स्तोत्रस्य, षोडशीम् = षोडशात्मिकामेकामपि, कलां = अंशमात्रं, न अर्हन्ति = न भवन्ति।

व्याख्या – दीक्षा, दानं, तपः, तीर्थं, ज्ञानं, यागाः इमे सर्वे शिवमहिम्नः स्तोत्रस्य पाठात् श्रेष्ठाः न सन्ति।

टिप्पणयः – अस्मिन् नश्वरे संसारे केवलं शिवमहिम्नः नाम्नः स्तोत्रस्य एकाग्रचित्तेन प्रतिदिनं पाठात् एव दुःखेभ्योः मुक्तिः प्राप्यते इत्यर्थः।

अनुष्टुप् छन्दः।

16.5 37 से 43 तक श्लोकों की संस्कृत व्याख्या

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः।।37।।

अन्वयः – सर्वगन्धर्वराजः, कुसुमदशननामा, शशिधरवरमौलेः देवदेवस्य दासः। स, अस्य, रोषात्, निजमहिम्नः, भ्रष्ट, इदम् महिम्नः दिव्यदिव्यं स्तवनं अकार्षीद्।

संस्कृतशब्दार्थाः – सर्वगन्धर्वराजः = सर्वेषां गन्धर्वानां अधिपतिः, कुसुमदशननामा = पुष्पदन्ताभिधानः, शशिधरवरमौलेः = चन्द्रशेखरस्य, देवदवस्य = देवाधिदेव महेश्वरस्य, दासः, = अनुचरः सेवकः आसीत्। सः = पुष्पदन्तः खलु = निश्चितं, अस्य = देवाधिदेव शिवस्य, रोषात् = क्रोधात् निजमहिम्नः = निजगौरवात्, निजपदाद्, भ्रष्टः = पतितः शापंगतो वा ;तदा तस्यतुष्ट्यै महिम्नः = शिवस्य, दिव्यदिव्यं = अतीवपावनं, मनोज्ञं फलदायकं च, स्तवनं = स्तोत्रं, अकार्षीद् = अकरोत्।

व्याख्या – सर्वेषां गन्धर्वाणाम् अधिपतिः, देवाधिदेवस्य भगवतः महेश्वरस्य चन्द्रशेखरस्य अनुचरः कुसुमदशननामा आसीत्। स खलु एकदा भगवतः शिवस्य क्रोधात् स्वपदाद् निजगौरवात् च पतितः। अतः शिवस्य तुष्टये सः गन्धर्वराजः इदम् अतिपावनम् फलदायिनम् महिम्नः स्तोत्रम् अकरोत्।

टिप्पणयः – श्लोकेऽस्मिन् गन्धर्वराजेन स्वपरिचयं दत्तम् स्तोत्ररचनायाः च प्रयोजनं उक्तम्। एवमेव शापवृत्तान्तमपि सूचितम्।

कुसुमदशननामा – कुसुमानि इव दशनानि तन्नामा

मालिनीवृत्तम् अत्र वर्तते।

सुरनरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेतः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम्।।38।।

अन्वयः – सुरनरमुनिपूज्यं, स्वर्गमोक्षैकहेतुं, पुष्पदन्तप्रणीतं, अमोघं इदं स्तवनम् प्राञ्जलिः नान्यचेतः मनुष्यः यदि पठति, किन्नरैः स्तूयमानः शिवसमीपं व्रजति।

संस्कृतशब्दार्थाः – सुरनरमुनिपूज्यं = देवमानवमुनिभिः वन्दनीयम्, स्वर्गमौक्षेकहेतुं = स्वर्गप्राप्तेः मोक्षप्राप्तेः च साधनभूतम, अमोघं = सफलप्रयोजनं पुष्पदन्तप्रणीतम् = पुष्पदन्तेन विरचितम्, स्तोत्रं = शिवमहिम्नः स्तोत्रं अञ्जलिना = अञ्जलिपुटं च बद्ध्वा, नान्यचेतः = एकाग्र मनसा यदि, मनुष्यः = मानवः पठति तदा किन्नरैः, स्तूयमानः = प्रार्थ्यमानः, शिवसमीपं = शिवसायुल्यं च व्रजति = प्राप्नोति।

व्याख्या – देवदानवमानवमुनिभिः वन्दनीयं, स्वर्गप्राप्तेः मोक्षप्राप्तेः च साधनभूतं, सफलप्रयोजनं पुष्पदन्तेन विरचितम् एतत् शिवमहिम्न नाम्नः स्तवनं अञ्जलिपुटं बद्धवा एकाग्रचित्तेन यः नरः पठति, किन्नरैः प्रशंसनीयः सः शिवसायुज्यं प्राप्नोति।

टिप्पणयः – मालिनी वृत्तम्।

श्लोकेऽस्मिन् स्तोता अस्य स्तोत्रस्य महिमानं कथयति। स्तोत्रस्य पाठेन शिवसायुज्यं प्राप्नोति।

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम्।।39।।

अन्वयः – गन्धर्वभाषितम्, पुण्यं, अनौपम्यं, मनोहारि, शिवम्, ईश्वरवर्णनम् इदम् पुण्यं स्तोत्रं ;अस्तिद्ध।

व्याख्या – पुष्पदन्ताभिधानं गन्धर्वराजेन कथितम्, पवित्रम्, इदं स्तोत्रम् समाप्तिपर्यन्तं अनुपमं, मनोज्ञं कल्याणप्रदं, शिवस्य गुणकथनयुक्तं चास्ति।

टिप्पणयः – श्लोकेऽस्मिन्नपि स्तोत्रकारः शिवस्रोत्रस्य महिमातिशयस्य वर्णनं करोति। अनुष्टुप् छन्दः।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः।।40।।

अन्वयः – इति एषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः अर्पिता तेन देवेशः सदाशिवः मे प्रीयताम्।

व्याख्या – इत्थम् एषा मम वाक्स्वरूपा पूजा श्रीशिवशंकरचरणयोः समर्पिता। अनेन देवाधिदेवः सदाशिवः माम् प्रति कल्याणादिकम् कुर्यात्।

टिप्पणयः – श्लोकेऽस्मिन् स्तोता अत्यधिकभक्तिभावनया शिवं कथयति हे देवाधिदेव माम् उपरि कृपां कुरु, सानुग्रहं भव मे वाक्पूजां च स्वीकुरु।
अनुष्टुप् छन्दः।

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वरः।
यादृशोऽसि महादेव! तादृशाय नमो नमः।।41।।

अन्वयः – हे महश्वर! तव तत्त्वं न जानामि कीदृशः असि महादेव यादृशोऽसि तादृशाय नमोनमः।

व्याख्या – हे परमेश्वर अहम् तव यथार्थस्वरूपं न जानामि, भवान् कीदृशः असि? हे महादेव! त्वम् यत्स्वरूपः यत्प्रकारः चासि तुभ्यं सर्वदा नमः।

टिप्पणयः – श्लोकऽस्मिन् स्तोता आत्मनः अज्ञानं प्रदर्श्य शिवस्य बारंबारं स्तुतिं करोति।
अनुष्टुप् छन्दः।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेत् नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते।।42।।

अन्वयः – यः नरः एककालं द्विकालं त्रिकालं वा पठेत् सर्वपापविनिर्मुक्तः (सः) शिवलोके महीयते।

व्याख्या – यः नरः एतत् स्तोत्रं एककालं प्रातः सन्ध्याकालयोरेककालमेव द्विकालं वा प्रातः सन्ध्याकालोभयं च, त्रिकालं वा प्रातः मध्याह्न सन्ध्याकालत्रयं वा पाठं कुर्यात् सर्वकल्मषेभ्यः विरहितः सन् सः शिवलोके पूजितो भवति

टिप्पणयः – स्तोत्रपाठस्य फलं स्तोत्रकारेण अस्मिन् श्लोके निर्दिष्टम्। अनुष्टुप् छन्दः।

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
संप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः।।43।।

अन्वयः – श्रीपुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन, किल्विषहरेण, हरप्रियेण, स्तोत्रेण कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन भूतपतिःमहेशः संप्रीणितः भवति।

व्याख्या – श्रीपुष्पदन्तनाम्नः गन्धर्वराजस्य मखकमलात् निःसरितेन कथितेन, समस्तपापविध्वंसकेन, शिवप्रीतिजनकेन अनेन स्तोत्रेण स्मरणेन, पाठनेन, चिन्तनेन वा सर्वेषाम् जीवानाम् अधिपतिः सः महेश्वरः सर्वदा सुप्रसन्नः भवति।

टिप्पणयः – अस्मिन् अन्तिमे श्लोकेऽपि स्तोता स्तोत्रपाठस्य, माहात्म्यम्, फलप्राप्तिं च पुनरपि सूचयति।
वसन्ततिलका छन्दः। लक्षणमिदं वर्तते–
उक्ता वसन्त तिलका त–भ–जा–जगौ गः।

16.6 पारिभाषिक शब्दावली

ऋषि – ऋषयो मन्त्रहाररू जिन्होंने मन्त्र का दर्शन किया है उन्हें ऋषि कहते है ।

अष्टांगयोग – यम, नियम, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि ये आठ योग है।

प्रत्यक् – चक्षुरादीन्द्रियद्वारा वहिर्विषयप्रवृत्तिप्रतिकूलतया अन्तर्मुखतयैवाञचतीति प्रत्यक्। अर्थात चक्षु इन्दिर्यों के द्वारा बाह्य विषय की प्रतिकूलता के द्वारा अन्तुर्भुखी होने से प्रत्यक कहलाती है।

त्रयी – ऋक्, यजुष, सामन, सामन को सम्मिलित रूप से त्रयी कहते है

भवः – भवत्यस्माद् विश्वमिति भवः,अर्थात शिव से यह विश्व उत्पन्न हुआ है अतरू शिव को भाव कहते है।

हराय – हरतीति हरो रुद्रमूर्ति तस्मै नमो नमः, जो हरण करता है उस शिव को हरण कहते है

मन्त्र – मवनात जायते इति मन्त्र जो मनन – चिन्तन से मुक्त करे वो मन्त्र कहलाता है

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

अधोलिखितानां श्लोकानां ससन्दर्भं संस्कृतभाषया व्याख्या विधेया–

1. त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि.....
2. त्रयीं तिस्रोवृत्तीस्त्रिभुवनम्.....
3. बहुलरजसो विश्वोत्पत्तौ.....
4. कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं .....
5. असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं.....

बोध प्रश्नानाम् उत्तराणि

दृष्टव्याः पृष्ठ संख्या

उ.1 पृ. सं. 6
उ.2 पृ. सं. 7
उ.3 पृ. सं. 11
उ.4 पृ. सं. 12
उ.5 पृ. सं. 13

16.8 सारांश

इस प्रकार हमने जाना कि स्तोत्ररचना का अविरल प्रवाह अनेकविध तरंगों, लहरियों एवं धाराओं में बढता हुआ निखिल विश्व को आप्यायित करती हुई पीड़ा कसक से उपजी आत किन्तु प्रार्थनारूपी वाणी ही स्तोत्र की जन्मस्थली है।भगवान् शिव की महिमा, अगम्य, अनन्त तथ अनिर्वचनीय है। ब्रह्मा, विष्णु, ऋषि, मुनि भी शिव के बल एवं वीर्य की महिमा को नहीं जानते है। ऐसे अपार महिमामय, शिव की महिमा का वर्णन उनके अनन्यसेवक, गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य ने स्वमहिमा से भ्रष्ट होकर पुनः उस महिमा की प्राप्ति के लिए किया था। इस प्रकार इस इकाई में हमने शिव के सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया ।

16.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिवमहिम्नः स्तोत्रम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि० सं०, २०१३.
2. शिवमहिम्नः स्तोत्रम्,मधुसूदन सरस्वती कृत संस्कृतव्याख्या सहित,सम्पा. – पणशीकर वासुदेव शर्मा, निर्णयसागर, 1937.
3. शिवमहिम्नः स्तोत्रम्, सं. रूपनारायण त्रिपाठी, रचना प्रकाशन, जयपुर, 1999.
4. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1986.
5. कल्याण शिवोपासनांक – प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, कोड 586, क्रमांक 67, वर्ष 1993.

इकाई 17

कुमारसम्भव (पञ्चम सर्ग)
(श्लोक संख्या 1 से 60 की व्याख्या)

इकाई की रुपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 कुमारसभ्भव, पंचम सर्ग (श्लोक संख्या १ से ६० तक)
17.3 पारिभाषिक शब्दावली
17.4 अभ्यासार्थ प्रश्न
17.5 सारांश
17.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.0 उद्देश्य

इस प्रस्तुत इकाई में कालिदास रचित कुमारसम्भवम् महाकाव्य के पंचम सर्ग के श्लोक संख्या १ से लेकर ६० तक का अध्ययन किया जा रहा है। इन श्लोकों के माध्यम से पार्वती की शिव के प्राप्ति के लिये की गई तपस्या का वर्णन है। और पार्वती के इस तपस्या से प्रसन्न होकर शिव स्वयं ब्रह्मचारी का रुप धारण करके उसकी अन्तिम परीक्षा लेने के लिये तपोवन आये। इसी प्रसंग में उस ब्रह्मचारी तथा पार्वती की सखी के मध्य वार्तालाप हुई। और यही इस इकाई का अभिधेय है।

17.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास ने १७ सर्गों में कुमारसम्भवम् नामक महाकाव्य की रचना की है, जिसमें हिमालय की पुत्री पार्वती की शिव की पतिरुप मे प्राप्ति के लिये घोर तपस्या, शिव-पार्वती का पाणिग्रहण, पुत्र कार्तिकेय का जन्म तथा उसके द्वारा तारकसुर के वध की कथा है। पञ्चम सर्ग के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की पराकाष्ठा का वर्णन है। जिसकी भावाभिव्यक्ति के लिये कालिदास ने अत्यन्त सरल, सुबोध, पारिमार्जित एवं प्रसाद गुण से सम्पन्न भाषा का प्रयोग किया है। अनावश्यक अलंकारो के प्रयोग से बचते हुए स्थान स्थान पर उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, यमक आदि अलंकारों का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग किया है। ब्रह्मचारी वेषधारी शिव और पार्वती के मध्य संवाद स्थापित करके इन्होने काव्य-सौन्दर्य की शोभा को और बढाया है। संवाद प्रणाली के माध्यम से व्यक्ति के चरित्र के विभिन्न भाव और अधिक स्फुट रुप में प्रकट होते हैं। और इसका प्रत्यक्ष उदाहरण शिव-पार्वती संवाद है, जिसके माध्यम से पार्वती के विभिन्न प्रकार के भावों का प्रकाशन हुआ, और उनका चरित्र-चित्रण में प्रेम, त्याग, तपस्या, दृढनिश्चय, समर्पण आदि मानवीय भावना का उत्कृष्टतमरुप में दर्शन होता है। जिससे मनुष्यरुप में जन्मी पार्वती का स्थान देवतुल्य हो गया हौ। इसप्रकार कालिदास की कुमारसम्भवम् निश्चित ही भारतीय काव्य-जगत की एक उत्कृष्ट रचना है।

17.2 कुमारसम्भवम् (पंचम सर्ग) श्लोक संख्या १ से ६० तक की व्याख्या

तथा समक्षं दहता मनोभवं, पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती, प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥१॥

प्रसंग- कामदेव का शिव के द्वारा भस्म हो जाने पर पार्वती ने स्वंय के सौन्दर्य की निन्दा किया।

अनुवाद- पूर्वोक्तप्रकार से अपने समक्ष कामदेव को जलते हुए देव शंकर के द्वारा भग्नमनोरथ वाली होकर अपने हृदय से अपने रूप की निन्दा करने लगी, क्युन्कि सौन्दर्य का फल तो अपने प्रियजनों को आकृष्ट करना होता है।

भावार्थ- देवी पार्वती की सहायता करने के प्रयास में जब कामदेव को शिव के द्वारा पार्वती के नेत्रों के ही सामने भस्म कर दिया गया तो पार्वती निराशाभाव से आप्यायिय होकर विलाप करने लगीं। और उन्होने स्वयं के सौन्दर्य को ही कामदेव के नष्ट होने का कारण भी माना। एवं अत्यन्त मार्मिक हृदय स्वयं के सौन्दर्य को ही व्यर्थ मानने लगी, क्युन्कि किसी के भी सौन्दर्य की सार्थकता तभी तक है, जब तक कि वह अपने प्रिय को आकृष्ट कर सके। लेकिन यहां तो उनका सौन्दर्य कामदेव के विनाश का कारण ही बन गया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- समक्षम्=अक्ष्णोः समीपम् समक्षम्, दहता=दह्+शतृ प्रत्यय, तृतीय, एकवचन, पार्वती= पर्वत+अण्+डीप्, भग्नमनोरथा= भग्नः मनोरथो यस्याः सा भग्नमनोरथा (बहुब्रीही समास), सौभाग्यफला= सौभाग्यं फलं यस्याः सा(बहुब्रीही समास)।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- अर्थातरन्यास अलंकार।

छन्द- वंशस्थ।

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां, समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं, तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥२॥

प्रसंग-पार्वती निराश होने की स्थिति में भी शिवप्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रही और तपस्या करने का निश्चय किया।

अनुवाद- (ऐसी स्थिति मे निराश होकर भी) पार्वती समाधि में अपने मन को एकाग्र करके अपने सौन्दर्य को सफल बनाने की चेष्टा करने लगी, अन्यथा उसप्रकार का प्रेम और वैसा पति, ये दोनो कैसे प्राप्त किए जा सकते हैं?

भावार्थ- कामदेव के भस्म होने से घोर निराशा में होने के बावजूद पार्वती ने शिवप्राप्तिरुप अपने उद्देश्य का परित्याग नही किया, तथा और अधिक गति से प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। अतः अपने प्रयत्न को और उच्च श्रेणी में ले जाते हुए उन्होने एकाग्रचित्त होकर अत्यन्त कठोर तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया। क्युन्कि इतने महान शिव के प्रेम की प्राप्ति एवं पतिरुप मे उनकी प्राप्ति करना इतना सरल न था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- पतिश्च= पतिः+च, अवन्ध्यरूपताम्= न वन्ध्यं रूप यस्याः सा अवन्ध्यरूपा (बहुब्रीही समास), तपोभिरात्मनः= तपोभिः+आत्मनः, द्वयं= द्वौ अवयवो यस्य तद् द्वयम्, इयेष= इष्, लिट् लकार, प्रथम पुरूष, एकवचन, आस्थाय= आ+स्था + ल्यप्

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार= अर्थान्तरन्यास अलंकार।

छन्द= वंशस्थ।

निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां, सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्

उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा, निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ॥३॥

प्रसंग- माता मेना ने तपस्या करने से पार्वती को रोकने का प्रयत्न करते हुए कुछ कहना प्रारम्भ किया।

अनुवाद- मेना ने गिरीश (शिव) के प्रति आसक्त मन वाली (अतः, शिव की प्राप्ति हेतु) पुत्री पार्वती को तप के लिये दृढ संकल्प रूप उद्योग वाली सुनकर उसे हृदय से लगाकर महान् अर्थात् बहुत बडे मुनि व्रत से रोकते हुए कहा।

भावार्थ- किंतु पार्वती के ये लिये शिवप्राप्तिरूप तपस्या का मार्ग इतना सरल न था। तपस्या करने के प्रारम्भ में ही उनकी माता मेना पार्वती के इतने कष्टदायक तपस्या के विषय मे सुनकर ही अत्यन्त दुखी हो गई। ममता से वशीभूत होकर अपनी पुत्री को इस कठोर तपस्या को करने से रोकने लगीं। अतः अपनी पुत्री को गले लगाते हुए द्रवित भाव से इस विषय में कहना प्रारम्भ किया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- कृतोद्यमाम्= कृतः उद्यमः यया सा ताम् (बहुब्रीही समास), गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्= गिरीशे प्रतिसक्तं मानसं यस्याः सा ताम् (बहुब्रीहि समास), कृतोद्यमाम्= कृतः उद्यमः यया सा (बहुब्रीही समास), परिरभ्य= परि+रभ्+ ल्यप्, मुनिव्रतात्= अत्र 'वारणार्थानामीप्सितः' इति अपादाने पञ्चमी।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिकर।

छन्द- वंशस्थ।

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः, क्व वत्से! क्व च तावकं वपुः।

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं, शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥४॥

प्रसंग- मेना ने अपनी दुहिता से कहा कि तुम्हे तपस्या के लिये कही बाहर जाने की आवश्यकता नही है। गृह मे हीं सारे साधन उपलब्ध हैं।

अनुवाद- हे पुत्री! अभीष्ट देवता तो घरों में होते (ही) हैं (तो फिर ये) तप कहां? (और) तुम्हारा शरीर कहां? कोमल शिरीष का पुष्प भ्रमर का पादों को सहन कर ले, किन्तु पक्षी के (चरणपात) को नही (सह सकता है)।

भावार्थ- मेना ने अपनी पुत्री को सम्बोधित करते हुए कहा कि तुमको इस स्थान पर आकर इतना कठोर व्रत करने की क्या आवश्यकता है? तुम्हारा शरीर अत्यन्त कोमल है। वह इतने कठिन तपस्या को करने में सक्षम नही है। तुम्हारा ये शरीर शिरीष के पुष्प की तरह सुकुमार है। अतः जिसप्रकार शिरीष का पुष्प केवल छोटे और हल्के भवरों का ही भार सहन कर सकता है, बृहद् आकार वाले

पक्षी के चरणों के भार को सहन नही कर सकता है। उसीप्रकार तुम इस तपरूपी भार को सहन करने में समर्थ नही हो। अतः इस निर्जन खुले स्थान में रहने की क्या आवश्यक्ता है? सारे इष्ट विष्णु आदि देवताओं का देवस्थान तो तुम्हारे अपने गृह में ही उपलब्ध है। अतः तुम वहां पर भी रहकर पूजा-अर्चना कर सकती हो। सारी पूजा-सामग्री भी वहां पर सरलता से उपलब्ध हो जायेगी। अतः हे पुत्री! अपने गृह की ओर प्रस्थान करो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- देवतास्तपः= देवताः+तपः, मनीषिता= मनसः ईषिता इष्टा मनीषिता (षष्ठी तत्पुरुष समास), शिरीषपुष्पम्= शिरीषस्य पुष्पम्, सहेत= सह्, आत्मनेपदी, विधिलिङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- विषमालंकार तथा दृष्टान्तालंकार।

छन्द- वंशस्थ।

इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां, शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।

क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः, पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥५॥

प्रसंग- किंतु मेना अपनी पुत्री के ढृढ निश्चय को बदलने में सफल न हो सकी।

अनुवाद- इसप्रकार उपदेश देती हुई मेना ढृढ संकल्प वाली अर्थात् स्थिर मनोरथ वाली पुत्री को मुनिव्रतरूप उद्योग को रोकने में समर्थ न हो सकीं। ईप्सितार्थ (के प्राप्ति हेतु) ढृढनिश्चय वाले मन को एवं नीचे की ओर बहते हुए जल को कौन पलट सकता है?

भावार्थ- इसप्रकार मेना ने पार्वती को ऐसी तपस्या करने से बहुत रोकने का प्रयत्न किया। किन्तु वह पार्वती के इस ढृढ प्रतिज्ञा को रोकने में समर्थ न हो सकीं। जैसे नीचे की ओर जाती हुई नदी या जल की धारा के प्रवाह की दिशा को कौन बदल सकता है। वैसे ही पार्वती के इस निश्चय को भी परिवर्तित करना माता मेना के लिये असम्भव ही रह गया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- ध्रुवेच्छाम्= ध्रुवा इच्छा यस्याः सा ताम् (बहुब्रीही समास), ईप्सितार्थ्= ईप्सितः अर्थः (कर्मधारय समास), ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयम्= ईप्सितार्थे स्थिरः निश्चयः यस्य सः तम् (बहुब्रीही समास), निम्नाभिमुखम्= अभिमुखम्= अभिगतं मुखं यस्य तत् अभिमुखम् (बहुब्रीही समास), अनुशासती= अनु+शास्+ शतृ+ डीप्, शशाक= शक, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- दीपक, अर्थान्तरन्यास।

छन्द= वंशस्थ।

सूक्ति- क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः, पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् अर्थात् ढृढनिश्चय वाले मन को एवं नीचे की ओर बहते हुए जल को कौन पलट सकता है? अर्थात् ढृढ निश्चयी मनुष्य का निर्णय को बदलना असम्भव होता है।

कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा, मनोरथज्ञ पितरं मनस्विनी।

अयाचतारण्यनिवासमात्मनः, फलोदयान्ताय तपः समाधये ॥६॥

प्रसंग- पिता की आज्ञा प्राप्त करने के लिये पार्वती ने सखी को उनके पास भेजा।

अनुवाद- किसी समय मनस्विनी उस (पार्वती) ने अपनी इच्छा को जानने वाले पिता (हिमालय) से, अपने हृदय के समीप सखी अर्थात् प्रिय सखी के द्वारा (शिवप्राप्तिरुप) फल की प्राप्ति पर्यन्त तपरूप समाधि के लिये स्वंय के वन में निवास करने की याचना की।

भावार्थ- अपने निश्चय पर अटल रहते हुए पार्वती ने अपने पिता हिमालय से तपस्या करने की आज्ञा प्राप्त करनी चाही। किंतु इसके लिये उसने लज्जा एवं मर्यादावश स्वंय अपने पिता से साक्षत् वार्ता करना उचित नही समझा। अतः उसने एक अत्यन्त प्रिय सखी के माध्यम से अपने पिता तक अपनी याचना पहुचायी कि वह उसे वन में निवास करने की आज्ञा प्रदान करें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- अयाचतारण्यनिवासमात्मनः= अयाचत+अरण्यनिवासम्+आत्मनः (सन्धि), आसन्नसखीमुखेन=आसन्ना चासौ सखी आसन्नसखी (कर्मधारयसमास), तस्या मुखं आसन्नसखीमुखं तेन (षष्टी तत्पुरुष समास), मनोरथज्ञम्= मनोरथं जानातीति मनोरथज्यः तम्(उपपद तत्पुरुष समास), मनस्विनी=मनस्+विनि+ङीप्।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिकर।

छन्द- वंशस्थ।

अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा, कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा।

प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्ययाु, जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत् ॥७॥

प्रसंग- पिता हिमालय द्वारा पार्वती को आज्ञा प्राप्त हो गई। और पार्वती 'गौरी पर्वत' पर चली गयी।

अनुवाद- इसके पश्चात् (पार्वती) योग्य आग्रह से सन्तुष्ट हुए अत्यन्त पूज्य पिता के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके, तपस्या के अनन्तर प्रजाजनो में गौरी इस नाम से प्रसिद्ध हुए, मयूरों से युक्त शिखर पर गई।

भावार्थ- अतः पिता हिमालय को जब अपनी दुहिता की इच्छा का पता चला कि श्रेष्ठतम शिव को अपने वर के रूप में प्राप्त करना चाहती है और इसके लिये वह तपस्या करना चाहती हैं। तो पूर्णतया अपनी पुत्री के निर्णय से सन्तुष्ट होकर प्रसन्न चित्त से उन्होने पार्वती को तपस्या करने के लिये आज्ञा दे दी। आज्ञाप्राप्ति के पश्चात पार्वती ने हिमालय के जिस शिखर पर तपस्या करना प्रारम्भ किया, वही शिखर बाद में पार्वती के ही दुसरे नाम 'गौरी" से संसार में प्रसिद्ध हुआ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- अथानुरूप= अथ+अनुरूप, अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा= रूपस्य योग्यम् अनुरूपम् (अव्यवीभावसमास), अनुरूपं चासौ अभिनिवेशः (कर्मधारयसमास), तेन तुष्यतीति अनुरूपाभिनिवेशतोषि तेन (उपपद तत्पुरुषसमास), कृताभ्यनुज्ञा= कृता अभ्यनुज्ञा यस्यै सा (बहुब्रीही समास), तदाख्यया= तस्या आख्या तया (षष्टी तत्पुरुष समास), शिखण्डिमत्= प्रशस्ताः शिखण्डिनः सन्ति यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), प्रथितम्= प्रथ्+णिच्+क्त, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, जगाम्= गम्, लिट् लकार, प्रथम पुरूष एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिकर।

छन्द-वंशस्थ।

विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया, विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्

बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं, पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति ॥८॥

प्रसंग-

अनुवाद-सुदृढ निश्चय वाली उस (पार्वती) ने (अपने) चंचल (हिलते हुए) हारसूत्रों के द्वारा चन्दन को पूर्णतः पोंछ देने वाले मोतियों के हार को त्याग दिया अथवा उतार दिया (तथा) नवोदित सूर्य के रक्तपीत वर्ण के सदृश पिङ्गलवर्ण वाली स्तनों की ऊचाई से छिन्न अवयव वाली वृक्ष की छाल को धारण कर लिया।

भावार्थ- पार्वती के द्वारा गले के हार को त्यागकर वल्कल के वस्त्र को धारण कर लिया, जिसकी कान्ति नवोदित सूर्य के समान लाल-पीले वाले वर्ण वाली थी। और उसी वल्कल के वस्त्र से वह अपने शरीर को ढकती थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- अहार्य= न हार्यः इति अहार्यः (नञ् समास), अहार्यनिश्चया= अहार्यः निश्चयः यस्याः सा (बहुब्रीही समास), विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्= विलोलाश्च प्रविलुप्तं चन्दनं तम् (बहुब्रीही समास), बालारुणबभ्रु= बालश्चासौ अरुणः बालारुणः (कर्मधारय समास), पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति= पयसां धरौ पयोधरौ (षष्ठ तत्पुरुष समास), विमुच्य= वि+मुच्+ल्यप्, बबन्ध=बन्ध, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिवृत्ति अलंकार।

छन्द- वंशस्थ।

यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।

न षट्पदश्रेणिभिरेव पंकजं, सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ॥९॥

प्रसंग- तपस्विनी के रुप में भी पार्वती का सौन्दर्य देदीप्यमान था।

अनुवाद-उसका (पार्वती का) मुख जिसप्रकार अलंकृत एवम् विभूषित केशों से मधुर लगता था, (उसीप्रकार) जटाओं द्वारा भी मधुर लग रहा था। कमल न केवल भ्रमरपंक्तियों से प्रकाशित होता है, अपितु सिवार से युक्त होकर भी प्रकाशित होता है।

भावार्थ- पार्वती ने तपस्वियों के समान ही अत्यन्त सादगीपूर्ण जीवन जीना प्रारम्भ कर दिया। अतः सारी सुख-सुविधाओं का भी त्याग कर दिया। किंतु इतने त्यागमय जीवन जीने के पश्चात भी उसका सौन्दर्य किञ्चित् मात्र भी कम न हुआ। अतः जिसप्रकार महल मे रहते हुए उसके केश सुव्यवस्थित, पुष्पादि आभूषणों से सुसज्जित रहते थे, और सुन्दर लगते थे, उसी प्रकार की सुन्दरता एक तपस्विनी के रुप में भी बरकरार रही। पार्वती के केश वैसे ही अभी भी सुन्दर लगते थे, जैसे कि कमल का फूल कहीं भी सुन्दर लगता है, चाहे वह भ्रमरपंक्तिओ के मध्य में हो चाहे सिवार के बीच में रहे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- तदाननम्= तस्या आननं तदाननम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), शिरोरुहैः= रोहन्तीति रुहाः शिरसि रुहाः इति शिरोरुहाः तैः शिरोरुहैः (सप्तमी तत्पुरुष समास), षट्पदश्रेणिभिः= येषां ते षटपदाः (बहुब्रीहि समास), तेषां श्रेणिभिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), सशैवलासङ्गम्= शैवलानां

आसङ्गः शैवलासङ्गः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेन स वर्तते (बहुब्रीहि समास), प्रसिद्ध=प्र+षिण्+क्त, तृतीया बहुवचन, शिरोरुहैः= रोहन्तीति रुहाः रूह 'इगुपधेति' कः प्रत्ययः शिरसि रुहास्तैः मिरोरुहैः।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- प्रतिवस्तूपमा अलंकार।

छन्द- वंशस्थ।

प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां, व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणा बभार याम्।

अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया, सरागमस्या रसनागुणास्पदम्॥१०॥

प्रसंग- किंतु महल मे निवास करने वाली पार्वती का तपोवन में कटिप्रदेश घायल हो चुका था।

अनुवाद- उस पार्वती ने रोमाञ्चित करने वाली, तीन लडियों वाली जिस मौञ्जी अर्थात् मेखला को तपोनियमके लिये धारण किया, पहली बार बांधी गई उस मेखला ने पार्वती के मेखला बांधने के स्थान 'कटिप्रदेश' को रक्तवर्ण कर दिया।

भावार्थ- कोमल अंगो वाली पार्वती ने तपस्या करने के उद्देश्य से तपस्वियों के वस्त्रादि धारण करना प्रारम्भ कर दिया। कितुं जहां महल मे रहने पर पार्वती के वस्त्रआभूषण भी उनके कोमल शरीर के अनुसार ही होते थे,उसके विपरीत, तपस्विनि वाले उनके वस्त्रादि इतने कोमल नही थे, अतः जैसे ही उन्होने तीन लडियों वाली मेखला को धारण किया, जो कि कठोर थी, और इस कठोरता के कारण पार्वती का कटिप्रदेश रक्त वर्ण का हो गया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- प्रतिक्षणम्= क्षणे क्षणे प्रतिक्षणम् (अव्ययीभाव समास), कृतरोमविक्रियाम्=रोम्णां विक्रिया इति रोमविक्रिया (षष्टी तत्पुरुष समास), कृता रोमविक्रिया यया सा ताम् (बहुब्रीही समास), रसनागुणास्पादम्= रसनायाः गुणः रसनागुणः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य आस्पदम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), मौञ्जीम्= मुञ्ज+अण्+ङीप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, बभार= भृ, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिवृत्ति।

छन्द- वंशस्थ।

विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः, स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात्।

कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः, कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः॥११॥

प्रसंग- शरीर के कई अंगों को घायल करने के बावजूद धीरे-धीरे पार्वती को रुद्राक्ष इत्यादि मालाओं से प्रेम हो गया।

अनुवाद- उस (पार्वती) के द्वारा लाक्षारस की लालिमा का परित्याग किये हुए अधरों से तथा स्तनों के अंगराग से लोहित वर्ण वाले कन्दुक से हटाये गये हस्त (अब) कुशों को उखाडने से व्रणित अंगुलियों वाला और रूद्राक्ष की माला से प्रेम करने वाला कर दिया गया।

भावार्थ- तपस्विनी बनकर वन में जीवन व्यतीत करने में पार्वती इतनी रत हो चुकी थी कि पहले जहां पिता के घर रहते हुए वह अपने हाथों का उपयोग अपने श्रृंगार के लिये ही करती थीं, किंतु यदि श्रृंगार करने में उनके हाथों को शरीर के किसी अंग को कष्ट होता था, तो वह अपने श्रृंगार का भी

त्याग कर देती थीं अतः वह अपने अधरोष्ठ को सुन्दर बनाने के लिये लाक्षारस की लाल रंग से रंगना भी बन्द कर देती थीं। किंतु अब वह अपने हाथों का उपयोग मात्र कुशों के अग्रभाग को तोडकर लाने में तथा रुद्राक्ष की माला बनाने में करती थी। जिसके कारण उसके हाथों की ऊंगलियां निरन्तर चोटिल ही रहती थीं। किंतु तपस्या में तल्लीन पार्वती को कोई भी बाधा उनके कार्य मे विघ्न नही डाल पाते थे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः= विसृष्टरागात्+ अधरात्+निवर्तितः, स्तनाङरागारुणिताच्च= स्तनाङगरागारुणितात्+च, कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी= कृतः+अक्षसूत्रप्रणयी, विसृष्टरागात्= विसृष्टः रागः यस्मात् सः तस्मात् (बहुब्रीही समास), स्तनाङरागारुणितात्= स्तनयोः अङगरागः स्तनाङगरागः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तेन अरुणितः तस्मात् (तृतीया तत्पुरुष समास), निर्वर्तितः= नि+वृत्+ णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- पर्याय।

छन्द- वंशस्थ।

महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः, स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते।

अशेत सा बाहुलतोपधायिनी, निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ॥१२॥

प्रसंग- पार्वती ने महल के सारे सुख-सुविधाओं का त्याग करके वन मे प्राप्त होने वाले साधनों से ही जीवन व्यतीत करने लगी।

अनुवाद- जो (पार्वती) अत्यन्त बहुमूल्य शय्या अथवा पलंग पर करवट लेते समय अपने केशों में लगे हुए (सुसज्जित) पुष्पों के गिरने से भी कष्ट प्राप्त करती थी, वही पार्वती अब अपनी बाहु को तकिया बनाकर मात्र (बिस्तर से रहित) भूमि पर ही बैठी हुई सोती थी।

भावार्थ- महल में निवास करते हुए पार्वती जब अपनी शय्या पर सोती थी, और यदि संयोगवश एक पुष्प भी उसके नीचे आ जाता था तो उतने मात्र से भी उसे कष्ट का अनुभव होता था, किंतु वही पार्वती अब बिना बिस्तर के ही कठोर भूमि पर अपनी बाहु को तकिया बनाकर बैठे-बैठे सो भी जाती थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- स्वकेशपुष्पैरपि=स्वकेशपुष्पैः+अपि (सन्धि), महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः= महान् अर्हः यस्याः सा महार्हा (बहुब्रीही समास), महार्हा चासौ शय्या महार्हशय्या (कर्मधारय समास), तस्यां परिवर्तनम् महार्हशय्यापरिवर्तनम् (सप्तमी तत्पुरुष), तेन च्युतानि महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतानि (तृतीया तत्पुरुष समास), स्वकेशपुष्पैः= स्वे च ते केशाः (कर्मधारय समास) तेषां पुष्पाणि तैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), दूयते= दूङ, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, निषेदुषी= नि+सद्+क्वसु+ ङीप्।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- विषम, रुपक।

छन्द- वंशस्थ।

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया, द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम्।

लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं, विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च ॥१३॥

प्रसंग- तपस्विनी का जीवन व्यतीत करते हुए पार्वती ने विलासयुक्त चेष्टाओं का त्याग कर दिया।

अनुवाद- (तपस्या के) नियमों का पालन करने वाली उसके द्वारा (पार्वती के द्वारा) लताओ और हरिणियों-इन दोनो के पास पुनः वापिस लेने के किये (क्रमशः)- अपनी सविलास चेष्टाओं को तथा अपनी चंचल दृष्टि को धरोहर के रूप में रख दिया गया।

भावार्थ- ऐसा प्रतीत होता था वह अपनी तपस्या को पूर्णतया सार्थक बनाना चाहती थी, अतः एक तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने के लिये उसने अपने विलासयुक्त चेष्टाओं तथा अपने चंचल दृष्टि वाली सुन्दर नेत्रों को कुछ समय के लिये लताओं तथा हरिणियों को दे दिया था, तभी तो ऐसी विलासपूर्ण चेष्टाएं केवल कोमल लताओं एवं मृगों मे देखने को मिलती थीं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- पुनर्ग्रहीतुम्= पुनः+ ग्रहीतुम्, द्व्येऽपि= द्व्ये+अपि, नियमस्थया= नियमे तिष्ठतीति नियमस्था तया (उपपद तत्पुरुष समास), विलोलदृष्टम्= विलोलं च तद् दृष्टम् (कर्मधारय समास), हरिणाङगनासु= हरिणानाम् अङ्गनाः हरिणाङ्गनाः तासु (षष्ठी तत्पुरुष समास), नियमस्थया- नियम+स्था +क, स्त्रीलिङ, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- उत्प्रेक्षा।

छन्द- वंशस्थ।

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्त्रवणैर्व्यवर्धयत्।

गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां, न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥१४॥

प्रसंग- तपोवन में पार्वती ने अपने आस-पास के पौधो का भी देखभाल करना प्रारम्भ कर दिया।

अनुवाद- आलस्य से रहित उसने (पार्वती ने) घडेरूपी स्तनों की धाराओं से स्वयं ही वृक्षों को बढाया। कार्तिकेय भी (स्वयं से) पूर्व जन्म लेने वाले जिनके प्रति अर्थात् पार्वती के पुत्र-वात्सल्य को दूर नही कर सकेगा।

भावार्थ- कुमारी पार्वती माता की तरह प्रेमभाव से वहां के लताओं का अपने घटरुपी स्तनों से प्रसृत जल रूपी दुध से सिंचन किया करती थीं। अतः एकप्रकार से यह पार्वती के भविष्य में होने वाले पुत्र कार्तिकेय के पूर्वज ही हो गये थे, कार्तिकेय के जन्म के पहले ही माता पार्वती ने इनका बीजरोपण तथा सिंचन करके इनका सन्तानवत् लालन-पालन करना प्रारम्भ कर दिया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत्= घटस्तनप्रवस्रवणैः+व्यवर्धयत् (सन्धि), गुहोऽपि= गुहः+अपि (सन्धि), अतन्द्रिता= न तन्द्रिता (नञ् समास), घटस्तनप्रस्रवणैः= घटौ स्तनो इव इति घटस्तनौ (कर्मधारय समास), तयोः प्रस्रवणैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पुत्रवात्सल्यम्= पुत्रस्य वात्सल्यम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अतन्द्रिता= नञ्+तन्द्रा+इतच्+टाप्, स्त्री, प्रथमा विभक्ति,एकवचन, अपाकरिष्यति= अप+आ+ कृ, लृट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- रूपक

छन्द-वंशस्थ

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः ।

यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥१५॥

प्रसंग- अपने आस-पास रहने वाले मृगों का भी वह भली-भाति ख्याल रखती थी, और उनके साथ खेलती भी थी।

अनुवाद- अंजलि भरकर अरण्यबीज अर्थात् नीवार देने से अर्थात् खिलाने से पालित मृग उसपर इतना विश्वास करते थे जिससे कि (वह) कौतुहल के कारण उन मृगों के नेत्रो से अपने नेत्रों को (अपनी) सखियों के आगे नापती थी।

भावार्थ- जैसे एक सन्तान अपनी माता के साथ बिना किसी भय के रहता था, वैसे ही ये मृग भी पार्वती के साथ रहते थे। उसपर पूर्णतया विश्वास करते थे। वह पार्वती के हाथों से ही निवार ग्रहण करते थे। और जब कभी चपलतावश पार्वती अपनी सखीयों के सामने उन मृगों को पकडकर उनके सुन्दर नेत्रों से अपने नेत्रों का मिलान करती थी, नापन करती थी, तो भी वे मृग भागते नही थे। जैसे कि एक पुत्र या पुत्री किसी भी अवस्था में अपनी माता से अलग नही होते थे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा=अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः+ तथा, तदीयर्नयनैः= तदीयैः+ नयनैः, अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिता:= अरण्यस्य बीजानि अरण्यबीजानि (षष्ठी तत्पुरुष समास), तेषाम् अञ्जलयः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तेषां दानम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), तेन लालिताः (तृतीया तत्पुरुष समास), विशश्वसुः= वि+श्वस्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, अमिमीत= माङ्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार।

छन्द- वंशस्थ।

कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम्।

दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्नधर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते॥ १६॥

प्रसंग- पार्वती की कठोर तपस्या को देखकर तपस्वीजन के हृदय में पार्वती के लिये सम्मान बढता जा रहा था। सम्मान के कारण उसके दर्शन करने के लिये तपोवन में आने लगे।

अनुवाद- स्नान कर चुकने वाली को, अग्नि में आहुति देने वाली को, वल्कल का उत्तरीय धारण करने वाली को, वेद-पाठ करने वाली उस पार्वती को देखने के इच्छुक ऋषिगण पास आते थे तपस्वीजनो में अवस्था अर्थात् आयु नही देखी जाती है।

भावार्थ- इसप्रकार पार्वती अपने प्रतिज्ञा पर अडिग रहते हुए तपस्या करने लगी। प्रतिदिन नियमपूर्वक स्नान करना, अग्निहोत्र इत्यादि यज्ञ करना, वेद-पाठ इत्यादि करना पार्वती के दिनचर्या का अभिन्न अंग बन चुका था। उनके इस प्रतिज्ञा को देखकर उनसे आयु में वृद्ध तपस्वीजन प्रतिदिन उसके दर्शन करने के लिये आते थे। ऐसा हो भी क्यों न हो, क्युंकि आयु में वृद्ध होना एक महान तपस्वी का मापदण्ड नही हो सकता है। महान् तपस्वी होने के लिये आयु नही, बल्कि वैराग्य वृद्धत्व, ज्ञानवृद्धत्व, धर्मवृद्धत्व होना आवश्यक है, और पार्वती में तो ये तीनो ही गुण विद्यमान थे, इसीकारण आयु मे वृद्ध तपस्वी भी पार्वती का दर्शन करने के लिये आते थे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-

दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्= दिदृक्षवः+ताम्+ऋषयः+अभ्युपागमन् (सन्धि), कृताभिषेकाम्= कृतः अभिषेकः यया सा ताम् (बहुब्रीही समास), हुतजातवेदसम्= जातं विदन्ति वेत्ति वा इति जातवेदाः (उपपद समास), हुतः जातवेदाः यया सा ताम् (बहुब्रीही समास), धर्मवृद्धेषु= धर्मेण वृद्धाः तेषु (तृतीया तत्पुरुष समास), अधीतिनीम्= अधि+इङ् +क्त+इनि+डीप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, अभ्युपागमन्= अभि+उप+आ+गम्, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- काव्यलिङ् अलंकार, परिकर।

छन्द-वंशस्थ।

सूक्ति- धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्ष्यते- अर्थात् धर्म में वृद्ध लोगों की आयु नही देखी जाती है। अतः आयु मे वृद्ध होना महत्व नही रखता है, बल्कि ज्ञानी, धर्म का आचरण ही महत्वपूर्ण होता है।

विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरं, द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथि

नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलं, तपोवनं तच्च बभूव पावनम्॥१७॥

प्रसंग-पार्वती के सानिध्य में रहकर तपोवन में रहने वाले वन्यजीव पशु-पक्षियों का आचरण भी पवित्र हो गया था।

अनुवाद- विरोधी प्राणियों के द्वारा छोड दिया गया है पहले का द्वेष जिसमे, द्रुमों अर्थात् वृक्षों ने अभीष्ट फलों से सत्कार किया गया है, अतिथियों का जिसमें, नवीन निर्मित पर्णशालाओं के अन्दर संचित है अग्नि जिसमें, (ऐसा) वह तपोवन पवित्र हो गया है।

भावार्थ- इसप्रकार वैराग्य, धर्म और ज्ञान में वृद्ध पार्वती के सानिध्य से आस-पास रहने वाले वृक्ष, पशु, पक्षियों के आचरण में भी परिवर्तन होने लगा था। ऐसे प्राणी जो स्वभाव से अन्य जीव-जन्तुओं के साथ द्वेष रखते थे, उन्होने अपने द्वेष का त्याग कर दिया था। वृक्ष भी भली-भाति फल प्रदान करने लगे थे,जिससे अतिथि को पर्याप्त मात्रा में स्वादिष्ट भोजन प्राप्त होने लगा था। पर्णशालाओं मे भी निरन्तर यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित रहने लगी थी। इसप्रकार पूरा वातावरण ही पवित्र हो गया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- तच्च= तत्+च (सन्धि), विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरं= पूर्वः मत्सरः पूर्वमत्सरः (कर्मधारय समास), विरोधिनश्च ते सत्त्वाः विरोधिसत्त्वाः (कर्मधारय समास) तैः उज्झितः पूर्वमत्सरः यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), अभीष्टप्रसवार्चितातिथि= अभीष्टैः प्रसवः अर्चिताः अतिथयः यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलम्= नवानाम् उटजानाम् अभ्यन्तरे संभृताः अनलाः यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), तपोवनम्= तपसः वनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-परिकर।

छन्द- वंशस्थ।

यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना, न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम्।

तदानपेक्ष्यं स्वशरीरमार्दवं, तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे॥१८॥

प्रसंग- तपस्या करते रहने पर भी जब पार्वती को शिव की प्राप्ति नही हुई, तो उन्होने अपनी तपस्या का रूप और अधिक कठोर कर लिया।

अनुवाद- उसने (पार्वती ने) जब उतने मात्र से पूर्वोक्त तप समाधि के द्वारा आकांक्षित फल (शिवप्राप्तिरूप फल) को प्राप्त करने योग्य नही माना, तब अपने शरीर के मार्दव अर्थात् कोमलता को ध्यान न देते हुए (और अधिक) महान् अर्थात् कठिन तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया।

भावार्थ- इसप्रकार पार्वती सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ तपस्या करने लगी। लेकिन इतनी तपस्या करने के बाद भी जब तपस्या का शिवप्राप्तिरुप फल उन्हे प्राप्त नही हो पा रहा था, तो निराशाको प्राप्त न होकर पार्वती का निश्चय और दृढ हो गया। ऐसी स्थिति में उन्होने अपने कोमल शरीर की क्षमता को ध्यान न देकर और अधिक कठिन तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- लभ्यममंस्त= लभ्यम्+अमंस्त, पूर्वतपः समाधिना= तपसः समाधिः इति तपः समाधिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पूर्वश्चासौ तपः समाधिः तेन (कर्मधारय समास), स्वशरीरमार्दवम्= सवस्य शरीरम् इति स्वशरीरम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य मार्दवम् (षष्ठी तत्पुरुष), अनपेक्ष्य= नञ्+अप्+ईक्ष्+ल्यप्, चरितुम्= चर्+ तुमुन्।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- काव्यलिङ्।

छन्द- वंशस्थ।

क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या, तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत।

ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च॥१९॥

प्रसंग- पार्वती का शरीर स्वर्ण और कमल के समान कोमल है, और कठोर भी है, इसीकारण इन्होने मुनियों के चरित्र का पालन किया।

अनुवाद- जो (पार्वती) कन्दुकक्रीडा से भी क्लान्त हो जाती थी, उसने मुनियों के चरित का अवगाहन किया। निश्चय ही (इसका) शरीर काञ्चन अर्थात् स्वर्ण और कमल से बना हुआ था, (अतः) स्वभाव से ही (कमल के समान) मृदु और (स्वर्ण के समान) कठोर था।

भावार्थ- महल में निवास करने पर जहां पार्वती का शरीर अत्यन्त कोमल था, और कंदुक की क्रीडा से भी क्लान्त हो जाता था। वही उसका शरीर तपस्या करते करते अत्यधिक कठोर हो गया था। प्रतीत होता है कि पार्वती का शरीर स्वर्ण के समान कठोर और कमल के समान कोमल था, दोनो ही था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- कन्दुकलीलयापि= कन्दुकलीलया+अपि, कन्दुकलीलया= कन्दुकस्य लीला (षष्ठी तत्पुरुष समास), काञ्चनपद्मनिर्मितम्= काञ्चनं च पद्म च काञ्चनपद्मे (द्वन्द समास), ताभ्यां निर्मितम् (तृतीया तत्पुरुष समास), प्रकृत्या= प्र+कृ+क्तिन्, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-उत्प्रेक्षा।

छन्द-वंशस्थ।

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां, शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।

विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥२०॥

प्रसंग- पार्वती तपस्या करने के समय चतुर्दिक अग्नि की प्रज्वलित धारा के मध्य में स्थित होकर सूर्य की उपासना करती थी।

अनुवाद- ग्रीष्मकाल में निर्मल मुस्कान वाली, सुन्दर मध्य भाग वाली (पार्वती) प्रज्वलित चारों अग्निओं के मध्य स्थित होकर, नेत्रप्रतिघातिनि (सूर्य की) प्रभा को जीतकर निरन्तर एक दृष्टि से देखती थी।

भावार्थ- ग्रीष्मकाल में भी पार्वती जब तपस्या करती थी, वह प्रसन्न रहती थी, तथा सदैव प्रसन्नभाव से रहती थी। ऐसे ग्रीष्म काल में अग्नि के समीप जाना भी सामान्य जन के लिये कठिन होता था, वैसे भीष्म ग्रीष्मकाल में भी पार्वती अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक चतुर्दिक् यज्ञाग्नि की स्थापना करके उनके बीच में रहकर पंचम सूर्यदेव रुप अग्नि की उपासना करती थीं, तथा बिना नेत्रों को झपकाये निरन्तर एकटक दृष्टि से सूर्य को देखते हुए श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा किया करती थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- हविर्भुजाम्= हविः भुञ्जन्ते इति हविर्भुजः तेषाम् (उपपद तत्पुरुष समास), शुचिस्मिता= शुचि स्मितां यस्याः सा (बहुब्रीही समास), नेत्रप्रतिघातिनीम्= नेत्रयोः प्रतिघातिनी ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अनन्यदृष्टिम्= न अन्यस्मिन् दृष्टिः यस्या सा (बहुब्रीही समास), हविर्भुजाम्=हविस्+भुज् क्विप्, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन, प्रतिघातिनीम्= प्रति+हन् +णिनि+ङीप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिकर।

छन्द- वंशस्थ।

तथातितप्तं सवितुर्गभस्तिभिर्मुखं तदीयं कमलश्रियं दधौ।

अपाङ्गयोः केवलमस्य दीर्घयोः, शनैः शनैः श्यामिकया कृतं पदम् ॥२१॥

प्रसंग-

अनुवाद- उसप्रकार से सूर्य की किरणों के द्वारा अत्यन्त तपे हुए उसके मुख ने कमल की शोभा को धारण कर लिया। केवल इसकी विस्तृत नेत्र-प्रान्तों के कोने में धीरे-धीरे श्यामलता ने स्थान प्राप्त कर लिया।

भावार्थ- इसप्रकार सूर्योपासना करते रहने से मलिन न होकर उनका मुख और अधिक देदीप्यमान हो गया था।अतः ऐसा तपा हुआ उनका मुखकमल और अधिक शोभा को धारण कर चुका था। केवल पार्वती के नेत्र-प्रान्त श्यामलता को प्राप्त हो गये थे। लेकिन श्यामल होने के बावजूद भी पार्वती का सौन्दर्य धूमिल नही, बल्कि और अधिक निखर गया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- तथातितप्तम्= तथा+अतितप्तम् (सन्धि), सवितुर्गभस्तिभिर्मुखम्= सवितुः+गभस्तिभिः+मुखम् (सन्धि), अतितप्तम्= अत्यन्तं तप्तम् इति (सुप्सुपा समास), कमलश्रियम्= कमलस्य श्रीः ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), श्यामिकया= श्याम+कन्+टाप्, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

छन्द- वंशस्थ।

अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं, रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।

बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः ॥२२॥

प्रसंग- पार्वती बिना जल और बिना आहार के ही जीवन-यापन कर थीं। वह पूर्णतया अपने जीवन के लिये प्रकृति पर ही निर्भर थीं।

अनुवाद- केवल बिना मांगे प्राप्त जल और रसमय चन्द्रमा की किरणें उस (पार्वती) का व्रतान्त भोजन वृक्षों की वृत्ति से अतिरिक्त नही हुआ।

भावार्थ- ग्रीष्मकाल में तपस्या मे कठोर नियमों का पालन करने वाली पार्वती ने सम्पूर्णतया शारीरिक और मानसिक रुप से शिवप्राप्ति में अपना सबकुछ समर्पित कर दिया था, अतः उसने भोजन और जल दोनो का पूर्णतया त्याग कर दिया था। ऐसी स्थिति में प्रकृति ही उसके जीवन का माध्यम बनी थी। अतः बिना मांगे हुए जल और अमृतमय चन्द्रमा की किरणें ही उसका आहार थीं। अतः जिसप्रकार वृक्ष के लिये अयाचित जल और चन्द्रमा की किरणें ही उसका जीवन होती है, उसीप्रकार, पार्वती के लिये भी अप्रार्थित जल तथा चन्द्रमा की किरणें ही जीवन का साधन थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- रसात्मकस्योडुपतेश्च= रसात्मकस्य+उडुपतेः+च (सन्धि), अयाचितोपस्थितम्= न याचितम् इति अयाचितम् (नञ् समास), अयाचितं च तत् उपस्थितम् (कर्मधारय समास), रसात्मकस्य= रसः आत्मा यस्य सः तस्य (बहुब्रीही समास), वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः= वृक्षाणां वृत्तिः इति वृक्षवृत्तिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), वृक्षवृत्तेः व्यतिरिक्तं साधनं यस्य सः (बहुब्रीही समास), अयाचित= नञ्+ याच्+क्त, उपस्थितम्=उप+स्था+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, साधनः=साध् +ल्युट्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार - परिसंख्या।

छन्द - वंशस्थ।

निकामतप्ता विविधेन वह्निना, नभश्चरेणन्धनसंभृतेन सा।

तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवैर्भुवा सहोष्माणमञ्चदू र्ध्वगम् ॥२३॥

प्रसंग- वर्षा ऋतु में निराजल रहने के कारण पार्वती के शरीर पर वर्षा की बूंदे पडने पर पार्वती के शरीर से गर्म-गर्म वाष्प उडने लगी।

अनुवाद- आकाशगामी, इन्धन से प्रज्वलित, विविध प्रकार की अग्नि से अत्यन्त सन्तप्त हुई वह (पार्वती) ग्रीष्म ऋतु की समाप्ति पर अर्थात् वर्षारम्भ काल में वर्षा के नवीन जल से सिञ्चित पृथ्वी के साथ ऊपर की ओर जाने वाली वाष्प को छोडने लगी।

भावार्थ- इसप्रकार जैसे ग्रीष्मऋतु की समाप्ति होने के समय पृथ्वी अत्यन्त तप्त रहती है, और आकाश से होने वाली वर्षा की पहली बूंदे उसपर गिरती है, और वर्षा की बूंदे गिरते ही तप्त भूमि से तुरन्त ही वाष्प निकलने लगती है, उसीप्रकार निराजल पार्वती के बिना जल से सूखे हुए शरीर पर जैसे ही वर्षा की जल गिरता है, वैसे ही वाष्प उनके शरीर से निकलना प्रारम्भ कर हो जाता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- नभश्चरेणेन्धनसम्भृतेन= नभश्चरेण+इन्धनसम्भृतेन, वारिभिरुक्षिता=वारिभिः+उक्षिता, नवैर्भुवा=नवैः+भुवा, सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम्= सह+ऊष्माणम्+मुञ्चत्+ऊर्ध्वगम्, नभश्चरेण= नभसि चरतीति नभश्चरः तेन (सप्तमी तत्पुरुष समास), इन्धनसम्भृतेन= इन्धनैः सम्भृतः तेन (तृतीया विभक्ति), तपात्यये= तपस्य अत्ययः इति तपात्ययः तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष समास), नभश्चरेण= नभस्+चर्+ट, तृतीया विभक्ति, एकवचन, उक्षिता= उक्ष +इट्+क्त, प्रथमा विभक्ति,एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार - सहोक्ति।

छन्द - वंशस्थ।

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः, पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।

वलीषु तस्याः स्खलिता प्रपेदिरे, चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः ॥२४॥

प्रसंग- वर्षा की बूंदो ने उसके पूरे शरीर को भिगो दिया।

अनुवाद- वर्षा की पहली बूंदे उस (पार्वती) की पलकों में क्षणमात्र के लिये ठहरीं, अधरों को ताडित किया, पयोधरों के उन्नत अग्रभाग पर टकराने से चूर-चूर हुई, उदररेखाओं पर गिरीं और बहुत देर से नाभि में प्रविष्ट होती थी।

भावार्थ- वर्षा ऋतु में भी पार्वती खुले आसमान के नीचे ही तपस्या करती थी। और वर्षा ऋतु की बूंदे उसके नेत्रों के पलको पर गिरते हुए अधरों पर गिरती थीं। वहां से नीचे पयोधरों पर टकराकर छिन्न-भिन्न हो जाती थी। और अन्त में उदर से नीचे जाते हुए नाभि में प्रवेश कर जाती थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- प्रथमोबिन्दवः= उदकस्य बिन्दवः इति उदबिन्दवः (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्रथमे च ते उदबिन्दवः (कर्मधारय समास), ताडिताधराः=ताडितः अधरः यैः ते (बहुब्रीही समास), पयोधरोत्सेतसेधनिपातचूर्णिताः=पयोधरयोः उत्सेधः इति पयोधरोत्सेधः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पयोधरोत्सेधे निपातेन चूर्णिताः (सप्तमी तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष समास), स्खलिताः= स्खल्+क्त, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन, प्रपेदिरे= प्र+पद् +लिट् लकार+प्रथम पुरुष, बहुवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिकर।

छन्द- वंशस्थ।

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं, निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।

व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातपः साक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः ॥२५॥

प्रसंग- वर्षा ऋतु में पार्वती की तपस्या की साक्षी बिजली से चमकती हुई रात्रियां बनी।

अनुवाद- निरन्तर (बहती हुई) वायु के मध्य में होने वाली वर्षा में बिना घर के रहने वाली, शिला पर शयन करने वाली उस (पार्वती) को महान तपस्या की साक्षीरुप में स्थित रात्रियां बिजली रूपी आखें के द्वारा मानो देखा करती थीं।

भावार्थ- इस वर्षा ऋतु में वायु का तीव्र प्रवाह चलता रहता था। वर्षा भी निरन्तर होती रहती थी। और ऐसे प्रतिकूल मौसम में भी पार्वती पूरी रात्रि भिगते हुए बाहर ही शिला पर शयन करती थी। ऐसे

समय में इस महान् तपस्या की साक्षी अनेक रात्रियां थी। ऐसा लगता था कि जैसे भयंकर बिजलियां ही रात्रि की नेत्र बनकर पार्वती के कठोर व्रत की साक्षी का कार्य करती थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु= निरन्तरासु+अन्तरवातवृष्टिषु (सन्धि), व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडितन्मयैर्महातपः = व्यलोकयन्+उन्मिषितैः+तडिन्मयैः+महातपः, अन्तरवातवृष्टिषु=अन्तरे वातः यासां ताः इति अन्तरवाताः (बहुब्रीही समास), अन्तरवाताः च ताः वृष्टयः तासु (कर्मधारयसमास), अनिकेतवासिनीम्= निकेते वसतीति निकेतवासिनी (उपपद समास), न निकेतवासिनी ताम् (नञ् तत्पुरुष समास), शिलाशयाम्= शिलायाम् शेते इति शिलाशया ताम् (उपपद समास), अनिकेतवासिनीम्= नञ्+नि+कित्+अच्+वस्+णिनि+ङीप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, उन्मिषितैः= उत्+मिष् +क्त, तृतीया विभक्ति, बहुवचन, व्यलोकयन्=वि+लोक्, लङ लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-उत्प्रेक्षा।

छन्द-वंशस्थ।

निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः, सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा।

परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः, पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती ।।२६।।

प्रसंग- जब वह पौष मास की रात्रि मे भी वह उपासना करती थी, तो एक-दूसरे से वियुक्त हुए चकवा-चकवी के जोडे पर भी उसे दया आती थी।

अनुवाद- वह (पार्वती) अत्यधिक हिमवर्षा करने वाली वायु से युक्त,पौष मास की रात्रियों को, जल में खडी होकर, एकदूसरे को पुकारते हुए (अपने) सामने एकदूसरे से वियुक्त हुए चकवा और चकवी के जोडे पर कृपा दिखलाती हुई व्यतीत करती थी।

भावार्थ- वर्षाऋतु के पश्चात् शीतकाल में भी पार्वती के कठोर व्रत के पालन में कोई न्युनता नही आयी। अन्य बीते हुए ऋतुओं के समान शीतकाल में भी, पौष मास की रात्रियों मे भी जब हिमवर्षा होती थी, उस अत्यन्त असहनीय रात्रि में भी पार्वती शीतल जल में खडे होकर पूजा करती थी। इसप्रकार तपस्या करते रहने से दिनोदिन पार्वती में करुणभाव की भी वृद्धि होती जा रही थी। अतः रात्रि काल में अलग हुए चकवा-चकवी का क्रन्दन सुनकर उसका हृदय और अधिक द्रवित हो जाता था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः=सा+अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः (सन्धि), सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा= सहस्यरात्रीः+ उदवासतत्परा (सन्धि), अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः= उत् किरन्तीति उत्किराः (उपपद समास), हिमानाम् उत्किराः हिमोत्किराः (षष्ठी तत्पुरुष समास), अत्यन्तं हिमोत्किराः अनिलाः यासु ताः (बहुब्रीही समास), सहस्यरात्रीः= सहस्यस्य रात्रयः इति सहस्यरात्रयः (षष्ठी तत्पुरुष समास), चक्रवाकयोः= चक्रवाकी च चक्रवाकश्च इति चक्रवाकौ तयोः (द्वन्द समास), कृपावती= कृपा+वतुप्+डीप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, निनाय= नी, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-परिकर।

छन्द-वंशस्थ।

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि, प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।

तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां, सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्॥२७॥

प्रसंग- शीतऋतु में सरोवर के कमल के नष्ट हो जाने पर भी पार्वती स्वयं कमलरूप में उस सरोवर की शोभा बढाती थी।

अनुवाद- उस (पार्वती ने) रात्रि में पद्म के समान सुगन्धित कापते हुए पत्ररूपी अधरोष्ठ से सुशोभित मुख से, हिम की वर्षा से नष्ट हुई कमल रूपी सम्पत्ति वाले जलों मे मानो कमल सम्बन्ध सा स्थापित कर दिया था।

भावार्थ- शीत के आधिक्य में जब कमल रूपी मुख वाली पार्वती रात्रि में पूजा-अचर्न करती थी, तो उस सुगन्धित मुखकमल वाली पार्वती के ओष्ठ कमल के पत्रों के समान कापते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो हेमन्त ऋतु में कमलों के नष्ट हो जाने पर नीरस उस सरोवर की शोभा पार्वती के मुख रूपी कमल से ही बढती थी। अतः यहां उत्प्रेक्षा है कि मानो पार्वती ने अपने मुख से उस सरोवर की शोभा को परिपूर्ण कर दिया था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-

सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्= सरोजसन्धानम्+इव+अकरोत्+अपाम्, पद्मसुगन्धिना=शोभनः गन्धः यस्य तत् सुगन्धि (बहुब्रीही समास), पद्ममिव सुगन्धिः इति पद्मसुगन्धिः तेन (उपमित तत्पुरुष समास), सरोजसन्धानम्=सरसि जातानि इति सरोजानि (सप्तमी तत्पुरुष समास), सरोजानां सन्धानम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), सन्धानम्= सम्+धा +ल्युट्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक।

छन्द- वंशस्थ।

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।

तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां, वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः॥२८॥

प्रसंग- पार्वती ने तपस्या की पराकाष्ठा को भी पार कर लिया था। अतः उसने पत्तों को भी भोजन रुप में ग्रहण करना छोड दिया था।

अनुवाद- अपने आप गिरे हुए वृक्षों के पत्तो से जीविका चलाना ही निश्चित रूप से तपस्या की पराकाष्ठा होती है, परन्तु उस (पार्वती) ने तो वह भी छोड दिया। इसीलिये पुराविदों ने उसको अपर्णा इस नाम से पुकारते हैं।

भावार्थ- एक साधक के लिये वृक्ष से अपने-आप गिरे हुए पत्तों को भोजन के रुप में ग्रहण करना उसकी तपस्या की पराकाष्ठा का लक्षण है, कितुं यहां तो पार्वती ने उसका भी त्याग कर दिया था। वह अपने-आप से भूमि पर गिरे हुए पत्तों को भी भोजन रूप में ग्रहण नही करती थी। अतः पार्वती के इसप्रकार पत्तों को भी भोजन रूप मे ग्रहण न करने से विद्वानों द्वारा पार्वती को एक नवीन नाम 'अपर्णा' दिया गया, जिसका तात्पर्य है- पर्णों का भक्षण न करने वाली।

व्याकरण सम्बन्धि टिप्पणी- तपसस्तया= तपसः+तया (सन्धि), तदप्यपाकीर्णमतः= तत्+अपि+अपाकीर्णम्+अतः (सन्धि), वदन्त्यपर्णेति=वन्दति+अपर्णा+इति (सन्धि), स्वंयविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता=द्रुमानां पर्णानि इति द्रुमपर्णानि (षष्ठी तत्पुरुष समास), स्वयं विशीर्णानि द्रुमपर्णानि इति स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णानि (कर्मधारय समास), तानि वृत्तिः यस्य सः तस्य भावः (बहुब्रीही समास), प्रियवदाम्= प्रियं वदतीति प्रियंवदा ताम्(उपपद तत्पुरुष समास), पुराविदः= पुरा विदन्ति इति पुराविद् (उपपद समास), अपर्णा= न पर्णानि यस्याः सा (बहुब्रीही समास), अपाकीर्णम्= अप+आ+ कृ +क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, प्रियवदाम्=प्रिय+विद्+खच्+ टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- काव्यलिंग।

छन्द-वंशस्थ।

मृणालिकापेलवमेवमादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।

तपः शरीरैः कठिनरुपार्जितं, तपस्विनां दूरमधश्चकार सा ।१९॥

प्रसंग- तपस्या करते करते पार्वती का शरीर इतना कठोर हो गया था कि अन्य तपस्वी उसके आगे गौण हो गये थे।

अनुवाद-कमलिनीकन्दवत् कोमल अपने शरीर को इसप्रकार के (कठोर) नियमों से दिन-रात क्षीण बनाती हुई उस पार्वती ने कठोर शरीर से उपार्जित तपस्वियों की तपस्या को अत्यन्त तिरस्कृत कर दिया।

भावार्थ- इसप्रकार बिना जल, बिना आहार के पार्वती अपना जीवन का संचालन कर रही थी। ग्रीष्म, वर्षा, शीत-इन ऋतुओं के प्रतिकूल प्रभाव को झेलते हुए भी अत्यन्त प्रसन्न मन से खुले आसमान के नीचे दिन-रात्रि तपस्या के कठोर से कठोर नियमों का पालन करती रहती थी। अतः पार्वती का शरीर इतना सशक्त हो चुका था कि वह किसी भी स्थिति में अपने कर्तव्य से विचलित नही होती थी। अतः उसकी महान तपस्या के आगे अन्य तपस्वी नतमस्तक हो चुके थे। वह संसार की महानतम तपस्विनी बन चुकी थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- ग्लपयन्त्यहर्निशम्=ग्लपयन्ती+अहर्निशम् (सन्धि), कठिनैरुपार्जितम्=कठिनैः+उपार्जितम्, मृणालिकापेलवम्= मृणालिका इव पेलवम् (कर्मधारय समास), एवमादिभिः=एवम् आदिः येषां तानि इति एवमादीनि तैः (बहुब्रीही समास), अहर्निशम्= अहश्च निशा च (द्वन्द्व समास), तपस्विनाम्= तपः अस्ति येषां ते इति तपस्विनः तेषाम् (बहुब्रीही समास), ग्लपयन्ती= ग्लै+णिच्+शतृ+ङीप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, अधश्चकार= अधः+कृ, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- व्यतिरेक।

छन्द-वंशस्थ।

अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्, ज्वलन्निव ब्रह्मयेन तेजसा।

विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं, शरीरबद्धः प्रथमाश्रयो यथा ॥३०॥

प्रसंग- पार्वती की इस तपस्या से प्रभावित होकर स्वयं शिव अपना रुप बदलकर ब्रह्मचारी के रुप में पार्वती की परीक्षा लेने आये।

अनुवाद- इसके बाद (पार्वती द्वारा अत्यन्त कठोर तपस्या करने के बाद) कृष्ण मृगचर्म और पलाश दण्ड धारण करने वाला, गम्भीर अर्थात् प्रौढ एवं निर्भीक वाणी बोलने वाला, ब्रह्ममय तेज से देदीप्यमान सा कोई जटाधारी ने जैसे कि वह शरीरधारी ब्रह्मचर्य आश्रम ही हो, तपोवन में प्रवेश किया।

भावार्थ- पार्वती की ऐसी महान तपस्या अब फलीभूत होने को आयी थी। तभी तो भगवान् शिव स्वयं ही उसकी अन्तिम परीक्षा लेने के लिये एक जटाधारी, दण्डधारी एक तपस्वी का रूप ग्रहण करके तपस्या कर रही पार्वती से भेट करने के लिये आये। तपस्वी के रूप में उन्होने कृष्ण मृगचर्म , पलाश का दण्ड धारण कर रखा था। उनकी जटाएं अत्यन्त घनी एवं लम्बी थीं। उनकी वाणी अत्यन्त ही गम्भीर एवं निर्भीक थी। उनका मुख ब्रह्ममय तेज से देदीप्यमान था। अतः ब्रह्मचर्य आश्रम के अनुकूल ही उन्होने अपना आचरण कर रखा था। इसप्रकार एक महान तेजस्वी ब्रह्मचारी का रूप लेकर तपोवन में उन्होने प्रवेश किया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- अथाजिनाषाढधरः= अथ+अजिनाषाढधरः, ज्वलन्निव=ज्वलन्+इव, कश्चिज्जटिलस्तपोवनम्= कश्चित्+जटिलः+तपोवनम्, अजिनाषाढधरः= अजिनं च आषाढश्च इति अजिनाषाढौ (द्वन्द्व समास), तयो धरः (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्रगल्भवाक्= प्रगल्भा वाक् यस्य सः (बहुब्रीही समास), जटिलः= जटाः सन्ति यस्य सः (बहुब्रीही समास), प्रथमाश्रमः= प्रथमश्चासौ आश्रमः (कर्मधारय समास), तपोवनम्= तपसः वनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), ब्रह्ममयेन= ब्रह्ममयेन=ब्रह्म+मयट्+ तृतीया विभक्ति, एकवचन, विवेश=विश्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- उत्प्रेक्षा।

छन्द-वंशस्थ।

तमातिथेयी बहुमानपूर्वया, सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती।

भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां, वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ॥३१॥

प्रसंग- पार्वती ने शिव को नही पहचाना। और एक ब्रह्मचारी समझकर उनका अतिथि-सत्कार किया ।

अनुवाद- अतिथिसत्कारपरायणा पार्वती ने उसका (ब्रह्मचारी का) अत्यधिक आदरपूर्वक सेवाभावना से स्वागत किया। समान भाव होने पर भी स्थित बुद्धि वालों की विशेष प्रकार के शरीरधारियों पर अतिगौरवशालिनि चेष्टाएं होती हैं।

भावार्थ- शिव के अपने रुप परिवर्तन के कारण पार्वती उनको पहचान नही पायी। और उनको एक महान तपस्वी के रुप में मानकर अतिथि-सत्कार के लिये उद्यत हुई। और अत्यन्त ही सेवाभाव से उस ब्रह्मचारी का सत्कार किया। क्योंकि एकाग्र भूमि मे रहते हुए तपस्वी सबके प्रति समान भाव रखते हैं और ऐसे समदर्शी व्यक्ति भी विशिष्ट जनों के प्रति विशिष्ट प्रकार से अतिथि सेवा करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-

साम्येऽपि= साम्ये+अपि (सन्धि), वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः=वपुर्विशेषेषु+अतिगौरवा (सन्धि), आतिथेयी- न विद्यमानः तिथिः यस्य सः (बहुब्रीही समास), बहुमानपूर्वया-बहुश्चासौ मानः इति बहुमानः (बहुब्रीही समास), बहुमानः पूर्वः यस्याः सा तया (बहुब्रीही समास), वपुर्विशेषेषु= वपुषां विशेषः इति वपुर्विशेषाः तेषु (षष्ठी तत्पुरूष समास), अतिगौरवा= अत्यन्तं गौरवं यासां ताः(बहुब्रीही समास), आतिथेयी=अतिथि+ढञ्+ङीप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, प्रत्युदियाय= प्रति+उत्+इ, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- अर्थान्तरन्यास ।

छन्द-वंशस्थ।

विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां; परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम्।

उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा, प्रचक्रमे वक्तुमनज्झितक्रमः ॥३२॥

प्रसंग- कुछदेर तक विश्राम करने के पश्चात् ब्रह्मचारीरुप में शिव ने पार्वती से वार्तालाप करना प्रारम्भ किया।

अनुवाद- उसने (ब्रह्मचारी ने)विधिपूर्वक सम्पादित की गई पूजा को ग्रहण करके और कुछ देर थकावट को दूर करके उमा अर्थात् पार्वती को सरल दृष्टि से ही देखते हुए वाक्यविन्यास को न त्यागते हुए कहना प्रारम्भ किया।

भावार्थ- यद्यपि ब्रह्मचारी रूप में तो शिव ही थे, और उन्हे किसी भी प्रकार की थकावट नही होती थीं, किंतु फिर भी मनुष्य रूप धारण करने के कारण उन्होने मनुष्यवत् आचरण करने का अभिनय किया। अतः पहले तो उस शिवरूप ब्रहमचारी ने भी विनम्र भाव से पार्वती की अतिथि-सत्कार को स्वीकार किया। पार्वती ने भी पूर्णतया विधि का पालन करते हुए ब्रह्मचारी की सेवा की। इसके उपरान्त कुछ देर आराम करके अपनी थकावट दूर करने का अभिनय किया। और फिर अत्यन्त ही सरलता से पार्वती को देखते हुए प्रश्न पूछना आरम्भ किया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- पश्यन्नृजुनैव= पश्यन्+ऋजुना+एव (सन्धि), विधिप्रयुक्ताम्= विधिना प्रयुक्ता इति विधिप्रयुक्ता ताम् (तृतीया तत्पुरुष समास), अनुज्झितक्रमः= न उज्झितः क्रमः येन सः (बहुब्रीही समास), प्रयुक्ताम्- प्र+युज् + क्त+ टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, परिगृह्य=परि+ग्रह्+ल्यप्, प्रचक्रमे- प्र+क्रम्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिसंख्या ।

छन्द-वंशस्थ।

अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं; जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते।

अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे, शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥३३॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी ने पार्वती से तपस्या से सम्बन्धित कुशल-क्षेम पूछा।

अनुवाद- (ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया कि) (होम-यज्ञादि) क्रियांओं के लिये समिधाएं एवं कुशा सुप्राप्य हैं क्या? जल तुम्हारे स्नानविधियोग्य हैं ? (क्या तुम) अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या में प्रवृत्त हो? क्योंकि निश्चित रुपेण शरीर ही धर्म का प्रथम साधन होता है।

भावार्थ - ब्रह्मचारी का प्रश्न प्रथमतया पार्वती के कुशल-क्षेम से सम्बन्धित था। क्युन्कि पार्वती की तपस्या अत्यन्त कठोर थी। अतः उन्होने प्रश्न पूछा कि होम-यज्ञादि करने के लिये समिधाएं एवं कुश इत्यादि सामग्रियां सरलता से प्राप्त हैं कि नही? सरोवर का जल स्नान करने योग्य है कि नही? और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि तुम अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार तपस्या करती हो कि नही? क्योंकि शारीरिक क्षमता के अनुसार ही कोई भी कार्य करना उचित होता है। अतः शरीर ही किसी भी प्रकार के कार्य का प्रथम एवं अनिवार्य माध्यम होता है। अतः अपने शरीर को आवश्यकता से अधिक कष्ट नही देना चाहिये ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- जलानि+अपि (सन्धि), क्रियार्थम्= क्रियाभ्यः हितम् इति क्रियार्थम् (चतुर्थी तत्पुरुष समास), समित्कुशम्=समिधश्च कुशा च (द्वन्द्व समास), स्नानविधिक्षमाणि= स्नानस्य विधिः इति स्नानविधिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्मिन् क्षणानि (सप्तमी तत्पुरुष समास), आद्यम्= आदौ भवम् (उपपद तत्पुरुष समास), सुलभम्= सु+लभ्+खल्, प्रथमा विभक्ति,एकवचन, आद्यम्=आदि+यत्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-अर्थान्तरन्यास।

छन्द-वंशस्थ।

अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतं, प्रवालमासामनुबन्धि वीरुधाम्।

चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते, तुलां यदारोहति दन्तवाससा ॥३४॥

प्रसंग- फिर वहां स्थित लताओं के बारे में प्रश्न पूछा कि पार्वती के द्वारा सिंचित पौधों का पल्लवन ठीक प्रकार से हो रहा है कि नही?

अनुवाद- (प्रश्न करते हुए) तुम्हारे द्वारा सिञ्चित जल से संवर्धित इन लताओं का किसलय अर्थात् पल्लवन निरन्तर हो रहा है है न? जो कि चिरकाल से त्यक्त लाक्षारस के समान (तुम्हारे) रक्त (वर्ण के) अधरोष्ठ से समानता रखते हैं।

भावार्थ- पहले तो ब्रह्मचारी ने यज्ञादि से सम्बन्धित प्रश्न पूछा। उसके बाद तपोवन में रहने वाले वृक्ष-लतादि के बारे में भी पूछा। उन्होने पूछा कि तुम इन वृक्ष -लतादि की सेवा करती हो कि नही? तुम इनका प्रतिदिन सिञ्चन करती हो कि नही? तुम्हारी सेवा से इनका पल्लवन हो रहा है कि? क्योंकी ये ही तो तुम्हारे ओष्ठ से समानता रहते हैं। तुमने दीर्घकाल से लाक्षारस की रक्तिमा से अपने ओष्ठ को रंगा नही है, लाक्षारस से रहित रहित, किंतु फिर भी स्वाभाविक रुप से रक्त वर्ण से युक्त ओष्ठ से ये समानता रखते हैं ।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- यदारोहति=यत्+आरोहति (सन्धि), त्वदावर्जितवारिसम्भृतम्= त्वया आवर्जितम् इति त्वदावर्जितम् (तृतीया तत्पुरुष समास), त्वदावर्जितं च तद् वारि इति त्वदवर्जितवारि (तेनधारय समास), तेन संभृतम् (तृतीया तत्पुरुष समास), दन्तवाससा=दन्तानां वासः इति दन्तवासः तेन (षष्ठी तत्पुरुष समास), सम्भृतम्=सम्+भृ+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन,

अनुबन्धि=अनु+बन्ध+णिनि, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, आरोहति=आ+रुह्+लट् लकार, प्रथम पुरुष,एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-प्रतीप।

छन्द-वंशस्थ।

अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मन:, करस्थदर्भप्रणयापहारिषु ।

य उत्पलाक्षि! प्रचलैर्विलोचनै स्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते ॥३५॥

प्रसंग- पुनः लताओं के सम्बन्ध में ही प्रश्न पूछा।

अनुवाद- (पुनः प्रश्न करते हुए ब्रह्मचारी पूछते हैं कि) (तुम्हारे) हाथ में स्थित कुशों को प्रेमपूर्वक छिनने वाले मृगों के प्रति तुम्हारा मन प्रसन्न है क्या? हे उत्पलाक्षि अर्थात् कमल के समान नेत्रों वाली ! जो प्रचल नेत्रों से तुम्हारे नेत्रों की समानता करने का मानो अभिनय सा करते हैं।

भावार्थ- आगे प्रश्न पूछते हैं कि ये मृग जिनको तुम प्रतिदिन अपने हाथों से निवार इत्यादि भोजन कराती हो। बडे ही अधिकार से ये तुम्हारे हाथ से स्वयं भोजन छिन लेते हैं। इनके प्रति तुम प्रसन्न चित्त तो हो ना? क्योंकि इस तपोवन में ये ही मृग ही तो तुम्हारे नेत्रों से समानता रखते हैं। अतः चंचल नेत्रों वाला होकर ये तुम्हारी ही विलोल दृष्टि का अनुसरण करते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी - य उत्पलाक्षि=ये+उत्पलाक्षि (सन्धि), प्रचलैर्विलोचनैस्तवाक्षिसादृश्यमिव=प्रचलैः+विलोचनै+तव+अक्षिसादृश्यम्+इव (सन्धि), करस्थदर्भप्रणयापहारिषु= करे तिष्ठन्तीति करस्थाः (उपपद समास), करस्थाः दर्भाः इति करस्थदर्भाः (कर्मधारय समास), तेषां प्रणयापहारिणः तेषु (षष्ठी तत्पुरुष समास), उत्पलाक्षि= उत्पले इव अक्षिणी यस्याः सा इति उत्पलाक्षी (बहुब्रीही समास), अक्षिसादृश्यम्=अक्ष्णोः सादृश्यम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), करस्थ=कर+स्था+क, प्रचलैः=प्र+चल्+अच्, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- उत्प्रेक्षा।

छन्द-वंशस्थ।

यदुच्यते पार्वति! पापवृत्तये, न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः ।

तथा हि ते शीलमुदारदर्शने, तपस्विनामप्युपदेशतां गतम् ॥३६॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी ने पार्वती के आचरण की प्रशंसा की, जो कि अन्य तपस्वियों के लिये उदाहरण स्थापित कर चुका था।

अनुवाद- हे पार्वती! रुप पापवृत्ति के लिये नही होता है, ऐसा जो कहते हैं, वह वचन सत्य है। क्योंकि हे विशाल नेत्रों वाली! तुम्हारा शील अर्थात् आचरण तपस्वियों के लिये प्रमाणस्वरूप हो गया है।

भावार्थ- हे पार्वती! तुम रूपवती हो। तुम्हारा ये रुप कल्याणकारी है । यह किसी भी प्रकार की पापवृत्ति की ओर मनुष्य को नही ढकेलता है। ऐसा कहा भी जाता है कि सुन्दरता पापवृत्ति मे कारण नही होता है। अतः विशाल नेत्रो वाली तुम्हारा आचरण तपस्वियों के लिये एक महान उदाहरण प्रस्तुत करता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी - यदुच्यते= यत्+उच्यते (सन्धि), रूपमित्यव्यभिचारि=रूपम्+इति+अव्यभिचारि (सन्धि), तद्वचः=तत्+वचः (सन्धि), तपस्विनामप्युपदेशताम्=तपस्विनाम्+अपि+उपदेशताम् (सन्धि), पापवृत्तये=पापस्य वृत्तिः पापवृत्तिः तस्यै (षष्ठी समास), अव्यभिचारि= न व्यभिचरतीति अव्यभिचारि (नञ् समास), तपस्विनाम्=तपः अस्ति येषां ते इति तपस्विनः तेषाम्(बहुब्रीही समास), उच्यते=ब्रू, लट् लकार, प्रथम पुरुष,एकवचन, उपदेशताम्=उप+दिशि+घञ्+तल्+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- अर्थान्तरन्यास।

छन्द-वंशस्थ।

विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिस्तथा न गाङ्गैः सलिलर्दिवश्च्युतैः।

यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः पावित एष सान्वयः ॥३७॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी ने पार्वती के सदाचरण की प्रशंसा करना जारी रखा।

अनुवाद- यह महीधर सप्तर्षियों द्वारा बिखेरे गये पुष्पोहार से हास्ययुक्त एवं स्वर्ग से गिरे हुए गंगा के जल से उतना पवित्र नही किया गया, जितना तुम्हारे सदाचरणों से वंशसहित पवित्र हो गया है।

भावार्थ- तुम्हारा आचरण इतना शुद्ध तथा सात्विक है कि ये हिमायल पर्वत भी दिनोदिन पवित्र होता जा रहा है। इतना पवित्र तो हिमालय पर्वत पहले भी नही था, जबकि पहले से ही सीधे गंगा स्वर्ग से यहां गिरती आयी है। और स्वयं सप्त ऋषियों द्वारा इस गंगा के जल में पुष्प को डाला जाता है। अतः तुम्हारे सदाचरण के कारण ही सारा वंश पवित्र हो गया है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- प्रहासिभिस्तथा=प्रहासिभि+तथा (सन्धि), सलिलैर्दिवश्च्युतैः=सलिलैः+दिवः+च्युतैः (सन्धि), त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः=त्वदीयैः+चरितैः+अनाविलैः+महीधरः (सन्धि), महीधरः= मह्याः धरः (षष्ठी तत्पुरुष समास), अनाविलैः= न अविलानि इति अनाविलानि तैः (नञ् तत्पुरुष समास), सान्वयः= अन्वयेन सह (अव्ययीभाव समास), विकीर्ण= वि+कृ+क्त, च्युतैः= च्यु +क्त, तृतीया विभक्ति, बहुवचन, पावितः= पू +णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- व्यतिरेक।

छन्द-वंशस्थ।

अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे, त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि।

त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया, यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते ॥३८॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी ने पार्वती के धर्माचरण की प्रशंसा की।

अनुवाद- हे भाविनि! इस कारण से आज मुझको धर्म त्रिवर्गों मे अर्थात् धर्म, अर्थ, काम में श्रेष्ठ प्रतीत हो रहा है, क्युन्कि मन को अर्थ और काम से रहित करके अर्थात् निर्विषय करके मात्र धर्म को ही स्वीकार करके (उसका) सेवन कर रही हो।

भावार्थ- ब्रह्मचारी रूप शिव कहते हैं कि तुम्हारे धर्म के आचरण की महानता को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि धर्म, अर्थ, काम में धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। क्युन्कि तुमने यह प्रमाणित कर दिया है कि अर्थ और काम से रहित होकर केवल धर्म के माध्यम से भी श्रेष्ठ जीवन-यापन किया जा सकता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- सविशेषमद्य=सविशेषम्+अद्य (सन्धि), यदेकः= यत्+एकः, भाविनि= प्रशस्तः भावः यस्याः अस्तीति भाविनी तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही), सविशेषम्= विशेषेण सह (अव्ययीभाव समास), त्रिवर्गसारः=त्रयाणां वर्गः इति त्रिवर्गः (षष्ठी तत्पुरुष समास), मनोनिर्विषयार्थकामया= निर्गतः विषयः ययोः तौ इति निर्विषयौ (बहुब्रीही समास), अर्थश्च कामश्च इति अर्थकामौ (द्वन्द्व समास), मनसः निर्विषयौ अर्थकामौ यस्याः सा तया (बहुब्रीही समास), प्रतिभाति=प्रति+भा, लट् लकार, प्रथम पुरुष,एकवचन, प्रतिगृह्य=प्रति+ग्रह+ ल्यप्, सेव्यते= सेव्+कर्मवाच्य, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-अनुमान।

छन्द-वंशस्थ।

प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना, न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि।

यतः सतां संनतगात्रि! संगतं, मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ॥३९॥

प्रसंग- पार्वती के इसप्रकार अतिथिसत्कार करने के कारण प्रसन्न हुए ब्रह्मचारी ने स्वयं को पार्वती का हितैषी बताया।

अनुवाद- हे सन्नतगात्रि अर्थात् शोभनीय अंगो वाली! आपके द्वारा जिसका विशेष अतिथिसत्कार किया गया है, ऐसे मुझको परकीय अर्थात् पराया समझना उचित नही है। क्युन्कि विद्वानों द्वारा सज्जनों की मित्रता को सप्तपदी अर्थात् सात पदों के उच्चारणमात्र से होने वाला कहा गया है।

भावार्थ- ब्रह्मचारी कहते हैं कि हे सन्नतगात्रि! तुमने जिसप्रकार मेरा अतिथि-सत्कार किया है, उससे मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया है। और मै तुम्हार शुभचिन्तक हूं, अतः मुझे अपना ही समझो, और बात को मानो।क्योंकि विद्वानों का कहना है कि सज्जन पुरुष मित्रता को सप्तपदी कहते हैं। और हमारे बीच तो मित्रता स्थापित हो चुकी है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- प्रयुक्तसत्कारविशेषम्=सत्कारस्य विशेषः इति सत्कारविशेषः (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्रयुक्तः सत्कारविशेषः यस्य सः तम् (बहुब्रीही समास), सन्नतगात्रि=सम्यक् नतम् इति सन्नतम् (प्रादि तत्पुरूष समास), सन्नतं गात्रं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही समास), मनीषिभिः= मनसः ईषिणः इति मनीषिणः (षष्ठी तत्पुरूष समास), साप्तपदीनम्=सप्तानां पदानां समाहारः इति सप्तपदम् (द्विगु समास० तेन अवाप्यम् (तृतीया तत्पुरुष समास), सम्प्रतिपत्तुम्=सम्+प्रति+पद्+तुमुन्।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार=अर्थान्तरन्यास।

छन्द-वंशस्थ।

अतोऽत्र किंचिद्भवतीं बहुक्षमां, द्विजातिभावादुपन्नचापलः।

अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने, न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ॥४०॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी ने स्थापित मित्रता के आधार पर पार्वती ने कुछ प्रश्न पूछने की इच्छा जतायी।

अनुवाद- हे तपस्विनि! इसलिये इस विषय में अत्यधिक क्षमा भाव से युक्त होते हुए आपसे ब्राह्मण होने के कारण उत्पन्न हुई चपलता वाला यह व्यक्ति अर्थात् मैं कुछ पूछना चाहता हूं। यदि कोई गोपनीय बात न हो तो उत्तर दें।

भावार्थ- हमारे बीच मित्रता का भाव तो स्थापित हो चुका है। इसी मैत्रीभावना से प्रेरित होकर मै कुछ पूछना चाहता हूं। अतः प्रश्न पूछने से पहले ही मै क्षमाप्रार्थी हूं। हे तपस्विनी! मैं एक ब्राह्मण हूं, किंतु फिर भी धृष्टता के साथ मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूं। यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो कृपा उत्तर दें।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- अतोऽत्र= अतः+अत्र, किञ्चिद्भवतीम्=किञ्चित्+भवतीम्, प्रष्टुमनास्तपोधने=प्रष्टुमनाः+तपोधने, तपोधने= तप एव धनं यस्याः सा इति तपोधना (बहुब्रीही समास) तत्सम्बुद्धौ, बहुक्षमाम्=बह्वी क्षमा यस्यां सा ताम् (बहुब्रीही समास), उपपन्नचापलः=उपपन्नं चापलं यस्य सः (बहुब्रीही समास), प्रष्टुमनाः= प्रष्टुं मनः यस्य सः (बहुब्रीही समास), रहस्यम्=रहसि भवम् (सप्तमी तत्पुरुष समास), बहुक्षमाम्=बहु+क्षम्+अण्+टाप्, द्वितिया विभक्ति, एकवचन, प्रतिवक्तुम्=प्रति+वच +तुमुन्

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-परिकर।

छन्द-वंशस्थ।

कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः।

अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तपः फलं स्यात्किमतः परं वद ॥४१॥

प्रसंग- उन्होने पार्वती से कहा कि तुम हरप्रकार की सुख-सम्पदा से सम्पन्न हो, फिर तपस्या करने का क्या कारण है?

अनुवाद-प्रथम प्रजापति के वंश मे तुम्हारा जन्म हुआ है, तुम्हारा शरीर (वह स्थान है, जहां) मानो त्रिलोकों का सौन्दर्य समाहित हो गया है, (तुम्हारे लिये) सम्पत्ति सुख अन्वेषणीय नही है, (तुम्हारी) आयु नवीन है अर्थात् तुम युवा हो, अतः इससे बढकर तपस्या का फल क्या हो सकता है? बताओ।

भावार्थ- ब्रह्मचारी पार्वती से प्रश्न पूछता है कि तुम्हारा जन्म तो इतने महान परिवार में हुआ है। तुम प्रजापति के वंश में जन्मी हो। सुन्दरता की दृष्टिकोण से तुम्हारे सामने कोई तीनों लोकों मे से कोई भी नही टिक सकता है। धन-सम्पदा, वैभव आदि तुम्हारे लिये सरलता से प्राप्तव्य है। तुम नवयुवती भी हो। अतः जब तुम इतनी ज्यादा वैभव-साधन-सम्पन्न हो, तो फिर तुमको इतनी कठोर तपस्या करने का क्या प्रयोजन है? मनुष्य तपस्या करके जो भी प्राप्त करना चाहता है, वह तो पहले से ही तुम्हारे पास है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-

वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितम्=वेधसः+त्रिलोकसौन्दर्यम्+इव+उदितम् (सन्धि), वयस्तपः=वयः+तपः (सन्धि), त्रिलोकसौन्दर्यम्=त्रयाणां लोकानां समाहारः इति त्रिलोकम् (द्विगु समास) तेषां सौन्दर्यम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), ऐश्वर्यसुखम्=ऐश्वर्यस्य सुखम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अमृग्यम्=न मृग्यम् (नञ् समास), प्रसूतिः=प्र+सू+क्तिन्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, अमृग्यम्=नञ्+मृग्+यत्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-उत्प्रेक्षा ।

छन्द-वंशस्थ।

भवत्यनिष्टादपि नाम दु :सहान्मनस्विनीनां प्रतिपत्तिरीदृशी ।

विचारमार्गप्रहितेन चेतसा, न दृश्यते तच्च कृशोदरि त्वयि ॥४२॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी ने कहा कि परिवार एवं समाज से उपेक्षित स्त्रियां तपस्या में प्रवृत्त होती हैं, लेकिन तुम तो अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति हो, तो फिर तुम्हारे द्वारा तपस्या करने का क्या कारण है?

अनुवाद- असहनीय अपमान के कारण मानिनी स्त्रियों की ऐसी (तपस्या मे) प्रवृत्ति होती है। (किन्तु) हे कृशोदरि! विचारपथ से भेजे गये मन से वह भी (ऐसा असहनीय तिरस्कार भी) तुम्हारे विषय में दिखाई नही देती है।

भावार्थ- ब्रह्मचारी ने अपना कौतुहल जारी रखते हुए आगे कहा कि हे देवी! सामान्यतया तो स्त्रियां अपने गृहजनों अथवा परिजनों एवं समाज द्वारा तिरस्कार प्राप्त होने पर वैराग्य भाव से तपस्या की ओर उद्यत होती हैं। लेकिन हे कृशोदरि! तुमने किस कारण से समस्त सांसारिक सुख का त्याग करके इतनी कठोर तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया है? मैने तुम्हारे इस तपस्या के पीछे के कारण को जानने का बहुत प्रयत्न किया। लेकिन किसी भी व्यक्ति के द्वारा किसी भी प्रकार का तिरस्कार तुम्हारे प्रति नही किया गया है। तो फिर तुम्हारे इस कृत्य का कारण क्या है ?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- भवत्यनिष्टादपि= भवति+अनिष्टात्+अपि (सन्धि), दुःसहान्मनस्विनीनाम्=दुःसहात्+मनस्विनीनाम् (सन्धि), प्रतिपत्तिरीदृशी=प्रतिपत्तिः+ईदृशी (सन्धि), तच्च=तत्+च (सन्धि), दुःसहात्=दुःखेन सह्यते तस्मात् (तृतीया तत्पुरुष समास), अनिष्टात्= न इष्टम् इति अनिष्टम् तस्मात् (नञ् समास), विचारमार्गप्रहितेन= विचारस्य मार्गः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्मिन् प्रहितः तेन (सुप्सुपा समास)।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- उत्पेक्षा।

छन्द-वंशस्थ।

अलभ्यशोकाभिभवेयमाकृतिर्विमानना सुभ्रु! कुतः पितुर्गृहे ।

पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं, प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये ॥४३॥

प्रसंग-ब्रह्मचारी ने कहा कि तुम प्रत्येक प्रकार से सम्मानित हो, किसी ने कभी तुम्हारा कभी स्पर्श भी नही किया है, तो फिर तपस्या का क्या कारण है?

अनुवाद- हे सुभ्रु! (तुम्हारी) यह आकृति शोक और तिरस्कार प्राप्त करने योग्य नही है। पितगृह में अवमानना कैसी? किसी परकीय व्यक्ति के द्वारा तुम्हारा स्पर्श भी नही हुआ है। नाग की मणि के अग्रभाग के लिये हाथ कौन बढायेगा।

भावार्थ- हे देवी! तुम्हारा ये शरीर किसी भी प्रकार का दुख एवं तिरस्कार सहन करने का पात्र नही है । पिता का भरपूर प्रेम भी तुमको प्राप्त है । वहां पर किसी भी प्रकार की अवमानना नही हुई है। किसी दुराग्रही व्यक्ति के द्वारा भी तुम्हारा स्पर्श नही किया गया है। अतः पिता के घर में तुमको प्रेम , सम्मान और सुरक्षा प्राप्त थी। भला नाग के मस्तक से मणि को अपने हाथों से छुने का दुस्साहस कौन कर सकता है? तो फिर किस कारण से पिता का गृह त्याग करके तुम इस तपोवन में आयी हो?

व्याकरण सम्बन्धी नियम- पितुर्गृहे=पितुः+गृहेः (सन्धि), तवास्ति=तव+अस्ति (सन्धि), सुभ्रु=शोभने भ्रुवौ यस्याः सा (बहुब्रीही तत्सम्बुद्धौ), अलभ्यशोकाभिभवा=न लभ्यम् अलभ्यम् (नञ् तत्पुरूष समास), शोकेन अभिभवः (तृतीया तत्पुरुष समास), अलभ्यः शोकाभिभवः यस्याः सा (बहुब्रीही समास), पन्नगरत्नसूचये=पन्नं निम्नं गच्छतीति पन्नगः (सुप्सुपा समास), रत्नस्य सूचिः इति रत्नसूचिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पन्नगस्य रत्नसूचिः तस्मै (षष्ठी तत्पुरुष समास), विमानना=वि+मन्+णिच्+युच्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, अभिमर्शः=अभि+मृष्+घञ्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- अर्थान्तरन्यास ।

छन्द-वंशस्थ ।

किमित्यपास्याभरणानि यौवने, धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् ।

वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका, विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥४४॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी ने पुनः प्रश्न किया कि तुमने सांसारिक सुखों का त्याग करके सन्यासीओं वाले वस्त्र क्यों धारण किया है?

अनुवाद- तुम्हारे द्वारा युवावस्था में (धारण करने योग्य) आभूषणों को दूर फेककर , वृद्धावस्था में पहनने योग्य वल्कल को क्यों धारण किया गया है? चन्द्रमा और तारों से प्रकाशित होने वाली रात्रि क्या सूर्योदय की लालिमा को धारण करने में अथवा प्रकाशित करने में समर्थ हो सकती है? बताओ।

भावार्थ- अपनी युवावस्था में ही तुमने वृद्धावस्था में धारण करने योग्य वस्त्र को धारण कर लिया है। तुमने शरीर की शोभा बढाने वाले आभूषणों का त्याग क्यों कर दिया है? चन्द्रमा और तारे जो कि रात्रियों को प्रकाशित करते हैं, वे क्या प्रातःकालीन के सूर्योदय की लालिमा को प्रकाशित करने में समर्थ हो सकते हैं । अतः ये वल्कल वाले वस्त्र तुम्हारी सौन्दर्य को कैसे बढायेगे ?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- किमित्यपास्याभरणानि=किम्+इति+अपास्य+आभरणानि (सन्धि), यद्यरुणाय=यदि+अरूणाय (सन्धि), वार्द्धकशोभि=वृद्धस्य भावः इति वार्द्धकम् (षष्ठी तत्समास), तस्मिन् शोभते (सप्तमी तत्पुरुष समास), स्फुटचन्द्रतारका=चन्द्रश्च तारकाश्च इति चन्द्रतारकाः (द्वन्द्व समास), स्फुटाः चन्द्रतारकाः यस्यां सा (बहुब्रीही समास), अपास्य=अप+अस्+ल्यप्,

विभावरी=वि+भा +वरच्+डीप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, कल्पते=क्लृप्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-उपमा।

छन्द-वंशस्थ।

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रम:, पितु: प्रदेशास्तव देवभूमय: ।

अथोपयन्तारमलं समाधिना, न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ॥४५॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी ने कहा कि तुम एक अमूल्य रत्न हो, और तुमको अपने लिये वर प्राप्ति के लिये तपस्या करने की क्या आवश्यकता है?

अनुवाद- यदि तुम स्वर्ग चाहती हो तो श्रम व्यर्थ है, (क्युंकि) तुम्हारे पिता का प्रदेश ही देवभूमि है। यदि (सुयोग्य) वर की आकांक्षा है (तो भी) समाधि व्यर्थ है, क्युन्कि रत्न को नही ढूढते हैं, वह तो ढूंढा जाता है।

भावार्थ- तुम्हारे इस तपस्या करने का प्रयोजन क्या है? यदि तुम स्वर्ग चाहते हो तो फिर तुम्हारा ये श्रम व्यर्थ है, क्योंकि तुम्हारे पिता का घर तो स्वयं ही स्वर्ग है। सारे देवता यही वास करते हैं। और यदि तुमको अपने लिये सुयोग्य वर की चाह है, तो उसके लिये तपस्या करना उचित नही है, क्योंकि तुम तो एक अमूल्य रत्न हो। और रत्न की खोज तो जौहरी करता है, रत्न अपने जौहरी की खोज नही करता है। अतः किसी भी प्रकार से तुम्हारे द्वारा इतना श्रमसाध्य तप करना उचित नही है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी - प्रदेशास्तव=प्रदेशाः+तव (सन्धि), अथोपयन्तारमलम्=अथ+उपयन्तारम्+अलम् (सन्धि), देवभूमयः=देवानां भूमयः (षष्ठी तत्पुरुष समास), उपयन्तारम्=उप यच्छतीति उपयन्ता तम् (उपपद समास), प्रार्थयसे=प्र+अर्थ्+णिच्, लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन, उपयन्तारम्= उप+यम्+तृच्, द्वितिया विभक्ति, एकवचन, अन्विष्यति=अनु+इष्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-अर्थान्तरन्यास।

छन्द-वंशस्थ।

निवेदितं नि:श्वसितेन सोष्मणा, मनस्तु मे संशयमेव गाहते।

न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते, भविष्यति प्रार्थितदुर्लभ: कथम्? ॥४६॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी ने पुनः सुयोग्य-वर की प्राप्ति के लिये इस तपस्या के औचित्य पर प्रश्न उठाया।

अनुवाद- (तुम्हारी) ऊष्म निःश्वास ने (तुम्हारी वर-प्राप्ति की इच्छा को) व्यक्त कर दिया है, (किन्तु) मेरा मन तो संशय मे डूब रहा है। (क्युंकि) तुम्हारे द्वारा प्रार्थना करने योग्य ही दिखलाई नही पड रहा है। (और यदि है, तो) प्रार्थित (वह वर) दुर्लभ कैसे होगा?

भावार्थ- ब्रह्मचारी द्वारा प्रश्न पूछने पर मर्यादा का पालन करते हुए पार्वती उत्तर तो नही देती हैं किंतु जैसे ही ब्रह्मचारी वर सम्बन्धि प्रश्न पूछते हैं, वैसे ही पार्वती शब्दोच्चारण किये बिना लम्बी सास

छोडती हैं। जिससे ब्रह्मचारी को अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं ही मिल जाता है कि पार्वती की तपस्या का लक्ष्य इच्छित वर की प्राप्ति है। अतः वह कहते हैं कि निःश्वास ऊष्मा ने मेरा उत्तर मुझे दे दिया है कि तुम ये सब मनोवांछित वर की प्राप्ति के लिये कर रही हो। किंतु मै सशंकित हो रहा हूं कि तुमको इसका फल मिलेगा कि नही। क्योंकि इस संसार मे तुमसे श्रेष्ठ कोई वर है ही नही। तुम्हारे जितना सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति भी कहां मिलेगा? और यदि ऐसा कोई सुयोग्य वर है, तो वह स्वयं ही तुम्हारी प्राप्ति के लिये उद्यत होगा। वह तुम्हारे लिये दुर्लभ नही हो सकता है। अतः तुमको तपस्या करने की आवश्यकता ही नही है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- मनस्तु=मनः+तु (सन्धि), प्रार्थयितव्य एव=प्रार्थयितव्यः+एव (सन्धि), सोष्मणा=ऊष्मणा सह वर्तमानमिति सोष्म तेन (बहुब्रीही समास), प्रार्थितदुर्लभः=दुःखेन लब्धुं शक्यः इति दुर्लभः, प्रार्थितश्च दुर्लभः च (कर्मधारय समास), निःश्वसितेन=निस्+श्वस्+क्त, तृतीया विभक्ति, एकवचन, निवेदितम्=नि+विद्+णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- काव्यलिंग।

छन्द-वंशस्थ

अहो स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवा, चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते।

उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः, कपोलदेशे कलमाग्रपिङ्गलाः ॥४७॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी रुप शिव कहते हैं कि जिसके लिये तुम ये तपस्या कर रही हो, वह लगातार तुम्हारी उपेक्षा कर रहा है।

अनुवाद- अहो! तुम्हारे द्वारा ईप्सित युवक कठोर है, जो दीर्घकाल से कर्णकमलों के समान कमलो की शुन्यता को प्राप्त हुए तुम्हारे कपोलों पर, श्लथलम्बिनी धान के अग्रभाग के समान पीत वर्ण की जटाओं की उपेक्षा कर रहा है।

भावार्थ- ब्रह्मचारी अपनी बात को बढाते हुए कहते हैं कि तुम दीर्घकाल से तपस्या कर रही हो, कितुं जिस वर की तुमको चाह है, वह हृदय से कितना कठोर और अभिमानी होगा कि अभी तक उसका हृदय तुम्हारे लिये नही पिघला। तभी तो तुम्हारे ये कपोल जो दीर्घकाल से कर्णफूलों से रहित हैं, और तुम्हारी खुली हुई और सदा लटकने वाली पीले रंग की लम्बी केशों की भी उपेक्षा कर रहा है। तुम्हारे जैसे सुकुमारी की तपस्या से भी उसका हृदय द्रवित नही हो रहा है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- कोऽपि=कः+अपि, तवेप्सितो=तव+ईप्सितः, कपोलदेशे=कपोल एव देशः तस्मिन् (कर्मधारय समास), श्लथलम्बिनीः=श्लथाश्च लम्बिन्यश्च इति श्लथलम्बिन्यः ताः (द्वनद्व समास), कमलाग्रपिङ्गलाः=कलमानाम् अग्राणि इति कलमाग्राणि (षष्ठी तत्पुरुष समास) तानि इव पिङ्गलाः (कर्मधारय समास), ईप्सितः=आप्+सन्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, लम्बिनीः=लम्ब+णिनि+डीप्, द्वितिया विभक्ति, एकवचन, उपेक्षते=उप+ईक्ष्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-उल्लास।

छन्द-वंशस्थ।

मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शितां, दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम्।

शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा, सचेतसः कस्य मनो न दूयते ॥४८॥

प्रसंग- शिव पुनः उस वर की पार्वती के प्रति उपेक्षा की निन्दा करते हैं।

अनुवाद-मुनियों के योग्य व्रतों से (अर्थात् मुनिव्रत को करने से) अत्यन्त दुर्बल हुई तथा (जिसके) सूर्य की किरणों के द्वारा आभुषणो (के धारण करने योग्य शरीर के) स्थान झुलस गये हैं, इसप्रकार दिन में शशांकरेखा अर्थात् चन्द्रमा की रेखा के समान तुमको देखते हुए किस सहृदय का मन दुखी नही होता।

भावार्थ- इतने दीर्घकाल से तुम जो ऐसी कठोर तपस्या कर रही हो, उसके कारण तुम अत्यन्त दुर्बल हो गयी हो, खुले आसमान रहने से तथा सूर्य की पूजा करने से सूर्य की किरणे सीधे तुम्हारे शरीरे जिस अंग पर पडती हैं, वह भी झुलस गया है। अतः आभूषणों से शोभा बढाने वाला तुम्हारा गौर्ण वर्ण शरीर अब श्यामल वर्ण में परिवर्तित हो गया है। अभी तुम्हारी स्थिति ऐसी प्रतीत होती है जैसे कि दिन में चन्द्रकला की होती है। दिन में प्रकाशित सूर्य की किरणों के समकक्ष चन्द्रमा कान्तिहीन प्रतीत होता है, वैसे ही तुम भी स्वास्थ्य हानि को प्राप्त होकर अत्यन्त कृश एवं क्षीण हो गयी हो। और तुम्हारी ऐसी स्थिति को देखकर किसी भी दयालु व्यक्ति का हृदय दुखी हो जायेगा, तो फिर उस वर का हृदय दुखी क्यों नही होता है?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शिताम्=मुनिव्रतैः+त्वाम्+अतिमात्रकर्शिताम् (सन्धि), शशांकलेखामिव=शशांकलेखाम्+इव, मनो नः=मनः+न, मुनिव्रतैः=मुनीनां व्रतानि इति मुनिव्रतानि तैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), सचेतसः=चेतसा सह वर्तमानः इति सचेताः तस्य (बहुव्रीही समास), कर्शिताम्=कृश्+णिच्+क्त+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, दिवाकर=दिवा+कृ+ट, आस्पदाम्=आ+पद्+घञ्, द्वितिया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-उपमा।

छन्द-वंशस्थ।

अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं, तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः।

करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो, न वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः ॥४९॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी के अनुसार वह वर तो दुर्भाग्यशाली है, जो कि तुम्हारे सौन्दर्य को देख ही नही पा रहा है।

अनुवाद- (मै) तुम्हारे प्रिय (वर) को सौभाग्य के मद से वञ्चित समझता हूं, जो कि सुन्दर दिखने वाली कुटिल भौहों वाली इस नेत्र के सामने अपने वक्त्र को दीर्घकाल से लक्ष्य नही बना पा रहा है।

भावार्थ- ब्रह्मचारी कहते हैं कि तुम्हारे द्वारा प्रार्थित वर अवश्य ही दुर्भाग्यशाली है, अतः अभी तक वह तुम्हारे सौभाग्य के मद से वंचित है। अभी तक वह तुम्हारे मधुरावलोकन वाले एवं कुटिल भौहों वाले का वह लक्ष्य नही बन पा रहा है। उसे तुम्हारे सौन्दर्य का लाभ नही मिल पा रहा है, लेकिन इसका कारण वह स्वयं ही है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- यश्चतुरावलोकिनः= यः+चतुरावलोकिनः (सन्धि), चिरमस्य= चिरम्+अस्य (सन्धि), वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः=वक्त्रम्+आत्मीयम्+अरालपक्ष्मणः (सन्धि), सौभाग्यमदेन=सुभगस्य भावः इति सौभाग्यम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य मदः तेन (षष्ठी तत्पुरुष समास), चतुरावलोकिनः=चतुरम् अवलोकते तस्य (द्वितिया तत्पुरुष समास), सौभाग्य=सुभग+ष्यञ्, वञ्चितम्=वञ्च्+णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, चतुरावलोकिनः=चतुर+अव+लोक्+णिनि, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- काव्यलिङग, अनुमान।

छन्द-वंशस्थ।

कियच्चरं श्राम्यसि गौरि! विद्यते, ममापि पूर्वाश्रमसञ्चितं तपः।

तदर्धभागेन लभस्व काङ्क्षितं, वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम्।।५०।।

प्रसंग-ब्रह्मचारी आगे कहते हैं कि तुमने पर्याप्त तपस्या कर ली है, मेरे द्वारा संचित तप के फल का आधा हिस्सा तुम ले लो और मनोवांछित फल को प्राप्त कर लो।

अनुवाद- हे गौरी! (तुम) कब तक (तपस्यारूपी) श्रम करोगी? मेरा भी पूर्वाश्रमसंचित अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में संचित तप है। उसके अर्ध भाग से मनोवांक्षित वर को प्राप्त कर लो। (परन्तु पहले) मै उस वर को भली-भाति जानना चाहता हूं।

भावार्थ- ब्रह्मचारीरुप शिव कहते हैं कि हे देवी! तुमकब तक ऐसे तपस्या करती रहोगी? तुमने पर्याप्त श्रम कर लिया है। मैं भी एक ब्रह्मचारी हूं और मैने भी तपस्या करके तप का संचय कर लिया है। अतः तुम चाहो हो तो मेरे द्वारा एकत्रित तप का आधा भाग भी तुम ले लो, और इच्छित वर की प्राप्ति कर लो। किंतु पहले तुम मुझे उस वर के बारे में विस्तारपूर्वक बता दो, मैं उसके विषय में जानने का इच्छुक हूं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- कियच्चिरम्=कियत्+चिरम् (सन्धि), ममापि=मम+अपि (सन्धि), तमिच्छामि=तम्+इच्छामि (सन्धि), पूर्वाश्रमसञ्चितम्=पूर्वश्च असौ आश्रमः पूर्वाश्रमः (कर्मधारय समास) तस्मिन् सञ्चितम् तम् (सप्तमी तत्पुरुष समास), कांक्षितम्=काङक्षा यस्य सः तम् (बहुब्रीही समास), वेदितुम्=विद्+तुमुन्, सञ्चितम्=सम्+चि+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-गूढोक्ति।

छन्द-वंशस्थ।

इति प्रविश्याभिहिता द्विजन्मना, मनोगतं सा न शशाक शंसितुम्।

अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनीं, विवर्तिनानञ्जननेत्रमैक्षत ।।५१।।

प्रसंग- इसप्रकार ब्रह्मचारी के कहने पर भी लज्जावश पार्वती कुछ कह न सकी। और अपनी सखी को उत्तर देने के लिये इशारा किया।

अनुवाद- इसप्रकार, ब्राह्मण द्वारा (अन्तर्हृदय) मे प्रवेश करके कही गई भी वह पार्वती अपने हृदयस्थ वर को (हृदयस्थ वर के बारे में) न बता सकी, तब अपने पास मे स्थित सखी को तिरछे और काजलरहित नेत्रों से देखा।

भावार्थ- इसप्रकार जब ब्राह्मण ने पार्वती से वर के विषय में जानना चाहा, तो लज्जावश पार्वती कुछ कह न सकी। अतः पास में स्थित अपनी सखी को अञ्जनरहित-तिरछे नेत्रों से सखी को देखा। और नेत्रों से इशारा करते हुए ब्रह्मचारी को उत्तर देने के लिये कहा।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- प्रविश्याभिहिता=प्रविश्य+अभिहिता (सन्धि), द्विजन्मना=द्वे जन्मनी यस्य सः इति द्विजन्मा तेन (बहुब्रीही समास), मनोगतम्=मनः गतम् (द्वितीया तत्पुरुष समास), परिपार्श्ववर्तिनीम्=परिपार्श्वे वर्तते इति परिपार्श्ववर्तिनी तम् (सप्तमी तत्पुरुष समास), विवर्तितानञ्जननेत्रम्=अविद्यमानम् अञ्जनं ययोः ते इति अनञ्जने (बहुब्रीही समास), विवर्तिते अनञ्जने नेत्रे यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), शंसितुम्=शंस्+तुमुन्, शशाक=शक्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, परिपार्श्ववर्तिनीम्=परिपार्श्व+वृत्+णिनि+ङ्ईप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, वयस्याम्=वयस्+यत्+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-अनुप्रास।

छन्द-वंशस्थ।

सखी तदीया तमुवाच वर्णिनं, निबोध साधो तव चेत्कुतूहलम्।

यदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं, कृतं तपःसाधनमेतया वपुः ॥५२॥

प्रसंग- अतः उस पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया।

अनुवाद- उस (पार्वती की) सखी ने उस ब्रह्मचारी से कहा-हे साधु! यदि आपको (जानने की) उत्सुकता है,तो जानिए (सुनिए), जिसके लिये (जिसके प्राप्ति के लिये) इस (पार्वती) के द्वारा कमल को छत्र के समान (अपने) शरीर को तप का साधन बनाया है।

भावार्थ- अतः पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी को उत्तर देना प्रारम्भ किया कि ये देव! यदि आप जानना चाहते हैं तो उस वर के विषय में सुनिये, जिसके लिये पार्वती ने अपने कमल समान कोमल शरीर को तप का साधन बनाया। तात्पर्य यह है कि जैसे धूप से बचने के लिये कमल को छाता बनाना उचित नही है, ऐसी स्थिति में तो कमल झुलस ही जाता है। इसीप्रकार इसने अपने कोमल शरीर को कठोर तपस्या का साधन बनाया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- यदर्थम्भोजमिवोष्णवारणम्=यदर्थम्+अम्भोजम्+इव+उष्णवारणम् (सन्धि), तदीया=तस्याः इयम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), वर्णिनम्=प्रशस्तः वर्णः अस्यां अस्ति इति वर्णिनम् (बहुब्रीही समास), अम्भोजम्=अम्भसि जायते (सप्तमी तत्पुरुष समास), उष्णवारणम्= उष्णं वार्यते (द्वितीया तत्पुरुष समास), तपः साधनम्= तपसः साधनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अम्भोजम्=अम्भसि+जन्+ड, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, उष्णवारणम्=उष्ण+वृ+णिच्+ल्युट्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-उपमा।

छन्द-वंशस्थ।

इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।

अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणिं पतिमात्मुमिच्छति ।।५३।।

प्रसंग- पार्वती की सखी ने कहा कि पार्वती को अन्य किसी की आकांक्षा नही है, केवल शिव उसके मन में बसे हैं।

अनुवाद- मानिनी यह (पार्वती) अत्यधिक ऐश्वर्य वाले इन्द्र आदि चतुर्दिशाओं के स्वामी को उपेक्षित करके मदन अर्थात् कामदेव के दण्डित कर देने के कारण सौन्दर्य से आकृष्ट न होने वाले पिनाक (शिव) को पति रुप मे प्राप्त करना चाहती है।

भावार्थ- मेरी सखी पार्वती अत्यन्त स्वाभिमानी है, अतः ऐश्वर्यशाली इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि देवताओं के धन, सम्पदा, वैभवादि भी उसकी आकृष्ट नही कर सके। इसकी आकांक्षा केवल शिव की प्राप्ति है, किंतु जब कामदेव ने पार्वती की सहायता करनी चाही, और शिव को पार्वती के सौन्दर्य की ओर आकृष्ट कराना चाहा, तो शिव ने क्रोधित होकर उसे भस्म कर दिया। इसप्रकार सौन्दर्य से आकृष्ट न होने वाले शिव की प्राप्ति के लिये तपस्या के अतिरिक्त और उपाय शेष न बचा।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी - महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य= महेन्द्रप्रभृतीन्+अधिश्रियः+चतुर्दिगीशान्+अवमत्य (सन्धि), मानिनी=प्रशस्तः मनः अस्याः अस्तीति मानिनी (बहुब्रीही समास), अधिश्रियः=अधिका श्री येषां ते तान् (बहुब्रीही समास), महेन्द्रप्रभृतीन्=महान् चासौ इन्द्रः महेन्द्रः (कर्मधारय समास), महेन्द्रः प्रभृतिः येषां ते इति महेन्द्रप्रभृतयः तान् (बहुब्रीही समास, न अरुपहार्यम्= हर्तुं योग्यः हार्यः, रुपेण हार्यः इति रूपहार्यः (तृतीया तत्पुरुष समास), न रूपहार्यः (नञ् समास), पिनाकपाणिम्= पिनाकः पाणौ यस्यः सः पिनाकपाणिः तम् (बहुब्रीही समास)।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- अनुमान।

छन्द-वंशस्थ।

असह्यहुंकारनिवर्तितः पुरा, पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः।

इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणोद्, विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः ।।५४।।

प्रसंग- सखी ने कामदेव के बाणों द्वारा घायल पार्वती के हृदय की अवस्था का वर्णन किया।

अनुवाद- पहले (शिवजी की) असह्यहुङ्कार से लौटा दिया गया (तथा) शिव तक जिसका अग्रभाग नही पहुच सका, ऐसे (नष्ट शरीर वाले भी) कामदेव के बाण ने इस पार्वती को हृदय में अति तीव्र प्रहार पूर्वक व्रणित कर दिया।

भावार्थ- कामदेव ने कामरूपी बाण से शिव को निशाना बनाना चाहा तो शिव तो उससे प्रभावित नही हुए। और उन्होने अपने असह्यहुंकार से उस तीर को लौटा दिया। किंतु कामदेव का वह लौटा हुआ तीर पार्वती के हृदय को पूर्णतया द्रवित कर दिया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- व्यायतपातमक्षिणोद्=व्यायतपातम्+अक्षिणोत् (सन्धि), विशीर्णमूर्तेरपि =विशीर्णमूर्तेः+अपि (सन्धि), असह्यहुङ्कारनिवर्तितः=सोढुं योग्यं सह्यम् न सह्यम् इति असह्यम् (नञ् समास), असह्यः हुङ्कारः इति असह्यहुङ्कारः (कर्मधारय समास) तेन निवर्तितः (तृतीया तत्पुरुष समास), पुरारिम्=पुराणाम् अरिम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), पुष्पधन्वनः=पुष्पाणि एव धनुः यस्य सः इति पुष्पधन्वाः तस्य (बहुब्रीही समास), शिलीमुखः=शिली मुखे यस्य सः (बहुब्रीही समास), असह्य=नञ्+सह्+यत्, हुंकार=हुम्+कृ+घञ्, पातम्=पत्+घञ्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-सन्देह।

छन्द-वंशस्थ।

तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे, ललाटिकाचन्दनधूसरालका।

न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं, तुषारसंघातशिलातलेष्वपि ।।५५।।

प्रसंग- पार्वती की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा कि कामदेव के बाणों से आहत होने के बाद से लेकर अभी तक वह सुखपूर्वक नही रह पायी है।

अनुवाद- तब से लेकर पिता के घर में उत्कट कामभावना से युक्त मस्तक पर लगे हुए चन्दन से मटमैले केशों वाली बाला (वह पार्वती) कभी हिमराशि के शिलाखण्डों पर भी सुख को नही प्राप्त करती थीं।

भावार्थ- तब से पार्वती शिव को पाने के लिये सदैव तत्पर रहने लगी। जब वह पिता के घर में निवास कर रही थी, इस प्रेमभावना की पीडा से बचने के लिये मस्तक पर चन्दन का लेप लगाती थी । और स्वंय कॊ शीतलता प्रदान करने का प्रयत्न करती रही, उपचार तो फलित नही हुआ, बल्कि उसके केश भी मटमैले हो गये। शीतलता प्राप्ति के लिये इधर-उधर विचरण करते हुए हिमराशि के शिलाखण्डो पर जाकर शयन भी किया, किंतु फिर भी उसका शीतॊपचार न हो पाया।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-प्रभृत्युन्मदना=प्रभृति+उन्मदना (सन्धि), पितुर्गृहे=पितुः+गृहे (सन्धि), शिलातलेष्वपि=शिलातलेषु+अपि (सन्धि), उन्मदना=उत्कटः मदनः यस्याः सा (बहुब्रीही समास), तुषारसंघातशिलातलेषु=शिलायाः तलानि इति शिलातलानि (षष्ठी तत्पुरुष समास), तुषाराणां संघाताः इति तुषारसंघाताः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तुषारसंघाताः एव शिलातलानि तेषु (कर्मधारय समास), संघात=सम्+हन्+घञ्, निर्वृत्तिम्=निर्+वृत्+क्तिन्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-विशेषोक्ति।

छन्द-वंशस्थ।

उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः, सवाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम्।

अनेकशः किंनरराजकन्यका, वनान्तसंगीतसखीररोदयत् ।।५६।।

प्रसंग- सखी ने पार्वती की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कहा कि उनकी इस अवस्था को देखकर किन्नर राजकन्यायें भी दुखी हो गई।

अनुवाद- इस (पार्वती) ने शिव के चरित के गाये जाने पर अश्रु सहित अतएव गद्गद् कण्ठ से विशीर्ण अर्थात् निकले हुए शब्दों से, वन प्रदेश में संगीत देने वाली किन्नर राजकन्याओं को भी अनेक बार रुला दिया।

भावार्थ- सखी पार्वती की दयनीय स्थिति के बारे में बताते हुए कहती है कि शान्ति एवं सुख की प्राप्ति के लिये पार्वती संगीत मे निपुण किन्नर राजवंश की पुत्रियों के साथ शिवचरित के गीत गाती थी। किंतु शिव के गीत गाते गाते वह रोने लगती थीं। और फिर गला रुद्ध हो जाने के कारण गीत गाने में असमर्थ हो जाती थीं। उनकी इस स्थिति को देखकर किन्नरराजपुत्रियां भी रुदन प्रारम्भ कर देती थीं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- पदैरियम्=पदैः+इयम् (सन्धि), सखीररोदयत्=सखीः+अरोदयत् (सन्धि),उपात्तवर्णे=उपात्तः वर्णः यस्मिन् सः तस्मिन् (बहुब्रीही समास), वनान्तसंगीतसखी= वनस्य अन्तः वनान्तः (षष्ठी तत्पुरुष समास), वनान्ते संगीतम् वनान्तसंगीतम् (सप्तमी तत्पुरुष समास), वनान्तसंगीतेन सख्यः ताः (तृतीया तत्पुरुष समास), किन्नरराजकन्यकाः=कुत्सिताः नराः इति किन्नराः (प्रादि तत्पुरुष समास), तेषां कन्यकाः (षष्ठी तत्पुरुष समास), अनेकशः=न एकशः (नञ् समास), उपात्त=उप+आ+दा+क्त, अरोदयत्=रुद्+णिच्, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-विषम।

छन्द-वंशस्थ।

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं, निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।

क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना ॥५७॥

प्रसंग- सखी के अनुसार पार्वती को प्रत्येक स्थान पर शिव ही दिखाई देते थे, शयन करते हुए भी शिव के होने का आभास होता था।

अनुवाद- रात्रि के तीसरे प्रहर में शेष रहने वाली, क्षण मात्र के लिये नेत्रों को बन्द करके सहसा, 'हे नीलकण्ठ! कहा जा रहे हो? इसप्रकार असम्बद्ध प्रलाप करती हुई मिथ्या ही कण्ठ में अपनी भुजाओं को लपेटती हुई (वह पार्वती) जाग जाती थी।

भावार्थ- पार्वती की स्थिति इतनी दयनीय हो चुकी थी कि उन्हे हर जगह, हर समय शिव की ही अनुभूति होती थी। निद्रा भी उनका साथ छोड चुकी थी, किंतु यदा-कदा जब कभी रात्रि के तीसरे प्रहर में क्षण मात्र के लिये उनकी आंखें बन्द भी हो जाती थीं, तो उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि शिव उनसे दूर जा रहे हैं। अतः वह उन्हे दूर जाने से रोकने का प्रयास करने में रोने लगती थीं। इसप्रकार शिव की अनुपस्थिति में शिव मे रमने वाली पार्वती भ्रमवश शिव को अपने पास समझकर उनके गले में अपनी भूजाओं को लपटने का प्रयास करती थी। और स्वंय ही जाग जाती थीं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-

व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना=व्रजसि+इति+अलक्ष्यवाक्+असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना (सन्धि), त्रिभागशेषासु=शिष्यते इति शेषः, तृतीयः भागः इति त्रिभागः (कर्मधारय समास), त्रिभागः शेषः यासां ताः तासु (बहुब्रीही समास), नीलकण्ठ=नीलः कण्ठः यस्य सः तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही समास), अलक्ष्यवाक्= लक्षितुं योग्या लक्ष्या, न लक्ष्या अलक्ष्या (नञ् समास), अलक्ष्या

वाक् यस्याः सा (बहुब्रीही समास), निमील्य=नि+मील्+ल्यप्, व्यबुध्यत=वि+बुध्, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-अनुप्रास।

छन्द-वंशस्थ।

यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे, न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम्।

इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया, रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः।। ५८।।

प्रसंग- पार्वती के सखी के अनुसार पार्वती प्रायः शिव का आवाहन किया करती थी। और शिव के न आने पर उन्हे उलाहना दिया करती थीं।

अनुवाद- जब तुम (शिव) विद्वानों द्वारा सर्वव्यापक कहे जाते हो, तो फिर रतिभाव में स्थित इस जन को (मुझ पार्वती को) क्यों नही जानते हो? इसप्रकार सरल स्वभाव वाली इसके द्वारा (पार्वती के द्वारा) अपने हस्त से चित्रित चन्द्रशेखर (शिव) को उलाहना दिया गया है।

भावार्थ- शिव के प्रेम में पार्वती इतनी बेसुध हो चुकी थी कि अपने हाथों से शिव का चित्र बनाकर उस चित्र को ही साक्षात शिव समझने लगती थी। और उलाहना देने लगती थी, कि हे शिव! तुम तो सर्वज्ञाता एवं सर्वव्यापी हो, तुमको तो सबकुछ ज्ञात है, तो फिर मेरे इस प्रेम को क्यों नही समझ पा रहे हो?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- सर्वगतस्त्वमुच्यसे=सर्वगतः+त्वम्+उच्यसे (सन्धि), स्वहस्तोल्लिखितश्च=स्वहस्तोल्लिखितः+च (सन्धि), रहस्युपालभ्यत=रहसि+उपालभ्यत (सन्धि), सर्वगतः=सर्वं गतः (द्वितीया तत्पुरुष समास), भावस्थम्=भावे तिष्ठति इति भावस्थः तम् (उपपद तत्पुरुष समास), चन्द्रशेखरः=चन्द्रः शेखरः यस्य सः(बहुब्रीही समास), उल्लिखितः=उत्+लिख्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-स्वभवोक्ति।

छन्द-वंशस्थ।

यदा च तस्याधिगमे जगत्पतेरपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती।

तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरोरियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम्।।५९।।

प्रसंग- और अन्त में जब शिव नही आये, तो पार्वती ने तपस्या करने का निश्चय किया।

अनुवाद- जगत् के स्वामी शंकर के अधिगम अर्थात् प्राप्ति के लिये खोज करती हुई पार्वती ने जब अन्य कोई उपाय नही देखा, तब यह (पार्वती) पिता की आज्ञा से हमारे साथ तपस्या करने के लिये तपोवन में आ गई।

भावार्थ- इसप्रकार विरह में व्याकुल पार्वती ने बहुत प्रकार से अनुनय-विनय करके शिव को प्राप्त करना चाहा। किंतु शिव की प्राप्ति किसी भी प्रकार से सम्भव नही हो सका। तब पार्वती ने शिवप्राप्ति के लिये तपस्या करने का निश्चय किया और इस तपोवन में आ गयी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- तस्याधिगमे=तस्य+अधिगमे (सन्धि), जगत्पतेरपश्यदन्यम्=जगत्पतेः+अपश्यत्+अन्यम् (सन्धि), सहास्माभिरनुज्ञया=सह+अस्माभिः+अनुज्ञया (सन्धि), गुरोरियम्=गुरोः+इयम् (सन्धि), जगत्पतेः= जगताम् पतिः जगत्पतिः तस्य (षष्ठी तत्पुरुष समास), तपोवनम्=तपसं वनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्रपन्ना=प्र+पद्+क्त+टाप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-काव्यलिंग।

छन्द-वंशस्थ।

द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं, फलं तपः साक्षिषु दृष्टमेष्वपि।

न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते, मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः ॥६०॥

प्रसंग- सखी ने कहा कि तपस्या करने के बाद भी पार्वती को शिवरुपफल की प्राप्ति नही हुई।

अनुवाद- सखी पार्वती के द्वारा स्वयं लगाये गये, तपस्या के साक्षीभूत इन वृक्षों मे भी फल दिखाई देने लगा है। किन्तु शिव सम्बन्धी इसकी अभिलाषा अंकुरित होने वाला भी दिखाई नही पडती है।

भावार्थ- पार्वती की सखी आगे कहती है कि तबसे पार्वती आज तक तपस्या कर रही है, किंतु उसे फल की प्राप्ति नही हुई। जबकि यहां रहते हुए उसने जो वृक्षारोपण किया था, वह भी अब बडे होकर फल देने लगे हैं, बस पार्वती की तपस्या ने ही कोई फल नही दिया है, और न ही फल प्राप्ति का कोई लक्षण दिखाई नही दे रहा है। इसके साक्षी स्वंय ये वृक्ष ही हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- दृष्टमेष्वपि=दृष्टम्+एषु+अपि (सन्धि), प्ररोहाभिमुखोऽपि=प्ररोहाभिमुखः+अपि (सन्धि), मनोरथोऽस्याः=मनोरथः+अस्याः, कृतजन्मसु=कृतं जन्म येषां तेषु (बहुब्रीही समास), तपः साक्षिषु=तपसः साक्षिणः तेषु (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्ररोहाभिमुखः=मुखम् अभितः अभिमुखः (प्रादि तत्पुरुष समास), प्ररोहे अभिमुखः (सप्तमी तत्पुरुष समास), प्ररोह=प्र+रुह्+घञ्।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-व्यतिरेक।

छन्द- वंशस्थ।

17.3 पारिभाषिक शब्दावली

शिरोरुह = केश

ध्रुवेच्छाम् = ढृढ संकल्प वाली

मनोरथज्ञ = मन की इच्छा को जानने वाले

अहार्यनिश्चया = ढृढ निश्चय वाली

पद्यसुगन्धिना = कमल के समान सुगन्धित

अनाविलै = पवित्र

मानिनी = स्वाभिमानी

17.4 अभ्यासार्थ प्रश्न-

1. श्लोक संख्या २ की सप्रसंग व्याख्या करें।
2. श्लोक संख्या १५ की सप्रसंग व्याख्या करें।
3. श्लोक संख्या २१ की सप्रसंग व्याख्या करें।
4. श्लोक संख्या ३५ की सप्रसंग व्याख्या करें।

17.5 सारांश

शिव के द्वारा कामदेव के भस्म हो जाने पर पार्वती निराश हो गई, और उसे यह भान हो गया कि बाह्य सौन्दर्य के द्वारा शिव को आकर्षित करना सम्भव नही है। अतः उसने तपोवन में जाकर कठिन तपस्या करने का दृढ निश्चय किया, जिससे उसे शिव पति रुप में प्राप्त हो सके। किंतु उसके इस निश्चय से माता मेना प्रसन्न नही हुई। अतः उन्होने उसे रोकने का प्रयत्न किया। किंतु पार्वती अपने निश्चय पर अडिग रही। अतः पिता हिमालय से आज्ञा प्राप्त करके उसने तपोवन के लिये प्रस्थान किया। और एक तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने लगी। तथा निराजल एवं निराहार रहकर प्रत्येक ऋतु में चाहे ग्रीष्म, शरद, वर्षा आदि समभाव से तपस्या करने से विचलित नही हुई। अतः इसप्रकार तपस्या करते हुए देखकर शिव स्वयं ब्रह्मचारी का वेष धारन करके उस पार्वती की परीक्षा लेने आये।और पार्वती से उसकी तपस्या का कारण पूछा। लज्जावश पार्वती स्वयम् तो उत्तर न दे सकी, अतः अपनी सखी से उत्तर देने के लिये कहा। तब पार्वती की सखी ने पार्वती की तपस्या का कारण बताया कि वह पति रुप में शिव को प्राप्त करना चाहती है। किंतु इतना कष्ट सहने के बाद भी शिवरुप फल की प्राप्ति नही हो पा रहा है।

17.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय प्रद्युम्न, कुमारसम्भवम् (पञ्चम् सर्ग), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013.
2. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, टाइम टेबुल प्रेस, बनारस,1947.
3. शर्मा , उमाशंकर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2007.
4. विश्वेवर आचार्य, काव्यप्रकाश (मम्मट कृत),ज्ञान मण्डल, वाराणसी 1967.

इकाई 18

कुमारसम्भव (पञ्चम सर्ग)
(श्लोक संख्या 61 से 86 की व्याख्या)

इकाई की रुपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 कुमारसभ्भव, पंचम सर्ग (श्लोक संख्या 61 से 86 तक)

18.3 पारिभाषिक शब्दावली

18.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.5 सारांश

18.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.0 उद्देश्य

इस प्रस्तुत इकाई में कालिदास रचित कुमारसम्भवम् महाकाव्य के पंचम सर्ग के श्लोक संख्या ६० से लेकर 86 तक का अध्ययन किया जा रहा है। जिसमें ब्रहमचारी द्वारा शिव कि निन्दा, पार्वती का ब्रह्मचारी पर क्रोधित होना और अन्त में शिव का अपने स्वरूप में प्रकट होना- इस इकाई का अभिधेय है।

18.1प्रस्तावना

17 सर्गों मे कालिदास द्वारा रचित कुमारसम्भवम् नामक इस महाकाव्य में नायक शिव तथा नायिका पार्वती हैं। शिव परमदेव हैं, अतः परमदेव की पति रुप में प्राप्ति के लिये जिसप्रकार से कठिन से कठिन एवं विपरीत परिस्थितियों में पार्वती ने तपस्या करने का अपना ढृढसंकल्प नही छोडा, वह न केवल उसके आत्मविश्वास बल्कि आध्यात्मिक प्रेम की भी पुष्टि करता है। इसी पूरे घटनाक्रम को दर्शाने के लिये कलिदास ने प्रसादगुण का आश्रय लेते हुए पांचवे सर्ग की रचना की है । सामान्यतः भी उनकी रचनाओं मे प्रसाद गुण के ही दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त "उपमा कालिदासस्य" से तो कालिदास की उपमा अलंकार के प्रयोग की निपुणता तो सर्वविदित ही है। अन्य अलंकारों के प्रयोग में भी वे निपुण है, अतः इस महाकाव्य मे भी उत्प्रेक्षा, अर्थातरन्यास, काव्यलिंग, परिकर आदि का उदाहरण देखने को मिलता है। इसप्रकार कलात्मक विशेषताओं से परिपूर्ण कुमारसम्भवम् कालिदास की महान रचनाओं मे से एक है।

18.2कुमारसम्भवम् (पंचम सर्ग) श्लोक संख्या ६१ से ८६ तक की व्याख्या

न वेद्मि स प्रार्थितदुर्लभः कदा, सखीभिरस्त्रोत्तरमीक्षितामिमाम्।

तपः कृशामभ्यवपत्स्यते सखीं, वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम् ॥६१॥

प्रसंग- पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी से पार्वती की स्थिति को लेकर अपनी चिन्ता व्यक्त की।

अनुवाद- (पार्वती की सखी कहती है कि पार्वती के द्वारा) प्रार्थित होने पर भी दुर्लभ वह (शिव), तपस्या के कारण दुर्बलता (को प्राप्त), (तथा) सखियों के द्वारा अश्रुधारा के साथ देखी गई इस पार्वती सखी को उसीप्रकार कब अनुगृहीत करेगें, जिसप्रकार स्वयं के द्वारा वर्षा के रोक जाने से पीडित एवं जोती हुई भूमि को इन्द्र अनुगृहीत करता है, यह मैं नही जानती।

भावार्थ- पार्वती की सखी ब्रह्मचारी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए अपनी सखी के विषय मे चिन्ता करते हुए कहती है कि इतना तपस्या करने के बाद भी शिव अभी भी पार्वती को प्राप्त नही हुए हैं। निरन्तर तपस्या करने के कारण पार्वती दिन प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही है। निरन्तर उसके नेत्रों से अश्रु की धारा भी बहती रहती है। पता नही, शिव कब उसका पाणिग्रहण करके उस पर कृपा करेंगा । भाव यह है कि जिसप्रकार वर्षा न करने के कारण सूखी हुई भूमि इन्द्र की कृपापात्री होने का इंतजार करती है, उसी प्रकार यह पार्वती शिव की कृपापात्र होने के लिये व्याकुल है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-

सखीभिरस्त्रोत्तरमीक्षितामिमाम्=सखीभीः+अस्त्रोत्तरम्+ईक्षिताम्+इमाम् (सन्धि), वृषेव=वृषा+इव (सन्धि), प्रार्थितदुलर्भः=प्रार्थितश्चासौ दुर्लभः (कर्मधारय समास), तपः कृशाम्=तपसः कृशा ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अस्त्रोत्तरम्=अस्त्रम् उत्तरं यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), दुर्लभः=दुर्+लभ् +खल्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, ईक्षिताम्=ईक्ष्+क्त+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, अभ्युपपत्स्यते=अभि+उप+पद्, लृट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-उपमा ।

छन्द-वंशस्थ।

अगूढसद्भावमितीङ्गतज्ञया, निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया।

अयीदमेवं परिहास इत्युमामपृच्छदव्यञ्जितहर्षलक्षणः ॥६२॥

प्रसंग- पार्वती की सखी द्वारा बताई गई पार्वती की स्थिति को सुनकर ब्रह्मचारी ने पार्वती से स्वयं इस बात की प्रमाणिकता जाननी चाही।

अनुवाद- (पार्वती के हृदय की बात को) इंगित करने वाली उस सखी के द्वारा इसप्रकार सद्भाव को बिना छुपाये हुए अर्थात् प्रकाशित किये हुए सुन्दर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ने हर्ष के लक्षण को प्रकाशित न करते हुए उमा अर्थात् पार्वती से पूछा कि हे देवी! यह (बात) ऐसी है या परिहास है?

भावार्थ- इसप्रकार पार्वती के तपस्या का कारण सखी के द्वारा बताया गया। जिसे सुनकर ब्रह्मचारी शंकित मन हो जाते हैं, तथा खिन्न मन से पार्वती से इस बात की सत्यता के विषय मे जानना चाहते हैं। वह पूछते हैं कि क्या शिव के प्रति तुम्हारा अनुराग सत्य है अथवा यह परिहासपूर्वक कही गयी बात है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-अगूढसद्भावमितीङ्गतज्यया=अगूढसद्भावम्+इति+इङ्गितज्यया (सन्धि), नैष्ठिकसुन्दरस्तया=नैष्ठिकसुन्दरः+तया (सन्धि), अयीदमेवं=अयि+इद्म्+एवम् (सन्धि), परिहास

इत्युमामपृच्छदव्यञ्जितहर्षलक्षणः=परिहासः+इति+उमाम्+अपृच्छत्+अव्यञ्जितहर्षलक्षणः (सन्धि), इङ्गितज्यया=इङ्गितं जानातीति इङ्गितज्ञा तया (उपपद तत्पुरुष समास), अगूढसद्भावम्=न गूढः इति अगूढः (नञ् समास), सः चासौ भावः इति सद्भावः (कर्मधारय समास), नैष्ठिकसुन्दरः=नैष्ठिकश्च असौ सुन्दरः (कर्मधारय समास), अगूढ=नञ्+विद् +णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, नैष्ठिक=निष्ठा+ठञ्।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-परिकर।

छन्द-वंशस्थ।

अथाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौ, समर्पयन्ती स्फटिकाक्षमालिकाम्।

कथंचिदद्रेस्तनया मिताक्षरं, चिरव्यवस्थापितवागभाषत ॥६३॥

प्रसंग- अतः पार्वती ने झिझकते हुए ब्रह्मचारी के प्रश्न का अत्यन्त अल्प शब्दों मे उत्तर देने का प्रयत्न किया।

अनुवाद- ब्रह्मचारी के प्रश्न पूछने के बाद हिमालय पर्वत की पुत्री ने कलियों के समान (परस्पर) जुडी हुई ऊंगलियों वाले हाथ के अग्रभाग में स्फटिक से निर्मित जपमाला को धारण करके देर तक अपनी बात (जो वह कहने वाली थीं) को (मन में) व्यवस्थापित करके किसीप्रकार अल्पशब्दों मे कहा।

भावार्थ- इसप्रकार पुनः ब्रह्मचारी द्वारा प्रश्न पूछने पर पार्वती उत्तर देने के लिये तैयार होती है। उत्तर देने से पूर्व वह स्फटिक की माला से जप कर रही थी। किंतु अभी स्फटिक की माला को उसने अपने हाथ में ही रोक और थोडी देर जप करने पर विराम लगा दिया। और उत्तर देने के लिये मन ही मन में वह अपने शब्दों को व्यवस्थित करने लगी और कम से कम शब्दों में उत्तर देने का प्रयत्न करने लगी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी - अथाग्रहस्ते=अथ+अग्रहस्ते (सन्धि), कथञ्चिदद्रेस्तनया=कथञ्चित्+अद्रेः+तनया (सन्धि), मुकुलीकृताङ्गुलौ= न मुकुलाः अमुकुलाः (नञ् समास), अमुकुलाः मुकुलाः कृता इति मुकुलीकृताः, मुकुलीकृताः अङ्गुलयः यस्य सः तस्मिन् (बहुब्रीही समास), अग्रहस्ते=अग्रश्चासौ हस्तश्च इति अग्रहस्तः तस्मिन् (कर्मधारय समास), स्फटिकाक्षमालाम्=स्फटिकानाम् अक्षमालिका ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), मिताक्षरम्=मितानि अक्षराणि यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), मुकुलीकृत=मुकुल+च्वि+कृ+क्त, व्यवस्थापित=वि+अव+स्था+णिच्+क्त।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-स्वभावोक्ति।

छन्द-वंशस्थ।

यथाश्रुतं वेदविदां वर त्वया, जनोऽयमुच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः।

तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं, मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥६४॥

प्रसंग- अतः पार्वती ने प्रश्नों का उत्तर दिया कि एकमात्र तपस्या ही शिवप्राप्ति का साधन है।

अनुवाद- हे वेदों को जानने वाले! आपके द्वारा जो सुना गया, यह व्यक्ति (अर्थात् मैं) उच्च पद की प्राप्ति के लिये उत्सुक है। निश्चय ही यह तप उसकी प्राप्ति का साधन है, क्योंकी मनोरथों की विफलता नही होती है।

भावार्थ- पार्वती ने अपनी सखी द्वारा कही गई बातों पर स्वीकरोक्ति दी। और कहा कि शिव को पति के रुप में प्राप्त करके मैं एक उच्च पद पर आसीन होना चाहती हूं। अतः मैं तपस्या करना चाहती हूं। क्योंकि तपस्या ही एक ऐसा साधन है, जो कभी व्यर्थ नही होता है, उसका फल अवश्य ही प्राप्त होता है। अतः तपस्या करने से मुझे भी शिव की प्राप्ति अवश्य ही होगी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-किलेदं=किल+इदम् (सन्धि),

मनोरथानामगतिर्न=मनोरथानाम्+अगतिः+न (सन्धि), वेदविदाम्=वेद+विद् +क्विप्, षष्ठी विभक्ति,

बहुवचन, अगतिः=अव+गम्+क्तिन्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-अर्थान्तरन्यास।

छन्द-वंशस्थ।

सूक्ति- तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं, मनोरथानामगतिर्न विद्यते अर्थात् किसी भी प्रकार की तपस्या करने से अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य ही होती है।

अथाह वर्णी विदितो महेश्वरस्तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्तसे।

अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं, तवानुवृत्तिं न च कर्तुमुत्सहे ॥६५॥

प्रसंग- पार्वती के इसप्रकार उत्तर देने पर ब्रह्मचारी का रुप धारण किये हुए शिव ने स्वयं अपनी ही निन्दा की, जिससे पार्वती की अन्तिम परीक्षा लिया जा सके।

अनुवाद- इसके बाद ब्रह्मचारी ने कहा- महेश्वर (शिव) विदित है (मेरे द्वारा), फिर भी तुम उसी की अभिलाषिणी हो। अमांगलिक विषयों से सतत प्रेम करने वाला उनको जानकर मैं तुम्हारा समर्थन करने में उत्साह नही रखता हूं।

भावार्थ- पार्वती के इसप्रकार उत्तर देने पर ब्रह्मचारी ने प्रत्युत्तर देना प्रारम्भ किया। उस ब्रह्मचारी के अनुसार वह शिव को भली-भाति जानता है, उसके सारे सद्गुणों एवं दुर्गुणों से वह पूर्णतया वह परिचित है। ब्रह्मचारी कहते हैं कि शिव तो सारे अमांगलिक विषयों जैसे भूत-प्रेत, श्मशान, चिता की राख के प्रति ही अनुरक्त रहता है। अतः मुझे तुम्हारे प्रियतम के विषय में सुनकर कोई प्रसन्नता नही हुई। और उसके प्रति तुम्हारा उत्साहवर्धन करने एवं समर्थन करने में मेरा उत्साह समाप्त हो गया है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी - विदितो महेश्वरस्तदर्थिनी=विदितः+महेश्वरः+तदर्थिनी (सन्धि), वर्णी=प्रशस्तः वर्णः यस्य अस्ति (बहुब्रीही समास), महेश्वरः=महान् चासौ ईश्वरः (कर्मधारय समास), अमंगलाभ्यासरतिम्=अमंगलस्य अभ्यासः (षष्ठी तत्पुरुष समास) अमंगलाभ्यासे रतिः यस्य सः तम् (बहुब्रीही समास), अभ्यास=अभि+अस्+घञ्, विचिन्त्य=वि+चिन्त्+णिच्+ल्यप्।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-काव्यलिंग।

छन्द-वंशस्थ।

अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः।

करेण शम्भोर्वलयीकृताहिना, सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम् ॥६६॥

प्रसंग- ब्रह्मचारीरुप शिव पार्वती के चयन के प्रति असंतुष्टि दिखाते हुए अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं।

अनुवाद- तुच्छ वस्तुओं मे आग्रह रखने वाली देवी! वैवाहिक मंगलसूत्र से युक्त तुम्हारा ये हाथ सर्प का कंगन पहनने वाले शम्भु के हाथ के द्वारा प्रथम अवलम्बन को कैसे सहेगा?

भावार्थ- अभी भी शिव की निन्दा करते हुए ब्रह्मचारी कहते हैं कि हे देवी। तुम तो मूल्यहीन वस्तुओं से प्रेम करने वाली हो। भला ये तो बताओ कि तुम्हारी और शिव की जोडी किसप्रकार से उचित लग सकती है? विवाह के समय मंगलसूत्र पहनने वाले तुम्हारे हाथों मे सर्प को कंगनरुप मे पहनने वाले शिव का हाथ कैसा लगेगा? क्या तुमको भय नही लगेगा? ये जोडी तो असंगत होगी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी - करोऽयम्=करः+अयम् (सन्धि), अवस्तुनिर्बन्धपरे=अप्रशस्तं वस्तु इति अवस्तु (नञ् समास), अवस्तुनि निर्बन्धः इति अवस्तुनिर्बन्धः (सप्तमी तत्पुरुष समास), अवस्तुनिर्बन्धः एव प्रधानं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही समास), तत्प्रथमावलम्बनम्= प्रथमम् अवलम्बनं प्रथमावलम्बनम् (कर्मधारय समास), तदेव प्रथमावलम्बनम् (कर्मधारय समास), वलयीकृत=वलय+च्वि+कृ+क्त।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-विषम।

छन्द-वंशस्थ।

त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं, कदाचिदेते यदि योगमर्हतः।

वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च ।६७॥

प्रसंग- पुनः ब्रह्मचारी शिव और पार्वती के जोडे को अनुपयुक्त बताते हैं।

अनुवाद- तुम स्वयं ही इतना तो विचार करो कि कलहंसों से चित्रित नववधू का वस्त्र और रुधिर की बूंदों का वर्षा करने वाले गजचर्म, ये दोनो कभी भी (एक-दूसरे के साथ) मिलने योग्य हैं?

भावार्थ- पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव पार्वती को समझाने का प्रयत्न करते हुए कहते हैं कि विवाह में तुम तो कलहंसों से रंगी गई चुनरी को ओढोगी, और तुम्हारा वह शिव तो ऐसे गजचर्म को धारण करेगा, जिससे कि रक्त की बूंदों गिरती रहती हैं। ऐसा शिव तो तुम्हारे योग्य किसी भी प्रकार से नही है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- वधूदुकूलम्=वध्वाः दुकूलम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), गजाजिनम्=गजस्य अजिनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-विषम।

छन्द-वंशस्थ।

चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः, परोऽपि को नाम तवानुमन्यते।

अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयोर्विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु ।६८॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी पार्वती से पूछते हैं कि तुम किसप्रकार शिव के साथ श्मशान में निवास करोगी?

अनुवाद- चतुष्कोण वाले आंगन में बिखरे हुए पुष्पों पर रखे जाने वाले तुम्हारे चरणों के लाक्षारस से रंजित (तुम्हारे) पदचिह्नों को बिखरे हुए केशों वाले श्मशान की भूमि पर रखने की क्या कोई शत्रु भी अनुमति दे सकता है?

भावार्थ- पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप धारण किये हुए शिव ने पुनः पार्वती से कहा कि तुम्हारे पिता के गृह मे तो जहां जहां तुम चलती हो, वहां वहां पुष्प बिखरे रहते हैं ताकि तुमको किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। किंतु विवाहोपरान्त तुम लाक्षारस से रंजित अपने चरणों को श्मशान भूमि मे कैसे रखोगी, जहां पर शवों के केश बिखरे रहते हैं। तुम्हारा कोई शत्रु भी तुमको इस विवाह के लिये परामर्श नही देगा।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- अलक्तकाङ्कानि=अलक्तकः अङ्कः येषां तानि (बहुब्रीही समास), विकीर्णकेशासु=विकीर्णाः केशाः यासु ताः तासु (बहुब्रीही समास), चतुष्क=चतुर्+कन्, प्रकर=प्र+कृ+अप्, परेत=परा+इ+क्त।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-पर्यायोक्त ।

छन्द-वंशस्थ।

अयुक्तरूपं किमतः परं वद त्रिनेत्रवक्षः सुलभं तवापि यत्?

स्तनद्वयेऽस्मिन्हरिचन्दनास्पदे, पदं चिताभस्मरजः करिष्यति ॥६९॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी पार्वती को कहते हैं कि मृत शरीर की चिता के भस्म का लेप करने वाले शिव का स्पर्श भी तुम कैसे कर पाओगी।

अनुवाद- तीन नेत्र जिसके हैं ऐसे शिव का वक्ष तुमको सुलभ होने पर भी, इससे अधिक क्या अनुचित हो सकता है, बोलो, कि हरिचन्दन से अनुलिप्त तुम्हारे इस स्तनद्वय पर चिता की भस्म की रज लग जायेगी।

भावार्थ- - पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव पार्वती को पुनः अपना ही उपहास करते हुए कहते हैं कि उस शिव के तो तीन नेत्र हैं, जो कि कुरुपता की निशानी है, वह शिव तो अपने वक्ष पर चिता की भस्म लगाये रहते हैं, ऐसे शिव का आलिंगन तुम कैसे करोगी? तुम्हारे भी स्तनद्वय पर उस अमांगलिक चिता की राख लग जायेगी। अतः तुमको उससे विवाह नही करना चाहिये।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- स्तनद्वयेऽस्मिन्=स्तनद्वये+अस्मिन् (सन्धि), त्रिनेत्रवक्षः=त्रीणि नेत्राणि यस्य सः त्रिनेत्रः (बहुब्रीही समास), तस्य वक्षः (षष्ठी तत्पुरुष), हरेः चन्दनं हरिचन्दनम् (षष्ठी तत्पुरुष) तस्य आस्पदम् (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्य आस्पदम् तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष समास), स्तनद्वये=स्तनयोः द्वयम् तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष समास), सुलभम्=सु+लभ्+खल्, प्रथमा विभक्ति,एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-विषम ।

छन्द-वंशस्थ।

इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना, यदूढया वारणराजहार्यया।

विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया, महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ॥७०॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी पुनः प्रश्न पूछते हैं कि तुम किसप्रकार हाथी की स्थान पर बैल की सवारी कर पाओगी?

अनुवाद- तुम्हारे सामने एक और विडम्बना होगी कि गजराज के द्वारा ले जाने योग्य नवविवाहिता तुमको वृद्ध बैल पर अधिष्ठित देखकर मान्यजन हसने लगेगें।

भावार्थ- इसके अतिरिक्त एक और बात तुमको लज्जित कर देगी,क्योंकि विवाह के उपरान्त तुमको गजराज पर बैठाकर अपने ससुराल नही ले जाया जायेगा, बल्कि तुम वृद्ध बैल की सवारी करोगी। और यह तो हिमालय की पुत्री के लिये ही नही, बल्कि हर नवविवाहिता के लिये उपहास का विषय हो जायेगा। तुमको बैल पर बैठाकर ससुराल जाते देखकर सारे लोग उपहास करेंगे। क्या ये सब तुम सहन कर पाओगी?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- तेऽन्या=ते+अन्या (सन्धि), वृद्धोक्षम्=वृद्धश्चासौ उक्षा वृद्धोक्षः तम् (कर्मधारय समास), महाजनः=महान् चासौ जनः (कर्मधारय समास), स्मेरमुखः=स्मेरं मुखं यस्य सः (बहुब्रीही समास), विडम्बना=वि+डम्ब्+णिच्+युच्+टाप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, ऊढया=वह्+क्त+टाप्, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-विषम ।

छन्द-वंशस्थ।

द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः।

कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी॥७१॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी के अनुसार पार्वती और चन्द्रमा दोनो ही शिव-प्राप्ति की इच्छा करने के कारण दयनीय स्थिति में हैं ।

अनुवाद- पिनाकि अर्थात् शिव को प्राप्त करने की इच्छा से इससमय दोनों की (पार्वती और चन्द्रमा की) की शोचनीय स्थिति है, (प्रथम व्यक्ति है-) चन्द्रमा की वह कान्ति वाली कला और (और दुसरा व्यक्ति है-) इस संसार की नेत्रकौमुदी (अर्थात्) तुम।

भावार्थ- ब्रह्मचारी कहते हैं कि मुझे तो लगता है कि तुम्हारी और इस चन्द्रकला की स्थिति एक जैसी ही है। तुमदोनों ही शोचनीय स्थिति में हो, क्योंकि चन्द्रकला, जो स्वयं मे कान्तियुक्त है, सदैव शिव की सिर पर विद्यमान रहना चाहती है। और तुम, जो कि संसार की नेत्रकौमुदी हो, शिव से विवाह करके अपनी स्थिति दयनीय बनानी चाहती हो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- समागमप्रार्थनया=समागमस्य प्रार्थना तया (षष्ठी तत्पुरुष समास), कलावतः= कला अस्ति अस्य इति कलावत् तस्य (बहुब्रीही समास), कान्तिमती=कान्तिः अस्याः अस्ति इति (बहुब्रीही समास), नेत्रकौमुदी=नेत्रयोः कौमुदी द्वयम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), द्वयम्=द्वौ अवयवौ यस्य तत् (बहुब्रीही समास), समागम=सम्+आ+गम्+अप्, शोचनीयताम्=शुच्+णिच्+अनीयर्+तल्+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-दीपक।

छन्द-वंशस्थ।

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता, दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।

वरेषु यद् बालमृगाक्षि! मृग्यते, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ॥७२॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी शिव की निन्दा करते हुए कहते हैं कि शिव में तो शारीरिक विकृतियां भी हैं, तथा उनके कुल का भी पता नही है।

अनुवाद- (शिव का) शरीर विषम नेत्रों वाला है, उसके जन्म का कुछ पता नही है, दिगम्बररुप रहने से धन का भी पता चलता है। हे बाल मृग के नेत्रों के समान नेत्र वाली! वरों मे जो (गुण) ढूंढे जाते हैं, क्या शिव में एक भी हैं?

भावार्थ- पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव पार्वती को अपने ही शारीरिक सौन्दर्य और कुल के विषय में अपशब्द कहते हैं कि वह शिव तो शारीरिक विकृतियों वाला है, उसके तीन नेत्र हैं, उसका जन्म कब और किसके वंश मे हुआ है, इसका भी कोई ज्ञान नही है। धन के अभाव के कारण वह वस्त्रहीन विचरण करता है। अतः विवाह के लिये जो भी गुण एक वर में देखे जाते हैं, वैसा कोई भी गुण इस शिव में नही है। जबकि तुम्हारे नेत्र तो मृग के समान सुन्दर हैं, और हरप्रकार की सुख-सम्पदा से तुम परिपूर्ण हो। तो तुमको उस शिव की क्या आवश्यकता है?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- विरूपाक्षम्=विगतं रूपं यस्य तत् इति विरूपम् (बहुब्रीही समास), विरूपम् अक्षि यस्य तत् (बहुब्रीही समास), दिगम्बरत्वेन=दिगेव अम्बरं यस्य सः दिगम्बरः (बहुब्रीही समास), तस्य भावः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेन, त्रिलोचने=त्रीणि लोचनानि यस्य सः यस्मिन् (बहुब्रीही समास), बालमृगाक्षि=बालमृग+अक्षि+षच्+ ङीप्, सम्बोधन, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-परिकर।

छन्द-वंशस्थ।

निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः, क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा।

अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी, श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥७३॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी शिव की निन्दा करना जारी रखते हैं।

अनुवाद- इस अनिष्ट मनोरथ से (अपने) मन को हटा दो। उसप्रकार का (शिव) कहां? और पुण्यलक्षणों वाली तुम कहां? साधु जन के द्वारा श्मशानभूमि में गढे हुए खूटे का वैदिकी यज्ञीय स्तम्भ के जैसा सत्कार अपेक्षित नही होता है।

भावार्थ- पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव पार्वती को इस विवाह को करने से मना करने का सलाह देते हैं। शिव से विवाह करने की इच्छा अनिष्टकारी है। उससे सम्बन्धित कोई भी वस्तु कल्याणकारी नही है, और तुम तो सर्वगुणसम्पन्न हो। अतः तुम कहां और वह शिव कहां? श्मशान भूमि में गडे हुए खूटे का प्रयोग यज्ञ में नही किया जा सकता है। और तुम इसी यज्यीय स्तम्भ के समान हो, जिसका स्थान श्मशान मे नही हो सकता है। साधुजन भी यही विचार रखते हैं। अतः तुमको श्मशान में रहने वाले शिव से विवाह करने का विचार छोड देना चाहिये।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः= निवर्तय+ अस्मात् असदीप्सितात्+ मनः (सन्धि), तद्विधस्त्वं=तद्विधः+त्वम् (सन्धि), पुण्यलक्षणा=पुण्यानि लक्षणानि यस्याः सा (बहुब्रीही समास), साधुजनेन=साधुश्चासौ जनः साधुजनः तेन (कर्मधारय समास), श्मशानशूलस्य=श्मशानस्य शूलं तस्य (षष्ठी तत्पुरुष समास), यूपक्रिया=यूपस्य सत्क्रिया (षष्ठी तत्पुरुष समास), वैदिकी=वेद+ठञ्+ ङीप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-विषम, दृष्टान्त।

छन्द-वंशस्थ।

इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि, प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया।

विकुञ्चितभ्रूलतमाहिते तया, विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते ॥७४॥

प्रसंग- ब्रह्मचारी के इस प्रकार के कथन को सुनकर पार्वती क्रोधित हो जाती है।

अनुवाद- इस प्रकार ब्राह्मण के द्वारा प्रतिकूल वचन बोलने पर कांपते हुए होठों से जिसका क्रोध प्रकट हो रहा था, (ऐसी) उस (पार्वती) के द्वारा लाल (हुई) नेत्रों के प्रान्त भाग से भौहों को टेढा करके वक्र दृष्टि डाली गई।

भावार्थ- पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव ने जब इस प्रकार का वचन बोले, तो पार्वती अत्यन्त क्रोधित हो उठी। उसके ओंठ कापने लगे। और उसके नेत्र भी क्रोधवश लाल हो गये। और कांपते हुए होठों से ऐसे अप्रिय वचन बोलने वाले ब्रह्मचारी को क्रोधित होकर वक्र दृष्टि से देखने लगी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- तिर्यगुपान्तलोहिते=तिर्यक्+उपान्तलोहिते, द्विजातौ=द्वे जाती यस्य सः द्विजातिः तस्मिन् (बहुब्रीही समास), प्रतिकूलवादिनि=कूलं प्रतिगतं प्रतिकूलम्(प्रादि समास), प्रतिकूलं वदतीति प्रतिकूलवादी तस्मिन्(उपपद समास), तिर्यक्=तिरः अञ्चति इति तिर्यक् (उपपद समास), प्रवेपमान=प्र+वेप्+शानच्, तिर्यक=तिरस्+अञ्च्+क्विप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-स्वभावोक्ति।

छन्द-वंशस्थ।

उवाच चैनं परमार्थतो हरं, न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम्।

अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं, द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ॥७५॥

प्रसंग- क्रोधित पार्वती उस ब्रह्मचारी से उसके अज्यानता के विषय में कहती हैं।

अनुवाद- (पार्वती) इस (ब्राह्मण) से बोली, तुम निश्चय ही वास्तव में हर अर्थात् शिव को नही जानते हो। क्योंकि (इसीलिये) मुझसे इसप्रकार कह रहे हो। मन्द बुद्धि वाले (मनुष्य) अलौकिक और दुर्बोध कारण वाले महात्माओं के चरित्र से द्वेष करते हैं।

भावार्थ- क्रोध के वशीभूत होकर पार्वती ने ब्राह्मण को कहा कि निश्चय ही तुम मेरे शिव के विषय में कुछ नही जानते हो, इसी कारण ऐसे अपशब्दों का प्रयोग कर रहे हो। ऐसा लगता है कि तुम

अल्पबुद्धि वाले हो, तभी तो शिव की वास्तविकता न जानकर उस महात्मा शिव के प्रति द्वेषपूर्ण प्रलाप कर रहे हो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- चैनं=च+एनम् (सन्धि), यत एवमात्थ=यतः+एवम्+आत्थ (सन्धि), मन्दाश्चरितं=मन्दाः+चरितम् (सन्धि), परमार्थतः=परमश्चासौ अर्थः परमार्थः तस्मात् (कर्मधारय समास), अचिन्त्यहेतुकम्=न चिन्त्यः अचिन्त्यः (नञ् समास), अचिन्त्यः हेतुः यस्य तत् (बहुब्रीही समास), महात्मनाम्=महान् आत्मा येषां ते महात्मनः तेषाम् (बहुब्रीही समास), आत्थ=ब्रू+लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

अलंकार-अर्थान्तरन्यास।

छन्द-वंशस्थ।

सूक्ति- द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् अर्थात् मूर्ख जन महात्माओं से द्वेष रखते हैं अर्थात् अज्ञानीजन को ज्ञानी जन की बुद्धिमता से द्वेष रहता है।

विपत्प्रतीकारपरेण मंगलं, निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा।

जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः, किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः॥७६॥

प्रसंग- क्रोधित पार्वती ने शिव की महिमा का बखान करना प्रारम्भ किया।

अनुवाद- विपत्ति का प्रतीकार करने में तत्पर अथवा ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले के द्वारा मांगलिक वस्तु का भोग किया जाता है। जगत के रक्षक और निराशिष शिव का इन तृष्णा के कारण कलुषित कर दी गई अन्तःकरण की वृत्तियों से क्या प्रयोजन?

भावार्थ- पार्वती शिव के तिरस्कार के विषय मे कहती हैं, कि मांगलिक और अमांगलिक सांसारिक वस्तुओं के प्रति आग्रह रखने वाले मनुष्यों के लिये हैं। जिसे विपत्तियों से भय लगता है, और जो ऐश्वर्य का अभिलाषी है, उसके लिये ही मांगलिक-अमांगलिक वस्तुओं का भेद महत्व रखता है। किंतु शिव तो भगवान हैं, वह जगत् के रक्षक हैं, उन्हे किससे भय हो सकता है? महान् योगी होने के कारण उन्हें किसी भी वस्तु की इच्छा ही नही है, न केवल सम्पूर्ण प्राणी-जगत् बल्कि देवताओं की भी इच्छापूर्ति करने वाले शिव को किसकी इच्छा हो सकती है। ये सारी वस्तुएं तो मन को कलुषित करने वाली है। इनका शिव से क्या सम्बन्ध है?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- भूतिसमुत्सेकेन=भूत्यां भुतौ वा समुत्सुकः तेन (षष्ठी या सप्तमी तत्पुरुष समास), निराशिषः=निर्गता आशीः यस्य सः निराशी तस्य (बहुब्रीही समास), प्रतीकार=प्रति+कृ+घञ्, उपहत=उप+हन्+क्त।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार-परिकर।

छन्द-वंशस्थ।

अकिंचनः सन् प्रभवः स संपदां, त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।

स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते, न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥७७॥

प्रसंग- पार्वती शिव के परस्पर विरोधी गुणों का भी बखान करती है।

अनुवाद- वह (शिव) धनरहित होते हुए भी सम्पदाओं का कारण है, श्मशान में रहते हुए भी तीनों लोकों का स्वामी है, भयंकर रुप होने पर भी वह कल्याणाकारी है- ऐसा कहा जाता है। पिनाकि के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला (कोई) नही है।

भावार्थ- पार्वती शिवचरित का वर्णन करते हुए कहती हैं कि शिव को किसी भी भौतिक सम्पदा की क्या आवश्यकता है? वह तो स्वयं ही धन-सम्पदाओं का कारण है। श्मशान में रहते हुए भी वह तीनों लोको के स्वामी है। उनका रुप भले की भयंकर प्रतीत होता है, किंतु उनका वही रुप सबके लिये कल्याणकारी है। और यह सर्वविदित है । इस महादेव शिव के यथार्थ स्वरूप को जानना किसी के भी बस की बात नही है। अतः तुमको शिव के स्वरुप का बोध कैसे हो पायेगा? तुम तो सांसारिक वस्तुओं को ही मूल्यवान समझते हो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- स सम्पदां= सः+ सम्पदाम् (सन्धि), शिव इत्युदीर्यते= शिवः+इति+उदीर्यते (सन्धि), अकिञ्चनः=नास्ति किञ्चन यस्य सः (बहुब्रीही समास), त्रिलोकनाथ= त्रीणि लोकः इति त्रिलोकः (कर्मधारय समास), त्रिलोकस्य नाथः (षष्ठी तत्पुरुष समास), भीमरूपः= बिभेति अस्मात् इति भीमम् (पञ्चमी तत्पुरुष), सन्= अस्+शतृ प्रथमा विभक्ति, एकवचन, याथार्थ्यविदः= यथार्थ+ष्यञ्+विद्+क्विप्+ प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- विरोधाभास।

छन्द- वंशस्थ।

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा, गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।

कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं, न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥७८॥

प्रसंग- पार्वती शिव के विराट स्वरूप का वर्णन करती हैं।

अनुवाद-विश्व ही है रुप जिसका, ऐसे शिव का शरीर आभूषणों से चमकता हो अथवा सर्पों से लिपटा हुआ हो, उसने गजचर्म धारण किया हो अथवा रेशमी वस्त्र, (सिर में) कपाल धारण किया हो अथवा चन्द्रमा, (कुछ भी) निश्चित रुप से नही कहा जा सकता है।

भावार्थ- अतः ऐसे महादेव का स्वरूप विराट है। सम्पूर्ण विश्व ही उसका स्वरूप है। अतः ऐसा शिव चाहे स्वर्ण आभूषण धारण करे या सर्पों को अपने शरीर में लिपटा ले, चाहे वह गजचर्म धारण करे या चन्द्रमा, इससे उसके विषय में कुछ भी निश्चय नही हो सकता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- स्यादथवेन्दुशेखरं= स्यात्+अथवा+इन्दुशेखरम् (सन्धि), विश्वमूर्तेरवधार्यते=विश्वमूर्तेः+अवधार्यते (सन्धि), विश्वमूर्तेः= विश्वं मूर्तिः यस्य सः तस्य (बहुब्रीही समास), पिनद्धभोगि=पिनद्धाः भोगिनः यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), गजाजिनालम्बि=गजस्य अजिनम् गजाजिनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), गजाजिनमालम्बि=गजस्य अजिनम् गजाजिनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), गजाजिनम् आलम्बते इति (उपपद समास), दुकूलधारि=दुकूलं धारयति इति (उपपद समास), इन्दुशेखरम्=इन्दु शेखरे यस्य सः तम् (बहुब्रीहि समास), विभूषणोद्भासि=वि+भूष्+ल्युट्+उद्+ भास्+णिनि प्रथमा विभक्ति, एकवचन, दुकूलधारि= दुकूलं धारयति इति (उपपद समास), इन्दुशेखरम्= इन्दुशेखरं यस्य सः तम् (बहुब्रीही समास)।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिकर।

छन्द- वंशस्थ।

तदङ्गसंसर्गवाप्य कल्पते, ध्रुवं चिताभस्मरजो विशुद्धये।

तथाहि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं, विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम् ॥७९॥

प्रसंग- पार्वती शिव की महिमा का बखान अभी भी कर रही है।

अनुवाद- उस शिव के शरीर का संसर्ग पाकर चिता के भस्म के रज विशुद्ध करने में निश्चय ही समर्थ हो जाते हैं । इसीकारण (शिव के) नृत्याभिनय के समय गिरी हुई धूलि को देवतागण मस्तकों पर लगाते हैं ।

भावार्थ- पार्वती शिव के स्वरूप के विषय में कहती हैं कि शिव का शरीर इतना पवित्र है कि उसका स्पर्श पाकर चिता की भस्म की धूल भी पवित्र हो जाती है, और वह भी कल्याणकारी हो जाती है। अतः देवगण भी उस चिता के भस्म के धूल की कृपा पाने के लिये लालायित रहते हैं। इसीलिये जब शिव नृत्य करते हैं तो नृत्य करने से गिरे हुए भस्म की धूलि को ही देवतागण अपने मस्तक पर लगा लेते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- चिताभस्मरजो विशुद्धये=चिताभस्मरजः+विशुद्धये (सन्धि), मौलिभिरम्बरौकसाम्=मौलिभिः+अम्बरौकसाम् (सन्धि), तदङ्गसंसर्गम्=तस्य अङ्गं तदङ्गम्(षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य संसर्गः तम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), नृत्याभिनयक्रियाच्युतम्=नृत्ये अभिनयः नृत्याभिनयः (सुप्सुपा समास), तस्य क्रिया (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्याः च्युतम् (सुप्सुपा समास), अम्बरौकसाम्= अम्बर ओकः येषां ते तेषाम्(बहुव्रीही समास), अभिनय=अभि+नी+अच्।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- उल्लास।

छन्द- वंशस्थ।

असंपदस्तस्य वृषेण गच्छतः, प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।

करोति पादावुपगम्य मौलिना, विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली ॥८०॥

प्रसंग- इस स्थान पर भी पार्वती शिव का गुणगान करती रहती है।

अनुवाद- मदमस्त श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ इन्द्र धनहीन तथा बैल पर पर जाते हुए उस शिव के पैरों को मस्तक से स्पर्श करके खिले हुए मन्दार पुष्पों से अरुणित अंगुलियों वाला बना देता है ।

भावार्थ- पार्वती ब्रह्मचारी रुप शिव से कहती हैं कि जिस इन्द्रादि को तुम श्रेष्ठ समझते हो, वह भले ही मदमस्त गजराज की सवारी करता हो, और अपने मस्तक पर लगे हुए मुकुट में मन्दारवृक्ष के पुष्पों को धारण करता हो, किंतु बैल पर सवारी करने वाले शिव के पैरों के नीचे जब वह मन्दार के पुष्प आजाते हैं, तो शिव के पैर भी लालिमा से युक्त हो जाते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- असम्पदस्तस्य=असम्पदः+तस्य (सन्धि), पादावुपगम्य= पादौ+उपगम्य (सन्धि), प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः= दिशां दिशि वा वारणः दिग्वारणः (षष्ठी या तत्पुरुष

समास), प्रभिन्नः दिग्वारणः (कर्मधारय समास), प्रभिन्नदिग्वारणः वाहनं यस्य सः (बहुब्रीही समास), असम्पदः= अविद्यमाना सम्पद् यस्य सः (बहुब्रीही समास)।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- पर्यायोक्त।

छन्द- वंशस्थ।

विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना, त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम्।

यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं, कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ॥८१॥

प्रसंग- पार्वती शिव के वंश सम्बन्धी आक्षेप का उत्तर देती है।

अनुवाद- केवल दोषकथन के इच्छुक भी पतित आत्मा वाले तुम्हारे द्वारा शिव के विषय में एकबात ठीक ही कही गयी है। जिसको ब्रह्मा का भी कारण कहते हैं, उस शिव का उत्पत्ति स्थान कैसे ज्ञात होगा।

भावार्थ- पार्वती ब्रह्मचारी से कहती है कि जिस शिव की तुम इतनी निन्दा कर रहे थे, उसी की निन्दा करते करते समय तुमने अज्ञानवश ही एक सत्य बात कह दी और वह यह बात है कि शिव के कुल का पता ही नही है। यह सत्य भी है क्योंकि जो सबका कारण है, ब्रह्मा का भी कारण है, उसके कुल, परिवार , उत्पत्ति का स्थान का पता कैसे चलेगा?

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- त्वयैकमीशं=त्वया+एकम्+ईशम् (सन्धि), यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि=यम्+आमनन्ति+आत्मभुवः+अपि (सन्धि), स लक्ष्यप्रभवो= सः+लक्ष्यप्रभवः (सन्धि), च्युतात्मना= च्युतः आत्मा यस्य सः च्युतात्मा तेन (बहुब्रीही समास), आत्मभुवोः=आत्मना भवतीति आत्मभूः तस्य (उपपद समास), लक्ष्यप्रभवः=लक्ष्यः प्रभवः यस्यः सः (बहुब्रीही समास), आत्मभुवः=आत्मन्+भू+क्विप्, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- वक्रोक्ति।

छन्द- वंशस्थ।

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया, तथाविधस्तावादशेषमस्तु सः।

ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं, न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥८२॥

प्रसंग- पार्वती कहती है कि उसे लोकनिन्दा का कोई भय नही है, अतः वह शिव में पूर्णतया अनुरुक्त है।

अनुवाद- विवाद करना व्यर्थ है, उसे तुम्हारे जैसा सुना गया है, पूर्णरुप से (वह शिव) वैसा ही हो। मेरा मन यहां एकमात्र प्रेमरुपी रस में ही स्थित है। स्वेच्छापूर्वक काम करने वाला व्यक्ति लोकनिन्दा को नही देखता है।

भावार्थ- पार्वती कहती है कि तुमने जिस प्रकार से शिव के चरित्र का वर्णन किया है, शिव वैसा भी है, तो भी कोई समस्या नही है। मुझे वह हर रुप में स्वीकार हैं। क्योंकि मैं शिव के प्रेमरुपी रस में पूर्णतया डूबी हुई हूं। मेरा यह निर्णय स्वेच्छा से लिया गया है। और स्वेच्छा से निर्णय लेने वाले को लोकनिन्दा का भय नही होता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- श्रुतस्त्वया=श्रुतः+त्वया (सन्धि), तथाविधस्तावदशेषमस्तु=तथाविधः+तावत्+अशेषम्+अस्तु (सन्धि), विवादेन=विरुद्धो वादः विवादः (प्रादि समास), भावैकरसम्=एकः रसः एकरसः (कर्मधारय समास), भावः एव एकरस यस्य तत् (बहुब्रीही समास), कामवृत्तिः= कामा वृत्तिः यस्य सः (बहुब्रीही समास), यथा=यद्+थाल्, वचनीयम्=वच्+अनीयर्+ द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- अर्थान्तरन्यास।

छन्द- वंशस्थ।

निवार्यतामालि किमप्ययं बटु:, पुनर्विवक्षु : स्फुरितोत्तराधरः।

न केवलं यो महतोऽपभाषते,श्रृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ॥८३॥

प्रसंग- पार्वती इसप्रकार जब उत्तर देती है, तब ब्रह्मचारी कुछ कहना चाहते हैं किंतु क्रोधित पार्वती ब्रह्मचारी को कुछ कहने के लिये रोकने का इशारा करती है।

अनुवाद- हे सखी! कापते हुए अधरोष्ठ वाले पुनः कुछ कहने की इच्छा रखने वाले इस ब्रह्मचारी को रोक दो, क्योंकि जो महान लोगों की निन्दा करता है, न केवल वह ही पापभागी बनता है, अपितु जो सुनता है, वह भी पाप का भागी बनता है।

भावार्थ- पार्वती के इसप्रकार शिव का बखान करने पर ब्रह्मचारी कुछ कहना चाहता है, और यह भांपकर पार्वती अपने सखी से कहती है, कि तुम इस ब्रह्मचारी को कुछ भी अनिष्ट कहने से रोक दो,क्योंकि अनिष्ट वार्ता करने वाला तो पाप का भागी बनता ही है, साथ ही अनिष्ट वचन सुनने वाला मनुष्य भी पाप का भागी बनता है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- किमप्ययं=किमपि+अयम् (सन्धि), पुनर्विविक्षुः = पुनः+विविक्षुः (सन्धि), महतोऽपभाषते=महतः+अपभाषते (सन्धि), तस्मादपि=तस्मात्+अपि (सन्धि), स्फुरितोत्तराधरः= उत्तरः च अधरश्च इति उत्तराधरम् (कर्मधारय समास), स्फुरितम् उत्तराधरं यस्य सः (बहुब्रीही समास), पापभाक्=पापं भुनक्ति य सः (बहुब्रीही समास), निवार्यताम्=नि+वृ+णिच्, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- अर्थान्तरन्यास।

छन्द- वंशस्थ।

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी, चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।

स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मित:, समाललम्बे वृषराजकेतनः ॥८४॥

प्रसंग- इसके बाद जब पार्वती क्रोधित होकर जाने लगती है, तो शिव उसको रोकने के लिये अपने स्वरूप में आ जाते हैं।

अनुवाद- 'अथवा मैं ही यहां से चली जाऊगी' इस प्रकार कहने वाली स्तनों से हटे हुए वल्कल वाली कुमारी (पार्वती) चल पडी। (तब) बैल के ध्वजा चिह्न वाले (शिव ने) (अपने वास्तविक) स्वरूप को धारण करके मुस्कुराते हुए उसको पकड लिया।

भावार्थ- इसप्रकार क्रोधित हुई पार्वती को अपनी कोई सुध ही नही थी, अतः उसके वल्कल भी जो यथास्थान नही थे, उसका भी उसे भान न हुआ। और उसने अपनी सखी से कहा कि यदि इस ब्रह्मचारी ने और कुछ भी अनिष्ट कहने का प्रयत्न किया तो मै यहां से चली जाऊगीं। ऐसा कहकर जब वह वहां से उठकर जाने लगी, तो शिव अपने वास्तविक स्वरूप मे आ गये। और मुस्कुराते हुए उस पार्वती के हाथ को पकडकर रोका।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- इतो गमिष्याम्यथवेति=इतः+गमिष्यामि+अथवा+इति (सन्धि), स्तनभिन्नवल्कला=स्तनाभ्यां भिन्नम् इति स्तनभिन्नम् (सुप्सुपा समास), स्तनभिन्नं वल्कलं यस्याः सा (बहुब्रीही समास), वृषराजकेतनः=वृषाणां राजा इति वृषराजः (षष्ठी तत्पुरुष समास), स्वरूपम्=स्वं रूपम् (कर्मधारय समास), कृतस्मितः= कृतं स्मितं येन सः(बहुब्रीही समास)।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- परिकर।

छन्द- वंशस्थ।

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धतमुद्वहन्ती।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः, शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥८५॥

प्रसंग-सहसा अपने शिव प्रिय को अपने सामने देखकर पार्वती व्याकुल हो जाती है। और किंकर्तव्यविमूढ हो जाती है।

अनुवाद- उस शिव को देखकर कम्पन और स्वेत से आर्द्र शरीर वाली, अन्यत्र गमन करने के लिये उठाए हुए चरणों को धारण करती हुई पर्वतराज की पुत्री, मार्ग में पर्वत आ जाने से व्याकुल, नदी के समान, न आगे जा सकी और न ठहर सकी।

भावार्थ- जैसे ही पार्वती को यह भान हुआ कि ये ब्रह्मचारी कोई और नही, बल्कि शिव ही है, वह आश्चर्यचकित हो गयी । अपनी भावनाओं को प्रकट करने मे असमर्थ हो गयी। और शिव को देखते ही वह कापने लगी, पसीने से ओतप्रोत हो गई । उसकी स्थिति बहती हुई नदी के समान हो गई, जो कि पर्वत से टकराकर न आगे जा सकती है, और न ही रुक सकती है । पार्वती भी न तो वहां से जा पा रही थी, और न ही वहां पर रुकने का सामर्थ्य जुटा पा रही थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव= मार्गाचलव्यतिकराकुलिता+इव (सन्धि), शैलाधिराजतनया=शैलानाम् अधिराजः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य तनया (षष्ठी तत्पुरुष समास), मार्गाचलव्यतिकराकुलिता=न चलः अचलः (नञ् समास), अचलस्य व्यतिकरः (षष्ठी तत्पुरुष समास), मार्गे अचलव्यतिकरः (सप्तमी तत्पुरुष समास), तेन आकुलिता (तृतीय समास), वेपथुमती=वेप् +अथुच्+मतुप्+ङीप्+ प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- उपमा।

छन्द- वसन्ततिलका।

अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः, क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।

अह्नाय सा निजमयं क्लममुत्ससर्ज, क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥८६॥

प्रसंग- पुनः शिव पार्वती से प्रेमपूर्वक कहना प्रारम्भ करते हैं।

अनुवाद- हे अवनत अंगों वाली पार्वती! आज से लेकर (मैं) तुम्हारी तपस्या से क्रीत दास हूं। इसप्रकार शिव के कहने पर वह (पार्वती) सहसा ही तप से उत्पन्न कष्ट को भूल गयी, क्योंकि कष्ट फलप्राप्ति हो जाने पर पुनः नवीनता को धारण कर लेता है।

भावार्थ- अपने वास्तविक स्वरूप मे प्रकट होकर शिव पार्वती से कहते हैं कि तुम्हारी द्वारा की गई तपस्या से मैं तुम्हारा स्वामी नही, अपितु सदा के लिये तुम्हारा दास बन चुका हूं। शिव के ऐसे प्रिय वचनों को सुनकर पार्वती अपने सारे कष्ट भूल गयी। क्योंकि जब कोई असहनीय कष्ट सहकर उसका फल प्राप्त कर लेता है, तो सारे कष्ट वह भूल जाता है। अतः पार्वती भी अपने सारे कष्टों को भूल गयी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी- अद्यप्रभृत्यनवतांगि=अद्यप्रभृति+अवनतांगि (सन्धि), क्रीतस्तपोभिरिति=क्रीतः+तपोभिः+इति (सन्धि), अवनतांगि=अवनतम् अंगं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही समास), नियमजाम्=नियमात् जायते तम् (उपपद समास), नवताम्= नवस्य भावः नवता ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), नियमजम्=नियम+जन्+ ड, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, उत्ससर्ज=उत्+सृज्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काव्यगत वैशिष्टय-

अलंकार- अर्थान्तरन्यास।

छन्द- वसन्ततिलका।

18.3 पारिभाषिक शब्दावली

प्रार्थितदुर्लभ - अभीष्ट होने पा भी दुर्लभ

मिताक्षर - थोडे से शब्दों में

वधूदुकूलम्- वधू का रेशमी वस्त्र

ऊढया - विवाहित

हर -शिव

चिताभस्मरज - चिता के भस्म की धूल

अवनतांगि - विनम्र अंगो वाली

18.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. श्लोक संख्या ६२की सप्रसंग व्याख्या करें।
2. श्लोक संख्या ६९की सप्रसंग व्याख्या करें।
3. श्लोक संख्या ७५की सप्रसंग व्याख्या करें।
4. श्लोक संख्या ८२ की सप्रसंग व्याख्या करें।

18.5 सारांश

यहां पर पार्वती की सखी पार्वती की दयनीय स्थिति बता रही है कि किसप्रकार शिव को प्राप्त करने की इच्छा से पार्वती तपस्या कर रही है। अतः ब्रह्मचारी ने पार्वती के प्रेम की सत्यता जानने के उद्देश्य

से शिव की अर्थात् स्वयं की निन्दा प्रारम्भ की। और शिव के दोषों को गिनाना प्रारम्भ किया कि वह श्मशान में रहते हैं, शरीर पर चिता की भस्म लगाते हैं, विकृत अंगों वाले हैं, इत्यादि अनेक प्रकार से उनकी निन्दा की। शिव की इतनी बुराईयां सुनने के बाद भी पार्वती अपने दृढ निश्चय अपर अडिग रही। और उस ब्रह्मचारी पर क्रोधित होकर बोली कि मूर्ख व्यक्ति महान लोगों के चरित्र को नही समझ सकते हैं। और उनके वास्तविक स्वरूप को कोई नही जान सकता है। वह सबका कारण है। इत्यादि अनेक प्रकार से शिव की महिमा का गान किया। और फिर उठकर जाने लगी। इसपर ब्रह्मचारी ने अपना वास्तविक स्वरुप में प्रकट हो गये। और स्वयं को पार्वती का दास बताया। इतना सुनने मात्र से ही पार्वती अपना समस्त कष्ट भूल गई। और प्रसन्न हो गई।

18.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय प्रद्युम्न, कुमारसम्भवम् (पञ्चम् सर्ग), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013.
2. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, टाइम टेबुल प्रेस, बनारस, 1947.
3. शर्मा , उमाशंकर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2007.
4. विश्वेवर आचार्य, काव्यप्रकाश (मम्मट कृत),ज्ञान मण्डल, वाराणसी, 1967.